सहजानंद शास्त्रमाला

मोक्ष – शास्त्र

भाग 4

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

http://sahjanandvarnishastra.org/

मोक्ष-शास्त्र

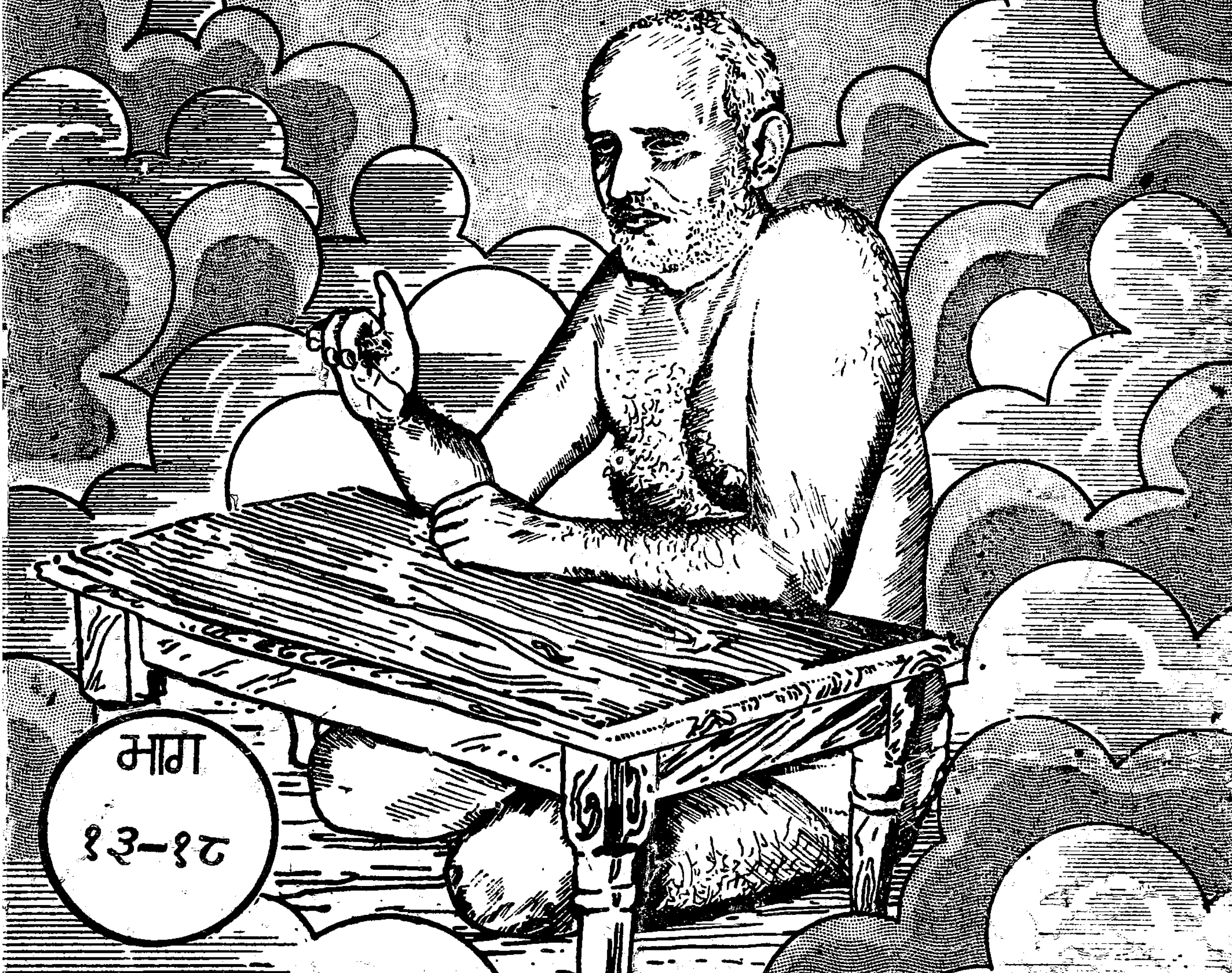

आध्यात्म योगी पूज्य गुरुवर श्री मनोहर जी वर्णी
सहजानन्द जी महाराज

श्री सहजानन्द शास्त्र माला
१८५-ए, रणजीतपुरी, सदर - मेरठ

13 से 14 भाग

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रकाशकीय

धर्मप्रेमी बन्धुओ !

श्रीमदुमास्वामी द्वारा प्रणीत 'मोक्ष शास्त्र' जैन धर्म व जिनशासन का प्राण है। प्रणेता ने छोटे छोटे सूत्रों में गागर में सागर भर दिया है। इस पर आठ दस शताब्दी पूर्व श्रीमद्भट्टाकलंकदेव, श्रीमद्विद्यानन्दि स्वामी जसे दिग्गजों ने टीकाएँ की हैं। परन्तु टीकाएँ संस्कृत में होने के कारण जनसामान्य के उपयोग में नहीं आतीं।

यह समाज के परमहित व उपकार की बात है कि पूज्य गुरुवर्य्य श्री सहजानन्द जी महाराज ने इस ग्रन्थ पर प्रवचन किये हैं। धर्म के मर्म को महाराज श्री ने किस प्रकार उजागर किया है, यह तो ग्रन्थ के अध्ययन से ही पता लगता है।

जिज्ञासु बन्धुओं से निवेदन है कि इस प्रवचन में संजोये रत्नों का लाभ उठायें जिससे मोक्ष मार्ग में प्रगति हो और सत्य सहज आनन्द प्राप्त हो।

मंगलाकांक्षी
मंत्री
सहजानन्द शास्त्रमाला
मेरठ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ॐ

मोक्ष शास्त्र प्रवचन

चतुर्थ भाग

प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षु०, मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' महाराज

मोक्ष शास्त्र ग्रन्थ की प्रमुखता का संकेत—जैसे अनेक लोग अपने अपने मजहब की एक एक किताब बताते हैं कि इससे समझो मजहब की बात और उसकी श्रद्धा पूर्ण करो जैसे कोई ईसाइयों से बाईबिल, मुसलमानों में कुरान और हिन्दुओं में रामायण अथवा गीता, इस तरह कोई पूछे कि जैन धर्म में ऐसा कौन सा ग्रंथ है जो एक सबका प्रतिपादन करे ? तो इसका उत्तर देना बहुत कठिन है, कारण यह है कि जिनेन्द्र देव के द्वारा प्रणीत जो शासन है उसका इतना बड़ा विस्तार है, कि एक ही को लेकर पूरा वर्णन किया जाय तो इतने ग्रन्थ बनें कि इस कमरे में भी न समायें। कितना विषय है वस्तु का स्वरूप बताना, लोक की रचना, काल का प्रवाह और भावना, अनेक प्रकार के धर्म जो व्यवहार में आये, कितना वर्णन हो जाता है, फिर भी यदि कोई बताना ही है, बताना ही पड़ेगा। सभी ग्रन्थों का कुछ स्वाध्याय करें तो उन्हें बताया जाय कि जैसे रामायण और गीता मिलकर यह पुष्टि करते हैं, एक मजहब का वर्णन करते हैं तो यहाँ बता सकते हैं कुछ संकोच के साथ पूरी बात तो नहीं आने की, बताओ कि तत्त्वार्थ सूत्र और समयसार। यह ग्रन्थ मोक्ष शास्त्र है या तत्त्वार्थ सूत्र कहो इसमें संसार के जीवों को समस्त दुःखों से छूटने का उपाय बताया है जिसमें पहले सूत्र में बताया कि संभव दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक चरित्र मुक्ति का मार्ग है। याने आत्मा का सहज स्वरूप में विश्वास और इसका परिचय और इसके अनुरूप आचरण यह है दुःखों से छूटने का मार्ग।

संसार - संकटों से छुटकारा पाने के उपाय का संदर्शन आचार्य संतों ने अपनी संक्षिप्त भाषा में संयत पद्धति में इस आत्मा को सदा के लिये संकटों से छूटने का उपाय बताया। किन्तु जिनके मिथ्यात्व है उनको बाहरी बाहरी बातों में तो रुचि जगेगी। पहले कुछ ऊपरी परिचय कर लें, पहले कुछ जानकारी बना लें, यह इसके लिये तो उमंग उठेगी, क्योंकि मिथ्यात्व का उदय है। बाहरी बाहरी विषयों में ही उमंग दिखती है, किन्तु जो सुगम है, स्वाधीन है, अपने आप में है, उसका परिचय करने की रुचि नहीं जगती। जितनी बड़ी देन है आचार्य संतों की। कैसा बड़े सीधे सरल शब्दों में मुक्ति का मार्ग बता दिया है। खुद हूँ। सब मपसूस करते हैं कि मैं हूँ। जो मैं हूँ, जो सहज हूँ, जो परकी अपेक्षा बिना ,परकी करुणा बिना, परके सम्बंध बिना अपने आप जो मेरे में स्वरूप है उस रूप मान लें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कि यह है मैं हूँ, बेड़ा पार हो जायेगा। और इस सहज स्वरूप के रूप में अपने आपका नहीं समझा जा सका तो जीवन भर अध्ययन करके कितना ही कुछ विषय जानकारी करले, पर मुक्ति का मार्ग नहीं मिलने का। मिलेगा तो अपने आत्मा के सत्य स्वरूप की समझ से। उसका ज्ञान करें। उसमें ही तृप्त रहें। यह है मोक्ष मार्ग। फिर सम्यग्दर्शन का स्वरूप बताया। यद्यपि सम्यक्त्वका स्वरूप अवक्तव्य है अखण्ड है, एक अनुभव में ही आ सकने योग्य है फिर भी शब्दों द्वारा कुछ तो बताया जाता। जैसे मिश्री का स्वाद बताना कठिन है, कैसे बतायें, वह तो स्वाद लेता, और अनुभव में ही आता है फिर भी लोग बताते तो हैं ही जिसमें स्वाद लिया है वह शब्द सुनकर झट ठीक परिचय पा लेता। जिसने स्वाद नहीं लिया मिश्री का। दूसरा वर्णन करे तो उसका वह कुछ नहीं अन्दाज लगाता है, अनुमान सा बनाता है। वह भी कुछ समझता है। शब्दों द्वारा समझाना यह तो पद्धति है। तो उस सम्यग्दर्शन के रूप को समझाने के लिये हमारी कौन सी पद्धति है ? व्यवहार पद्धति। निश्चय पद्धति तो थोड़े शब्दों की है और वास्तव में अनुभव करने की है। तो व्यवहारतः स्वरूप बताया कि जीवादिक ७ तत्त्वों का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। जाना, किसे जाना ? अपने आप में अनादि अनन्त रहने वाले इस चैतन्य प्रकाश को जाना। जिसके आधार पर ये सारी परिणतियाँ बना करती हैं, उसको जानने के लिये ७ तत्त्वों का परिचय करिये विस्तृत ढंग से स्वरूप समझिये। जैसे ७ द्वार भीतर कोई विश्राम का स्थान है, वहाँ पहुँचना है तो ७ द्वारो में से गुजर कर पहुंचते, इसी तरह यह अन्तःप्रकाशमान चैतन्य परमात्म तत्त्व है उस तक पहुंचना है तो पहुंचे ७ तत्त्वों का वस्तु परिचय बनाकर इसके अन्दर एक भूतार्थ विधि से प्रवेश कर पहुचे अखण्ड आत्म तत्त्व पर। तो व्यवहार दृष्टि से सम्यक्त्व का स्वरूप कहा गया। तृतीय सूत्र में—वह सम्यक्त्व कैसे उत्पन्न होता है ? निसर्ग से और उपदेश से। उपदेश आदिक की सहायता बिना भी होता है और उपदेश से भी होता है। वे ७ तत्त्व क्या हैं ? जीव अजीव, आश्रव, बंध, सम्वर, निर्जरा और मोक्ष, यह चौथे सूत्र में बताया है कोई व्यवहार कैसे बने ? कैसे हम जिह्वा हिलायें ? कैसे हम इसका लक्ष्य बनायें ? जिसके बारे में वर्णन करें ? तो इस समस्या का हल पाँचवें सूत्र में किया कि नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव इन चार निक्षेपों से उनका व्यवहार करें। अब व्यवहार भी हो तो कुछ परिचय भी हो तो उनका ज्ञान कैसे हो ? उसके लिये छठे सत्र में बताया प्रमाण और नयों के द्वारा सबका परिचय करें। इतने से कुछ नहीं परख सकें। वस्तु की कुछ बात आनी चाहिये तब तो हम कुछ जान सकेंगे। तो ७ वाँ सूत्र कहा—निर्देश स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति, विधानतः इसका वर्णन हो चुका। इतने से भी ज्यादा न जान सकें तो खूब विस्तार पूर्वक पदार्थ का परिचय कराने के लिये सूत्र कहते हैं।

सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालान्तरभावाल्पबहुत्वैश्च ॥ ८ ॥

विस्तृत आठ प्ररूपणाओं द्वारा तत्त्वों का अधिगम—इस सूत्र का सामान्यतया अर्थ यह है कि सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव, अल्प, बहु, इन आठ अनुयोगों द्वारा तत्त्व का पदार्थ का अधिगम होता है। अधिगम किसे करना ? खुद को करना और दूसरे को भी कराना। जानना परिचय खुद करना और दूसरों को भी परिचय कराना इन दो में से जरा अपनी रुचि बताओ कौन सा अधिक पसन्द है ? खुद परिचय लेना, खुद देखना, खुद अनुभवना, यह अधिक पसन्द है या दूसरे को जताना, बताना यह अधिक पसन्द है। खुद न जाने और दूसरे को बताये तो इसमें खुद तो हित से गये और दूसरों पर अधिकार क्या ? कि ये हित में लग ही जायें। और प्रायः ऐसा होता है कि जो खुद

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्वहित में नहीं लग सकता, वह परहित का भी कारण नहीं बनता। जिसे कहते हैं आत्महित, कल्याण और कोई पुरुष केवल स्वहित के लिए जाने और दूसरे को समझाने का काम न करें तो उसका तो प्रयोजन सिद्ध हो गया। तो इन दो में जो केवल परको समझाने के लिये ही उद्यम करता है उसका मोक्ष मार्ग में नम्बर नहीं है। और, जो स्वको समझाने और परको समझाने के लिये उद्यम करता है उसका नम्बर मोक्ष मार्ग में है और जो केवल स्व को समझाने के लिये ही उद्यम करता है वह मोक्ष मार्ग में है और विशेष रूप से मुक्त है। तो स्व की समझ बनती है ज्ञानात्मक उपाय से। परको तो समझा जाता है, शब्दात्मक उपाय से। तो इन ८ अनुयोगों द्वारा ज्ञानात्मक साधन से और शब्दात्मक साधन से परिचय करना चाहिये। यह इसका और विशिष्ट अर्थ हुआ। इस प्रसंग में एक आशंका हो सकती है कि जब प्रमाणनयैरधिगमः इस सूत्र ने समझा दिया कि इस उपाय से वस्तुओं का परिचय होता है और फिर भी ७ वें सूत्र ने भी समझा दिया कि निर्देश स्वामित्व आदिक अनुयोगों का परिचय होता है।

सत्संख्यादि अष्टम सूत्र की आवश्यकता पर प्रकाश— सामान्य विशेष दोनों तरह से वस्तु स्वरूप समझाने के प्रसंग में एक समस्या आयी कि इस सूत्र की क्या आवश्यकता थी? न कहते, समझ में आ ही गया था। तो यह सूत्र व्यर्थ किया। ऐसी आशंका की जा रही है। देखो अधिकारी लेखक इतना संयत होता है कि कोई फालतू शब्द न लिखा जाये। भले ही अध्यात्म ग्रन्थों में कुछ शब्द दो बार, चार बार, अनेक बार प्रयोग में आते हैं, लेकिन उनका प्रयोजन है आत्मा के ज्ञानस्वभाव निज परमात्मतत्त्व से जो छूटे हुये हैं उनको विशेष दृढ़ता हो इसलिये आध्यात्मिक बात तो कई कई बार कही जाती है कुछ कुछ फेर के साथ, किन्तु जो एक सामान्य कथन है उसे पुनरुक्त नहीं किया जाता। तो जब तत्त्वों के जानने का उपाय बता दिया छठे और ७वें सूत्र में तो फिर इस सूत्र को कहने की आवश्यकता क्या? एक ऐसी आशंका आती है। सभी लोग सूत्र पाठ कर डालते हैं। वर्षों हो जाते हैं। थोड़ा मन्द कषाय हो तो पुण्य बंध हो जाता है। और थोड़ा यह बता दिया अन्त में कि कोई यदि सूत्र जी का पाठ करे तो उसे एक उपवास का फल मिलता है। तो उसकी वजह से और लोग अधिक सूत्र का पाठ करते हैं, यह तो बड़ा अच्छा है, खाने पीने में भी कुछ फर्क न पड़ा, १५ मिनट सूत्र जी का पाठ कर लिया तो एक उपवास का फल मिल गया, कोई किसी वाञ्छा से करता है, मगर यह महिमा तो देखिये कि इस सूत्र ग्रंथ में अनुमान तो करें, कैसे रत्न होंगे कि जिसके बारे में इतना तक भी कह दिया कि पाठ भर भी करे तो भी उपवास का फल है। तो क्या रत्न पड़े हैं, क्या बात इसमें है? वह जब जानने में आता तो अपार समुद्र, मोक्ष शास्त्र है भली विधि से कोई प्रयोजन करे, समझे तो यह २० वर्ष से पहले तो पूरा हो नहीं सकता, अधिक कितना ही लग जाये। एक-एक शब्द के आधार पर कितना-कितना ज्ञान बनता है, उसको समझें तो मालूम पड़ता कि ओह! कैसा अलौकिक ग्रंथ है, ऐसे उच्च ग्रंथ में कोई शब्द ज्यादह आ जाये तो वह बुद्धिमान को शल्य की तरह लगता है। और, फिर यह सूत्र ज्यादह आ गया ऐसी आशंका की जा रही है शब्द की भी बात नहीं—जब जानकारी छठे, ७वें सूत्र से कराया तो अब इस सूत्र को कहने की आवक्यकता क्या? ऐसा शंकाकार का भाव है? उत्तर उसका सामान्य से तो यह है कि भाई श्रोता अनेक प्रकार के होते हैं कोई तो संक्षेपरुचि वाले होते हैं—थोड़ा बोलें तो समझ जायें, उससे आगे सुनने की आवश्यकता नहीं। कुछ श्रोता मध्यम रुचि वाले होते हैं। न तो अत्यन्त संक्षेप में वर्णन हो और न अत्यन्त अधिक विस्तार में वर्णन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हो। और कुछश्रोता होते हैं विस्तार पसन्दी, खूब वर्णन किये जाओ, हमें जिन्दगी भर यही तो करना है, सुनना है, खूब विस्तार से वर्णन किया जाये, कुछ ऐसी रुचि वाले श्रोता होते हैं। तो उनकी ही रुचि अनुसार तो ये तीन सूत्र हैं, जो संक्षेप में समझना, उनके लिये छठा सूत्र है। जो मध्यम रुचि वाले हैं उनको ७वाँ सूत्र और जो अधिक विस्तार से सुनने की अभिलाषा रखते हैं उनके लिये इस ८वें सूत्र का अवतार हुआ।

सत्संख्यादि अष्ट अनुयोगों का सामान्य परिचय—इस सूत्र का सामान्यतया अर्थ समझिये–सत् मायने "हैं"- पहले है की बात बतावें। किसी भी पदार्थ के सम्बन्ध में कुछ सुनाना हो, बताना हो तो "है" की बात कहो। है के बाद संख्या की बात कहो। कितना है वह ? जैसे मनुष्य है. कितने हैं ? संख्या हो गई। फिर क्षेत्र की बात कहते कि रहते कहाँ हैं ? फिर स्पर्शन कहते कि वे पहले कहाँ तक रह चुके, आगे कहाँ तक जा सकेंगे ? कहाँ तक फैल सकेंगे ? फिर काल की बात कहो, वे कितने समय तक रहेंगे ? फिर अन्तर बतलाओ कि था, अब नहीं है, फिर हुआ, तो नहीं का टाइम कितना गुजरा ? फिर भाव की बात कहो ? कौन सा भाव है इसमें ? औपशमिक, क्षायिक आदिक, फिर अल्प बहुत्व बताओ। सबसे कम यह, उससे ज्यादह यह, उससे ज्यादह यह। देखिये ये ८ पद्धतियाँ ऐसी सही बतायी हैं कि इनके द्वारा वस्तु का पूरा परिचय होता है। एक-एक बात का परिचय करें, जीव का करें, कषाय का करें, मोह का, ज्ञान का, सिद्ध भगवान का। जिस किसी का भी परिचय करें, इन ८ प्ररूपणाओं से होता है। जैसे मानो कोई स्कूल का प्रिंसिपल है, उसका परिचय करना है तो इन ८ प्ररूपणाओं से करें जरा। यह प्रिंसिपल है, ऐसे कितने हैं ? अरे ऐसे यहाँ (मुजफ्फरनगर में) होंगे ५०-६०, यह प्रिंसिपल कहाँ रहता है ? मुजफ्फरनगर में। जितना कि उसका रहने का क्षेत्र है, पर इसका सम्बन्ध कहाँ तक है ? कहाँ कहाँ गया ? कहाँ कहाँ तक जायेगा ? वह भी बतलाओ, सारे भारत में, और यह कितने समय तक प्रिंसिपल रहेंगे ? अन्दाज बता दिया, और अन्तर--यह प्रिन्सिपल यहाँ से छूट जाये और कहीं भी रहे और फिर नौकरी पर लगे तो कितना उसका अन्तर हुआ ? परिचय में ये सब बातें काम में आती हैं। फिर उसका भाव क्या ? क्वालिटी क्या ? और फिर उनकी क्वालिटी का अल्प बहु--उस प्रिन्सिपल से यह ज्यादह होशियार, यह ज्यादह चतुर। लौकिक परिचय करना है तो वहाँ भी यह विधि काम देती है और अलौकिक परिचय में भी उसकी शान बतायें, कुछ जानकारी में बढ़ें, कुछ स्वाध्याय में बढ़ें और कुछ चलें, कुछ समझें, सीखें, जानें तो महत्त्व का अन्दाज बताया जा सकता कि इन ८ अनुयोगों से वस्तु का परिचय कितना विशुद्ध और महत्त्वपूर्ण होता है। एक-एक बात का परिचय करते जाओ। इन ८ अनुयोगों से बहुत विस्तृत परिचय मिलेगा। अब इसमें सबसे पहले सत् अनुयोग कहा। है, सम्यक्त्व का वर्णन समझना है तो सम्यक्त्व के बारे में यह है, जीव के बारे में समझना, तो पहले सत्ता स्वीकार तो करें कि यह है। जिसका सत्त्व न समझा उसके बारे में आगे क्या बात चलेगी ? सत्त्व स्वीकार करें। तो सबसे पहले सत् का नाम इसलिये लिया कि सत् नाम हो गया तब तो सारी बात बतलायी जावेंगी, और है ही नहीं तो क्या बतावेंगे ?

अत्यन्त नास्तित्व के निराकरण के लिये सत्प्ररूपणा की संगतता—इस सत् अनुयोग ने तीन प्रकार की दृष्टियाँ दीं। तीन प्रकार के विपरीत अभिप्रायों का निवारण किया। कोई दार्शनिक ऐसा है कि जो यह कहता है कि कुछ है ही नहीं। एक भी नहीं, कुछ भी नहीं, हैरानी की बात नहीं है। यों तो कभी कभी आप भी कह देते हैं किसी उलझन और परेशानी में आकर, कुछ नहीं है, बेकार है,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो यह तो है आपकी व्यावहारिक उलझन और परेशानी के वचन, लेकिन विचारशील कुछ दार्शनिक यह कहते हैं कि कुछ है ही नहीं। शून्यवाद जिसे बोलते हैं। शून्यवाद के अनेक अर्थ होते हैं कुछ शून्यवाद अच्छे भी होते हैं जैसे शुद्ध आत्मा क्या? तो रागादि विकार से उपाधि से शून्य है, पर यह तो सर्वापहारी शून्यवाद अत्यन्त निषेध अर्थ में आया कि कुछ भी नहीं है। ऐसा मानने वाले दार्शनिकों के अभिप्राय का निराकरण करने के लिये सत् अनुयोग को पहले रखा। शून्यवादी अपनी युक्तियाँ देते हैं और जब वे अपनी युक्तियाँ देते हैं तो उन जैसा दिमाग बनने लगता श्रोताओं का। किन्तु, जानकार श्रोता उसमें बहकते नहीं। मोटे रूप से देखो—किसी का नाम बताओ—यह है, भींट है. भींट वास्तविक होती तो सदा रहती वह सदा कहाँ रहती सो वह है ही नहीं, आप परमाणु का नाम लेंगे, उसकी खोज करने चलो। परमाणु में ४ अणु हैं रूपाणु, रसाणु आदि। उनको अलग देखो तो न वह रहा न वह रहा। युक्तियाँ ऐसी होती हैं कि थोड़ी भी गुंजाइश हो, उसका पलड़ा उलट सकता है और न हो उसके भी उलटने का प्रयास करे। तो जो नास्तित्त्व का सिद्धान्त है, कुछ भी नहीं हैं, जगत में शून्य ही शून्य है, यह ही तत्त्व है, उसका निराकरण करने के लिये सत् शब्द आया है।

जीव निषेधैकान्त व जडनिषेधैकान्त के निराकरण के लिये सत्प्ररूपणा की संगतता— कुछ श्रोता ऐसे हैं, कुछ दार्शनिक ऐसे हैं कि किसी चीज का अस्तित्त्व तो मान लेंगे, किसी का नहीं। जैसे कि चार्वाक लोग कहते हैं कि जीव नहीं है जिसे लोग पुद्‌गल कहते हैं वह तो है, परन्तु जीव नाम की कोई चीज नहीं। ऐसा कहने वाले तो अब भी ज्यादह हैं। हो तो बताओ। जीव हो तो दिखाओ - यह तो पृथ्वी, जल, अग्नि जैसी बहुत सी चीजें मिल गयी हैं, एक करेन्ट बन गया है, जिसे करेन्ट कह देते हैं, जीव नाम को कोई चीज नहीं है, वह न मरकर आगे जन्म लेता, न यह पहले था और न यह अब भी कुछ है। ऐसा मंतव्य है चार्वाक नास्तित्ववादियों का। और, इस अभिप्राय वाले दुनिया में बहुत से लोग मिलेंगे। नाम मत धरो—चार्वाक, पर ऐसी मन में जिसकी श्रद्धा है ऐसे मनुष्यों की संख्या बहुत है। वे जीव ही नहीं मानते। जो दिख रहा है सो ही है, उनके भी तो मंतव्य का निराकरण करने के लिये सत् शब्द आया है कि है, जीव है, परलोक है। पैदा होते ही बालक दूध पी ले, गले में उतार ले, तुरन्त पैदा हुये बालक को किसने सिखाया? यह पूर्वभव का संस्कार है आहार संज्ञा। परलोक है, जीव है, जीव के नास्तित्व का निराकरण करने के लिये सत् शब्द दिया है। सत् संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन आदिक सूत्र में कुछ तो अन्दाज बन जाता कि क्या शब्द है? कितना अर्थ है, कितना उसका प्रयोजन है। तो एक ओर से वेदान्ती आते हैं, वे कहते हैं कि हाँ जीव तो है पर जीव के अलावा अन्य कुछ नहीं है। पुद्‌गल कोई चीज नहीं। जो यह सब दिखता है वह सब केवल ब्रह्म ही ब्रह्म है। कैसा ब्रह्म? जो ज्ञानमात्र है, वही सर्वरूपों में है सद्‌ब्रह्म केवल एक ज्ञानस्वरूप है अन्य कोई चीज दुनिया में नहीं है। एक ने किया सबका निषेध, एक ने किया जीव का निषेध और एक ने किया जड़ का नियेध। ऐसे इन तीन सिद्धान्तों के निराकरण के लिये इस सूत्र में सत् शब्द आया है।

जिनेन्द्रोपदेश का लाभ उठाने का अनुरोध - हम जिस जिनके भक्त हैं, जिन वाणी के भक्त हैं, जिनेन्द्र के भक्त हैं, उन्होंने क्या बताया, ग्रन्थों में क्या लिखा उसका कुछ परिचय न हो तो सोचिये—क्या हम जैनत्व के अधिकारी हैं? किन्तु इतना तीव्र व्यामोह है वैभव से या अन्य व्यवहार से या यशप्रशंसा से कि सारा समय उस कौतूहल में जाये और आत्महित के लिये हमारा घण्टा दो घण्टा समय न लग पाये, न उमंग जगे, इसका ज्ञान बनाना, इससे अपना परिचय करना। जो बड़े बड़े संतों

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ने अपने आप में किया उसका परिचय बने, मेरा सदा के लिये हित हो, इसके लिये क्यों नहीं सोचा जा रहा ? कहते हैं कि समय नहीं, समय नहीं, ऐसा तो पहले भव में भी कहते आये होंगे, अगर मनुष्य थे तो, या कोई समझदार प्राणी थे तो, वहाँ भी कहते होंगे - समय नहीं, समय नहीं, उनकी भी तो छुट्टी हो गई। अब यहाँ आये तो कहते हैं कि समय नहीं। किसके लिये समय नहीं ? आत्मकल्याण के लिये समय नहीं। बाकी बातों के लिये तो तन भी है, मन भी है, धन भी है, वचन भी है। सनीमा में बड़ी भीड़ हो जाती है, कहाँ से निकल आया उसके लिये समय ? तो बात यह है कि जब होनहार भला नहीं होता तब वास्तविक तत्त्व परिचय के लिये रुचि नहीं जगती और मन बहलावा के लिये साधन सोचता है यह, पर आत्महित की बात में सच्चा मन बहलावा भी मिल गया और आत्महित भी मिल गया, और ऊपरी मन बहलावा के प्रसंग में मन भी न बहल पायेगा। वह तो अधूरा ही रहेगा मन। और, न आत्महित की बात ही पा सकते हैं। परिचय बनावें, समय दें, प्रोग्राम बदलें, पीछे की हठों को छोड़ दें, ज्ञान में, ध्यान में, अपने आपके भीतर की बात को निहारने में, परिचय में समय दें। इन सब बातों का परिचय ही तो कराया जायेगा इस ८वें सूत्र में। कैसा परिचय होगा, कितना विशिष्ट होगा सो जितने दिन सुनो उतने दिन लगातार बिना नागा किये सुनोगे तो कुछ पल्ले पड़ेगा। उसका ही परिचय क्रमश: कराया जायेगा। किस ढंग से हम सबको पहिचानें, बुरों को भी अच्छों को भी, शुद्ध भाव को, शुभ भाव को, अशुभ भाव को। उन सबके परिचय करने की विधि इन अनुयोगों द्वारा बतायी जाती है।

सत्संख्यादि अनुयोगों द्वारा तत्त्व परिचय कर एक संक्षिप्त उदाहरण—सत् संख्यादि सूत्र बताया है कि सत् संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव, अल्प, बहु, इन ८ अनुयोगों द्वारा तत्त्व का अधिगम होता है। कोई भी वस्तु सामने लो, मनुष्य लो, कीड़े मकौड़े लो, मुनि लो, भगवान लो, जिस किसी के बारे में परिचय करना है उसमें ये ८ अनुयोग घटाना। जैसे—मनुष्य लिया तो यह सत् है, जब तक अस्तित्व ही कायम न हो तब तक उसके बारे में और कुछ क्या कहा जा सकता है ? मनुष्य है, जैसा है तैसा बताओ निर्देश सहित वह कहलाता है सत् अनुयोग द्वारा परिचय। मनुष्य है, जब है जानें तब उसकी संख्या जानें। मनुष्य कितने हैं ? तो संख्यात हैं, असंख्यात हैं। अस्तित्व और संख्या द्वारा जिनका परिचय किया है उसके सम्बन्ध में क्षेत्र जानो। यह रहता कहाँ है। इसका प्रथम निवास क्या है ? तो उत्तर ढाई द्वीप। ढाई द्वीप के अन्तर उन मनुष्यों का वर्तमान क्षेत्र है। तीन परिचय हुये, इसके बाद में फिर जिज्ञासा हुई कि ये मनुष्य जीव भूत काल में कहाँ कहाँ तक घूम आये ? छू आये चले आये ? और भविष्यकाल में कहाँ तक ये मनुष्य जायेंगे ? इसका उत्तर मिलता है स्पर्शन में। जैसे यह मनुष्य मरने से पहले जहाँ जन्म लेता वहाँ के प्रदेशों को छू आया और फिर आयेगा मनुष्य देह में और आकर फिर मरेगा। तो मरने से पहले जो जन्म स्थान तक छू आया तो मनुष्य जीव ही तो गया है देह न जा सका, पर मनुष्य का जीव गया, उसके साथ कर्म शरीर गया। फैल गया, बड़ा हो गया, ऐसे समुद्घात में यह जीव कहाँ तक चला गया ? ओह, अनेक राजुओं तक चला गया। स्पर्शन में में जाना वहाँ तक छू गया। तो वर्तमान क्षेत्र तो नहीं है इतना मगर स्पर्शन में इतना बड़ा हो गया। स्पर्शन से परिचय हुआ। काल—मनुष्य का कितना काल है ? तो नाना मनुष्यों का तो सर्वकाल है, एक मनुष्य का ज्यादह से ज्यादह ३ पल्य है। कम से कम अन्त र्मुहुत है, एक श्वाँस से भी कम है। काल बन गया। अन्तर—नाना मनुष्यों का तो अन्तर होता नहीं, पर एक मनुष्य जीव मरकर कुछ भी

http://sahjanandvarnishastra.org/

बने और फिर मनुष्य हो तो उसका अन्तर कितना पड़ सकता है ? कम से कम अन्तर्मुहूर्त । ज्यादह से ज्यादह उसका काल बनाया असंख्यात काल । यह अन्तर द्वारा पहचान हुई तो मनुष्य की ना। भाव यह मनुष्य किस भाव में है ?औदयिक भाव में है, औपशमिक भाव में है। और,अल्पबहुत्व मनुष्यों में ही कमती, बढ़ती संख्या बने । इससे यह ज्यादह, इससे यह ज्यादह । चारों गतियों की अपेक्षा बताना मूर्तमता बताना, अल्प बहु बताना, ऐसे ८ अनुयोगों द्वारा तत्त्व का परिचय होता है। यह सारा परिचय किस लिये कराया जाता कि तुम सब तरह से ज्ञान पाकर आखिर अपने आत्मा के शुद्ध स्वरूप के सही ज्ञान में आ जावो । यह सारा संसार माया जाल है । यहाँ अन्य बातों में घूमने से पार नहीं पाया जा सकता है । अन्य बातों में घूमना समय का खोना है, और एक आत्मा की धुन आत्मा का ज्ञान , आत्ममग्नता के लिये कुछ जो पौरुष होता है वह क्षण इसका सफल है, इसीलिये सारा तत्त्वा ज्ञान कराया जाता है । और तब ही कहा है कुन्द कुन्द स्वामी ने कि जो अपने आत्मा को अबद्ध, अस्पृष्ट, अनन्य नियत ज्ञायक स्वभाव मात्र, भेदरहित अपने चैतन्य स्वरूप को जो देखता है उसने सारे जैन शासन को देख लिया । यद्यपि जैन शासन बहुत विशाल है । इसे सारी जिन्दगी पढ़ें तो भी पार नहीं पा सकते । लेकिनसमस्त जिन शासन का प्रयोजन तो इतना ही है कि तुम अपने आत्मा के सहज स्वरूप को जानो उसमें तृप्त हों । संसार से पार हो जाओगे । सारे संकट छूट जायेंगे । तो प्रयोजन की बात जिसने पाली हो । उसने समस्त जैन शासन को पा लिया ।

सत्ता के निषेध में सत्ता के निषेध के दर्शन भी अशक्यता – आत्मा आदि के प्रयोजन से तत्त्वों का स्वरूप जानने के लिए इन ८ अनुयोगों द्वारा परिचय कराने की बात कही जा रही थी कि एक शंकाकार ने टोक दिया कि तुम ८ अनुयोगों की बात कर रहे हो । पहले सत् को ही तो सिद्ध कर लो । जब कोई बात "है" सिद्ध हो जाय तब उसके बारे में संख्या आदिक का विवरण करना । सत् तो है ही नहीं । सब भ्रमजाल से हो रहा है कि है कुछ । है कुछ नहीं । शून्य है । देखिए— बहुत काट छाँट करने का फल कभी शून्य भी होता है । और इस शून्यवाद की उत्पत्ति इसी काट छाँट के कारण बौद्धों ने ली । बौद्ध कई प्रकार के होते हैं कोई क्षणिकवादी, कोई शून्यवादो, कोई ज्ञानाद्वैतवादी । तो पदार्थ काट छाँट इतनी अधिक की कि द्रव्य से निरंश केवल रूप परमाणु, रस परमाणु, यह ही पदार्थ है। पूरा परमाणु भी पदार्थ नहीं मानते, क्योंकि उस परमाणु में तो चार चीजें वही हैं— रूप, रस, गंध, स्पर्श । तो निरंश तो न रहा परमाणु, परमाणु तो रूप, रस, आदि का समुदाय है। पदार्थ तो निरंश होता है । ऐसा निरंशवादियों ने कहा है तो बस रूप परमाणु, रस परमाणु, ये ही पदार्थ केवल स्वलक्षणात्मक हैं । भेद किया, फिर उस भेद में और भेद हुए । दूसरा बोला कि नहीं, नहीं, रूप, रस आदिक हैं ही नहीं कुछ । वह तो सब ज्ञानमात्र है । ज्ञान के सिवाय कुछ नहीं । सो भी यह ज्ञान क्षणिक ज्ञान है, एक समय में जितना सम्वेदन हुआ उतना ही तत्त्व है । तो अब उससे बढ़कर चले तो बोला कोई कि सम्वेदन है, ज्ञान है, यह भी तो भ्रम है । कहाँ है सम्वेदन ? क्या चीज है सम्वेदन ? शून्य है । तो शंकाकार कहते हैं कि पहले सत् ही तो सिद्ध करलो । फिर संख्या क्षेत्र आदि की बात करना सत् है ही नहीं, इस तरह सत्ता मात्र का ही जो निषेध करते हैं,उनके प्रति समाधान है यह । कि यदि सत्ता का ही निषेध करते हों, कुछ है ही नहीं, तो भला यह बतलाओ कि यह जो तुमने निर्णय किया कि यह सच है या यह भ्रम है, जगत के किसी पदार्थ की सत्ता नहीं है, ऐसा निर्णय ठीक है कि नहीं , और निर्णय के मायने सम्वेदन । सत्ता नहीं है इस प्रकार का सम्वेदन, सम्वेदन तो है ना और वह सचा तो है ना याने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ऐसा ज्ञान यह सही बात है कि नहीं ? अगर कहते कि सही बात है तो सत्ता सिद्ध हो गई। और कहते कि नहीं, सही बात नहीं, सम्वेदन भी नहीं तो फिर निर्णय कौन करे कि सत्ता नहीं है। यों भी सत्ता हो गई। तो जो सत्ता मात्र का निषेध कौन करे कि जगत में कुछ है ही नहीं उनके यहाँ सम्वेदन नहीं बन सकता, तब फिर अपने मत का साधन करना और दूसरे के मत का दूषण देना यह बात करने वाला कौन रहा ? और जब तक स्वमत की सिद्धि परमत की बाधा न हो तब तक निर्णय नहीं होता। तो इतने से ही मान लेना चाहिये कि सत्ता का निषेध करना किसी भी प्रकार नहीं बन सकता।

सत्ता के निषेध में निषेध की व्यवस्था का भी अभाव मोटे रूप से इतना भी समझ लें कि जो सत्ता के निषेध की बात कह रहा है वह कुछ है कि नहीं ? मैं सुन रहा हूं तो मैं हूं ना कुछ ? सत्ता का कहाँ निषेध किया जा सकता ? देखो जिसको जो बात कहनी है, जिसे जो बात इष्ट है उस इष्ट की सिद्धि करना ज्ञान के अधीन है जो बात हम मानते हैं, सत् है यह मानते हों तो,सत् "नहीं है" यह मानते हों तो सत्। आखिर इसकी सिद्धि करना ज्ञान के ही तो अधीन है। और बात हमें पसंद नहीं, अनुकूल नहीं, जिसको हम नहीं मानते, उसका निषेध करना, उसमें दूषण देना, वह भी ज्ञान के अधीन है, तो अपने मंतव्य की सिद्धि और परमंतव्य की असिद्धि या दूषण करना यह सब ज्ञानात्मक उपाय से बनता है। किन्तु जो सत्ता मात्र का निषेध करते उनको यह उपाय कहाँ रहा ? सम्वेदन भी नहीं। सत्ता नहीं है किसी की तो उसमें यह भी तो आया कि सम्वेदन भी नहीं तो वह सत्ता का निषेध करे, यह युक्त नहीं हो सकता। जैसे कि ये निरंशवादी क्रम से शून्य की ओर आये। पहले ने कहा कि बाह्य अर्थ है परमाणु - परमाणु, तो दूसरा बोला – नहीं, नहीं, रूप परमाणु, रस परमाणु ऐसा है यह पदार्थ। इसका समुदाय रूप परमाणु वास्तविक तत्त्व नहीं तो तीसरा बोला कि नहीं। रूप परमाणु, रस परमाणु, ये भी नहीं है, किन्तु ज्ञान ही ज्ञान हैं मात्र सब। तो चौथा कहता है कि ज्ञान भी नहीं है, सर्वशून्य है। पर इन सब योजनाओं में आपत्तियाँ देखो—सर्वशून्य है, सम्वेदना भी नहीं है। तो यह निर्णय कैसे हुआ कि शून्य है शून्य ही तत्त्व है। यह परिचय कैसे बनाते हो ? ज्ञान हो तब ही तो बनेगा।

ग्राह्य ग्राहक भावादिरहित संविन्मात्र रूप शून्यवाद की चर्चा देखिये सभी समझ रहे हैं कि सम्वेदन तो मानना ही पड़ेगा। तो यों शून्य से हटकर सम्वेदन तक तो आये. और फिर सम्वेदन है तो वह सम्वेदन नाम किसका कि जहाँ कोई पदार्थ जानने में न आ रहा हो। है कोई ज्ञान ऐसा कि जिसका कोई विषय ही न बन रहा हो। और ज्ञान हो तो मानना पड़ेगा कि है पदार्थ कुछ। वह क्या ? रूप परमाणु, रस परमाणु। तब इसको जब हम देखते हैं कि रूप, रस, गन्ध, स्पर्श एक जगह रह रहे हैं विभाग भी नहीं हो सकता। वे सब एक परमाणु हैं और जब परमाणु परमाणु है तो उनका समुदाय बन करके यह दिखने वाला स्कन्ध है। कैसे नहीं है सत् ? सर्व सत् है। तुम सत् हो, हम सत् हैं। जो कुछ जानने में आ रहा वह सब सत् है। तो ज्ञानात्मक उपाय न मानो तो सत्ता का निषेध भी नहीं कर सकते। और वचनात्मक उपाय नहीं है तो दूसरे में समझ आ नहीं सकती। तो हुआ ना सिद्ध ज्ञान भी कोई चीज है ? वचन भी कोई चीज है, और जो समझा रहा वह भी कोई है, जिसको समझा रहा वह भी कोई है सत्ता का कहाँ निषेध हो सकता !

http://sahjanandvarnishastra.org/

जब पदार्थ सत् है तो उनका फिर परिचय बनाय जाता है। कितनी संख्या है ? कहाँ रहते हैं, कहाँ तक रह चुके आदिक। बात ध्यान से सुनने से आयेगी। इसके समझने के लिये चित्त को बहुत संयत बनाना पड़ता है। थोड़ा भी चित्त को ढीला किया और कहीं उपयोग ले गये तो ऐसे मर्म की बात जिसकी सही जानकारी से संसार के संकटों से छूटने का उपाय मिले, वह चित्त में नहीं ठहरता। बाह्य वस्तुओं का परिचय, मोटा परिचय, काल्पनिक परिचय इनके लिये चित्त को ज्यादह सम्हालने की आवश्यकता नहीं होती, किन्तु विशेष परमार्थ स्वरूप चूँकि इसने कभी सुना नहीं, कभी अनुभवा नहीं, तो यह कठिन मालूम होता है, लेकिन आत्मा में इतना ऊँचा विभव है कि इन सब धार्मिक बातों को समझना इसे कठिन नहीं होता। सत् अनुयोग के बारे में चर्चा यह उठाई गई थी कि शंकाकार की ओर से कि जगत में कुछ सत् है ही नहीं, फिर काहे के लिये सूत्र बनाते हो ? तो सिद्ध किया कि सत् है, पर शंकाकार फिर कहता है कि हमारा शून्य से मतलब यह नहीं है कि कुछ है ही नहीं, किन्तु केवल सम्वित् सम्वेदन मात्र है, याने उसमें ग्राह्य ग्राहक भाव नहीं है कि इसने जाना और यह जान गया, ऐसी यहाँ दो चीजें नहीं हैं। केवल सम्वेदन मात्र है। थोड़ा कुछ शब्द पर ध्यान देना, सम्वित-मात्र, सम्वेदन मात्र। इन ही दो शब्दों में बड़ा अन्तर बसा है। सम्वेदन शब्द तो कुछ मुद्रा रख लेता है, किन्तु सम्वित् का अर्थ बन रहा है जाननमात्र। क्योंकि शंकाकार को वह मुद्रा भी पसन्द नहीं है, क्योंकि इस शून्यवादी का यह सिद्धान्त है कि कुछ है ही नहीं, तो जानने में कैसे आया ? कोई पदार्थ ग्रहण में नहीं आता, ग्राह्य नहीं होता, और जब कोई ग्राह्य पदार्थ ही नहीं है तो ग्राहक कैसे बनता याने जाननहार उन पदार्थों का समझने वाला कैसे बने ? तो न तो ग्राह्य है न ग्राहक है, फिर भी सम्बित् है। अब सोचो ये शून्यवादी कितने गहरे तत्त्व तक गये। न कुछ जाना गया, न जानने वाला है कोई, फिर भी सम्बित् है। बस उसी सम्वित् का नाम शून्य है। शून्य का अर्थ हम यह नहीं कहते कि है नहीं, किन्तु ग्राह्य ग्राहक भाव से रहित जो सम्वित् है उसे हम शून्य कहते हैं। उसके समाधान में सुनो—शंकाकार यह कह रहे कि ग्राह्य ग्राहक भाव नहीं है, फिर भी सम्वित् है, तो भला किसी के अनुभव में आयेगा ऐसा क्या सम्वेदन, ऐसा क्या ज्ञान जिसमें कुछ जाना ही नहीं जा रहा और न कुछ जानने ही वाला है।

ग्राह्य ग्राहक भाव सहित ही संवेदन की संभवता होने से शुद्ध संविद्रूप शून्यवाद की अनुपपत्ति—उक्त चर्चा के समाधान में विचार करिये ग्राह्य ग्राहक भाव आदिक से रहित केवल सम्वेदनमात्र, यह चीज स्वतः सिद्ध तो है नहीं, जैसे हम अनेक पदार्थों की जानकारी करते हैं तो इनके बारे में समझ बनती है ना कि यह जानकारी खुद बन नहीं रही। इन्द्रिय द्वारा बनाया, मन द्वारा बनाया, किसी प्रकार बनाया। तो जितनी भी जानकारियाँ हैं, जितने भी अनुभव हैं ये सब स्वतः सिद्ध नहीं हैं, और जो अनुभव स्वतः सिद्ध बन जाता है उसमें कभी शंका संदेह होता नहीं। तो आपका यह सम्वेदन, यह ज्ञान शंकाकार जिसको कहना चाहता है उसको कहने के लिये शब्द भी कोई नहीं है। फिर भी कहना तो पड़ता है सम्वित्। वह क्या स्वतः सिद्ध है ? अपने आप सम्वेदन हो रहा है क्या ? क्या कहा कि अपने आप सम्वेदन हो रहा तो किसी को उसमें सन्देह होना ही न चाहिए। सब सही जान लें कि सम्वित् मात्र ही तत्त्व है, पर तुम भी क्या समझे ? तुम कह ही तो रहे हो मात्र शंकाकार चाहे तुम्हारे गले उतरी हो चाहे नहीं, तुम अपनी परम्परा के आचार्यों की भक्ति और उनकी वाणी से बोल रहे हो मगर यह सम्वित, यह सम्वेदन स्वतः सिद्ध होता तो सबको होता। और किसी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

को संदेह न होता। और, इसमें यह आज विवाद कहलाता कि बाह्य अर्थ कुछ नहीं है। अगर कहो कि नहीं – यह सम्वित् भी परके द्वारा ग्रहण में आता, इन्द्रिय से, मन से जैसे बहुत बड़ा ज्ञान बनता ऐसे ही यह सम्वित्, यह ज्ञान, यह शून्य, यह भी पर से ग्रहण में आता, तो लो जब पर से ग्रहण में आया तो पर हो गया ग्राहक और यह सम्वेदन बन गया ग्राह्य, फिर यह क्यों कहते हो कि ग्राह्य ग्राहक भाव से रहित सम्वेदन हाता है, और उसी का नाम शून्य है, तो सर्वथा शून्यवाद नहीं चल सकता। यों तो हम भी कहते हैं शून्यवाद। जैन शासन भी कहता है शून्यवाद। सिद्ध भगवान किसका नाम है ? जो शून्य हो गया है उसे कहते हैं सिद्ध भगवान। अरे और कैसे शून्य ? देखो देह था पहले, देह न रहा, कर्म था पहले, कर्म न रहे। राग द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभादिक कषायें, विकल्प, कितने ही तरह की बातें थीं, तरंगें थीं, वे न रहीं, तो देखो सबसे शून्य हो गया। तो शून्य के मायने है सिद्ध भगवान। और, जब धर्म मार्ग में बढ़ते हैं तो उपदेश होता है कि तुम शून्य की उपासना करो। शून्य के रूप में उपासना करो तो लाभ भी होता है। अपने आपके बारे में जरा शून्य के ढंग से अपनी उपासना बनाओ। कुछ नहीं है, देह नहीं, उपयोग से बिल्कुल देह को हटा लो, देह मैं नहीं, कषाय मैं नहीं, मैं ज्ञानमात्र हूँ। ज्ञान में कषाय की वृत्ति कैसे ? कुछ नहीं, मेरा कुछ नहीं, कहीं कुछ नहीं, एक शून्य जैसा अपना चित्त बना लें तो जो मैं हूँ सो तो मिटेगा नहीं, वह केवल शुद्ध ज्ञानरूप बनेगा। तो सर्वथा शून्य तो न कहा जायेगा, पर शून्य कहा जायेगा। सिद्ध भगवान भी सूने हैं, वहाँ बहुत से उपद्रव थे, बाधा थी, सम्पर्क था, वे कुछ न रहे, शून्य मानने में क्या आपत्ति ? मगर जो वस्तु है उस वस्तु के स्वरूपमात्र का भी निषेध करें तो शून्य की भी सिद्धि नहीं होती। कुछ तत्त्व ही नहीं बनता, सब असत्य हो गया। तो यहाँ शून्यवादी रोकता है एकदम कि सत् कहना गलत है। सत् कुछ है ही नहीं। शून्य है। तो उनको ही समझाने के लिये सत् शब्द रखा है, सर्वथा शून्य नहीं है। सत् हैं, सत् के कहने से सामान्यतया नास्तित्त्व का निषेध होता है। नहीं है, इसका निषेध करता है सत् शब्द।

सामान्यतया व विशेषतया नास्तित्वैकान्त के निराकरण में सत्प्ररूपणा की उपयोगिता— कुछ नहीं है ऐसी बात कोई सोचे तो वह दो तरह से सोच सकता है—(१) सामान्य रूप से और (२) विशेष रूप से। सामान्य से तो निषेध करने का अर्थ है कि जगत में कुछ भी नहीं है, सर्वथा नास्ति है, तो ऐसा नहीं है. इस बात को बतला रहा है सत् शब्द। और, विशेष रूप से निषेध करने के मायने है कि जीव नहीं, केवल जड़ ही जड़ है। ऐसे भी तो कुछ लोग हैं जिन्हें कहते हैं चार्वाक। ये हुये विशेष रूप से निषेध करने वाले, तो वह भी ठीक नहीं है। कैसे नहीं है जीव ? जीव है। तो कोई कहता है कि जड़ नहीं है, जीव ही जीव है अकेला। इसे कहते हैं ब्रह्मवाद। तो जो विशेषरूप से निषेध करें उनका भी निराकरण हुआ और जो सामान्यरूप से भी निषेध है उनका भी निराकरण हुआ सत् शब्द की बात से। तो देखो सत् संख्यादि सूत्र में सत् शब्द का रखना कितना उपयोगी है, और इस सत् शब्द से क्या क्या जाहिर होता है ? विशेष विवरण हो तो इसमें महीना भी व्यतीत हो सकता है। केवल सत् ने क्या क्या बोला, इसका कितना बड़ा हृदय है, इसमें कितने धर्मों का समावेश है, यह अनुमान होगा। तो देखो आचार्य महाराज कितने ज्ञान के स्पष्ट थे, कुशल थे कि रचना करते समय उन्होंने कोई ऐसा विचार जानकर नहीं किया होगा, शायद इतना सोचा न होगा, जैसे कि कोई साधारण कवि कविता बनाता है तो एक भजन में उसे तीन चार घण्टे भी लग जाते। वह सोचता है कि क्या शब्द देना, कहाँ देना, कैसे करना ? तो जैसे विशिष्ट कुशल कवि, आशुकवि तुरन्त बोलता जाता

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है ऐसे ही ज्ञान के प्रकाण्ड विद्वान गम्भीर आचार्य देव सूत्र रचना एकदम सीधे करते जा रहे हैं, और उनकी लेखनी किस तरह चलती रहती थी कि जिसको आज हम निर्णय करके परखते हैं तो ऐसी क्रम से रचना और कार्यकारणपूर्वक जच रही है। तो इस सूत्र में जो सत् शब्द दिया है उस सत् शब्द के द्वारा सामान्यतया नास्तित्त्व का निषेध और विशेषतया नास्तित्त्व का निषेध किया गया है।

संवेदन की सिद्धि के लिए ग्राह्य ग्राहक भाव मानने की अनिवारितता होने से अनेक सत् की स्वयं सिद्धि—जब तक ग्राह्य ग्राहक भाव न मान लिया जाये तब तक सम्वेदन की भी सिद्धि नहीं होती। कदाचित् शंकाकार यह कहे कि हमने ग्राह्य ग्राहक भाव नहीं माना, किन्तु औरों ने तो माना है—जैसे नैयायिक जैन आदिक सिद्धान्त ने तो माना है, उनकी मान्यता से ग्राह्य ग्राहक भाव मानकर सम्वेदन की सिद्धि हो जायेगी, तो उसका उत्तर स्पष्ट है कि दूसरों के मानने से यदि सम्वेदन की सिद्धि की जा रही है तो दूसरों के मानने से भेदवाद और नानापन क्यों नहीं सिद्ध कर लिया जाता? और इस तरह दूसरों के मानने से कोई बात प्रमाण कर ली जाये तो फिर कोई दर्शन ही मिथ्या न रहेगा। जो जैसा कहता है वैसा मान लीजिये। तो केवल सम्वेदन मात्र मानने पर तत्त्व की सिद्धि नहीं होती और न सम्वेदन की ही सिद्धि होती है। अब शंकाकार कहता है कि सम्वित्ति याने प्रतिभासमात्र, शुद्ध जानन याने जिसमें कोई ज्ञेय पदार्थ तो आया नहीं, याने किसी को जाना नहीं और जानना कहलाता है ऐसा सम्वित्ति का परिचय स्वयं हो जायेगा, क्योंकि वह स्वयं है। स्वरूप परिचय स्वयं हो जाता है। तो उत्तर में कहते हैं कि अगर स्वरूप का परिचय स्वतः होता है तो फिर उसमें संशय क्यों पैदा होता है? हम आप में विवाद क्यों चल रहा है? जो स्वरूप है वह अपने आप जानने में आ जाना चाहिये। यदि कहो कि जैसा स्वरूप है वैसा निश्चय नहीं हो पाता तब संशय होता है। तो जब स्वरूप का निश्चय होना नहीं बनता और क्षणिकवाद में माना भी ऐसा है कि जो वस्तु का स्वरूप है उसका प्रमाणभूत ज्ञान निर्विकल्प ज्ञान से होता है। और, उसके बारे में कुछ विकल्प बनाये तो वह व्यवहार है। तो जब स्वरूप का निश्चय ही नहीं होता तो तुम्हारे सुगत से भी निश्चय न होना चाहिये, क्योंकि निश्चय करने वाले ज्ञान को निरंशवादियों ने अप्रमाण माना है। यदि कहो कि सुगत तो कल्पना जाल से रहित हैं उसको स्वरूप में संशय नहीं होता तो अब यह बात बड़ी अटपटी आ गयी। यह तो जिनकी बुद्धि ठिकाने नहीं है उनके ही वचन हो सकते हैं। प्रतिज्ञा तो की है ज्ञानाद्वैत की, याने केवल सम्वित ही रहता है और कह यह रहे हैं कि सुगत तो कल्पना जाल से रहित है और बाकी लोग कल्पना जाल से ढके हुये हैं। ये भेद चल रहे हैं, अद्वैत के तो प्रतिज्ञा की और यहाँ भेद पाड़ रहे हैं तो कैसे कहा जायेगा कि ऐसा बोलने वाले लोग अवस्थित चित्त के हैं।

संविदद्वैतैकान्त में सत्यासत्य के निर्णय की अक्षमता—अब अन्य बात देखिए जो संवेदन की, अद्वैत की हठ रखते हैं ऐसे लोग हैं वैभाषिक नाम के बौद्ध। तो सम्वेदन अद्वैत का ही एकान्त करने वाले लोग यह कैसे विभाग बना सकेंगे कि यह तो है काल्पनिक सत्य और यह है वास्तविक सत्य। जब मात्र एक अद्वैत ही लिया है। तो जो उन्हें रूचे उसे कहो वास्तविक सत्य और जो उन्हें रुचे उसे कहोकाल्पनिक सत्य। तो इतना भी विभाग बन कैसे जाएगा? जब अद्वैत है तो भेद तो कभी पड़ना ही न चाहिए। अगर कहो कि यह विभाग भी कल्पना से बना लेंगे यह तो है वास्तविक सत्य और यह है काल्पनिक सत्य। ऐसा विभाग कल्पना से बनेगा। तो इसमें इतरेताराश्रय दोष होता है। जब यह विभाग सिद्ध हो जाय कि यह तो है वास्तविक सत्य और यह है काल्पनिक सत्य तब तो कल्पना का आश्रय बने। और जब कल्पना सिद्ध हो तब

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परमार्थ और कल्पना का सत्य असत्यपने का विभाग बने। तो वास्तविकता यह है कि जब तक ग्राह्य ग्राहक भाव न माना जाय तब तक अपने पक्ष की सिद्धि भी नहीं की जा सकती। याने कैसा आश्चर्य है कि मानते तो हैं यह सम्वित् याने ज्ञान और उसका काम कुछ नहीं, जानन कुछ नहीं, याने किसी भी पदार्थ को वह जानता नहीं और जानना सो बना है। चाहे कैसा ही निर्विकल्प ज्ञान हो, जिसमें किसी प्रकार की तरंग भी न उठती हो तो भी वह अपना तो सामान्य बोध करता ही है। इतना भी ज्ञान सम्बन्धी विकल्प न हो तो उसका नाम ज्ञान कैसे? तो ग्राह्य ग्राहक भाव के माने बिना सम्वेदनवादी अपने मंतव्य की सिद्धि नहीं कर सकते।

शुद्ध संवत्यद्वैतेकान्त में बाध्यबाधकभाव की संभवता न होने से अनेक सत् की स्वयं सद्धि - अब एक अन्य बात और देखिये — कोई दार्शनिक अपने पक्ष की बात सिद्ध करना चाहे तो वह दो ही तो काम करता है कि अपने इष्ट का समर्थन करता है और दूसरे के माने हुए तत्त्व में बाधा बताता है। याने अपने पक्ष का साधन करना और दूसरे के पक्ष में दूषण देना, जब ये दो बातें बन जाती हैं तब अपने मंतव्य की सिद्धि होती है। तो यहाँ द्वितीय बात पर विचार करें। दूसरे के मंतव्य में बाधा यह सम्वेदन अद्वैतवादी किस तरह डाल सकता है, क्योंकि बाध्य बाधक भाव ये मानते ही नहीं याने जो ऐसी ज्ञानयुक्ति बनी कि दूसरे के पक्ष में बाधा डाल दे उसे तो कहते हैं बाधक और वह दूसरे का पक्ष जिसमें बाधा डाली जा रही, जिसका खण्ड किया जा रहा है वह कहलाता है बाध्य तो बोलो बाध्य बाधक भाव है कि नहीं? याने जिस युक्ति और ज्ञान से हम परमत का निराकरण करेंगे वह है कि नहीं, और जिस पर मत का निराकण किया जा रहा हो वह भी है कि नहीं। किसी भी बात को सिद्ध करने के लिये उससे विपरीत बात में बाधा डालना होता है। तो बाध्य बाधक भाव मानेंगे तो द्वैत की सिद्धि हो गई। हमारा अद्वैत का अब कहाँ रहा संकल्प? और बाध्य बाधक भाव न मानेंगे तो दूसरों की बताई हुई बात में तुम बाधा नहीं डाल सकते। अनिष्ट को तुम कैसे बाधित करोगे? शायद तुम यहाँ भी यह कहने लगो कि दूसरे लोग मानते हैं बाध्य बाधक भाव। नैयायिक आदिक जो द्वैत वादी हैं वे तो मानते हैं। उनके मामने से बाध्य बाधक भाव बनाकर हम अनिष्ट पक्ष को बाधित कर देंगे तो यह भी युक्ति संगत नहीं है। अगर परके मानने में बाधा तुमने डाली तो परके मानने को तुमने माना कि नहीं? अगर परके मानने का प्रमाण कर लिया तो ग्राह्यग्राहक भाव यह बन गया। अद्वैत कहाँ रहा? और परके मानने को तुमने न माना तो वह तो न मानने की तरह है, फिर बाध्य बाधक भाव कैसे बनेगा?

शुद्धसंवित्यद्वैत में वाच्यवाचक भाव की संभवता न होने से अद्वैत की असिद्धि—जो निरंशवादियों में अद्वैतवादी हैं वे न तो ग्राह्यग्राहक भाव मानते न बाध्य बाधक भाव मानते, न कार्य कारण भाव मानते, और यहाँ तक कि वाच्य वाचक भाव भी नहीं मानते। उनका मंतव्य है कि जब वस्तु निरंश क्षणिक है, तो उसमें कार्यकारण क्या, वाच्य वाचक क्या जिस समय शब्द बोला उस समय तो वह पदार्थ रहता नहीं, क्योंकि क्षण-क्षण में नष्ट होने का सिद्धान्त है। तो शब्द से बोला किसे? तो जहाँ ये चार प्रकार के सिद्धान्त नहीं हैं वहाँ अपने पक्ष की सिद्धि कैसे की जा सकती है? तो जैसे ग्राह्य ग्राहक भाव सिद्ध न होने से अपने इष्ट की सिद्धि नहीं की जा सकती थी इसी प्रकार बाध्य बाधक भाव न होने से अनिष्ट में बाधा भी नहीं दी जा सकती। कदाचित यह कहें कि बाध्य बाधक भाव भी अपने आप प्रतिभास रहा तो यह तो असंगत है। सभी जान रहे हैं कि किसी भी ज्ञान को झूठ सिद्ध करने के

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

लिये किन्हीं युक्तियों से किसी बात का सहारा लेना होता है तब वह समीचीन ज्ञान बनता है, जिस ज्ञान के द्वारा झूठा ज्ञान बाधित हो जाय। और, यदि सभी को बाध्य बाधक भाव आदि स्वयं प्रतिभास में आ जाय, दिख जाय, फिर उसके संबंध में विवाद करने का प्रसंग ही क्यों आता ? यदि सम्वेदनाद्वैत वादी यह कहें कि केवल शुद्ध सम्वित का सम्वेदन हुआ बस उसी के मायने हैं कि अनिष्ट में बाधा डाल दी। अनिष्ट और बाध्य बाधक कोई अलग नहीं है किन्तु शुद्ध जानना हो इसी के मायने हैं बाध्य बाधक भाव बन गया, तो यह बात भी युक्ति संगत नहीं हैं, क्योंकि अलग शुद्ध सम्वेदन का किसी को प्रतिभास नहीं होता। यहाँ शुद्ध सम्वेदन का अर्थ यह माना गया है कि ज्ञान में तो कुछ भी न आया न खुद आया, न पर आया, और फिर जानन जानन बताया जाय तो ऐसा शुद्ध सम्वेदन का किसी को प्रतिभास नहीं है। तो बाध्य बाधक भाव तो न बना। दूसरे के माने गये बाधक प्रमाण को यदि अपने अनिष्ट को बाधक बताओगे तब तो यह बकबाद मात्र हुआ। खुद में तो कुछ बल न रहा। खुद में तो जानकारी न हुई। तो जब तक वास्तविक रूप में बाध्य बाधक भाव न मानें जैसे कि यहाँ मानना ही पड़ा है तब तक अपने इष्ट की सिद्धि और परइष्ट की बाधा नहीं दी जा सकती है।

सामान्य व विशेष नास्तित्व के निषेध के लिये सत् अनुयोग प्ररूपणाका कथन— यहाँ सत् अनुयोग की बात चल रही है। सत् अनुयोग से यह बताना है कि यह पदार्थ है, यह भाव है, तो इसी है को बताने से पहले शंकाकार यह कह रहा कि "है" तो कुछ है ही नहीं, व्यर्थ के अनुयोग क्यों बनाए जा रहे हैं ? "है" नहीं, ऐसा मानने वाले लोग दो प्रकार के हैं। एक तो वह जो सामान्य रूप से ही सर्व-निषेध करता है, अर्थात् लोक में कुछ भी तत्त्व नहीं है, ऐसा शून्यवाद जिसमें सभी पदार्थों का अपलाप कर दिया जाय, ऐसा असत्वादी है दूसरे सत्ता का निषेध करने वाले वे हैं जो विशेष रूप से सत्ता का निषेध करते हैं। जैसे को लोग कहते हैं कि जीव है हो नहीं सब क्षण ही क्षण हैं, इन्हें कहते हैं भौतिकवादी। जो कुछ दिखता है वह ही तत्त्व है और वह जड़ है, उन जड़ों के मेल से ही कुछ ऐसी तरंग और बिजली बन जाती है कि जिसने विधि समझी यह प्रकट हो जाती है, पर विधि समझने का आधारभूत कोई जीव तत्त्व नहीं है। तो ऐसा विशेष रूप से नास्तित्त्व सिद्ध करने वाला भौतिकवादी है, तो कोई है ब्रह्मवादी, जिसका कथन यह है कि जगत में जड़ कुछ है ही नहीं। जो कुछ है वह सब ज्ञान ब्रह्म ही है। ये दो मूल दार्शनिक हैं, जो नास्तित्त्व को सिद्ध कर रहे हैं और इन्हीं के भेद प्रभेदों में अन्य दार्शनिक भी आ जाते हैं, जिसमें कि अभी यह चर्चा चल रही है कि कोई कहते हैं कि जड़ भी है और चेतन भी है, मगर जड़ों में केवल परमाणु ही है, ये दिखने वाले स्कंध समुदाय नहीं। ये सब काल्पनिक हैं। तो इनमें ही कोई बढ़कर चले तो कहते हैं कि परमाणु भी वास्तविक नहीं। किन्तु रूप अणु, रस अणु, ऐसे विभिन्न अणु हैं वे वास्तविक हैं। उनमें भी कोई बढ़े तो कहते हैं कि यह भी वास्तविक नहीं, किन्तु हमारा जो ज्ञान हो रहा है चित्र विचित्र वह है वास्तविक। तो इससे कोई और बढ़े तो कहते हैं कि संवेदन तो है वास्तविक. किन्तु शुद्ध सम्वेदन है वास्तविक याने जिसमें कुछ भी ज्ञान न बने ऐसा केवल शुद्ध सम्वेदन वास्तविक है। तो इससे भी कोई और बढ़े तो कहता है कि यह भी नहीं है, शून्य है, इस तरह अनेक दार्शनिक हैं उनके माने गए नास्तित्त्व का निराकरण इस सत् शब्द से किया गया है।

सभी दार्शनिक रीतियों में ज्ञान को अमान्य करने की अशक्यता— इस मोक्ष शास्त्र में जो चर्चा चल रही है उसे यों समझें कि यह मेरी चर्चा चल रही है। मेरे बारे में याने आत्मतत्त्व के संबन्ध

http://www.jainkosh.org

में किन-किन दार्शनिकों ने क्या-क्या सोचा, उसका परिचय होने से आत्म परिज्ञान में ही विशेषता आती है। ज्ञान को रोकने में कोई समर्थ नहीं। ज्ञान को कोई रोक भी नहीं सकता, ज्ञान रुक भी नहीं सकता और इसी कारण सभी दार्शनिकों ने ज्ञान की चर्चा जरुर की है एक दार्शनिक है चार्वाक जो ज्ञान तत्त्व को नहीं मानते, वे भी किसी न किसी रूप में ज्ञान को मानते ही हैं। जिसे कहते हैं भौतिकवादी। वे जीव को नहीं मानते, मगर ज्ञान को इन्कार वे भी नहीं कर सकते। तो आप समझिए कि ज्ञान स्वरूप ज्ञान तत्त्व इतनी महिमा वाला है व्यापक है कि जिसके माने बिना किसी का गुजारा नहीं चला। जो शून्यवादी हैं, जो यह कह रहे हैं कि जगत कुछ नहीं है, यह ही मात्र एक तत्त्व है, उनको भी यह कहना पड़ा कि सम्वित्त का ही नाम शून्य है। कुछ नहीं है। यदि सीधा यों ही बोलते तो उनसे यह पूछा जाता न कि तुमने कैसे समझा कि कुछ नहीं है,ज्ञान से समझा न, तो वह ज्ञान तो है जिस ज्ञान से समझा कि कुछ नहीं है ? मानना पड़ता है, ज्ञान को छोड़ कर किसी का गुजारा नहीं चला। तो शून्य वाद भी रह जाय और शून्यवाद को सिद्ध करने लायक ज्ञान भी आ जाय, ऐसी कोशिश की है शून्य वादियों ने, इसका मंतव्य यह है कि ज्ञान तो है, मगर वह ज्ञान ऐसा है कि जिसकी कोई चीज ज्ञात नहीं होती। तो दुनिया में कोई चीज है ही नहीं। ज्ञाता कहाँ से हो ? कोई पदार्थ ज्ञाता नहीं होता और न जीव है, न पुद्गल है, न अन्य वस्तु है। किन्तु वह सम्वित्ति मात्र है। जल्दी सुनने को ऐसा लगता होगा कि सम्वित्त फिर वह क्या, जिसमें कुछ समझ भी नहीं है, कुछ जानकारी भी नहीं बनती है और है सम्वित। तो शंकाकार की ओर से सोचिए जरा थोड़ा शंकाकार का दिल भी मजबूत करो। वह भी कुछ बुद्धि लगाकर ही शंका कर रहा है। तो जब कभी उत्तम ध्यान में आता है कोई तो उसको यह उपदेश करते हैं न कि तुम जगत का कुछ भी पदार्थ मत सोचो। किसी भी पदार्थ का विकल्प मत करो। पहले तो कहते हैं आत्मा को जानो। जब बाहरी पदार्थों का विकल्प न करें और आत्मा को जानने में कुछ सफल हो तब उसे कहते हैं कि तुम आत्मा को द्रव्य दृष्टि से न जानो, क्षेत्र दृष्टि से न जानो, काल दृष्टि से न जानो, भाव दृष्टि से न जानो, अभेद भाव दृष्टि से जानो। याने आत्मा इतना लम्बा चौड़ा है। आत्मा में ऐसे ऐसे गुण भरे हैं, आत्मा की ऐसी ऐसी हालत चल रही है, इस तरह से जानेंगे तो उत्तम ध्यान न बनेगा, किन्तु एक अभेद चेतना स्वरूप मात्र में जानो। अब आप देखो—यह साधक भी कैसा शून्य की ओर आ रहा है ? पहले कितनी बातें विकल्प में थीं और उनसे हटहटकर कैसा शून्य की तरफ जा रहे हैं ? तो शंकाकार ही कह रहा कि आप लोग भी तो उत्तम ध्यान बनाने के लिए, परमार्थ तत्त्व पाने के लिए शून्यवाद की ओर आ रहे हो और इतना कहने के बाद भी कहते हो कि ज्ञान में साराविश्व ज्ञेय हो रहा है लेकिन तुम ज्ञेयाकार रूप से मत जानो अपने आप में ज्ञेय उपाधि को तज कर मात्र ज्ञानाकार रूप में जानों। यहाँ तक तो उपदेश आप जैन भी कर लेते हैं। तो हमने यदि यह कहा कि हमारा सम्वित ऐसा शून्य है कि जिसमें ग्राह्य ग्राहक भाव नहीं, तो यह जानने वाला, यह जानने में आया ऐसा यहाँ कोई भेद नहीं है, इसी तरह बाध्य बाधक भाव नहीं, याने किसी चीज का खन्डन कर रहे हों तो खण्डन करने वाले ज्ञान को कहते हैं बाधक। जो उसमें बाधा डाले उसको मिथ्या बताया, उसे कहते हैं बाधक ज्ञान और जो चीज मिथ्या बतायी जा रही हो उसे कहते बाध्य। तो शंकाकार कहता है कि हमारी सम्मति में बाध्य बाधक भाव का भी द्वैत नहीं है, ऐसा शुद्ध है, इन दो बातों का तो खण्डन किया जा चुका है।

शंकाकार द्वारा ज्ञेयाकार शून्य शुद्ध संवेदन की चर्चा—अब यह शंकाकार तीसरी बात

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रख रहा है। हमारा तत्त्व है शुद्ध सम्वेदन, जीव, अजीव, आश्रव, बंध, सम्वर, निर्जरा, मोक्ष ये कुछ नहीं हैं। काल्पनिक हैं। सोच रखा है, तत्त्व तो एक शुद्ध सम्वेदन है, जिसमें कोई पदार्थ जानने में नहीं आता, किन्तु जानता रहता है। जैसे भींट पर यह रंग चढ़ा है। भींट तो जुदी चीज है, पालिस जुदी चीज है, लेकिन इस समय ऐसा लगता है कि यह भींट हरी है, यह भींट इस प्रकार है, लग रहा, और कदाचित् आप उस रोगन के पीछे जितनी भींट है वह सब हटा लें और खाली यह रोगन ही रोगन रह जाये, तो रह तो जाना चाहिये। जब दो चीजें हैं भींट और रोगन, तो भींट तो बिल्कुल खिसका दी जाये तो खाली रोगन रोगन रह जाना चाहिये न ? अब इस विषय में एक तो कहता है– वाह भींट न हो तो रोगन रह ही नहीं सकता, और ऐसा कहने वाले प्रायः सभी लोग हैं। और, एक यह बुद्धि से बोल रहा कि जब भींट बिल्कुल निराली है तो भींट पूरी निकाल दें, उसका एक रेसा भी न रहे और खाली रोगन रह गया तो जैसे वह शुद्ध रोगन है। उसका भींट से कुछ मतलब नहीं, ऐसे ही हमारा शुद्ध सम्वेदन है। लोग तो ऐसा सोचते हैं कि भाई कोई चीज ज्ञान में न आये तो ज्ञान का स्वरूप क्या, लेकिन चीज और ज्ञान जब दो वस्तुएँ न्यारी न्यारी हैं और भले ही आज भी विकल्प में ज्ञेय को विषय करके ज्ञान की मुद्रा बन रही है, लेकिन जब ये दोनों जुदे-जुदे हैं तो ज्ञेय उपाधि को बिल्कुल अलग कर दें, फिर खाली जो ज्ञान ज्ञान रहे वह है हमारा शुद्ध सम्वेदन। अर्थात् ऐसा निराला शुद्ध भेद भाव से रहित कुछ ज्ञान में न आये ऐसा एक ज्ञान है, वह ही तत्त्व है, उसके अतिरिक्त दुनिया में कहीं कुछ नहीं है, ऐसा सत् अनुयोग के विरोध में शंकाकार कह रहा है। और फिर वह शुद्ध सम्वेदन कारण कार्य भाव से रहित है याने हमारा यह शुद्ध ज्ञान जिसमें जानन कुछ नहीं हो रहा, कोई चीज जानने में नहीं आ रही, फिर भी जो जानन है-इसका कोई कारण नहीं है, और न इसका कोई कार्य है। वह तो अपने समय में है, अपने आप है, अपने कारण से है। यह है तत्त्व। न तो जीवादिक ७ तत्त्व हैं और न जगत के ये पदार्थ हैं। यह तो सब कल्पना से मान रखा है। तत्त्व तो एक शुद्ध सम्वेदन है, ऐसा वैभाषिक बौद्ध कह रहे हैं। जैसे जैनों में भेद है –दिगम्बर श्वेताम्बर आदिक वैसे ही बौद्धों में भी भेद है वैभाषिक, सौत्रान्तिक और क्षणिक-वादी आदिक। तो सत् कुछ नही है, केवल सम्वेदन मात्र है, उसमें कारण कार्य भाव भी नहीं है।

कार्य कारण भाव रहित संवेदन की असम्भवता दिखाते हुये उक्त शंका का समाधान— उक्त शंका के उत्तर में कहते हैं कि देखो आप कह रहे कि जो ज्ञान है वह ज्ञान भी क्या है ? एक शुद्ध जानन। उसमें कारण कार्य नहीं है। तो जिसका कारण कार्य नहीं होता वह नित्य कहलाता है। एक नियम है—सत् अकारणवतनित्यं। जो चीज है और कारण उसका है नहीं तो वह नित्य कहलाता है। अब वह सम्वेदन वही तो है क्षणिकवादी। एक-एक समय का ही पूरा द्रव्य मानने वाले और उनको आपत्ति आ रही इतनी कठिन कि उसे यदि कारण रहित मानेंगे तो यह ज्ञान नित्य हो जायेगा जैसे और नित्य न हो तो जिसे तुम बोल रहे हो वह सब आकाश के फूल की तरह अप्रमाण है, इसलिये जो सम्वेदन है उसमें कारण कार्य मानो। जितने भी ज्ञान होते हैं उसका कोई कारण है, उसका कोई कार्य है, हम आप जितना ज्ञान करते हैं– बोलो हम आपके ज्ञान का कोई कारण है कि नहीं, और उसका कोई कार्य है कि नहीं ? कारण भी है, कार्य भी है, किसी प्रयोजन से जानना, किसी आधार को लेकर जानना, किसी वस्तु को जानना, किस बल से जानना ? इन्द्रिय से, मन से। अनेक कारण हैं, और हम आपके ज्ञान के कुछ कार्य हैं कि नहीं ? कार्य भी है, कार्य का नाम फल है। ज्ञान निष्फल तो नहीं है। जाना तो उसके अनुरूप कुछ करते ही तो हैं। तो ज्ञान कारण कार्य से रहित नहीं है। अच्छा जरा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भगवान के ज्ञान की बात सोचो—प्रभु का ज्ञान, उसका कारण है न ? इन्द्रिय तो है नहीं, मन है नहीं, क्षयोपशम है नहीं। क्या कारण बताया जाये ? किन्तु है कारण। एक तो काल द्रव्य का परिणमन। समग्र वस्तुओं के परिणमनका कारण काल द्रव्य है और उपादान में अपने आपके स्वभावका आलम्बन। देखिये—बुद्धिपूर्वक वहाँ कुछ नहीं हो रहा, मगर कारण परमात्मतत्त्व का उपादान करके प्रति समय केवल ज्ञान मात्र ज्ञानरूप परिणमन चलता रहता है। अच्छा कारण तो हो गया, और केवलज्ञान का कार्य क्या है ? फल क्या है ? केवल ज्ञान का फल अनन्त आनन्द है। इससे बड़ा फल और क्या कहा जाये ? जो ज्ञान विशुद्ध है, जिस ज्ञान में राग द्वेषादिक भाव नहीं हैं, तरंग नहीं है, अस्थिरता नहीं है उस ज्ञान का यह फल अनन्त आनन्द यह ही तो पूरा प्रयोजन है। बुद्धि पूर्वक कुछ नहीं हो रहा, लेकिन फिर भी कारण कार्य चल रहा है। कारण कार्य भाव के बिना सम्वेदन की सिद्धि नहीं है। कार्य कारण भाव भी न माने और सत् भी न माने या सत् माने और कार्य कारण भाव न माने तो वह है ही नहीं। जैसे आकाश का फूल। अच्छा बतलाओ, आकाश का फूल किस कारण से पैदा हुआ ? अरे है ही नहीं, कारण भी नहीं, आकाश का फूल भी नहीं, गुलाब का फूल है, चमेली, चम्पा आदि के फूल हैं, मगर आकाश का भी फूल होता है क्या ? कभी देखा होगा बच्चे लोग खेल खेलने में वैद्य बन जाते हैं, दूसरे की नाड़ी देखते हैं और कहते हैं—लो हम दवा देते हैं देखो—छुवाँ की तो कोपल लाना, और आकाश के फूल लाना और खरगोश के सींग से उनको रगड़ कर लगाना, यह तुम्हारी दवा हो गई। अरे जिस चीज का कोई कारण नहीं, उसकी सत्ता नहीं, जिसका कार्य नहीं उसकी सत्ता नहीं, उस दवा का कोई काम बन जायेगा क्या ? भला कोई सत्ता ही नहीं है। तो जिसका कारण नहीं, जिसका कार्य नहीं वह तो असत् है। क्षणिकवादियों की बड़ी टेक है कि कार्यकारण भाव होता ही नहीं है। समय पर वस्तु उत्पन्न हो जाती है। तो इन शून्यवादियों का यह सम्वेदन जाननमात्र यह कारण कार्य भाव से रहित कहते। सो भैया उसकी सत्ता है, है ज्ञान, पर वह ज्ञान है, उसका आधारभूत कोई द्रव्य है। ज्ञान में समग्र पदार्थ ज्ञात होता है।

सर्व पदार्थों की यथावस्थित अस्तित्व स्वीकार कर हेय उपादेय के निर्णय में विवेक—ये सब पदार्थ, जगत के ये सारे पदार्थ सही हैं, इनमें असत् कुछ नहीं है। उनको जानें। अब रही यह बात कि हमारा हित इन बाह्य पदार्थों में उपयोग लगाने में नहीं है। नहीं है तो उपयोग मत लगाओ कोई बुरा है तो उससे हट जाओ। फिर कोई यह लाभ मानेगा कि है ही नहीं वह तो यह कैसे ? वस्तु है और अपने कारण से है। अपने कार्य को करती है। जैसे क्षणिकवादियों का यह शुद्ध सम्वेदन कारण कार्य रहित होने में असत् है, इसी प्रकार ब्रह्मवादियों का यह ज्ञानब्रह्म कारण कार्य रहित होने से असत् है। हौवा तो कुछ काम आ जाता है मगर यह ब्रह्मवाद और यह शुद्ध सम्वेदनवाद ये तो किसी काम नहीं आते। यद्यपि हौवा भी कोई चीज नहीं है, बच्चे को डराने के लिये बोलते हैं हौवा। चुप रहो, रो मत, हौवा आ जायेगा। बच्चा चुप हो जाता है, रोना बन्द कर देता है। तो देखो वह हौवा भी तो कुछ काम आ गया, मगर यह शुद्ध सम्वेदन याने ग्राह्य ग्राहक भाव से रहित सम्वित्ति और यह कारण कार्य भाव से रहित ब्रह्मवाद तो कुछ काम नहीं आता। फिर भी सम्प्रदाय का लगाव ऐसा प्रेरित करता है कि अनुभव में न आये तो भी बोलते जाओ और जो सीधी बात हो, जो हमारे अनुभव में आता हो उसको सीधा रखने में क्या है ? मैं हूँ सबमें यह ज्ञान चल रहा कि मैं हूँ। अहं प्रत्ययवेद्य हूँ। मैं हूँ, मैं हूँ, इस ज्ञान के द्वारा मैं जाना जाता हूँ। देखो—इन जड़ पदार्थों की भी सत्ता है, मगर

http://sahjanandvarnishastra.org/

ये अनुभव नहीं कर सकते कि मैं हूँ। जड़ हैं, ज्ञानशून्य हैं, ऐसे ही मेरी सत्ता है और मैं अनुभव करता करता हूँ कि मैं हूँ। मैं न होता तो दुःख न भोगता, विपदा कौन झेलता, कष्ट कौन मान रहा? भले ही ये दुःख भ्रम से हो रहे, पर बीत तो रही है हम पर। कोई है तो सही जिस पर भ्रम चल रहा। मैं हूँ, होने का निषेध नहीं किया जा सकता, ऐसे ही बाहर में जितना जो कुछ दिख रहा है यह भी है, स्पष्ट तो दिखता है। चौकी है, लटाई है, हाँ यह कहेंगे कि जो है उसके टुकड़े नहीं हो सकते। जो है वह आधा न रहे ऐसा हो सकता है क्या? कहीं है के भी भाग बनते। तो जो है उसका टुकड़ा नहीं होता। परमार्थ दृष्टि से बोल रहे हैं, और चूँकि इस चौकी के टुकड़े हो सकते हैं तो यह चौकी है नहीं, बिल्कुल ठीक है। जैन भी कहते हैं इस दृष्टि से कि यह चौकी है नहीं, अर्थात् परमार्थ यह चौकी पूर्ण द्रव्य है नहीं, इसमें अनन्त परमाणु बसे हैं, और इसके विभाग कर करके जो अविभागी अंश है उसका तो कोई टुकड़ा करे। टुकड़ा करके वह बनता भी नहीं। परमाणु टुकड़ा करके नहीं बनता, किन्तु वह अपने आप ही बिखर कर परमाणु होता है। तो लो जीव भी हुआ, पुद्गल भी हुआ। अब जितने जीव पुद्गल हैं, ये रह रहे हैं, दौड़ रहे हैं, भाग रहे हैं, बिखर रहे हैं, सब कुछ हो रहा है, ऐसा कुछ होते हुये भी एक सीमा है ऐसी कि इतने के अन्दर ही हो रहा यह सब। इससे अनुमान करें कि कोई ऐसा है जिसके कारण ये सब पदार्थ यहीं तक चल सकते हैं, बाहर नहीं। और, फिर गति क्रिया के कारण रूप तरंगें आज के वैज्ञानिक भी मानते। शब्द जाते तो तरंगों के आधार से। हवा चलती तो तरंगों के आधार से। और विकल्प के भी तरंग होते। तो गति के जो तरंग हैं, गति का जो कारणभूत है ऐसा भी कुछ है उसका नाम है धर्म द्रव्य। और, चलते हुये ठहरे तो कुछ भी नई बात होती है उसका उसके अनुरूप कोई कारण होता है। किसी कारण के बिना नई बात नहीं बनती। तो चलते हुये जीव पुद्गल ठहरें उसका भी कारण है, इसका नाम है अधर्म द्रव्य, आकाश जिसमें अवगाह हो, काल जो परिणमन का कारण हो। ये ६ प्रकार के द्रव्य हैं। इनका नास्तित्त्व नहीं किया जा सकता।

कार्यरहित संवेदन की असिद्धि होने से संविन्मात्र शून्यवाद की असिद्धि—जो शून्यवादी है, जो पूर्ण शून्य तक अपना पक्ष सिद्ध न कर सके और संवेदन तत्त्व तक स्थिति आये। शुद्ध सम्वेदन, जिसमें जानना कुछ नहीं, है कुछ नहीं तो जाने किसे? कुछ नहीं है फिर भी जानन है ऐसा कुछ जताने को, कुछ बात तो बोलनी पड़ेगी। उसे कहते हैं शुद्ध सम्वेदन। उसमें जैसे ग्राह्य ग्राहक भाव नहीं, बाध्य बाधक भाव नहीं, ऐसे ही कार्य कारण भाव भी नहीं तथा वाच्यवाचक भाव भी नहीं। विशेषण विशेष्य भाव तो अत्यन्त दूर है। शंकाकार का सिद्धान्त है, मगर सिद्ध हो गया कि कारण के बिना सम्वेदन बन ही नहीं सकता। इसी प्रकार कार्य के बिना भी ज्ञान बन ही नहीं सकता। ज्ञान है तो उसका कोई फल है। आप कहेंगे कि काठ जल गया आग से, राख हो गई। क्या फल रहा? उस काठ से क्या फल मिला? भला बतलाओ, बतलाऊं परमाणु का अस्तित्त्व बना रहा यह फल मिला। और फल की बात जाने दो, चूर-चूर कर भी बिखेर दिया जाय, कुछ भी हो, आखिर कुछ परिणमन न हो तो परमाणु की सत्ता नहीं रह सकती। पदार्थ की सत्ता बनी रहना ही उत्पाद व्ययका फल है। न हो तो उत्पाद व्यय तो सत्ता रह नहीं सकती। इस फल को तो कोई मना नहीं कर सकता। फल मायने खाने का फल नहीं है। जो भी पदार्थ है उसमें कार्य होता है तो उसकी सत्ता रहती है। यह फल है। अगर यह फल न हो तो उसकी सत्ता नहीं रह सकती। तो यों पदार्थ बहुत हैं, उनमें कारण कार्य

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भाव हैं, मैं भी पदार्थ हूं, मेरे में भी कारण कार्य भाव हैं। मैं किस कारण से चलूं तो उसका क्या फल होता इसको सोचते जावो। तो हित की दृष्टि से। देखो मैं खोटा भाव करूं, दूसरे को सताने का भाव करूं, किसी प्रकार के विषयों की वाञ्छा करूं तो उसका फल क्या ?ये संसार के संकट। और मैं अपने ज्ञानस्वरूप की सुध लूं जो साक्षात् वैराग्य का कारण है तो उसका भविष्य आनन्दमय रहेगा। वैराग्य का कारण भावुकता नहीं है और कुछ दिमागी सनक नहीं है। होता है सबके कौतूहल। जिसे कहते हैं तफरी। किसी का कहीं दिल बहलता है, किसी का कहीं, किसी का घूमने में दिल बहलाता है, किसी का सनीमा में, किसी का धर्म के नाम पर मन पसन्द बातें सुनने में दिल बहलता, तो किसी का धर्म के नाम पर व्रत क्रिया करने में दिल बहलता, तो यह सब दिल बहलावा जितनी बातें रह जायेंगी मगर आत्मा के विशुद्ध ज्ञानस्वरूप का परिचय नहीं होता। यहाँ थोड़ा अन्तर है। दिल, बहलावा की बातें भी अनेक हैं, मगर कुछ ऐसी हैं कि जिनसे कषाय बढ़ती है और कुछ ऐसी हैं कि जिनसे कषाय घटती है, मंद होती है। तो मंद कषाय जितनी है उसका फल मिलेगा। पुण्य बंध है, संसार के वैभव मिलेंगे। इतना तक ही फल है। सो इस फल का क्या करें ? यह फल तो नरक का कारण भी हो सकता है। वैभव मिला, मन स्वच्छन्द हुआ, कषाय बढ़ी, फिर नरक जाना पड़ा। तो वास्तविक हित आत्मा के सहज ज्ञानस्वरूप के अनुभव बिना होना अशक्य है। इसलिए बुद्धि अधिक नहीं, समय अधिक नहीं तो फुटकर फैलफुट यहाँ वहाँ के ज्ञान के साधनों में, प्रसंगों में न जुटकर आत्मा के परिचय में, ज्ञान के साधन में जुट लें, अगर समय कम है। इस अंतस्तत्व के परिचय के बिना कभी भी कल्याण हो नहीं सकता। तो यह सम्वेदन जिसको शून्य कहा जा रहा यह कारणरहित नहीं, कार्यरहित नहीं। तो यह शंकाकार जरा सी बात कहता कि सारा सम्वेदन न तो अकारण है, न सकारण है, न फल सहित है, न फलरहित है, फिर तुम दोष क्या दोगे ? देखो कैसी अटपट बात है। तो फिर क्या है बताओ ? वह तो सम्वित् सम्वित् ही है, ज्ञान ज्ञान ही है। कहते हैं कि ऐसा मानने पर तो परम ब्रह्म की सिद्धि होती है। और सम्वित मात्र तो कुछ चीज होती ही नहीं है जो है उसका फल है और उसका कारण है। तो जिससे हमारा हित हो, साधन बने, सम्वेदन को मानो तो विश्व के समस्त द्रव्यों की सत्ता स्वीकार करनी पड़ेगी। यह ही सत्संख्यादि सूत्र में बताया हुआ असत् अनुयोग बता रहा है कि दुनिया के समस्त पदार्थ सब सत् हैं, इनका अभाव नहीं है।

संसार संकटों से छुटकारा पाने के मार्ग की विधेयता का दिग्दर्शन--अनादि काल से अज्ञानवश संसार में रुलते हुए जीवों को दुःखों से छुटकारा कैसे मिले, उसका उपाय इस शास्त्र में कहा गया है। आचार्य संत ने जीवों पर करुणा करके सीधा मोक्ष मार्ग ही प्रथम सूत्र में बताया। यदि यह बताते कि जीव यों बन्धन है, बंधन का यह फल है, नरकादि गतियों में दुःख भोगना पड़ता है आदिक बातें बंधकी कथा में, यदि पहले कहते तो सम्भव है कि जीव बंध कथा सुनकर ही घबड़ा जाय, साहस छोड़ दे और इस शास्त्र में प्रवृत्ति न करे इस कारण सर्वप्रथम एक दम मोक्ष मार्ग का ही वर्णन किया है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यकचरित्र मोक्ष का मार्ग है। मोक्ष के मायने क्या ? छूट जाना के मायने क्या ? अकेला रह जाना। दो चीजें बंधी हैं उसे कहते हैं बन्धन और छुटकारा के मायने क्या हैं कि यह भी अलग हो गया, दोनों स्वतंत्र निराले अकेले हो गए इसका नाम हुआ मोक्ष। तो मोक्ष किसका चाहते ? आत्मा का। क्या है ? यह आत्मा अकेला रहे और इस अकेले में ही इस अकेले का सहज काम करे बस उसी का नाम है मोक्ष। तो जब अकेला रहता, केवल रहता तब ही तो इसका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नाम कैवल्य अथवा केवल ज्ञान कहा है। केवल ज्ञान ही ज्ञान रह जाय, इसमें रागद्वेष न रहे, शरीर का सम्बन्ध न रहे, कर्म की उपाधि न रहे, केवल आत्मा ही आत्मा रहे, ऐसा यदि कोई चाहता है और वह इस समय अपने को शरीर रूप माने, अन्य, अन्य रूप माने तो क्या यह ऐसा हो सकता है कि वह कभी अकेला रह जाएगा ? अगर अकेले रहने का प्रोग्राम बनाना चाहते हो तो ऐसी स्वरूप दृष्टि करो कि जिससे इस वक्त भी मैं अकेला हूं ऐसा दृष्टि में आए। यह है मोक्ष मार्ग की कुञ्जी। अब कोई प्रश्न करे कि मोक्ष में तो यह जीव अकेला रह ही जाता है, यहाँ तो अकेला है नहीं। फिर अपने को अकेला कैसे देख सकता है ? ठीक है यह आशंका जो होती है वह व्यवहार दृष्टि से है। बन्धन की दृष्टि से है। अब समाधान में देखिए— जिन किन्हीं दो चीजों का बन्धन होगा तो वहाँ ही दोनों चीजें अपने अपने में पूरी हैं या नहीं ? अगर वे दोनों चीजें नहीं हैं तो बन्धन क्या ? फिर तो एक रहा। तो बन्धन की अवस्था में भी बंधी हुई चीजें बराबर अपने स्वरूप में पूरी पूरी रहा करती हैं तो यह मैं जीव यद्यपि आज कर्म शरीर, कषायों से बंधा हूं फिर भी जो भी पदार्थ हैं वह पदार्थ सहज अपने आपके अनादि अनन्त स्वरूप को लिए हुए है। मैं जीव सत् हूं तो मेरा अनादि अनन्त सहज स्वरूप है चैतन्य भाव। जिसमें तरंग नहीं, शाश्वत है, ऐसा चैतन्य स्वभाव रूप अपने को माने यह है सम्यग्दर्शन। ऐसी जानकारी बनाया वह है सम्यग्ज्ञान। और चूंकि केवल जान रहा न ? केवल जानना ही जाना रहे, केवल जानकारी ही जानकारी चले, रागद्वेष न उठें उसका नाम है सम्यक्चरित्र तो यह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चरित्र मोक्ष का मार्ग है।

जीव तत्त्व में प्रयोजन भूत परिचय—मोक्ष मार्ग के सूत्र में उद्देश्य और विधेय की बात तो बता दिया लेकिन इतने से कुछ समझ में न आयगा। उसके लिए विवरण चाहिये। तो मोक्षशास्त्र के जितने भी सूत्र हैं वे सब प्रथम सूत्र के ही विवरण हैं। प्रथम सूत्र के ही समर्मक हैं। तो सम्यग्दर्शन का स्वरूप जानना आवश्यक हुआ। तो बताया गया कि प्रयोजन भूत जीवादिक ७ तत्त्वों का यथार्थ श्रद्धान होना सम्यग्दर्शन है। यद्यपि निश्चय से सम्यग्दर्शन अवक्तव्य है। और वह है आत्मा का स्वरूप जैसा सहज आत्मतत्त्व है वैसी प्रतीति होने का नाम सम्यग्दर्शन है पर यह बात प्राप्त कैसे हुई ? तो जब ७ तत्त्वों की जानकारी, यथार्थ श्रद्धान हो तो उन ७ तत्त्वों में रहने वाला जो आत्मा का एकत्व चैतन्य स्वभाव है उसका परिचय होता है। तो सम्यग्दर्शन का स्वरूप कहा। सम्यग्दर्शन होता किस तरह है ? तो किसी के निसर्ग से, किसी के अधिगम से। तो कोई पुरुष तो किसी योग्य उपदेष्टा के उपदेश को सुन कर चिन्तन मनन करता हुआ सम्यक्त्व को पैदा करता है और किसी पुरुष को उपदेश न भी मिल रहा हो, किन्तु अन्य कारण पाए, जैसे जिनबिम्ब का दर्शन, कठोर वेदना का प्रसंग, ऐसा कोई प्रसंग पाकर स्वयं अपने आपके मनन से हो वह निसर्गज सम्यग्दर्शन है। तो जीवादिक ७ तत्त्व कौन हैं ? जीव, अजीव, आश्रव, बंध, सम्वर, निर्जरा और मोक्ष। जो ज्ञान सहित हो सो जीव, जो ज्ञानरहित हो सो जीव। यहाँ अजीव से मतलब कर्म का है, जिससे कि तत्त्व बनेगा। जीव में कर्म आया सो आश्रव, जीव में कर्म बंधे सो बंध, जीव में कर्म न आ सके सो सम्वर और पहले आए हुए कर्म जीव से झड़ें तो निर्जरा और जिस काल में कर्म पूरे अलग हो गए, केवल जीव ही जीव रहा उसका नाम है मोक्ष।

जीवविकार की परभावता का परिचय— एक बात समझना है कि मैं जीव हूं, किसी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भी पदार्थ में अपने आप अपने स्वरूप के कारण विकार नहीं हुआ करते। यह नियम है। परमाणु हुआ परमाणु में तो ऐसी स्थिति है कि वहाँ अधिक गुण हों जायें, पर जीव द्रव्य में इतनी भी योग्यता नहीं कि वह अपने आप अपने ही स्वरूप के कारण विकार करले। यदि जीव अपने ही स्वरूप के कारण अपने ही सत्व की वजह से विकार करने लगे तो सिद्ध भगवान में भी विकार होना चाहिए। वह भी जीव है, उनका भी स्वरूप है। जैसे जीव के अपने स्वरूप ही के कारण विकार नहीं होता। तो जब विकार होता है तो उससे अनुमान है, आगम बताता है कि इसके साथ कोई विरुद्ध चीज अवश्य लगी है तब विकार होता है। जैसे मोटा दृष्टान्त लें— पानी अपने आपके स्वरूप की वजह से गरम नहीं होता, किन्तु अग्नि, सूर्य के आताप आदिक के कारण गरम हो जाता, तो इसी तरह आत्मा में जो रागद्वेषादिक भाव होते हैं वे अपने स्वरूप के कारण नहीं होते। होते तो स्वरूप के ही परिणमन हैं, पर उसमें निमित्त कारण कोई पर उपाधि हो सकती है। अब दो बातें हो गई हमारे साथ—मैं हूं और मेरे साथ उपाधि है। जीव उपाधि का निमित्त पाकर होने वाले भाव को अपनाता है वह तो संसार में सलता है, है और जिसको ऐसा स्पष्ट बोध होता, कि यह नैमित्तिक भाव है, मेरे स्वरूप के भाव नहीं हैं। उनसे उपेक्षा करें, और आत्मा जो सहज स्वभाव है चैतन्यभाव, उसका ग्रहण करें। मोक्ष मार्ग मिलेगा।

जीवादि तत्त्वों के परिचय के उपायों का दिग्दर्शन— तो जीव में अजीव आया सो आश्रव बंधा सो बंध, और कर्म रुके याने न आए सो सम्वर, जीव से कर्म झड़ें सो निर्जरा और बिल्कुल कर्म न रहें सो मोक्ष। इतना सामान्य से जान लेने के बाद केवल इतना जानने से आगे बात नहीं बन पाती कुछ और विशेष समझना चाहिए। ७ तत्त्वों का सम्यग्ज्ञान आदिक भाव का अधिक परिचय होना चाहिए। तो परिचय के बाद व्यवहार की बात कहना कि नाम निक्षेप है नाम निक्षेप, द्रव्यनिक्षेप, भाव निक्षेप ये तीन व्यवहार होते हैं नाम धर दिया उसको समझ लिया,आगेपीछे की पर्याय होने पर पर्याय का व्यवहार नहीं किया और उस द्रव्य को समझा याने ज्ञान के द्वारा इन तत्त्वों की जानकारी होती है। तो ज्ञान जो सर्वज्ञान हो तो प्रमाण और एक देश ज्ञान हो तो नय। यह तो ज्ञान के द्वारा जानकारी की बात कहकर जिसकी हमें जानकारी करना है उस पदार्थ में क्या क्या चीजें ढूँढ़ी जायें उसके लिये बताया कि निर्देश और जिसका परिचय करना उसका थोड़ा असाधारण धर्म बताओ। यह है जीव जो ज्ञानसहित हो। फिर स्वामित्व बताओ – इसका कौन स्वामी है ? साधन बताओ कि यह कहाँ पैदा हुआ ? अधि-करण पैदा हुआ कि यह कहाँ रहता है ? स्थिति बतलाओ कि कब तक रहता है और प्रकार बतलाओ। इस तरह मध्यम प्रतिपत्ति से पदार्थ के जानने का उपाय बताकर अब विशेष विस्तारपूर्वक पदार्थ का परिचय कराने के लिये इस ८वें सूत्र का अवतार हुआ है। इसमें बतला रहे हैं कि सबका परिचय सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव, व अल्प बहुत्व इन ८ पद्धतियों से होता है। सत् मायने उसका अस्तित्त्व बताना। जिस चीज का परिचय करना हो, जीव का करना हो, आश्रव का करना हो, सम्य-क्त्व का करना हो, जिस किसी भी पदार्थ का परिचय करना हो तो पहले बतलाओ उसका अस्तित्त्व। फिर बतलाओ उसकी संख्या, फिर कहाँ रहता है, यह क्षेत्र। और, पहले कहाँ रहता रहा, आगे कहाँ-कहाँ रह सकता, आगे कहाँ तक पहुँच जायेगा यह स्पर्शन, कितने समय टिकेगा यह काल, और वह पदार्थ जिसका परिचय किया जा रहा है वह न रहे और फिर वही बने, बीच में अन्तर कितना आ सकता है और वर्तमान में परिणाम कैसा है, और किससे अधिक है, किससे कम है ऐसी तरतमता,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इतनी बात कहने पर परिचय होता है। जैसे घर के चार भाइयों में से एक भाई का परिचय देना है तो कहते हैं कि यह अमुक का पुत्र है, इतनी जायदाद का स्वामी है, यह अमुक शहर में रहता है, और यह इतनी जगह आया जाया करता है और यह इतने समय से है, इतने समय तक रह सकता है और यह न रहे और फिर किसी समय वही मरकर कैसी पर्याय में पैदा हो जाये, कुछ भी बन जाये, किसी घर में आ जाये तो यह हुआ उसका अन्तर। उसका भाव किससे अच्छा है, किससे बुरा है आदिक। तो किसी वस्तु का परिचय करने के लिये इन ८ पद्धतियों का अपनाना होता है।

सत्प्ररूपणा की उपयोगिता पर उपसंहारात्मक प्रकाश – यहाँ उक्त ८ प्ररूपणा उनमें से सत् अनुयोग पर विचार चल रहा है। सत् माना है। तो सर्वप्रथम तो इसी पर ही टोक दिया अन्य दार्शनिकों ने कि सत् कुछ चीज नहीं होती, शून्य है, सर्व अभाव है, यह ही तत्त्व है, अस्तित्व कुछ नहीं है दुनिया में। तो उसका निराकरण करना पड़ा कि जो लोग अस्तित्त्व नहीं मानते और नास्तित्त्व ही मानते, शून्य ही मानते तो आखिर उनको शून्य तत्त्व समझाने के लिये क्या उपाय है? वह दूसरों को समझाया कि शून्य ही तत्त्व है। तो ज्ञान तो उपाय रहा ना? ज्ञान के द्वारा ही तो समझाया गया न? तो ज्ञान तो है। तो अस्तित्त्व तो आ ही गया, अस्तित्त्व माने बिना नास्तित्त्व को भी तो नहीं बता सकते। फिर कोई दार्शनिक बोला कि सबका नास्तित्त्व तो नहीं है, मगर दुनिया में केवल ज्ञान ही ज्ञान है, अन्य कुछ नहीं है। जो जड़ पदार्थ दिखते हैं वे कुछ नहीं हैं, स्वप्नवत् दिख रहे हैं। उनका निराकरण किया कि यह ज्ञान ज्ञान है। तो यह ज्ञान जाने किसे? अन्य को जाने बिना ज्ञान की मुद्रा क्या? और यह प्रतीति सत्य है, सामने दिख रही है। हैं तो अजीव पदार्थ। तो कोई कहता है कि बस अजीव ही अजीव है। जीव नाम की कोई चीज नहीं है। तो उनको समझाना पड़ा कि जीव नामक कोई वस्तु न हो तो परिचय कैसे बने सबका? अजीव है सब कुछ, यह भी किसने जाना? तो इस प्रकरण में जो केवल ज्ञान ही ज्ञान तत्त्व मानते हैं वह सम्वित्ति ज्ञान ही है और कुछ नहीं है, ऐसा मानने वाले को समझाया कि ऐसी हठ मत करो। ज्ञान ही ज्ञान है तो ज्ञान अगर किसी को जानता नहीं तो ज्ञान क्या और किसी को जानता है तो वह तो ज्ञान के अलावा है ना? ग्राह्य हो गई वह वस्तु, ग्राहक बन गया यह ज्ञान, इस प्रकार अगर ज्ञान ही ज्ञान है और कुछ नहीं है तो हम निषेध किसका करें? निषेध भी तो चीज है। और बाधा देने वाला ज्ञान भी तो है। कैसे कहते कि ज्ञान ही ज्ञान है? और, केवल ज्ञान ही ज्ञान माने, अन्य वस्तु कुछ न माने तो किसी वस्तु को जब जाना ही नहीं तो ज्ञान क्या बनेगा? तो ज्ञान जितना होता है उसका कोई कारण होता है, ज्ञान जब होता है तो उसका कोई फल भी होता है। फल का नाम है कार्य। कारण साधन को कहते हैं और कारण कार्य भी है। अब आज यह बतला रहे हैं कि कोई केवल मात्र शुद्ध ज्ञान ज्ञान की ही हठ करे अर्थात् ऐसा ज्ञान कि जिससे कुछ जाना तो जा नहीं रहा, ज्ञान में तो कुछ आता नहीं, किन्तु जानन बन रहा है। कहते हैं कि यह बात भी तुम समझाओगे कैसे? वाच्य वाचक भाव तो है ना? याने जीव शब्द से तुम समझाते हो, वह शब्द तो है वाचक और जिस चीज को तुम समझाते हो वह है वाच्य। तो ज्ञान ही ज्ञान तो न रहा, वाच्य वाचक भाव भी है। अगर वाच्य वाचक भाव न हो तो आप अपने पक्ष की बात समझा नहीं सकते, दूसरे की मानी हुई बात का खण्डन नहीं कर सकते। इस प्रकार यहाँ तक यह सिद्ध हुआ कि सत् अनुयोग जो बताया है वह अवश्य है। केवल कल्पना की ही चीज नहीं है। सर्व पदार्थों में अस्तित्त्व का समझना बहुत आवश्यक है। अगर अस्तित्त्व अनुयोग न बनायें तो वस्तु में रहने वाले धर्म को समझा कैसे जाये?

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

और पदार्थ सब हैं, अनन्तानन्त जीव हैं, अनन्तानन्त पुद्‌गल हैं, एक धर्मद्रव्य, एक अधर्मद्रव्य, एक आकाश द्रव्य और असंख्यात काल द्रव्य है मगर ये सत् पिरूपणा नहीं कहते। जानने की पद्धति अस्तित्व से शुरु करें। पहले पदार्थ का अस्तित्त्व जानें। यदि यह अनुयोग नहीं बताते तो कोई वस्तु ही नहीं होती। संख्या आदिक भी नहीं बनते। कल्पना से तो पिरूपण कुछ होता नहीं, वस्तु जिस प्रकार से है उस प्रकार से पिरूपण करें तो वह पिरूपण आगे चल सकता है। कल्पना से जो पिरूपण हो गया वह केवल कहने कहने का होगा, अनुभव में नहीं आ सकता है, इसलिये सत् पिरूपण सर्वप्रथम बताना ही चाहिये। यहाँ तक यह सिद्ध किया कि सत् संख्या क्षेत्रादिक सूत्र में जो प्रथम सत् शब्द दिया है वह बिल्कुल युक्त है।

निर्देश अनुयोग और सत्प्ररूपणा दोनों की उपयोगिता जानने के लिये दोनों में अन्तर का प्रदर्शन—अब एक समस्या और उपस्थित होती है कि इससे पहले जो सूत्र कहा था निर्देश स्वामित्वादिक उसमें निर्देश बताया गया तो निर्देश में और सत् में अन्तर क्या है? जब ७वें सूत्र में निर्देश द्वारा सब अस्तित्त्व बता दिया गया तो अब यहाँ दुबारा सत् कहने की क्या जरूरत है? उत्तर उसका यह है कि निर्देश में तो आता है विशेष निर्देश याने असाधारण धर्म सहित वस्तु का बताना और सत् में आता है साधारण हो, असाधारण हो, अन्य हो, सामान्य विशेष हो, सभी कुछ बताना सत् का प्रयोजन है। पहले अस्तित्त्व जानें, जब आप कुछ है जानने को चलेंगे तो सबसे पहले पर्याय से पहले की जानकारी शुरू होगी। क्योंकि द्रव्य का जो धार्मिक रहस्य है उसकी जानकारी ही नहीं, उसको कभी सुना ही नहीं, परिचय में ही नहीं आया तो उससे कैसे शुरुआत होगी? जो भी पुरुष जानने में बढ़ता है तो वह व्यवहारनय के वचनों द्वारा जानने में बढ़ता है। जैसे किसी बालक को पढ़ाई शुरु से की जाती है तो प्राथमिक अ आ इ ई से शुरू किया जाता है। भले ही कोई बालक विशेष बुद्धिमान हो तो एक साल में चार क्लास पास कर ले मगर शुरुआत तो शुरू के ढंग से होती है, इसी प्रकार इस ज्ञान-स्वभाव का अनादि काल से अपरिचित जनों को जानकारी कराना है तो उसे पर्यायमुखेन जानकारी कराई जाती है। जैसे यह जीव है, पशु पक्षी मनुष्य कीड़ा मकोड़ा ये सब जीव हैं, बताते हैं ऐसा और तब ही तो लोग हिंसा पालते हैं, पर निश्चय से देखा जाये तो जो जीव है वह आँखों से दिखने में आता है वह जीव तो न रहा, वह अजीव है। वह सब पुद्‌गल है। तो फिर जीव क्या है? इस देह देवालय के अन्दर जो एक चैतन्य पदार्थ है उस चैतन्य पदार्थ का जो अनादि अनन्त अहेतुक शाश्वत चैतन्य स्वभाव है वह है जीव।

भविष्यत्कालीन होनहार की ज्ञानवृत्ति पर निर्भरता- देखिये हमारा भविष्य पूरा का पूरा ज्ञान पर निर्भर है। धन से निर्भर नहीं। कोई सोचे कि मैं यहाँ धन बहुत जोड़ लूँ तो मेरा भविष्य उज्ज्वल रहेगा, सो बात गलत है। मैं शान्त रहूँगा। सुखी रहूँगा, सुखी रहूँगा, यह बात सोचना गलत है, क्योंकि सुख और दुःख जितने होते हैं वे धन के न होने से या होने से नहीं होते, सुख दुःख जितने होते हैं वे सब ज्ञान की कला से होते हैं। धन होने पर भी यदि ज्ञान के विकल्प और तरह के चल रहे हों कोई झंझट के, किसी से लड़ने के अथवा परिवार से दिल न मिलने से या कोई भी चल रहे हों तो सुख तो न हुआ और बल्कि कभी कभी तो इस धन से ही यह विपत्ति मान लेता है धन से अगर सुख होता तो सुख रहना चाहिये, मगर क्लेश ज्यादह होता है। हाँ गुजारा लायक जो कुछ चाहिये वह तो जब आप पुण्य के उदय से मनुष्य हुये हैं तो इतना पुण्य तो है ही जिससे इतना ऊँचा कुल पाया है,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जैन शासन पाया है, प्रभु भक्ति की योग्यता हुई है। तो इतनी बात तो होगी ही, लेकिन जो बाह्य पदार्थों में तृष्णा जगती है उससे केवल दु:ख ही होता है। धन वैभव सुख का कारण नहीं, किन्तु ज्ञान ने जब यह विकल्प किया कि मेरे को मौज है, सब कुछ है आदिक जो भाव बनाया उस ज्ञान विकल्प से सुख माना गया है और जब दु:ख माना जाता तो ज्ञान विकल्प से ही दु:ख माना जाता। यह तो है एक वर्तमान की बात, पर कोई पुरुष इस ज्ञान द्वारा ज्ञान के स्वरूप का दर्शन करे, यह सारा जगत, यह दृश्यमान जगत अनित्य है, अशरण है, असार है, भिन्न है ऐसा निर्णय करें, किसी भी बाह्य पदार्थ में अपने उपयोग को न जोड़ें, इस निर्णय के बल पर जब समझा बाहरी सारे पदार्थ भिन्न असार हैं तो मैं क्यों किसी भिन्न पदार्थ का ध्यान करूँ? यह ध्यान छोड़ दें, विकल्प हटा दें और उस समय ज्ञान का जो एक साधारण परिणमन रहेगा वह जानना तरंगरहित, रागद्वेषरहित ऐसी ज्ञान की स्थिति बने तो तत्काल भी शान्ति है और इस अकेलेपन के अनुभव में कर्म भी कटते हैं, हमारा सारा भविष्य उज्ज्वल बनता है। तो हम सुखी हो लें या दु:खी हो लें या शान्त होकर कभी जल्दी संसार के संकटों से सदा के लिये छुटकारा पा लें यह सब ज्ञान पर निर्भर है। बाह्य वस्तु पर निर्भर नहीं और फिर जब ज्ञान ही मेरा स्वरूप है, ज्ञान सिवाय मैं और कुछ हूँ ही नहीं, ज्ञान सिवाय मेरा कुछ है ही नहीं, ज्ञान को ही लेकर आये, ज्ञान ही साथ जायेगा, ज्ञान ही में हम रमा करते हैं, ज्ञान ही मात्र सर्वस्व है। जब ऐसा कोई बोध करे और बड़ी निष्ठा के साथ, लगन के साथ अपने को ज्ञानमात्र हूँ, ज्ञानमात्र हूँ, ऐसा ही अनुभव बनाऊँ तो उस समय जो आनन्द है वह अलौकिक आनन्द होता है।

अध्रुव तत्त्वों से प्रीति छोड़ कर ध्रुव निज तत्त्व में रुचि करने के कर्तव्य का स्मरण— भैया! मोटी सी बात है। जब सब छूट जाना है तो फिर उसकी ममता से क्या लाभ? अब भी दु:ख अब भी दु:ख भोगा और ममता से जो कर्म भोगेंगे उनका फल मिलेगा, वहाँ भी दु:ख भोगा जायेगा। और एक बाह्य वस्तु जब मेरी कुछ है ही नहीं तो उससे उपयोग हटाकर अपने को केवल ज्ञान ज्योतिमात्र ज्ञानमात्र अमूर्त निर्लेप विलक्षण एक ज्ञान प्रकाशमात्र यह ही मैं सत् हूँ, इस प्रकार अपने आपके ऐसे विशुद्ध अस्तित्त्व में प्रतीति रखें तो बस सम्यग्दर्शन हो गया। अपने जीवन में एक ही अभिलाषा बने कि प्रभु मुझे अन्य कुछ न चाहिये। मेरे को सम्यक्त्व जगे, सच्चे ज्ञान का मेरे में प्रकाश रहे और इस मेरे ज्ञानमय स्वरूप की ही मेरे में धुन बने, अपने आपको सदा इस प्रतीति में रखूँ कि मैं ज्ञानमात्र हूँ, ज्ञान सिवाय मेरा अन्य कुछ स्वरूप नहीं है, और इस ज्ञानस्वरूप की समता से ही मैं अन्य जीवों को निहारूँ। किन्हीं किन्हीं लोगों की आदत होती है दोष ग्रहण करने की। निश्चित बात है कि जो अज्ञानी हैं, पर्याय बुद्धि हैं उनमें ही यह आदत हुआ करती है। क्या प्रयोजन है दोष निरखने से? निरखना ही है तो उसके गुणों को देखिये न? मनुष्य के गुणों को ही नहीं, उसे तो देखें मगर आत्मा के गुणों को देखिये न? यह प्रभु की तरह अविकार अचल चैतन्य स्वरूप है। जो गड़बड़ी हो रही वह इस चेतन का अपराध नहीं। इस चेतन के साथ जो कर्म उपाधि लगी है उसका रंग चढ़ रहा है, यह अन्तर में देखिये न? अपना ही तो भला चाहिये। अपना भला होगा शुद्ध दृष्टि से, गुण दृष्टि से, स्वभाव दृष्टि से। तो प्रति पर्याय में हम पर्याय को न अपनायें, किन्तु मुझमें सदा रहने वाला जो चैतन्य स्वरूप है उस स्वरूप में यह मैं हूँ ऐसा अनुभव करें, इसका अभ्यास जितना विशेष बन जायेगा उतना ही वह महान योगी है, ध्यानी है, ज्ञानी है, महान् आत्मा है। हम ऐसी धुन बनायें, प्रकृति हमारी बन जाये कि हर समय हम इस ही की सुध रखें कि मैं सबसे निराला केवल ज्ञानमात्र हूँ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

निर्देश अनुयोग की उपयोगिता व सत्प्ररूपणाकी उपयोगिताका वैलक्षण्य- सत्संख्यादि सूत्र में सर्व प्रथम सत् प्ररूपणा का निर्देश यों किया है कि यदि कोई सत् नहीं है तो असत् के विषय में संख्या आदिक का प्ररूपण हो ही नहीं सकता। यदि कोई कहे कि किसी भी पदार्थ को एकदम हम कल्पना से मान लेंगे फिर उसमें संख्या वगैरह घटाने लगे तो ऐसी कोई कल्पना करे तो वह युक्तिसंगत नहीं है, क्योंकि आखिर दृष्टि में सत् तो हुआ ना और कल्पना से जो कुछ मान लिया हो, उसमें संख्या, क्षेत्र स्पर्शन आदिक सब कुछ वर्णन करने लगे तो आकाश के फूल, खरगोश के सींग जो हैं ही नहीं, फिर उनका वर्णन करने लगेंगे। तो सत हो तब ही उसका निरुपण होता है इस कारण इस सूत्र में सत् शब्द पहले दिया है। अब यहाँ एक आशंका होती है कि निर्देश और सत् में अन्तर क्या है? ७ वें सूत्र में निर्देश, स्वामित्व आदिक बताया है। निर्देश का भी वही अर्थ है। यह सम्यक्त्व है, यह जीवतत्त्व है, फिर उसके बारे में स्वामित्व आदिक बताया गया है, ऐसे ही इस सत् संख्यादिक सूत्र में भी पहले सत् शब्द कहा है, फिर निर्देश कहने से ही जब सत् की सिद्धि हो गई तो इस सूत्र में दुबारा सत् वचन कहना ठीक नहीं है। इस आशंका का समाधान यह है कि सत् कहने से तो बहुत विशाल अस्तित्व का ज्ञान होता है, और निर्देश कहने से किसी एक पदार्थ के खास ही लक्षण का ज्ञान होता है। और आत्मा का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है, तो यह सम्यग्दर्शन का निर्देश हुआ। इसमें आत्मा के एक असाधारण गुण की बात कही, लेकिन सत् शब्द तो साधारण का भी ग्रहण करेगा, विशेष का भी ग्रहण करेगा, और सत्ता मात्र को ग्रहण करेगा, इस कारण सत् का विषय ज्यादह है, निर्देश का विषय सीमित है, जिसका निर्देश किया उसका एक खास गुण बताया, निर्देश में इतनी ही बात आयी और सत्त्व में जो निर्देश आया वह भी है। और जो निर्देश से छूटा वह भी है, तो सत्ता मात्र का विषय करने से यहाँ जो सत् शब्द दिया है उसका विषय निराला है। निर्देश का विषय निराला है। निर्देश के कहने से तो कोई खास लक्षण ग्रहण में आता है जिससे कि अन्य पदार्थ का निराकरण होता है। जैसे जीव का निर्देश, जिसमें ज्ञान हो उसे जीव कहते हैं। यह जीव है तो इस निर्देश में जो जीव नहीं है उनका निराकरण हो गया। पुद्गल, धर्म, अधर्म, ये कुछ भी निर्देश में नहीं आवें, पर सत् इतना कहने से जीव भी आया और धर्म अधर्म, पुद्गलादिक सभी आ गए। तो सत् शब्द सत्ता मात्र को विषय करता है और वह सब द्रव्य और सर्व पर्यायों में सामान्य रूप से प्रयुक्त होता है। दूसरी बात यह है कि जिसके विषय में संख्या आदिक बताना है उसका सत्त्व पहले कायम करना पड़ता है इसलिए सत् शब्द कहना यह आवश्यक है।

सत्यप्ररूपणा के लक्ष्य की महती व्यापकता— अब कोई शंका करता है कि तुमने निर्देश और सत् में यह अन्तर बताया कि निर्देश तो किसी एक खास को ग्रहण करता है और बारीकी का निराकरण करता है। तो सत् भी तो यह ही करेगा। सत् सर्व सत् को ग्रहण करता है। असत् का निराकरण करता है, तो निर्देश की प्रकृति में और सत् की प्रकृति में अन्तर क्या हुआ? तो उत्तर देते हैं कि असत् का निराकरण कोई अलग चीज नहीं। असत् कोई पदार्थ नहीं। सत्ता के रूप को ही असत् से जाना जाता है, याने असत् तुच्छाभाव नहीं है। जैसे किसी ने कहा है कि टेबिल पर पुस्तक होगी, उसे लाओ। पुस्तक थी नहीं तो देखने वाला कहता है कि यहाँ पुस्तक नहीं है। तो क्या पुस्तक को नास्तित्त्व दिख गया? पदार्थ का अभाव दिखने की चीज नहीं है, पुस्तक रहित टेबिल दिखी है तो पुस्तक रहित टेबिल का नाम पुस्तक का अभाव है। अभाव कोई अलग वस्तु नहीं वह दूसरे की सत्तारूप होती। तो सत्ता वस्तुभूत सत् में रहती है और असत्ता में भी रहती है, याने असत् कोई

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अलग अभाव नहीं। किन्तु दूसरे की सत्तारूप है, उसमें भी रहतो है इसलिए सत् साधारण है। और साधारण होने से निर्देश और सत् में फर्क हो गया। निर्देश तो है विशष का विषय करने वाला और सत् है सामान्य को विषय करने वाला। दूसरी बात यह है कि अर्थापत्ति प्रमाण से प्रतिपक्ष का नास्तित्व सिद्ध होता है। जैसे यहाँ धुवाँ नहीं है, क्योंकि अग्नि नहीं है तो एक ऐसा अनुमान होता है, उसमें तो एक ऐसा अनुमान होता है, उसमें तो अर्थापत्ति की सिद्धि होती है। यहाँ पुस्तक नहीं है अन्यथा पुस्तक दिख जाती ना। तो अर्थापत्ति से नास्तित्व बनता है। तो यों नास्तित्व प्रतिपक्ष का निराकरण किया। केवल सत्ता को विषय किया, इस कारण से सत्ता का निर्देश से भिन्न विषय है, क्योंकि जगत में जितने भी सत्तावान पदार्थ हैं उनके अनन्तवें भाग रूप या कुछ मध्यम संख्या रूप पदार्थ को ही कहते हैं निर्देश वचन, पाने जगत में पदार्थ तो अनन्त हैं, उनमें से निर्देश ने किसी एक पदार्थ को ही कहा और ये सत् कहने में सारे पदार्थ आ जाते हैं। तो यों निर्देश से सत् विलक्षण विषय वाला है। दूसरी बात निर्देश शब्द से केवल निर्देश ही होता है, और सत् मानते हैं तो सब में लगाइयेगा निर्देश सत्, स्वामित्व सत्, साधन सत्, अधिकरण सत् सभी सत् याने जो भी बोला जाएगा सब में सत् अनुयोग घटित हो जाता है, किन्तु निर्देश का जहाँ लक्षण बनाया उसका ही ग्रहण होता है। इस तरह निर्देश स्वामित्व आदिक में कहे गए, निर्देश शब्द से सत्संख्यादि सूत्र में कहे गए सत् का विषय महान है।

सत्प्ररूपणा का सर्व अनुयोग व प्ररूपणाओं पर भी प्रभाव— अब यहाँ फिर शंकाकार कहता है कि जैसे हमने यह कहा कि सत् सब में लगता है, स्वामित्व भी सत् साधन,अधिकरण भी सत्, संख्या, क्षेत्रआदिक भी सत्। सत् हैं, जिन अनुयोगों के द्वारा पदार्थ का ज्ञान होता है तो शब्द के द्वारा निर्देश की गई सत्ता भी निर्देश कथन करके विषय की जा रही है। याने सत्ता किसे कहते हैं जिसमें अस्तित्व हो, तो सत्ता निर्देश के द्वारा कही गई ना? ऐसे ढंग से निर्देश वचन भी सत् है तो सत् व्यापक बन गया, इसी प्रकार सत्, संख्या, क्षेत्रादिक सभी का निर्देश होता है, तो निर्देश कथन भी महा विषय वाला बन जायगा? उत्तर देते हैं कि देखो स्वामित्व, साधन आदिक जो ७ वें सूत्र में अनुयोग बताए हैं उनको विषय करने वाली सत्ता व्यापक है। निर्देश वचन का व्याप्य बनकर विषय नहीं है, इसलिए सत्ता व्यापक चीज है। सत्ता क्या है? तो उसका लक्षण बताया है उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त हो उसको सत् कहते हैं। फिर किसका सत् है? किस साधन से सत् बनाया जाता किस अधिकरण में कितनी देर तक सत् है, कितनी प्रकार का सत् है? देखो, सत् शब्द सबके साथ जुड़ा, परन्तु निर्देश तो सबके साथ नहीं जुड़ता। निर्देश एक बार कह कर मौन बैठ जाएगा। जैसे सम्यक्त्व निर्देश कर दिया— तत्त्वार्थश्रद्धानंसम्यग्दर्शनं। अब इसके बाद निर्देश स्वामित्व वगैरह में नहीं चला। तो फिर क्या? सत् सबके साथ चला गया, किसका स्वामित्व है, किसका साधन है? 'है' सबके साथ चलता है इसलिए सत् व्यापक है। इस तरह सत् संख्यादि सूत्र में सर्वप्रथम सत् अनुयोग का वर्णन है। निर्देश करने योग्य तो संख्या, क्षेत्रादिक भी हैं, उनमें सद्वचन की प्रवृत्ति नहीं है इसलिए संख्या आदि सर्व विषयों में सत्ता व्यापक नहीं बन सकती। ऐसा फिर एक शंकाकार कहता है कि परस्पर में एक दूसरे से जो न्यारे हो रहे हैं सत् संख्या आदिक जो ८ प्ररूपणायें बन रही हैं ये तब ही तो बनती हैं। उत्तर में कहते हैं कि संख्या आदिक में भी सत् शब्द लग रहा है। संख्या है, क्षेत्र है। सत् को छोड़कर कोई अकेला नहीं रह सकता। सत् मायने अस्तित्व है। अस्तित्व का संयोग सबके साथ चलता है। इस कारण सत् के द्वारा सबका विषय हो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जाता है। मोक्षशास्त्र में प्रारम्भिक सूत्र से अब तक जितना भी वर्णन है और आगे जितना वर्णन होगा सब में सत् की परिणति चलेगी। सर्व सत् हैं इसलिए सत् अनुयोग व्यापक स्वरूपहै और इसमें सभी पदार्थों का अस्तित्त्व आता है। यों निर्देश कह चुकने पर भी आवश्यक हुआ इसलिए सत् कहा गया है। वैसे ७ वें सूत्र में निर्देश कह दिया है, पर निर्देश से सब जगह काम न चलेगा। निर्देश ने तो किसी का एक लक्षण बताकर अपना काम पूरा कर लिया, मगर सत् सबके साथ चलेगा। उपाय भी सत्, प्रमाण भी सत्, ज्ञान भी सत्, और ६+८=१४ अनुयोग भी सत् हैं इस तरह सत् तो सबके साथ जुटा हुआ है इसलिए सत् प्ररूपणा का कहना बहुत ही उपयोगी है।

सत्प्ररूपणा द्वारा ज्ञातव्य विधि का संकेत— सत् संख्यादि सूत्र में सत् अनुयोग द्वारा प्रत्येक ज्ञातव्य तत्त्व का अधिगम किया जाता है। वे कौन-कौन से तत्त्व हैं, जिनका जानना अत्यन्त आवश्यक है। उनके कुछ थोड़े से नाम अभी कह रहे हैं, फिर संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव अल्प बहु इन ७ अनुयोगों का स्वरूप और विवेचन करके फिर इसके विषय में कहा जायगा। कौन-कौन से तत्त्व ज्ञातव्य हैं ? प्रकरण के अनुसार सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, जीव, अजीव, आश्रव, बंध, सम्वर, निर्जरा, मोक्ष इनका मुख्यतया अधिगम करेंगे ? और इनकी जानकारी के लिए जीव और कर्म के बारे में विशेष विशेष जानकारी करनी होती है। जैसे जीव की जानकारी बतायी जाएगी तो सामान्य और विशेष दोनों प्ररूपणाओं से चलेगा। सामान्य के मायने १४ गुण स्थान। जैसे जब मिथ्यात्व की जानकारी चलेगी तो मिथ्यात्व क्या है, मिथ्यात्व कितनी तरह का होता है, मिथ्यादृष्टि जीव कहाँ रहता है, तीन काल कहाँ रहता है, और मिथ्यात्व का काल कितना है ? मिथ्यात्व छूट जाय और फिर मिथ्यात्व आए तो ऐसा बीच में अन्तर कितना पड़ता है। मिथ्यात्व कौन सा भाव है और मिथ्यात्व में औरों की अपेक्षा में अल्प बहुत्व कैसा है। इस तरह वर्णन चलेगा। तो इस तरह इस अनुयोग द्वारा प्रत्येक ज्ञातव्य तत्त्व का विवेचन होगा। १४ गुणस्थान मिथ्यात्व, सासादन, सम्यग्मिथ्यात्व, अविरतसम्यक्त्व, देशविरत, प्रमत्तविरत, अप्रमत्तविरत, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्यपराय उपशान्तमोह, क्षीणमोह, सयोगकेवली, अयोगकेवली, इन प्रत्येक की कितनी संख्या है, कौन स्वामी है, कहाँ रहता है, सबका वर्णन होगा। तभी इसका विशद बोध होगा इसी प्रकार जब विशेष रूप से चले जानने को तो मार्गणाओं द्वारा जाना जाएगा। गति, इन्द्रियजाति, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व और आहारक। इनके अलावा और जो भी तत्त्व ज्ञातव्य हैं उन सबका विवेचन इस सूत्र के अनुसार ८ अनुयोगों द्वारा होगा। तो यह विवेचन चले, उससे पहले यह जान लेना आवश्यक है कि संख्या क्षेत्रादिक ७ अनुयोगों का स्वरूप क्या है ? क्यों ये उपयोगी हैं और, यह न कहा जाय तो जानकारी में क्या बाधा होती है ? यह सब जानना है। तो उस विधि से सत्प्ररूपणा द्वारा वर्णन किया जाएगा।

संख्या प्ररूपणा का प्रयोजन · अब संख्या अनुयोग का वर्णन सुनो। प्रकरण है पदार्थों की जानकारी के उपाय का। जीव को समझना है, जीवों की संख्या कितनी है। मनुष्यों को जानना संख्या कितनी, अथवा किसी जीव को जानना, संख्या कितनी, उसकी जातियाँ कितनी, उसकी पर्यायें कितनी, शक्तियाँ कितनी। ये सब बातें संख्या द्वारा जब जानी जाती हैं तो विशेष परिचय होता है। लोक में भी देख लो। कोई थैले में फल लाया खरीदकर तो फल हैं इतनी ही जानकारी से सन्तोष तो नहीं करते। कितने फल लाये, यह जाने बिना चैन नहीं मानते। और, जब तक संख्या समझ में न आये

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तब तक स्पष्ट बोध भी नहीं होता। तो संख्या से परिचय करना भी कितना उपयोगी है? पदार्थों की जानकारी के लिये सत् की तरह संख्या भी उपयोगी है।

क्षणिकवादियों द्वारा संख्या को अवस्तु कहने का प्रयास यहाँ शंकाकार कहता है कि संख्या तो किसी चीज का नाम ही नहीं है। संख्या क्या चीज है? पदार्थ हैं दुनिया में। पदार्थों से संख्या न्यारी किसी ने देखा हो तो बताओ मान लो १० केले हैं, केले ये हैं और १० नाम की संख्या कहीं पास में पड़े हो, ऐसी अलग से पड़ी हुई संख्या किसी ने देखा है क्या? तो संख्या नाम की कोई चीज नहीं है, क्योंकि वह संख्या संख्यावान से जुदी चीज नहीं है, और लोगों को संख्या का परिचय भी नहीं हो सकता, क्योंकि इन्द्रिय द्वारा तो संख्या जानी नहीं जाती। आँखों से देखकर संख्या नहीं समझ में आती। यह क्षणिकवादी कह रहे हैं, उनका सिद्धान्त यह है कि पदार्थ को सही जानने वाला ज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान है, और यह प्रत्यक्ष ज्ञान निर्विकल्प है, याने जिस ज्ञान में एक पदार्थ जाना ही जाना जाये, उसके बारे में विकल्प न उठे तब तक वह प्रत्यक्ष ज्ञान है और प्रमाणभूत है और जहाँ ये विकल्प उठे कि यह चौकी है सो प्रत्यक्ष न रहा, वह सविकल्प ज्ञान बना और अप्रमाण है। क्षणिकवादी बौद्धों के यहाँ दो ज्ञान प्रमाण माने गये हैं—(१) प्रत्यक्ष, (२) अनुमान। सो प्रत्यक्ष तो निर्विकल्प है। बस सामान्यतया जानने में आया जिसे कहते हैं स्वलक्षण, पदार्थ का जो स्वलक्षण है, केवल वही समझ में आये, उसके बारे में यदि ज्यादह समझेंगे तो अप्रमाण है। जान लिया जो है सो। अब यदि कल्पना करोगे या बोलोगे—यह फर्श है, मन्दिर है, पुस्तक है, जीव है, वे सब सविकल्प ज्ञान है और अप्रमाण हैं। सौगत का मत है। तो प्रत्यक्ष ज्ञान ने तो एक पदार्थ को जनाया और उसके बाद होता है विकल्प ज्ञान। यह पदार्थ है तो उसको वे मानते अप्रमाण। सब देखो—निश्चय बिना तो कुछ काम न बनेगा, पर जो ज्ञान निश्चय करे वह तो है अप्रमाण और जिस ज्ञान में निश्चय न बने किन्तु जान ही भर जाये उसे माना जाता है प्रमाण। अच्छा, तो सविकल्प ज्ञान से कुछ जाना उसके बाद में फिर संख्या का ज्ञान होता है। यदि संख्या वास्तविक चीज होती तो जैसे निर्विकल्प प्रत्यक्ष द्वारा तत्त्व का बोध होता उसी समय संख्या का भी बोध होना चाहिये। तो संख्या का बोध तो होता नहीं, इसलिये संख्या कोई चीज नहीं, फिर सत् संख्या सूत्र में संख्या शब्द लिखना बेकार है, कुछ वस्तु ही नहीं है। आचार्य महाराज ने जो सूत्र बनाया है उसके शब्दों पर चर्चा चल रही है। संख्या शब्द लिखने की क्यों आवश्यकता है? सामान्यतया तो लोग जानते ही हैं कि संख्या बिना ज्ञान नहीं चलता, पर दार्शनिक विधि से जब चर्चा की जाती है तो पहले यह ही सिद्ध कर लो कि संख्या भी कुछ तत्त्व है। क्षणिकवादी कहते हैं कि संख्या नाम की कोई चीज नहीं है, क्योंकि इन्द्रिय से तो संख्या दिखती ही नहीं, क्योंकि इन्द्रिय प्रत्यक्ष का ज्ञान तो वस्तु का जो निज लक्षण है उसका प्रतिभास करा दे, इतना ही काम है प्रत्यक्ष का। निश्चय करा दे यह काम प्रत्यक्ष का नहीं। निश्चय कराने वाला विकल्प होता है। और दूसरी बात —जैसे चीज देखते हैं सामने ऐसे ही दो, तीन, चार आदिक संख्या तो प्रतिभास में नहीं आती। चीजें दिख गई हैं, अब उन चीजों के बारे में कल्पना कर बैठते हैं लोग कि ने दो हैं या तीन हैं? तो संख्या कोई वास्तविक वस्तु नहीं, क्योंकि प्रत्यक्ष द्वारा जाना नहीं जाता। वह पदार्थ है और यह संख्या पड़ी इस तरह भिन्न कोई जानता नहीं, तो प्रत्यक्ष से सिद्ध तो है नहीं संख्या, अनुमान से भी सिद्ध नहीं, अनुमान बनाने में हेतु कहना पड़ता है। जैसे यहाँ अग्नि है धुआँ होने से। अनुमान बन गया। चूँकि अग्नि के बिना धुआँ हो नहीं सकता और धुआँ पाया जा रहा है तो उससे अग्नि का ज्ञान हो गया। तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अनुमान बनाने में कोई हेतु देना पड़ता है, पर संख्या को सिद्ध करने में कोई हेतु है ही नहीं, जो कि प्रत्यक्ष से सिद्ध हो। हेतु भी वही ठीक रहता है जिसमें विवाद न हो। प्रत्यक्ष से सही मालूम हो तो संख्या को सिद्ध करने वाला अनुमान प्रमाण भी नहीं है। कोई कहे कि संख्या की सिद्धि आगम से हो जायेगी, आगम में लिखा है, शास्त्रों में लिखा है, उससे सिद्ध हो जायेगा कि संख्या कोई वस्तु है। तो शंकाकार उत्तर देता है कि आगम तो वही मानने योग्य है, जिसमें प्रत्यक्ष और अनुमान, ये दो ज्ञान चल सकते हों, अन्यथा जिस चाहे का शास्त्र प्रमाण मान लो। प्रत्यक्ष से सिद्ध हो, युक्ति से जाना जाये वे ही तो शास्त्र प्रमाण माने जायेंगे। यों तो मजहब वाले जिस मजहब में जो माना है वे अपनी भक्ति में कह देते हैं कि हमारे शास्त्र प्रमाण हैं, हमारे शास्त्र में यह लिखा है, मगर यह बात जनरल किसी से कही तो नहीं जा सकती। तो आगम बिना तब ही प्रमाण माना जायेगा जब आगम में बतायी हुई चीज प्रत्यक्ष में सिद्ध हो या अनुमान से सिद्ध हो। तो अनुमान प्रमाण भी संख्या को सिद्ध नहीं कर सकता। कोई कहे वाह ! सर्वज्ञ देव ने कहा है इसलिये आगम प्रमाण है। तो भाई तुम्हीं तो कह रहे सर्वज्ञ देव, दूसरे तो यों कहेंगे कि हम तो नहीं मानते कि हमारे हमारे शास्त्र बनाने वाले या मूल प्रणेता भगवान हैं। तो आगम से भी सिद्ध नहीं होता कि यह संख्या है। तो संख्या का जो ज्ञान किया जाता है वह निराश्रय है, किसी प्रमाण से सिद्ध नहीं। जब संख्या नामक कोई तत्त्व ही न रहा तो सत् संख्यादि सूत्र में संख्या अनुयोग बनाना बेकार है। ऐसा क्षणिकवादी शंकाकार कह रहा है।

संख्या की प्रतीति सिद्धता बताते हुये उक्त शंका का समाधान—अब उक्त शंका के समाधान में आचार्य देव बताते हैं कि यदि इस प्रकार युक्तियों से, कुयुक्तियों से तत्त्व का अपलाप करने लगोगे तो उपदेश का कोई नियम नहीं हो सकता। यह कह रहे हो कि संख्या कोई चीज ही नहीं है, तो भला यह बतलाओ कि अगर ५ केले रखे हैं तो जिस किसी से भी पूछो वे ५ कहते हैं। अगर संख्या कल्पना की ही चीज हो, वास्तविक न हो तो उन्हें ५० भी कह दें, कोई, उन्हें दो भी कह दे कोई, किन्तु नहीं अटपट जवाब आते। जितनी संख्या में चीजें रखीं उतनी संख्या में ही लोग बोलते हैं. इसका कारण यह है कि संख्या वास्तविक चीज है। दूसरी बात यह है कि संख्या को यदि कारणरहित मानोगे या किसी दूसरे की अपेक्षा करने वाला न मानोगे तो या तो सभी जगह सर्वदा सत्त्व हो जायेगा या असत्त्व हो जायेगा। संख्या वास्तविक चीज है उसका कारण भी है पदार्थ। और लोगों के ज्ञान में आ रहा है कि ये इतनी चीजें हैं। देखो संख्या बिना कोई प्रवृत्ति नहीं चलती। न व्यवहार चलेगा, न दुकान चलेगी, न खाने पीने की प्रवृत्ति बनेगी। कोई व्यवस्था ही नहीं बन सकती। संख्या तो होती ही है। दुनिया जानती है, संख्या निरालम्बन नहीं है। अर्थात् बेचारी नहीं है। उसका कोई सहारा नहीं होता। पदार्थ है और पदार्थ में संख्या भी होती है। यह एक है, ये दो हैं, ये इतने हैं, तो संख्या बताकर वस्तु तत्त्व का परिचय कराया जायेगा। जिस वस्तु का ज्ञान करना है वह कितनी हैं, उनकी कितनी जातियाँ हैं, उतनी कितनी शक्ति है, सभी प्रकार का परिचय संख्या बिना नहीं हो सकता है, इसलिए संख्या वास्तविक चीज है यदि शंकाकार कहे कि भाई संख्या वास्तविक तो नही है, इसका आश्रय भी नहीं है लेकिन चूँकि पहले जानता रहा, विकल्प कर रहा उस तरह से यह जानेगा कि यह संख्या है, पर संख्या वास्तविक चीज नहीं है। तो यह कहना भी शंकाकार का अटपट है। अगर यह कल्पना मात्र ही कारण हो संख्या का तो लोग अटपट क्यों नहीं बोल देते ५ को १० बोल दें, १० को ६ बोल दें। सभी का एक उत्तर आता है, इससे जाना जाता है कि संख्या नामक बात वास्तविक चीज है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आपेक्षिकी होने से संख्या की अवास्तविकता का अनियम—शंकाकार कहता है कि संख्या तो अपेक्षा से बनती है। जैसे दो आम रखे हैं तो २ कब कहेगा कोई। जब यह आम उसकी अपेक्षा रखता है, वह उसकी अपेक्षा रखे ऐसा ज्ञान बने तब ही तो दो कह सकेंगे। तो शंकाकार पुनः कहता है कि जो अपेक्षा करके ज्ञात हो वह तो कल्पना भर की चीज है, वास्तविक नहीं है। जैसे कोई पदार्थ सामने है और उसे हमने ज्ञान द्वारा जान लिया तो बस एक ही जान लिया, निरपेक्ष जान लिया, मगर संख्या को कोई निरपेक्ष दृष्टि से तो नहीं जानता। १० चीजें रखी हैं तो १० की अपेक्षा होती है तब १० संख्या बन पाती है। तो समाधान उसका यह है कि अपेक्षा होने से काल्पनिक हो जाये सो बात नहीं। जैसे यह आदमी मोटा है तो यह भी तो अपेक्षा से ही कहा जायेगा। दुबले आदमी के सामने यह मोटा है, मगर अपेक्षा से कहा जाने पर भी क्या मोटा है यह बात गलत है? मोटा तो है ही। काम भी नहीं कर सकता, दौड़ भी नहीं सकता। तो अपेक्षा होने से कोई बात असत्य हो जाये, मिथ्या हो जाये यह कहना युक्त नहीं है। तो ऐसे ही संख्या भी पदार्थों की अपेक्षा तो रखती है लेकिन अपेक्षा रखने के कारण यह मिथ्या नहीं हो जाता। वह अपेक्षा सत्य है। और, यदि असत्य होता तो उसमें लोगों के फिर अटपट बोध होते; तो शंकाकार को यह कहना कि चूँकि वह आपेक्षिक है, केवल कल्पना से उत्पन्न हुआ इसलिये संख्या कोई चीज नहीं। तो भाई क्या कल्पना में कोई चीज हो तो क्या वह झूठ होती है? अगर ऐसी कोरी कल्पना मात्र हो तो जो चीज नहीं है उसकी भी कल्पना करते हैं क्या वह झूठ है? जैसे खरगोश के सींग कहा, कल्पना रूप में वह भी मान लें तो कल्पना से कुछ बात सामने आती ही तो है। संख्या भी कल्पना से हुई, अपेक्षा से हुई फिर भी वास्तविक है, और इसी के आधार पर तत्त्व का बोध होता है। जीव किसे कहते हैं? जिसमें ज्ञान हो। उसके कितने भेद हैं (१) मुक्त, (२) संसारी। देखो भेदकरण किये बिना पदार्थों का परिचय भली भाँति नहीं होता, और यह होगा संख्या के आधार पर। तो संख्या अनुयोग जो आचार्य ने बताया है वह युक्ति सगत है। अभी तो यह अनुयोगों के स्वरूप का परिचय चल रहा है। जब इन अनुयोगों द्वारा जीवादिक तत्त्वों का परिचय चलेगा तब बहुत ही एक प्रसन्नता उत्पन्न करने वाला ज्ञान बनेगा। अभी तो उपायों की ही चर्चा चल रही है कि जिन-जिन उपायों से पदार्थ का ज्ञान होता वह उपाय सही है अथवा नहीं? अभी तक शंकाकार ने यह बात कहा कि जो चीज अपेक्षिक होती है वह मिथ्या है। उसका कोई रूप नहीं होता, उसकी कोई मुद्रा नहीं होती। वह असत् होता है। तो इस विषय में सब लोग प्रत्यक्ष सिद्ध जान रहे हैं कि अपेक्षा है और सत्य है। यह मोटा है यह दुबला है· यह लम्बा है, यह छोटा है, यह बहुत है, यह कम है, ये जो ज्ञान हो रहे हैं ये अपेक्षा ही तो हैं। और अपेक्षा होने से क्या ये मिथ्या हो रहे? सारी व्यवस्था समस्त लेन देन सब कुछ बात इस संख्या के आधार पर ही तो चल रही है संख्या अनुयोग द्वारा लौकिक परिचय होता है और संख्या अनुयोग द्वारा तत्त्वार्थ का भी परिचय होता है। संख्या अवास्तविक चीज नहीं है। तो अपेक्षा होने से संख्या गलत न होगी।

अस्पष्ट होने पर आपेक्षिक होने रूप साधन से भी संख्या की अवास्तविकता की असिद्धि—यदि शंकाकार यह कहे कि एक विशेशण और लगाकर हेतु देंगे। क्या कि जो स्पष्ट ज्ञान में न आए, और आपेक्षक हो वह मिथ्या है तो यह कथन भी संगत नहीं है संख्या के बारे में, क्योंकि संख्या का तो स्पष्ट ज्ञान हो रहा। लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई आदिक का स्पष्ट ज्ञान हो रहा, और आपेक्षक है और सत्य भी है। तो हेतु में जो विशेषता लगाया वह विशेषण ही असिद्ध होता है। कोई कहे कि यह सब

http://www.jainkosh.org

भ्रम है, तो भ्रम क्या है ? आँखों से देखना हो रहा है, प्रत्यक्ष से जान रहे हैं। यह भ्रम नहीं है, तो जैसे अनेक अपेक्षाओं से धर्म सही है उसी प्रकार संख्या नाम का अनुयोग भी सही है, जिस संख्या द्वारा वस्तुओं का परिचय किया जाएगा। यों तो अगर भाव आदिक को असत्य कह दिया जाय तो फिर अच्छा बतलाओ– जाना, आना ये किसी ने देखा क्या ? जाना क्या कहलाता ? आना क्या कहलाता ? हाथ पर धर कर कोई दिखा दे इसके मायने जाना, आना। और मनुष्य अपनी क्रियायें करता करता है और उस क्रिया से एक जगह से दूसरी जगह पहुंच जाता है उसे कहते हैं ना— यह जाना है, यह आना हुआ। तो स्पष्ठ कोई पदार्थों की भाँति सामने उसका सत्त्व नहीं बता सकता, मगर भाव में जो आया वह भी सद्भूत है, इसी प्रकार पदार्थ है यह और पदार्थों से न्यारी कोई संख्या नहीं धरी जा सकती, फिर भी संख्या अवास्तविक नहीं है। संख्या नाम का अनुयोग है और उसके द्वारा सर्व प्रकार का परिचय चलता है तो शंकाकार यह सिद्ध करना चाह रहा कि संख्या कोई वस्तु नहीं। संख्या नीरूप है याने उसकी मुद्रा, उसका स्वरूप कुछ नहीं है। इसके लिए हेतु दिया गया है। कि स्पष्ट प्रतिभासित नहीं है और आपेक्षिक है, तो यह तो इस प्रकार की हेतु है कि जैसे कोई हेतु दे कि वृक्ष में जान है। वृक्ष में जीव है: क्योंकि वृक्ष सोते हैं, ऐसे कोई कहे कि चूंकि वृक्ष नींद लेते हैं इसलिए सिद्ध होता है कि वृक्ष में चेतन है, बात कुछ कुछ फबेगी तो सही। कभी लगता है ऐसा कि वृक्ष भी नींद लिया करते हैं, रात्रि के समय जब सन्नाटा सा छाया रहता है तो लगता है कि जैसे आदमी सो जाता है तो वह मुरझाया सा ढीला ढाला सा रहता है, इस तरह से वृक्ष भी कभी मुरझाए से रहते हैं। तगड़े नहीं दिखते हैं तो लगता है कि हाँ सोते हैं। अच्छा तो सोने की बात गलत नहीं वृक्षों के भी निद्रादर्शनावरण कर्म का उदय है और सोते तो होंगे। जिसके आँखें हों वही सोए सो बात नहीं। जो कुछ भी हो, एक किसी प्रकार की थकान सी मिटाना हो तो उसको दूर करने के लिए जो शरीर का ढ़ीलापन करके विश्राम होता है वही तो निद्रा का रूप है, मगर सभी वृक्षों में ऐसा जाना भी नहीं जाता। इतना कोई ज्ञान में भी नहीं आता कि यह सो रहा है कि नहीं सो रहा तो ऐसे अटपट हेतुवों से जैसे साध्य को सिद्ध करना चाहते हैं ऐसे ही अटपट हेतु यह है कि संख्या नाम की कोई चीज नहीं है, क्योंकि संख्या का स्पष्ट बोध न होकर एक अपेक्षा में बोध होता है।

संख्या परिचय की स्पष्टता – सब लोग जासते हैं कि संख्या बराबर है। मन्दिर है, चार खम्भे हैं, इतने लोग बैठे हैं, इतनी प्रतिमा है, संख्या का वर्ताव हर जगह तो हो रहा है भले ही कोई प्रयोजन न होने से संख्या का ज्ञान न कर सकते हों। जैसे रोज मन्दिर की सीड़ियों से चढ़कर आप आप आते हैं ४० वर्ष से, पर पूछे कि बतलाओ जीने मे कितनी सीढ़ियाँ हैं तो कोई शायद ही बता पाएगा। रोज रोज तो चढ़कर आते है, उपयोग करते हैं, पर संख्या बतायें तो नहीं सकते। जब घर बनाया होगा तो नाप भी किया है। कितनी सीढ़ी बनेगी उतने पत्थर भी लाए होंगे उतनी मजदूरी भी दी होगी, पचासों वर्ष उस जीने पर आपको चढ़ते हो गए, पर आज पूछें कि बताओ कितनी सीढ़ियाँ है आपके जीने में तो कोई बता न पाएगा। तो प्रयोजन न होने से मत बता पावो। यह बात अलग है। मगर संख्या उनकी कुछ अवश्य है। और संख्या रूप से प्रभावित हैं वे सीढ़ियाँ तब ऊपर चढ़ सकें। सँख्या शून्य कोई पदार्थ नहीं है, एक हो तो, दो हो तो संख्या सब की है। यद्यपि गणितशास्त्र एक को संख्या में नहीं गिना। बच्चों को पढ़ाते हैं तब (१) को सिखाते तो हैं पर १ का नाम संख्या नहीं। संख्या शुरु होती है २ से। लेकिन १ उपचार से संख्या है। २ बने कैसे ? एक और एक मिलकर

http://sahjanandvarnishastra.org/

बने २। तो संख्या तो वास्तव में दो से शुरु होती है। मगर संख्या का आधार एक (१) है। इसलिए एक (१) को भी संख्या माना गया। संख्या बिना न परिचय होगा न व्यवहार होगा, इसलिए संख्या अनुयोग की बात कहना वास्तविक है। जब मिथ्यादृष्टि का वर्णन हो, कितने मिथ्यादृष्टि, कैसे मिथ्यादृष्टि, परिचय बनेगा। जीव के भीतरी भाव से बनेगा तो यह वस्तु के परिचय कराने के लिए जो अनुयोग बताए हैं आठ इससे ही समझ जावें कि जैन शासन कितना विशिष्ट अलौकिक तत्त्व ज्ञान बोध होता है। कैसा क्रम बताया है परिचय करने का। इस प्ररूपणाओं का परिचय कराते कराते कुछ यह अनुयोग का वर्णन जब समाप्त हो तब यह क्रमशः बताया जाएगा कि किस किस तरह से हम जीव का परिचय किया करते हैं। यहाँ यह समझना प्राकृतिक है कि संख्या वास्तविक है और सँख्या के द्वारा वस्तु का परिचय होता है।

नील पीतादि आकारों की तरह उन्हीं साधनों से संख्या की वास्तविकता की सिद्धि— संख्या तत्त्व का क्षणिकवादी यहाँ विरोध कर रहे हैं, किन्तु जिस मंतव्य को बताकर वे विरोध करते हैं उसी मतव्य से संख्या की सिद्धि होती है। बौद्धों ने निर्विकल्प प्रत्यक्ष ज्ञान को प्रमाण माना है। इस प्रत्यक्ष ज्ञान से कोई निर्णय नहीं रहता है किन्तु क्षणवर्ती पदार्थ का जो स्वलक्षण है एक उसका प्रतिभास मात्र मानता है इस निर्विकल्प प्रत्यक्ष ज्ञान के बाद सविकल्प ज्ञान होता है और सविकल्प ज्ञान से निश्चय होता है। फिर सविकल्प ज्ञान से निश्चय होने पर संख्या का विकल्प ज्ञान होता है तो जो संख्या का विकल्प ज्ञान हुआ उस विकल्प ज्ञान के द्वारा यह सिद्ध होता है कि इससे पहले संख्या का स्पष्ट ज्ञान हुआ था। जैसे स्वलक्षण का स्पष्ट ज्ञान हुआ तो फिर विकल्प ज्ञान ने विकल्प किया, याने निश्चय किया, तो ऐसे ही जब विकल्प ज्ञान ने संख्या का निश्चय किया तो सिद्ध होता है कि संख्या का ज्ञान पहले भी था। इस पर क्षणिकवादी कहते हैं कि बात वहाँ यह हुई कि मूल में तो निर्विकल्प ज्ञान था, पर उसके ही आधार पर मिथ्या वासनायें जगीं। और उस मिथ्या वासना के कारण अनेक वास्तविक पदार्थों का विकल्प ज्ञान हो जाता है। तो इसी तरह संख्या की जब अभिलाषा हुई तो इस समय वासना चूंकि विकल्प में लग रही थी तो अवास्तविक संख्या का भी विकल्प ज्ञान हुआ। इस शंका के समाधान में कहते है कि यदि ऐसे विकल्प ज्ञान से जानी हुई चीज को मिथ्यावासना का फल मानोगे तो जीना. भींट आदि का जो विकल्पज्ञान होता है फिर उसे भी मिथ्या कहना चाहिए। तो इस तरह फिर आपके प्रमाण के विषयभूत स्वलक्षण अर्थ में आपका ही माना गया नील पीत आदिक आकार वास्तविक न हो सकेगा। वह भी मिथ्या हो जाएगा। जैसे इन पदार्थों में आप संख्या को वास्तविक नहीं मान रहे इसी प्रकार नील पीत आदिक भी वास्तविक न रहेंगे। और जब पीत नील आकार रहा नहीं कुछ तो पदार्थ का स्वलक्षण स्वरूपरहित हो जाएगा। यदि क्षणिकवादी यह कहें कि इन्द्रिय से उत्पन्न हुआ जो सत्याज्ञान ई उसमें तो नीला पीला आकार जाना जा रहा है इसलिए वास्तविक है, तब फिर इसी तरह इन्द्रियजन्य ज्ञान में जो संख्या का प्रतिभास हो रहा है उसे फिर क्यों नहीं वास्तविक कहते हैं ?

इन्द्रिय प्रत्यक्ष से नीलादिक के ज्ञात होने की विधि के अनुरूप संख्या के ज्ञान की भी वास्तविकता— क्षणिकवादी यहाँ यह कहते हैं कि किसी किसी पुरुष के इन्द्रिय व्यापार के ही बाद उत्तरकाल में संख्या का निश्चय नहीं हो पाता। यदि संख्या वास्तविक होती तो इन्द्रिय व्यापार के

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बाद तुरन्त ही संख्या का ज्ञान होना चाहिए था। जैसे दूर से वृक्ष या तारे दिखते हैं तो दिख तो जाते जाते हैं। पर संख्या का निर्णय नहीं हो पाता कि ये कितने हैं। तो जब इन्द्रियजन्य ज्ञान में संख्या का प्रतिभास नहीं होता तो मालूम होता है कि संख्या नाम की चीज कोई वास्तविक नहीं है, उसके समाधान में बात यह कि जैसे शंकाकार ने कहा कि इन्द्रिय जन्य व्यापार के बाद शीघ्र ही संख्या का ज्ञान नहीं होता इसलिए संख्या अवास्तविक हैं। तो इसी तरह किसी किसी भोले मनुष्य को इन्द्रिय व्यापार के बाद तुरन्त ही काला पीला आदिक दिख तो जाते हैं, पर रंग का निश्चय नहीं हो पाता। तो पीत पीत आदिक प्रकाश भी मिथ्या मान लो। तो जैसे पीत आदिक पदार्थों को क्षणिकवादी वास्तविक मानते हैं उसी प्रकार पदार्थों की संख्या भी वास्तविक है। यहाँ यदि क्षणिकवादी यह कहें कि बार बार के अभ्यास और और भी जो कारण हैं वे जब पूर्ण हो जायें तो भोले मनुष्यों को अथवा चतुर हों उनके भी इन्द्रियज व्यापार के बाद पीले नीले आदिक आकार का निश्चय होता है, इसलिए पीत आदिक आकार वास्तविक हैं। तो समाधान में भी यही बात है कि जब अनेक बार अभ्यास हो गया और परिचय के बाद सामग्री पूर्ण हो गई तो किसी को भी संख्या का निश्चय हो जाता है। इस तरह संख्या को वास्तविक मान लेना चाहिए कि पदार्थों का निर्णय संख्या द्वारा होता है, अतः संख्या अनुयोग (प्ररूपणा) असिद्ध नहीं है। कदाचित संख्या के निषेध पर कमर ही कसकर कहें यह कि संख्या भी कोई चीज नहीं है और नील पीत आदिक आकार भी कोई चीज नहीं है तो मत रहो, सो नहीं कह सकते, क्योंकि जब पीत नील आदिक कुछ भी नहीं है तो ज्ञान कैसे बन सकेगा? तो जो लोगों को नील पीत आदिक आकार स्पष्ट प्रतिभासित होता है इसी प्रकार संख्या भी स्पष्ट प्रतिभासित होती है। सभी जीवों को जो तत्त्व व्यवस्था बनती है वह प्रतीति के अनुसार बनती है। तो प्रतीति सबको ही है बहिरंग में और अन्तरंग में कि वस्तुओं के नाना भेद हैं। तो जैसे नील पीत आदिक आकार सत्य हैं उसी प्रकार संख्या भी सत्य है। यदि प्रतीति का उल्लंघन करके कोई तत्त्व निर्णय माना जाय तो यह प्रमाणभूत नहीं हो सकता।

मोक्षमार्गरूप रत्नत्रयधर्म की सिद्धि के उपाय के प्रसंग में— संसार के संकटों से छूटने के लिए आत्म विश्वास, आत्मज्ञान और ज्ञानरूप आचरण इन तीनों की अतीव आवश्यकता है। इसी का नाम है सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, और सम्यक् चारित्र। इस रत्नत्रय धर्म के बिना जीव शान्त पवित्र कल्याणमय नहीं हो सकता। रत्नत्रय धर्म के उपाय से जिसने प्रभुता पायी है ऐसे प्रभु ने यह उपदेश किया है कि जगत के अन्य पदार्थ जो अचेतन हैं, भिन्न हैं। जिनसे कभी हित हो नहीं सकता, उनका लगाव, उनका मोह छोड़कर अपने आत्मा के परिचय में आवो, शान्ति मिलेगी, पवित्रता बनेगी। तो उस ही आत्मा के परिचय के लिए आवश्यकता है विश्व के सभी पदार्थों का प्रयोजनानुसार परिचय कर लेना। जैसे चावल शोधना है तो जिसको चावल से भिन्न चीज, कूड़ा, करकट, छिलका आदिक का ज्ञान न हो कि ये पर हैं। इनको हमें निकालना है और चावल का ज्ञान न हो, यह चावल हमें लेना है तब तक वह चावल क्या शोधेगा? ऐसे ही अब आत्मा को शोधना है तो इतना ज्ञान तो आवश्यक है कि ये सब अनात्मतत्त्व है, आत्मा या स्वयं स्व तो है। तो यह परिचय कराने के लिए यहाँ उपाय की चर्चा चल रही है कि किस उपाय से वस्तु का विशेष परिचय होता है। जो विस्तार से समझनेकी अभिलाषा रखते हैं ऐसे शिष्यों को प्रतिबोध देने के लिए उमास्वामी महाराज ने इस ८ वें सूत्र की रचना की। सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव, अल्प, बहु, इन ८ प्ररूपणाओं के द्वारा पदार्थ का परिचय होता है। सत् के मायने अस्तित्त्व है। पहले यह समझें कि वस्तु है जिसके बारे में इसका

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्यादह विचार बनाते हैं। इस सत् पिरूपणा का तो वर्णन हो चुका कि यह प्ररूपणा युक्त है अब संख्या के सम्बन्ध में विचार चल रहा है।

ज्ञान सामग्री के अनुसार नील पीतादि व संख्या का ज्ञान— एक दार्शनिक ने तो यों कहा कि संख्या कोई चीज नहीं, तो संख्या नाम की प्ररूपणा बनाना बेकार है। पदार्थों को जब हम देखते हैं तो पदार्थ ही दिखते हैं। २,४,६, नाम की संख्या नहीं दिखती। संख्या है ही नहीं कुछ वास्तविक केवल कल्पना में मान लिया तो काल्पनिक, बात तो सत्य नहीं होती। तो संख्या कोई चीज नहीं, संख्या न रखना चाहिए। उत्तर दिया था कुछ, जिसका संक्षेपतः समाधान यह है कि संख्या सबकी नीति में आ रही है। सब लोग जानते हैं कि ये २ है ये ४ हैं, ये ६ हैं और कोई उनमें अटपट ज्ञान भी नहीं रहता जैसे मानों ८ फल रखे हैं और कोई कहे १० हैं, कोई कहे १०० हैं, कोई कहे २ हैं, ऐसा तो नहीं है, सभी लोग ८ बोलते हैं तो संख्या काल्पनिक कैसे ? वह तो वास्तविक है। तब यह पूछा गया था कि अगर संख्या नाम की चीज वास्तविक है तो पदार्थ को देखते ही संख्या का ज्ञान क्यों नहीं हो जाता ? जैसे पदार्थ देखा तो रूप का ज्ञान हुआ, आकार का ज्ञान हुआ, इसी प्रकार पदार्थ के देखते ही संख्या का भी ज्ञान हो जाना चाहिए, पर होता नहीं। अगर संख्या वास्तविक है तो इसका कारण बतलाओ। तो सुनो इसका कारण। पहले तो यह प्रतीति सिद्ध बात का निश्चय करो कि जब १, २, ३, ४ आदिक संख्या में सर्व पदार्थों में वास्तविक हैं, वे हैं, विद्यमान हैं, अब उनका जो निर्णय है वह किस कारण से होता है। जैसे कि शंकाकार ने दो तत्त्व तो माना ही है, क्षणिकवादियों ने अन्तरंग में तो है क्षण क्षण मात्र का सम्वेदन ज्ञान और बाहर में हैं नीले पीले आदिक आकार। इससे अधिक क्षणिकवादी कुछ नहीं मानते। बहुत देर तक रहने वाला जीव हो ऐसा नहीं मानते किन्तु एक समय में जो ज्ञान है, जानन है, सम्वेदन है. चेतन है, बस वह उतना ही द्रव्य है, वह अगले क्षण नहीं रहता। अगले समय में दूसरा जीव बनता है और वह है सम्वेदन मात्र। जैसे जैन सिद्धान्त बताता है कि इसमें ज्ञान है, दर्शन है शक्ति है, श्रद्धा है, ऐसी कोई चीज नहीं। क्षणिकवादियों के यहाँ केवल एक ज्ञानमात्र सो भी एक क्षण का, यह तो है उनका अन्तरंग पदार्थ। और बहिरंग पदार्थ है यह नीलाकार पीताकार जैसे हम कहते हैं यह चटाई, यह कुछ नहीं है उनके यहाँ, यह भ्रम है। परमाणु भी भ्रम बताते हैं, किन्तु रूप अणु, रसअणु, गंध अणु, स्पर्श अणु, नीलाकार, पीताकार, बस उतना ही पदार्थ है। पर यह तो बतलाओ कि जब यह सब है तो इन सबका ज्ञान क्यों नहीं होता ? सम्वेदन है अन्तरंग चीज तो इसका अनुभव सबको क्यों नहीं हो जाता ? जैसे कि क्षणिकवादी संख्या के बारे में शंका कर रहे हैं कि यदि संख्या वास्तविक है, पदार्थों में पायी जाती है तो पदार्थ के देखते ही संख्या का ज्ञान क्यों नहीं होता ? ऐसे शंकाकार से पूछा जा रहा है कि यदि अन्तरंग का ज्ञान अणु और बहिरंग का रूपादिक अणु नीलाकार, पीताकार, ये चीजें वास्तविक हैं तो इन सबका तुम्हें ज्ञान क्यों नहीं हो जाता ? हमें भी तो सबका ज्ञान नहीं है। जो कुछ पढ़ते है, समझते हैं, दिमाग लगाते हैं, उनको थोड़ी कल्पना जगती है, सब तो ज्ञान होता ही नहीं किसी को, इसका क्या कारण है ? शंकाकार यदि यह उत्तर दे कि इसका कारण है ज्ञान होने का कारण सबको नही मिला, जिसको योग्यता है, जिसकी इन्द्रियाँ सही हैं, मन सही है जिन जिन साधनाओं से ज्ञान होता है वे साधन ठीक हैं, जैसे शक्ति वाले हैं उस तरह से ज्ञान होता है इसलिए सभी अन्तरंग का, सभी बहरंग का सबको ज्ञान नहीं होता। कुछ को होता है जिसको कि ज्ञान करने की शक्ति तो बस यह ही उत्तर तो संख्या का है। पदार्थ में सर्व संख्या होने पर भी सारी संख्याओं का

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ज्ञान सबको क्यों नहीं होता कि जिनकी जितनी योग्यता है उतना वह ज्ञान करता है। बच्चे को १, २, ३, ४ एक दहाई तक हो देर तक सिखा पाते हैं, आप तो आँखों से देखते ही झट ज्ञान कर लेते हैं ४, ६, १० आदि। कम पढ़े लिखे लोग एक एक चीज उठाकर ज्ञान करते हैं।

ज्ञानावरण के नियम के अनुसार प्रमेय व संख्यादि का ज्ञान— जिसकी जैसी योग्यता है वह अपने ज्ञानावरण के क्षयोपशम के अनुसार संख्या का ज्ञान कर पाता है, पर है संख्या वास्तविक, अन्यथा बताओ समस्त वस्तुओं में प्रमेयत्व धर्म है कि नहीं। सर्व पदार्थों में ६ साधारण गुण होते हैं— (१) अस्तित्व, (२) वस्तुत्व, (३) द्रव्यत्त्व, (४) अगुरुलघुत्व, (५) प्रदेशवत्व, (६) प्रमेयत्व, याने पदार्थ है, पदार्थ अपने स्वरूप से है, पररूप से नहीं है, जैसे चौकी चौकी है, पुस्तक वगैरह नहीं और यह निरंतर परिणमती रहती है। अन्यथा सैकड़ों वर्ष गुजर जाएं चौकी पुरानी ही नहीं हो सकती। परिणमती है तब ही तो जीर्ण होती है, और यह अपने में ही परिणमती है दूसरे में नहीं, जै चौकी अपने अपने में ही परिणमी, पुस्तक में नहीं। जो बदल होगी वह खुद की खुद में होगी। एक दूसरे की बदल नहीं करता और प्रदेश भी सब में है और प्रमेय है सब अर्थात ज्ञान के विषय में बनते हैं। तो देखो सर्व पदार्थों में प्रमेयत्व गुण है कि ज्ञान को जान जाए। अर्थात शंकाकार जिस संख्या को सिद्ध कर रहा है वह संख्या अगर पदार्थों में तो सबको संख्या का ज्ञान क्यों नहीं हो जाता पदार्थ देखते ही? तो हम पूछते हैं कि जब विश्व के समस्त पदार्थों में प्रमेयत्व धर्म है तो सभी छद्मस्थों को सभी का ज्ञान क्यों नहीं हो जाता? कारण बतावेंगे अपनी अपनी योग्यता। जिस ज्ञान में जितनी योग्यता है, जितना ज्ञानावरण का क्षयोदशम है उतना ही तो जानेगा। भले ही सारे पदार्थ प्रमेय हैं, ज्ञान में जानने योग्य हैं, फिर भी जैसी बुद्धि है, जैसा ज्ञानावरण का क्षयोपशम है उसको उतना ज्ञान होता है बस तो यह ही बात संख्या के बारे में है। पदार्थों की संख्या है मगर जिसकी जितनी योग्यता है वह अपनी योग्यता से उतना निश्चय कर पाता है। कोई कहे कि नहीं, यह तो जानने की जो सामग्री है इन्द्रिय वगैरह वह सामग्री ही पदार्थ के जानने का कारण है, तो यह भी संगत नहीं। किसी को इन्द्रियाँ सब मिलीं और ज्ञानावरण का क्षयोपशम नहीं, याने जानने की योग्यता नहीं, तो इन्द्रिय होने पर भी नहीं जाना, और जिसको योग्यता है, इन्द्रियाँ नहीं है, जैसे वे प्रभु सारे विश्व को जानते हैं, तो जानने का कारण तो अपने ज्ञान की योग्यता है, जिस योग्यता के द्वारा वह उन पदार्थों को जान सकता है, तो इस तरह यहाँ तक यह सिद्ध हुआ कि इन सभी पदार्थों में १, २, ३, ४ आदि सब संख्याएं समायी हुई हैं, जिसकी जितनी योग्यता है उतना वह जानता है।

अनेक संख्याओं का पदार्थ में रहने का अविरोध - योग्यतानुसार संख्याज्ञान की बात सुनकर आप लोगों के चित्त में बात आ तो रही होगी कि पदार्थ में कहाँ २, ३, ४ आदिक कैसे पड़े हैं? तो इसका समाधान अभी होगा। इससे पहले एक समस्या और सुलझा लें। एक जिज्ञासु एक समस्या यह रख रहा है कि यह कहा जा रहा कि प्रत्येक पदार्थ में १, २, ३, ४ आदिक सब संख्याएँ बसी हुई हैं, तो भला यह बतलाओ कि एक पदार्थ में एक भी पड़ा हो, दो भी पड़े हों, तीन भी पड़े हों, ये सब कैसे पड़ सकते हैं? ये तो परस्पर विरोधी हैं। जो एक हैं सो दो नहीं, जो २ हैं सो तीन नहीं। तो जब यह संख्या परस्पर में विरोधी है तो यह एक पदार्थ में कैसे रह सकती है? तो सामान्यतया उत्तर तो यह है कि भाई ऐसी सबको प्रतीति हो रही है। एक चीज को देखते ही एक जानते, दो चीजें रखी हों

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो दो जान लेते, चार चीजें पड़ी हों तो चार जान लेते। तो जब ऐसी सबको प्रतीति बन रही है तो उसमें भी संदेह क्यों ? संख्या बराबर पदार्थों में जानी जा रही है। तो संख्या नामक धर्म पदार्थ में पड़ा हुआ है। अब विरोध की बात तो विरोध में कुछ धर्म है ऐसा जिसका विरोध है। जैसे मूर्तपना, अमूर्तपना, जो पदार्थ मूर्त हैं उनमें अमूर्तत्त्व नहीं रहता, विरोध है। अगर कोई यह ही कहने लगे कि परमाणु में रूप है, तो रस कैसे रह जायेगा ? गंध कैसे रह जायेगा ? अरे वे एक वस्तु में सब रह सकते हैं। एक वस्तु में नित्यपना अनित्यपना कैसे रह जायेगा ? जब उनके समझने की दृष्टियाँ हैं तो उन दृष्टियों के द्वारा वे सब रह सकते हैं। तो यहाँ पदार्थों में जो १, २, ३ आदिक संख्याएँ पड़ी हुई हैं, जो दृष्टियाँ हैं, एक पदार्थ है केवल दृष्टि में वही मात्र, तो १ संख्या वहाँ मिलेगी और दो (२) पदार्थ सामने हों तो इनकी अपेक्षा दो (२) हो गये। तीन (३) पड़े हैं तो उन सबकी परस्पर अपेक्षा करने से तीन (३) हो गये, १० पड़े हैं तो १० की परस्पर अपेक्षा करने से वे १० हो गये। शंकाकार तो यही कहता कि जिस दृष्टि से एक (१) है उसी दृष्टि से दो (२) नहीं रह सकते। तो स्याद्वादी भी मानते हैं। जिस दृष्टि से पदार्थ एक (१) है निरपेक्ष दृष्टि से तो निरपेक्ष दृष्टि से २, ४ नहीं रह सकते। सापेक्ष दृष्टि से २, ४ संख्याएँ रहती हैं, इसलिये पदार्थ में संख्या मानने का विरोध नहीं है। यह सब चर्चा इस बात पर चल रही है कि सत् संख्यादि सूत्र में संख्या नाम का एक अनुयोग रखा कि संख्या के द्वारा पदार्थ का ज्ञान हो गया। अभी संख्या प्ररूपणा द्वारा तत्त्वों के ज्ञान की बात नहीं चल रही, किन्तु इसी शब्द की सिद्धि की बात चल रही है। कुछ दिनों बाद इन प्ररूपणाओं की उपयोगिता की सिद्धि होने पर फिर निरूपण चलेगा कि कैसे पदार्थ में सत् संख्या आदिक घटित होते हैं और इसके द्वारा पदार्थों का किस-किस प्रकार से विशेष विशेष बोध होता है, यह बड़े विस्तार की चीज है, चलेगी। अभी तो यहाँ इतना ही कहा जा रहा कि संख्या नाम की प्ररूपणा जो एक उपायभूत बताया है आचार्य देव ने वह बिल्कुल सत्य है। इसमें किसी भी दार्शनिक को विरोध की गुंजाइश नहीं है। तो यहाँ तक इतनी बात सिद्ध हुई कि पदार्थ हैं सब। निरपेक्ष विधि से सभी पदार्थ एक-एक हैं, दूसरे को साथ न लेवें तो सब एक ही एक हैं। और सापेक्ष विधि से २, ४, ६ करोड़, संख्यात, असंख्यात, अनन्त, अनन्तानन्त यह सब गणना बन जाती है।

नयविभाग से जानने पर दार्शनिक अविरोध का दर्शन यहाँ यह समझना कि वस्तु के एक निरपेक्ष दृष्टि से एकत्व है तो सापेक्ष दृष्टि से २, ३, ४ आदिक संख्या है जैसे कहते हैं ना कि जीव नित्य भी है, अनित्य भी है, तो जिस दृष्टि से नित्य है उसी दृष्टि से कोई अनित्य कहने लगे तो विरोध है, पर नित्य बताने की दृष्टि अन्य है, अनित्य बताने की दृष्टि अन्य है। तो वहाँ कोई विरोध नहीं। जीव सदा काल रहता है द्रव्यदृष्टि से। याने जीव की जो सत्ता है वह कभी मिट नहीं सकती। तो यों द्रव्यदृष्टि से जीव नित्य है और पर्याय दृष्टि से अनित्य है। आज मनुष्य हैं, मरकर कल देव या और कुछ बने तो इस तरह जीव की अवस्थाएँ बदलती हैं। एक ही भव में आज हमारे सुन्दर विचार हैं, घण्टा भर बाद और विचार बन जायेंगे, अभी कुछ कषाय है, फिर और कषाय बन जायेगी। तो इस तरह जीव की जो अवस्थाओं का परिणमन है उस पर्याय दृष्टि से जीव अनित्य है। तो जैसे यहाँ एक ही पदार्थ में दृष्टि भेद से नित्य और अनित्य दो द्रव्य विरुद्ध सिद्ध हो जाते हैं इसी प्रकार इन पदार्थों में निरपेक्ष दृष्टि और सापेक्ष दृष्टि से एकत्व द्वित्व आदिक समस्त संख्याएँ भी सिद्ध हो जाती हैं। इतना सिद्ध करने के बाद पदार्थ में संख्या का विरोध दूर हो जाता है। उनसे पूछा जा रहा है— देखिये—

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

थोड़ा ध्यान लगाकर सुनो, बात वही चल रही है जिसको आप रोज रोज या ७वें दिन या दस लक्षण के दिनों में सुनते हैं, पढ़ते हैं, याने तत्त्वार्थ सूत्र, मोक्ष शास्त्र, पढ़ने को तो पढ़ जाते हैं, सत् संख्या आदिक सभी सूत्र पढ़ जाते हैं पर यह कितना एक तत्त्वज्ञान कराने वाला महान् ग्रंथ है। इसकी खबर तब पड़ती है जब एक-एक शब्द पर दृष्टि देते हैं। घर की बात घर में कह लेना कुछ आसान होता है। समाज की कोई बात रखना उससे कठिन होता है। देश के नाते से देश में कोई बात रखना पास करने के लिये अधिक कठिन होता है और सारे विश्व में अपने देश की बात रखना, संयुक्त राष्ट्र संघ में अपनी बात रखना बहुत कठिन पड़ता है, अर्थात् आचार्य संतों का जो पुरुषार्थ है वह सबके उपकार के लिये है, निष्पक्ष है, उनकी यह दृष्टि नहीं है कि मैं केवल जैनियों को समझाने के लिये ग्रंथ बना रहा हूँ। मानव मात्र के उपकार के लिये ग्रन्थ रचना है। जो ज्ञानी पुरुष होते हैं उनके ममत्व नहीं है, पर्याय में आत्मबुद्धि नहीं है, उन्होंने अपने आत्मा के सहज स्वरूप का अनुभव किया और विपुल अभ्यास किया, ऐसे ज्ञानी पुरुषों को जगत के प्रति आत्मा का नाता तो रहता है, पर यह जैन हैं, ये देश के हैं ऐसा नाता उनके चित्त में नहीं रहता। भले ही लाभ उठाने वाले देश के होते हैं और उस सम्प्रदाय के होते हैं क्योंकि उनकी संख्या समीप है, निकट आते हैं, पहला अभ्यास बना हुआ है, मगर ज्ञानी आचार्य सन्तों का उपकार तो आत्मा मात्र के लिये है। तो अनेक प्रकार के दार्शनिक विद्वान भी है देश में, जब सबके उपकार के लिये ये ग्रंथ हैं तो उनको भी हक है कि आचार्य महाराज से पूछें कि यह शब्द ठीक नहीं, यह कैसे है, इसकी सिद्धि बताओ। तो जब आचार्य सन्त प्ररूपणा के वर्णन में संख्या अनुयोग का वर्णन कर रहे हैं, सूत्र में शब्द रख रहे हैं तो उसके प्रति कितनी आपत्ति हो सकती है और उसमें क्या समाधान हो सकता वह भी एक ज्ञातव्य विषय है।

संक्षेप और विस्तार से परिचय पाने का उपयोग—भैया ! थोड़ा संक्षेप में समझना बुरा नहीं है, मगर समझ न होकर संक्षेप में समझना बनता नहीं। संक्षेप में हो और कुछ जानना नहीं तो उनका जानना न बनेगा, और विस्तार से जानना सबके लिये लाभदायक है। इसलिये ग्रन्थों में जो वर्णन है वह विस्तार पूर्वक कहने की पद्धति से वर्णन होता है, ऐसे ही एक बार एक दुकान के कर्मचारियों में (कुलियों में) कुछ मन मोटाव सा हो गया कि हम तो १००-२०० बोरे रोज उठाते हैं और हमें केवल ३०-४० रुपये ही माहवार वेतन मिलती है और यह मुनीम जो केवल बैठा-बैठा ही कुछ हाथ सिर हिला देता है उसे कोई १५० रुपये माहवार मिलते हैं तो यह तो मालिक हमारे साथ अन्याय कर रहा है। यों कुलियों को ईर्ष्या हो गई और अपने मालिक से इस बात की शिकायत कर दी। तो उस मालिक ने तुरन्त उन्हें कुछ उत्तर तो न दिया पर एक दो दिन बाद ही जब कि कोई बारात उस नगर के पास से निकल रही थी तो वहाँ उस मालिक ने सर्वप्रथम एक दो कुलियों को भेजा कि जाओ मालूम करके आवो कि वह भीड़ भाड़ कैसी दिख रही है ? मामला क्या ? तो वे गये, वहाँ जाकर मालूम किया—क्या है ? ·· बारात। बस वापिस लौट आये और अपने मालिक से बता दिया कि यह कोई बारात जा रही है। बाद में उस मालिक ने अपने मुनीम से कहा—भाई देखना वह क्या है ? वह मुनीम पहुँचा तो वहाँ पूछ लिया कि क्या है। पता चला कि बारात है, फिर वह किसकी बारात है, कहाँ से जा रही है, कहाँ जा रही है, कितने लोग हैं, कैसे कैसे लोग हैं आदिक सभी बातों की सारी जानकारी कर लिया तब मालिक के पास जाकर सारा हाल बताया। तो वहाँ मालिक उन कुलियों से कहता है कि देखो—हमने उतने ही शब्द तुमसे कहा था उतने ही मुनीम से कहा था, पर तुमने कितना सा उत्तर दिया और

http://sahjanandvarnishastra.org/

इस मुनीम ने कितना बड़ा उत्तर दिया। तो तुममें और मुनीम में बुद्धि का अन्तर है। तो समझदार को संक्षेप में भी कहा जाता तो वहाँ दोष नहीं है, मगर जो जानकार नहीं उनको सामान्यतया कह दिया जाये—सत् संख्या क्षेत्र स्पर्शनादिक से वस्तु का परिचय होता है, तो पचासों बर्ष हो गये इस तरह पढ़ते पढ़ते पर उसमें परिचय क्या पाया ? और जो समझदार हैं उनको संक्षेप भी पूरा का पूरा भाव चित्त में ला देता है। जैसे कि जिसने व्यवहारनय से सब कुछ वर्णन समझा उसे निश्चयनय क्या समझा सकेगा ? हालाकि निश्चय की बात बहुत थोड़ी है, एक वाक्य में है, अति संक्षेप में है और व्यवहारनय का बहुत बड़ा विस्तार है, सारा निर्णय घटनाएँ, निमित्त नैमित्तिक भाव सारी बातों का निर्णय व्यवहार से होता है, मगर जिसने व्यवहारनय से कुछ समझा नहीं है उसे निश्चयनय की चीज क्या समझा सकती ? जैसे आत्मा के बारे में निश्चयनय कहता है - आत्मा अखण्ड है, आत्मा अखण्ड है, बस इससे ज्यादह कुछ न बोले, अगर उससे ज्यादह बोला, तो उसमें विशेषण बन गया, व्यवहार बन गया और व्यनहारनय का विषय सारे ग्रन्थ हैं। जीव काण्ड, कर्मकाण्ड आदि के अनेक ग्रंथ हैं। तो जिसने व्यवहारनय से इन सब बातों का परिचय नहीं पाया उसको अखण्ड आत्मा, अखण्ड आत्मा यों २४ घण्टा यही एक जाप करे तो उससे दुनिया के लोग कुछ समझेंगे क्या ? अरे इसको समझने के लिये तो व्यवहारनय से विस्तारपूर्वक समझाना पड़ेगा। जो जानता है, देखता है, विश्व करता है, जहाँ विकल्प होते हैं, सुख दु:ख होते हैं वह आत्मा है। फिर उसका और विस्तार बनाकर समझावें। तो विस्तार पूर्वक तत्त्व का परिचय करने की आवश्यकता होती है। तो यहाँ वही परिचय कराया जा रहा है।

विपुल परिचय के परिचय के लिये बड़ी भूमिका की नैसर्गिकता—जो परिचय बहुत विस्तार से हो। इस परिचय की भूमिका भी बहुत विस्तृत बन जाती है। अथवा यों कहो कि समस्त मोक्ष शास्त्र में प्रथम चार सूत्रों को छोड़ कर और दूसरी तीसरी आदिक समस्त ६ अध्यायों को छोड़कर जितने भी सूत्र आये हैं प्रथम अध्याय में ये सब भूमिका रूप है, इसमें इनका परिचय नहीं कराया गया। केवल पदार्थों को जानने का क्या उपाय है ? उस उपाय के बारे में वर्णन चल रहा है। तो जैसे कोई २०-५० लाख की लागत से कारखाना खोले तो उसमें बड़े लाभ की आशा ही तो है। अगर आज कारखाना खोला तो कल से ही लाभ मिलने लगेगा। ८-१० वर्ष तक तो लाभ मिलने की आशा करता नहीं, बस उसके बनाने बनाने में ही लगा रहता है, उसके लिये सारा खर्च करता रहता है। तो जैसे जो बहुत बड़े लाभ का फर्म खोलता हो उसे धैर्य रहता है बहुत दिनों तक कि उसमें चार-छ: वर्ष लाभ कुछ नहीं मिलने का, उसमें सारा खर्च करता है फिर भी वह समझता है कि मैं लाभ का ही काम कर रहा हूँ, ऐसे ही जीवादिक पदार्थों का विस्तृत परिचय पाने का जिसने संकल्प किया है—मैं बहुत बहुत पदार्थों का, चर्चाओं का परिचय करूँगा। तो ऐसे विशाल परिचय का जिसके संकल्प है वह ऐसे परिचय के उपाय आदिक ७ बातों को फिट करने में, सही करने में यदि कुछ समय लगाता है और बहुत देर तक भी समझता है तो वह जानता है कि हम नुकसान में नहीं हैं। हम काम परिचय का ही कर रहे हैं। तो उसी तरह हमारा परिचय के उपायों का ही काम बहुत बड़ा है, जिसमें संख्या पिरूपणा नाम की यह चीज चल रही है। और यहाँ तक यह सिद्ध किया कि जैसे पदार्थों के अस्तित्त्व के द्वारा ज्ञान होता ऐसे ही पदार्थों का संख्या के द्वारा भी ज्ञान होता कि ये कितने हैं। पहले ७वें सूत्र में विधान शब्द आया था और यहाँ संख्या शब्द आ रहा, विधान का भी अर्थ था प्रकार, ये कितने प्रकार के हैं और संख्या में भी कितनी चीजें बतला रहे ? तो इसमें अन्तर कुछ है कि नहीं ? अन्तर है। विधान

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

में तो ७-७ जाति का बोध होता है। कितनी प्रकार के हैं, कितनी जाति हैं, कितने किस्म के हैं। संख्या में जाति की बात नहीं है, किस्म की बात नहीं है। केवल गिनती की है। जैसे पूछा जाये कि मनुष्य कितने हैं ? असंख्यात। तो इस तरह से गिनती मात्र को ही लेकर यह संख्या प्ररूपणा तत्त्वों का परिचय करायेगी।

सत् संख्यादि सूत्र के संख्या प्ररूपणा की सिद्धि के प्रसंग में प्रसक्त विषय पर एक विहंगम दृष्टि – सत् संख्यादि सूत्र में यह बताया गया है कि पदार्थ का परिचय प्ररूपणाओं द्वारा होगा। यह पदार्थ है यह सत् है। यह पदार्थ कितना है, यह उसकी संख्या (गिनती) है, फिर वह पदार्थ रहता कहाँ है यह क्षेत्र। पदार्थ पहले कहाँ तक रहा था, किसी भी परिस्थिति में कहाँ तक रह सकता है ? यह है स्पर्शन, और कब तक टिकेगा वह पदार्थ, यह है काल। और, पदार्थ की यह शकल न रहे, दूसरी शकल हो जाये, पुरानी शक्ल फिर आये, तो ऐसा बीच में अन्तर कितना पड़ेगा, यह है अन्तर। और, उसमें कौन सा भाव है यह हुआ भाव, और वह कहाँ कम है, उससे कौन कम है, कौन ज्यादह है, इस तरह तरनमता बताना यह है अल्प बहुत्व। तो लौकिक वस्तु हो या तात्त्विक अलौकिक वस्तु हो, सबका परिचय इन ८ प्ररूपणाओं से होगा इसमें सत् प्ररूपणा का अर्थ पहले बता दिया था, अब संख्या प्ररूपणा के विषय में चर्चा चल रही है। किसी पदार्थ का परिचय करना हो तो उसकी गिनती भी बताओ कि वे कितने हैं ? सम्यक्त्व का परिचय करना है ता बताओ सम्यक्त्व कितने हैं आदिक वस्तुओं का संख्या द्वारा परिचय होता है। तो उस संख्या के सम्बन्ध में अनेक दार्शनिक मिलकर एक निर्णय बना रहे हैं, चर्चा कर रहे हैं कि संख्या कोई चीज है क्या ? कहाँ रहता है ? किसका स्वरूप है। तो शंकाकार एक यह कह रहा था कि संख्या नाम की चीज कुछ होती ही नहीं, क्योंकि जैसे हम पदार्थ को देखते हैं तो देखने के साथ उसका रूप तो मालूम पड़ता है, चखते हैं तो रस मालूम पड़ता है पर संख्या तो नहीं मालूम पड़ती, उसका उत्तर दे दिया गया कि पदार्थों में संख्या भी बनी हुई है, हम एक पदार्थ को देखते हैं तो वह अकेला एक नजर में आता, इतना तो निश्चित ही है, पर जब हम दूसरे की अपेक्षा करके निरखते हैं तो दो नजर आते हैं। जितना पदार्थों की अपेक्षा करके हम देखेंगे उतनी ही संख्या दृष्टि में आयेगी। तो पदार्थों में ये सारी संख्यायें बसी हुई हैं। एक ही पदार्थ है, उसमें १ भी है, २, ३, ४ भी है, ५० भी है, यह कब जाना ? अन्य पदार्थ की अपेक्षा रखकर जाना। जिस पर शंकाकार यह कह रहा है कि यह तो बतलाओ एक पदार्थ में जो १, २, ३, ४ आदिक अनेक संख्यायें पड़ी हैं तो यह कैसे हो सकता कि भिन्न-भिन्न संख्यायें एक पदार्थ में रह जायें। इनका तो परस्पर में विरोध है। जहाँ एकपना है वहाँ दो पना कैसे, तीनपना कैसे ? उसका भी उत्तर दिया गया कि एक दृष्टि से ही हम सारी संख्यायें नहीं मानते, किन्तु एक निरपेक्ष देखकर एक (१) है। दूसरे की अपेक्षा से देखते हैं तो दो (२) है, और अन्य दो (२) की अपेक्षा रखकर देखते तो तीन (३) है, इस तरह अन्य अन्य अपेक्षाओं से संख्याएँ बनती हैं। तो एक ही पदार्थ में सभी संख्याओं का समावेश है।

सत् का विरोध क्या ? असत् का विरोध क्या – संख्याओं के परस्पर विरोध की बात कह रहे थे। तो उसी के उत्तर में एक समाधान यह दिया जा रहा है कि जो तुम विरोध की बात कह रहे हो, एक पदार्थ में अनेक प्रकार की संख्याएँ नहीं रह सकतीं। उनका विरोध है तो यह बतलाओ कि एक जगह रहते हुये का विरोध है या न रहते हुये का विरोध है। याने सत् का विरोध है या असत् का विरोध है ? याने उस पदार्थ में ये संख्यायें रहकर विरोध कर रही हैं या न रहकर विरोध कर रही हैं ?

http://sahjanandvarnishastra.org/

एक यह दार्शनिक नीति है। उत्तर दो कि अगर कहो कि वे संख्याएँ पदार्थ में रहकर विरोध कर रहीं तो रह तो रहीं हैं, विरोध का फिर क्या मतलब ? और अगर कहो कि न रहकर विरोध कर रही तो जो है नहीं वह विरोध क्या करेगा ? कछुओं के रोमों का विरोध क्या ? खरगोश के सींग की लड़ाई क्या ? जो है ही नहीं उनका विरोध क्या ? जो है तो अब विरोध क्या रहा ? तो सत् माने तो विरोध नहीं, असत् माने तो विरोध नहीं, इसका उत्तर न बन पड़े, ऐसी युक्तियों से भी सिद्ध करते हैं। तो तात्पर्य यह है कि २, ३, ४ आदिक संख्याओं का विरोध नहीं है। विरोध होता है उसका जो विरोध लायक है जैसे मूर्तपना और अमूर्तपना। अब यहाँ शंकाकार यह कहता, बात क्या चल रही थी कि पदार्थ का परिचय संख्या द्वारा होता है और पदार्थों में संख्या है तब तो परिचय चल रहा है।

शक्ति की अपेक्षा से सर्वार्थात्मकता व सर्वसंख्यात्मकता को दर्शन की भी सम्भवता – अब शंकाकार यह कहा रह कि एक ही पदार्थ में सारी संख्यायें तुम बतला रहे हो तो जैसे एक पदार्थ सर्व-संख्याओं रूप वन गया इसी प्रकार एक पदार्थ सर्व पदार्थों रूप क्यों न बन जाये ? जब एक ही पदार्थ अनेक संख्याओं में तन्मय है तो एक ही पदार्थ सारे पदार्थों से तन्मय हो जाये। अगर कहो कि सारे पदार्थों से कैसे तन्मय हो ? वह भिन्न है तो ऐसे ही एक पदार्थ सारी संख्याओं से कैसे तन्मय होवे ? एक यह प्रश्न है। उसके समाधान में दो दृष्टियों से सोचना है, पहली बात तो यह है कि शंकाकार की ही बात को सिद्ध कर दो। हाँ एक पदार्थ सर्व पदार्थ रूप है। कैसे ? किसी नाते से। जैसे इन पदार्थों में सत्त्व गुण है, अस्तित्त्व गुण है तो अस्तित्त्व सभी पदार्थों में है। तो अस्तित्त्व के नाते यह और सब पदार्थ एक हो गये। क्या विरोध ? हाँ यदि व्यक्ति रूप से एक कहे तो विरोध है। शक्ति रूप से एक कहे तो विरोध नहीं। जिस पदार्थ में जितने कार्य होते हैं उस पदार्थ में उतनी शक्तियाँ मानी गई हैं। तो शक्तियों के रूप से देखो तो समस्त एक चीज है। सत्त्व की दृष्टि से एक है और व्यक्ति की दृष्टि से सर्व भिन्न-भिन्न हैं, शक्ति और व्यक्ति में अन्तर होता है, एक गरम जल और एक ठण्डा जल, बतलाओ ये दोनों जल भिन्न-भिन्न चीज हैं या एक ही बात है ? तो जब जल के स्वभाव को देखकर कहेंगे तो उत्तर होगा कि एक ही बात है, यह भी जल वह भी जल, और जब वर्तमान पर्याय को देखकर कहेंगे तो वे दोनों न्यारी-न्यारी चीजें हैं, अगर व्यक्ति रूप से भी एक हो जाये तो फिर यह भेद क्यों पड़ता कि गर्मी के दिनों में यह पानी नहीं पीना, ठण्डा पानी पीना। तो व्यक्ति से पर्याय से तो विरोध है पदार्थों का परस्पर में मगर शक्तियों की अपेक्षा कुछ शक्तियों से विरोध है कुछ से नहीं है। जो असाधारण शक्तियाँ हैं उनसे साधारण द्रव्यों का विरोध है, पर व्यक्ति की अपेक्षा तो प्रत्येक पदार्थ का परस्पर में विरोध है, ऐसे ही पदार्थों में संख्याएँ पायी जाती हैं तो शक्तियों की अपेक्षा तो एक ही पदार्थ सर्व संख्या रूप देखा जा सकता है। जैसे एक चुटकला है कि एक पुरुष ने चार अंगुल की लकड़ी रख दी, एक तिनका रख दिया और लोगों से कहा—देखो उसे बिना तोड़े ही कोई छोटा कर दे। उसकी इस बात को सुनकर सभी लोग हैरान हो गये। यह कैसे समस्या हल हो ? तो एक बुद्धिमान की समझ में आ गया, झट कोई ६, ७ अंगुल का तिनका ले आया, उस चार अंगुल के तिनके के पास रख दिया और कहा देखो यह तिनका (चार अंगुल वाला तिनका) छोटा है या नहीं ? सभी ने कहा - हाँ छोटा है। देखो उसने तोड़ा तो नहीं, फिर भी छोटा हो गया। यह है आपेक्षिक तत्त्व। तो प्रत्येक पदार्थ में छोटे की भी शक्ति है और बड़े की भी। कोई कहे कि इस चार अंगुल के तिनके को बड़ा बना दो तो कोई कैसे बड़ा बना दे ? ......झट कोई उससे छोटा तिनका पास में रख दे तो वह बड़ा बन जायेगा। वही

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तिनका अपेक्षा से छोटेपन की भी बात रखता है, बड़पन की भी बात रखता है। तो भक्ति रूप से तो दोनों बातें पायी गईं मगर व्यक्ति रूप में जब बड़ा सामने है तब छोटा ही है, बड़ा नहीं है, और छोटा सामने है तब वह बड़ा है। तो ऐसी ही संख्याओं की बात परस्पर में पायी जाती है। और जैसी अपेक्षा रखी वैसी उनमें संख्याएँ पायी जाती हैं। उन संख्याओं का विरोध नहीं है।

संख्या की पदार्थ धर्मरूपता भैया कुछ ऐसा जच रहा होगा कि शंकाकार भले ही शंका कर रहा है, जबरदस्ती क्यों समाधान दिया जा रहा ? पदार्थ है, उसमें रूप गुण है, रस गुण है, अन्य-अन्य गुण हैं, पर संख्या नाम का गुण कहाँ धरा ? तो भाई गुण और धर्म दो चीजें होती हैं। गुण के तो अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं, और धर्म के अविभाग प्रतिच्छेद हों या न हों, दोनों ही बातें बनती हैं। जैसे जिस जीव के ज्ञान हैं, दर्शन हैं, चारित्र है, यह गुण है तो इसके अविभाग प्रतिच्छेद ये बढ़ते घटते हैं और जीव में समस्त पर-पदार्थों का नास्तित्त्व है। तो इस नास्तित्त्व ने अविभाग प्रतिच्छेद बताया कितना है। वह धर्म रूप है, नास्तित्त्व गुण रूप नहीं, तो ऐसे ही संख्याधर्म रूप है, गुण रूप नहीं। अविभाग प्रतिच्छेद रूप नहीं। यद्यपि वैशेषिकों ने संख्या को गुण माना है, उनके गुण की परिभाषा जुदी है। जो बात जरा भी समझ में आयी झट उसको तत्त्व मानना, चाहे गुण माने चाहे द्रव्य माने पर जैन शासन में तो सर्व तत्त्वों की परिभाषा है और जुदे जुदे विभाग हैं। संख्या धर्म है। और जिस अपेक्षा को लेकर देखा उस ही संख्या की अभिव्यक्ति होती है। शक्ति रूप से सर्व संख्यादिक हैं सभी पदार्थ।

शक्ति की तरह व्यक्ति रूप से एकात्मकता मानने पर विडम्बना—शक्ति रूप से सर्व संख्यात्मक होने वाले पदार्थों को व्यक्त रूप में अगर सर्वसंख्यात्मक माना या किसी पदार्थ को सर्व पदार्थात्मक माना तो यह जगत क्षुब्ध हो जायेगा। जगत तब ही तो टिका है कि जब प्रत्येक पदार्थ अपना अपना ही सत्त्व रख रहा है, अपनी अपनी अर्थक्रिया कर रहा है तब ही जगत टिका हुआ है और जिस दिन पदार्थ सर्व पदार्थात्मक बनने लगें, व्यक्ति रूप से एक पदार्थ सर्वरूप होने लगे तो प्रलय होकर कुछ न रहेगा। तो पदार्थ शक्तिरूप से तो सर्वात्मक माना जा सकता है। जैसे कि संख्या शक्ति रूप से सर्वात्मक माना गया गया है। हाँ व्यक्ति रूप से देखें तो पदार्थ सर्वपदार्थ रूप नहीं है। शक्ति और व्यक्ति में भेद करें, सबको सर्वरूप मान लें तो संकरता हो जायेगी। कुछ भी न रहेगा, तो शक्ति रूप से भी सर्वात्मकता भी निरखी जा सकती, पर व्यक्तिरूप से सर्वात्मकता नहीं निरखी जा सकती। शक्ति से व्यक्ति भिन्न है। व्यक्ति का तो प्रत्यक्ष होता है, शक्ति का प्रत्यक्ष नहीं होता। आत्मा में ज्ञान स्वभाव है, इसका आप कैसे प्रत्यक्ष करेंगे ? उसको सम्वेदन में, परिणमन में ज्ञेयाकार बनाकर ही तो उसका अनुभव कर पायेंगे। देखिये दृष्टि में बड़ा प्रताप होता है। जिस समय ज्ञानस्वभाव को ज्ञान में ले रहे हैं तो ज्ञानस्वभाव द्वारा ज्ञान में नहीं ले सकते, ज्ञान परिणमन द्वारा ज्ञानस्वभाव को ज्ञान में लेते हैं। कोई ज्ञानस्वभाव को समझने की परिणति है, उसके द्वारा ज्ञानस्वभाव समझा जा रहा है। जैसे मानो पालकी में राजा बैठा इसी प्रकार मानो कि जिस ज्ञान साधन द्वारा ज्ञानस्वभाव जाना जा रहा उस ज्ञान साधन में यह ज्ञानस्वभाव बैठे। पर्याय में स्वभाव बैठे, स्वभाव का ज्ञान पर्याय को छोड़कर न होगा। जिस ज्ञान परिणति से हम सहज ज्ञानस्वभाव को जानेंगे, वहाँ वह विराजा है और वह परिणति स्वयं परिणति को नहीं निरख रही। जिस ज्ञान परिणमन द्वारा कुछ शाश्वत अनादि अनन्त ज्ञान-स्वभाव को देख रहे हैं, परिणति द्वारा जान रहे हैं, मगर परिणति परिणति को नहीं जान रही उस

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

समय। वह तो एक अनादि अनन्त ध्रुव ज्ञानस्वभाव को ही जान रहा है। तो शक्तियों से संकरता नहीं है। कोई यों नहीं कह सकता कि अगर आग में जलाने की शक्ति है तो बगीचे के पेड़ में भी जलाने की शक्ति होना, यों शक्ति से सर्व सर्वात्मक है। यों नहीं है। यह शक्ति से सर्वात्मक मानने का यह ध्येय नहीं है, किन्तु जितने जगत में कार्य होते हैं, हुये थे, हो सकेंगे उनको इतनी शक्ति मानी जाती है। और, जो पेड़ सूख जाये, ईंधन बने, आग बने, लो उसमें भी दहन शक्ति हो गई। तो शक्ति रूप से सबको समानता हो सकती है, इसका यथासम्भव अर्थ लेना है और व्यक्तिरूप से कोई पदार्थ किसी अन्य रूप नहीं हो सकता। यों ही संख्या की बात है। संख्या की अभिव्यक्ति याने जानकारी प्रकटपना तो कभी होता है, पर उसमें शक्ति रूप से सर्व संख्याओं की बात पड़ी तब ही तो कोई पुरुष उसमें ५० संख्या देखता है कोई पुरुष २ (दो) संख्या देखता है। जैसी अपेक्षा करे दूसरे की वैसी ही संख्याएँ वस्तु में मिलेंगी।

आपेक्षिकी संख्या की प्रयोग बहुलता—व्यवहार दृष्टि से देखें तो घर में रोज काम पड़ता है, आपने साग मंगाया, टिन्डे आये तो उन्हें देख करके आप झट गिन लेते हो कि ये तो १५ हैं, अच्छा आप जो उसमें संख्या जान रहे तो आपकी दृष्टि कितनी जल्दी सभी टिन्डों को छू रही है, यह तो अनुभव में आता है। अच्छा १५ है संख्या तो किस टिन्डे में १५ पन है आप बतलाओ ? किसी एक टिन्डा फल को उठाकर दिखा तो दो कि इसमें १५ पन है। नहीं दिखा सकते। अरे वह १५ पन तो सभी टिन्डा फलों में है। आपने उनकी १५ संख्या देखा तो वह १५ संख्या सबमें मिल रही। जब जिस पर मुख्यता हो तो उन १४ की अपेक्षा है तब १५ बन गये। जब जिस फल की प्रधानता हो, अन्य १४ फलों की अपेक्षा हो तब १५ बन गये। तो यह संख्या नाम का धर्म अगर न हो पदार्थ में तो इसकी कभी अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। तो संख्या द्वारा पदार्थों का निश्चय होता है इसलिये संख्या अनुयोग रखना सूत्र में पहले ही युक्ति संगत है। अभी इन प्ररूपणाओं की थोड़ी परिभाषा सम्हाली जा रही है कि यह अनुयोग होना चाहिये अथवा नहीं। और इन अनुयोगों की उपयोगिता क्या है ? फिर जो सूत्र वर्णन करेगा वह विषय पीछे आयेगा अलग से। अभी तो इन प्ररूपणाओं की सार्थकता ही कही जा रही है।

पदार्थ में संख्या की क्रमशः अभिव्यक्ति होने का कारण—अब इस विषय में एक समस्या और आ रही है जब यह मान लिया गया कि प्रत्येक पदार्थ में सभी संख्याएँ पड़ी हैं। तो यह बतलाओ कि सभी संख्याओं का ज्ञान क्यों नहीं होता और उनका क्रम से ज्ञान क्यों होता ? जब एक साथ ही सर्व संख्याओं का ज्ञान अनुभव में नहीं आ रहा, इसका क्या कारण है ? तो कहते हैं कि बात सुनो—देखिये—एक विधि है कि जिस समय दूसरे पदार्थ की अपेक्षा रखी गई उस समय पदार्थ में दो का ज्ञान हुआ। चूँकि हम अपेक्षा क्रम से बनाते हैं इसलिये उन संख्याओं की अभिव्यक्ति क्रम से होती है। पदार्थों की संख्या शक्ति से सबमें पड़ी है, मगर जैसी अपेक्षा बन गई वैसी अभिव्यक्ति होगी। अभी आपके सामने तीन फल रख दिये, आपने उसमें ३ (तीन) का ज्ञान किया। उन २ की अपेक्षा रखकर १ में ३ का ज्ञान किया, अन्य २ (दो) की अपेक्षा रखकर १ में ३ का ज्ञान किया। क्यों जी ४ का ज्ञान क्यों नहीं हो बैठा। तो वहाँ जैसी अपेक्षा है वैसी ही अभिव्यक्ति हुई। जैसे कभी बच्चों से अंगुलियाँ गिनवाते हैं—दो अँगुलियाँ खड़ी कर दी तो वहाँ बच्चा बोलता है २ (दो) अंगुली। वहाँ वह ३ (तीन) अंगुली क्यों नहीं बोल उठता ? जबकि प्रत्येक में १, २, ३, ४, ५ आदिक संख्याएँ बसी हुई हैं, तो इन सबकी अभिव्यक्ति एकदम क्यों नहीं हो जाती ? तो जब एक ही दूसरे की अपेक्षा रखकर निरखा जा रहा है तो वहाँ द्वित्व का ज्ञान होता है। वहाँ दो संख्याओं की अभिव्यक्ति हुई। दूसरी, तीसरी अंगुली

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उठा दी तो झट बोल उठता ३ (तीन) और ५ उठा दी तो झट बोल उठता ५, तो इस प्रकार जो क्रम में संख्या प्रकट हो रही है उसका कारण है अपेक्षा भेद। यह संख्या अनुयोग का स्वरूप बताया जा रहा है कि वास्तव में संख्या अनुयोग पदार्थों की जानकारी के लिए बहुत उपयोगी है और उसके बिना कुछ काम भी नहीं चलता। झटपरख लेता, कभी अन्दाज से संख्या जान लेता, कभी सही जान लेता, भले ही उस ओर उपयोग न हो, उस संख्या की हम चर्चा न करें मगर देखते ही कुछ न कुछ भान संख्या का रहता है।

संख्यात्मकता की शक्ति व व्यक्ति की शंकासमाधानपूर्वक विवेचना— यहाँ शंकाकर एक एक प्रश्न और रख रहा है कि संख्या जब पदार्थों में पड़ी हुई है और उसकी आप अभिव्यक्ति कहते हैं तो अभिव्यक्ति के मायने आविर्भाव, प्रकट होने में कारण यह है कि वह चीज पहले से है और अब प्रकट हुई है। जैसे कभी किसी कमरे में जहाँ तक अनेक चीजें धरी हैं, खिलौने रखे हैं, ट्रंक रखा है और वहीं आपको त्यागी का आहार कराना है, चौका बनाना पड़ा तो आप सब कुछ एक चददर से ढाँक देते हैं, जब भोजन हो गया तो आप चद्दर उघाड़ देते हैं, वे चीजें प्रकट हो या थोड़ी हवा चल दे तो चीजें प्रकट हो जातीं, त्यागी को भी दिख गईं। तो यह प्रकट तब ही तो कहलाया कि चीजें पहले से थीं, ऊपर से चद्दर डाली गई है। चद्दर हटी कि चीजें प्रकट हो गई हैं, इसी प्रकार पदार्थों में यदि संख्यायें बसी हैं, प्रकट हुई हैं तो इसका अर्थ यह मानना होगा कि संख्यायें पहले से मौजूद हैं और वे क्रम से प्रकट होती हैं तो यह तो बतलाओ कि यह बात कैसे सिद्ध हो कि पदार्थों में संख्या पहले से मौजूद हैं उनकी सत्ता है ज्ञान से पहले। जैसे अन्धेरे में रखी हुई टेबिल कुर्सी की सत्ता है, दीपक जल गया तो प्रकट हो गईं ऐसे हो पदार्थों में अनेक संख्याओं की सत्ता है, ज्ञान किया कि प्रकट हो गया। तो यह सिद्धि तो बतलाओ कि पहले से उनमें सत्ता पड़ी हुई है। किस प्रमाण से सिद्ध करोगे कि पदार्थ में संख्या पहले से पड़ी हुई है क्योंकि जिस समय आप संख्या को जान रहे हैं उसके पहले तो संख्या का ज्ञान है नहीं, फिर किस प्रमाण से यह निर्णय करोगे कि पदार्थों में संख्या पड़ी हुई है। अगर ज्ञान से पहले भी पदार्थों की संख्या की सत्ता बता देगें तो फिर पहले से ही संख्या का ज्ञान हो गया। फिर संख्या का ज्ञान करने की जरुरत क्या रही ? इससे मालूम होता कि संख्या पदार्थ में है नहीं। इसके उत्तर में अनेकान्तवादी स्यादवादसे उत्तर देंगे—यह उलहना तो उनके लिए है जो पदार्थों को सर्वथा सत् मानें, या सर्वथा असत् मानें। अगर संख्या पहले से पदार्थ में है तो पहले से ही ज्ञान हो जाना चाहिए। अगर संख्या पदार्थ में है ही नहीं तो कभी ज्ञान में न होना चाहिए। यह उलाहना एकान्तवाद पर पड़ता है जैन शासन तो कहता कि संख्या पदार्थ में कथंचित सत् है कथंचित असत्। शक्ति रूप से सत् है, व्यक्ति रूप से असत्। चूंकि व्यक्ति देखकर ही शक्ति का ज्ञान किया जाता। अग्नि में पदार्थ को जलाने की शक्ति है यह आपने कैसे समझा सो बताओ ? जलते हुए पदार्थ को देखा और रोज समझते हैं जलना, तो जब जलना कार्य देख रहे हैं तब ज्ञान होता है कि अग्नि में जलाने की शक्ति है। शक्ति ने किसी को दुःखी किया क्या आज तक ? जैसे कोई पल्लेदार है वह करीब १ क्वन्टल (१०० किलो) का बोझ उठाकर नीचे पटक देता है, तो बताइये उसकी इस शक्ति को आपने किसी ने देखा है क्या ? कहां है वह शक्ति ? कहां बैठी है क्या उसका आकार है ? किसी ने उस शक्ति को देखा है क्या ? फिर क्यों सभी लोग कहते कि आत्मा में शक्ति है ? अरे उसका कार्य देखा है। उसने बोरे को उठाकर फेंका तो कहते कि इसमें बोझा उठाने की शक्ति है। तो ऐसे ही पदार्थों में कितनी शक्तियां

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हैं, उन शक्तियों के परिचय करने का साधन है तो उनका कार्य है। कार्य देख करके शक्तियों का ज्ञान किया जाता है तो जब हम संख्याओं की अभिव्यक्ति देखते हैं तो २, ४, १० संख्यात्, असंख्यात, जब हम यह गणना समझते हैं तो पदार्थों में होने वाली संख्या की अभिव्यक्ति से उन संख्याओं की शक्ति का सद्भाव माना है शक्ति रूप में और कितने ही कार्य हमारे ज्ञान में न आए तो भी हम अंदाज करते हैं कि कुछ कार्य हमारी समझ में आए तो हमने उनमें इतनी शक्ति स्वीकार कर लिया, पर इनके अलवा अन्य अनेक शक्तियां हैं कि जिनको हम नहीं जानते, जिनके कार्य भी हम नहीं समझते तो यों पदार्थों की अभिव्यक्ति के आधार पर संख्या के सद्भाव का निर्णय किया जाता है शक्ति रूप मेंपदार्थों में संख्या रूप धर्म है। तो यहाँ संख्या की ही बात चल रही और यह दार्शनिक विधि से सद्भाव सिद्ध जा रहा, जब संख्या वास्तव में कुछ है जैसा यह ज्ञान में आ जाए तब ही तो संख्या का परिचय के लिए उपयोग किया जा सकेगा। आप कहेंगे वाह, इतनी बातें सुनाते हो आप, नहीं सुनाया था, आपने तो भी कुछ संख्याओं का ज्ञान तो कर ही रहे थे। घर में करते ही हैं, तो करते हो उसी की बात कह रहे हैं कि आपको ज्ञान तो है मगर साधारण किसी ढंग में है, उसकी विधि पूर्वक कैसे संख्या मानी जाय? इसका दार्शनिक विधि से यह परिचय कराया जा रहा है जिससे यह निर्णय हो जाय कि हाँ संख्या कोई वास्तविक बात है। और वास्तविक संख्या के द्वारा हम पदार्थों का निर्णय करेंगे, जिससे कि दुःख के कारणभूत मोह के निवारण करने में हमको सहयोग मिले, भिन्न-भिन्न हैं ये चीजें ये इतनी चीजें हैं, एक चीज दूसरी चीज रूप नहीं हो सकती। अथवा एक ही की पर्याय में हम अनेकपना देखेंगे। वहाँ भी कुछ शिक्षा लेंगे। तो संख्या अनुयोग द्वारा वस्तु का परिचय होता है, ऐसा कहने वाली संख्या पिरूपणा वास्तविक है और इसके द्वारा निर्णय किया जाना चाहिए।

भेदविज्ञान की बुद्धि के लिए अधिगमोपायोंसे परिचय की आवश्यकता जीव का स्वभवा ज्ञान है और ज्ञान जब अपनी स्वभाव अवस्था में रहता है तब यह आत्मा निराकुल रहता है, आकुलता दूर करने का केवल एक ही उपाय है कि यह ज्ञान शुद्ध ज्ञान रहे, केवल इसमें जानना जानना ही बृत्ति चलती रहती है। जानने के अतिक्ति इसमें अन्य कुछ उपाधि आए, रंग आए तो यह आकुलित हने लगता है। तो शुद्ध जानना कैसे बने जबकि आज प्राणी इतना अन्धकार में हैं, अनेक पदार्थों से इतना मोह कर रहा है कि इसके मोह की गाँठ छूटना कठिन हो रहा है। ऐसी स्थिति में है तो यह ज्ञानस्वरूप आत्मा अगर इसका ज्ञान विशुद्ध ज्ञान मात्र कैसे बने, इसका उपाय मोक्ष शास्त्र में कहा गया है। यद्यपि यह ग्रंथ अध्यात्म प्रधान नहीं है तो भी अध्यात्म का जिस उपाय से परिचय होता है और अध्यात्म के निकट पहुंच सकता है वह सब वर्णन इस मोक्ष शास्त्र ग्रंथ में है। कोई पुरुष सीधा ही अध्यात्म कैसे साध सकता है, जब कि अनादि से मोह दूषित आत्मा अनेक विकल्पों में पड़ा है। उसके लिए व्यवहार-नय से वस्तुओं में अनेक प्रकार का परिचय कराया जाता है यदि सामन्यतया यह कह दें कि ये सारे पदार्थ और यह शरीर इससे निराला है, इससे मोह मत करो। इतनी बात सुनकर कोई समझ भी नहीं सकता, न उसका स्पष्ट प्रतिभास हो सकता। कैसे इससे मैं न्यारा बनूं इसका कोई उपाय नहीं कर सकता अन्यथा प्रायः सभी मनुष्य कहते हैं। गाँवों में जावो, चाहे छोटे से छोटे लोग हों, कैसे ही लोग हों, अनपढ़ लोग हों, सभी कह देते हैं कि देह न्यारा है, जीव न्यारा है, हर समय नहीं कह सकते तो जब कोई मनुष्य मर जाता है तो उस समय तो यह कह ही देते हैं कि यह शरीर मिट्टी है, हंसा उड़ गया। यह देह न्यारा है, जीव न्यारा है, इतना कह देने से कहीं भेद विज्ञान स्फुरित नहीं होता। उसके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

लिए अनेक उपायों से वस्तु स्वरूप का परिचय आवश्यक है। जब तक भली भाँति यह समझ में न आये कि देह इसका नाम है, देह में यह चीज हैं, देह इस प्रकार बनता है, इसमें यह निमित्त है, यह परमाणुओं का पुञ्ज है, इसका लक्षण यह है। जीव का लक्षण यह है। जीव कहाँ रहता है। कैसा रहता है। देह कहाँ रहता है। जब तक निर्देश आदिक अनुयोगों द्वारा सत्संख्यादि प्ररूपणाओं द्वारा वस्तु का परिचय भली भाँति नहीं होता तब तक भेद विज्ञान अभ्युदित नहीं होता। इस कारण अध्यात्म में प्रवेश चाहने वाले को समग्र पदार्थों का प्रयोजनभूत विधि से अनेक विध परिचय करना चाहिए। उसी परिचय के प्रसंग में यह सत्संख्यादि सूत्र चल रहा है।

संख्या प्ररूपणा द्वारा वस्तु परिचय में भेद विज्ञान की झलक की भी झलक—न भैया! जानो पहले पदार्थ को। यह है फिर उसमें उसकी संख्या जानें। संख्या जाने बिना कुटुम्ब का भल भाँति परिचय नहीं होता। सब कोई जानता है यह। और हमारे बच्चे, हमारे लोग, हमारे घर में रहने वाले यह जब विदित होता है तो उसका भली भाँति सर्वपरिचय होता है। कोई परिचय ऐसा भी है कि नहीं कि न भी ज्ञान हो और परिचय हो जाय। मगर सर्व रीति से परिचय होने के लिए संख्या का भी ज्ञान होना चाहिए। और वैसे जीव तत्त्व को जानने के लिए संख्या का ज्ञान न हो तो समझा नहीं जा सकता। जीव अनन्त हैं, उनमें से एक मैं भी हूं। यह संख्या तब ही तो रह सकती है जब यह नियमवर्त रहा है पदार्थों में कि एक पदार्थ किसी दूसरे पदार्थ का कुछ भी परिणमन नहीं करता। जब यह वात बर्त रही है तब ही तो ये इतने हैं, तो संख्या द्वारा वस्तु का परिचय होता है, इसलिए संख्या प्ररूपणा की बात कहना वास्तविक है। अब इस विषय को शंकाकार कहता चला आया कि संख्या कोई चीज नहीं है, उसका खण्डन किया, संख्या सिद्ध कर दी, तो अब एक समस्या और नई आती है। शंकाकार कहता है कि संख्या तो है और संख्या द्वारा वस्तुओं की गिनती भी होती है, किन्तु पदार्थ निराला है संख्या निराली चीज है। वस्तु स्वयं संख्यात्मक नहीं है, ऐसा कहने वाले शंकाकार का मंतव्य स्पष्ट ही है। पदार्थ में जब संख्या की बात जोड़ी जाती है तब ही तो गिनती समझ में आती है। तो संख्या की बात जोड़ी जाती है, इसके मायने यह है कि संख्या न्यारी चीज है, पदार्थ न्यारा है। तो इसके समाधान में सीधी बात यह आती है कि यदि संख्या न्यारी है और पदार्थ न्यारा है तो पदार्थ तो संख्या रहित हो गए, क्योंकि वे संख्या से जुदे हैं और फिर किसी भी प्रकार इन द्रव्यों में गिनती का व्यवहार न होना चाहिए। क्योंकि संख्या तो पदार्थ से न्यारी चीज है।

वैशेषिक सिद्धान्त की कुञ्जी व दिशा—इस प्रकरण में थोड़ा वैशेषिक सिद्धान्त की बात समझिये जो अपने सम्यक् परिचय के लिये बहुत आवश्यक भी है। आज के समय में पुरातन सिद्धान्तों के अनुसार धर्म पालन करने वाले व्यक्ति दार्शनिक विधि से तीन चार भागों में ही बंटे हुये हैं वैशेषिक, जैन, बौद्ध, सांख्य। एक विशेष करके बात कही गई है, नैयायिक और सांख्य ये वैशेषिक के निकट वाले सिद्धान्त हैं। तो वैशेषिक का मंतव्य है क्या? जैसे जैन का मंतव्य क्या है? जैन नाम तो रखा है, इसका नाम है स्याद्वादी। स्याद्वादी का मंतव्य क्या कि जो वस्तु के स्वरूप को स्याद्वाद के सिद्धान्त के अनुसार घटित करते उनका नाम है स्याद्वादी। जैन ही स्याद्वादी कहलाते हैं। जैसे जीव नित्य है, अनित्य है। द्रव्यदृष्टि से नित्य है, पर्याय दृष्टि से अनित्य है, अपेक्षा लगाकर वस्तु में धर्म की सिद्धि कर देना यह है स्याद्वाद। तो जैसे स्याद्वादियों की कुञ्जी स्पष्ट है ऐसे हो वैशेषिकों की कुञ्जी क्या है? वैशेषिक मायने विशेषवादी, जिन्होंने कहने में, सुनने में, समझने में जरा भी अन्तर देखा उसको जुदा

http://sahjanandvarnishastra.org/

जुदा पदार्थ मान लेना यह है वैशेषिकों के मंतव्य की भित्ति। अब देखो इस कुञ्जी के अनुसार बतलाओ आपको ज्ञान शब्द से जो समझ में आया क्या वही बात आत्मा शब्द से समझ में आती है कि कुछ भिन्न बात समझ में आती है? भिन्न बात भी समझ में आती। आत्मा मायने जीव और ज्ञान, ज्ञान मायने एक शक्ति, जानने का गुण। समझ में आया न, कुछ तो फर्क है। बस लो ये दोनों भिन्न भिन्न पदार्थ हो गये। ज्ञान भिन्न पदार्थ है, जीव भिन्न पदार्थ है। अच्छा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये भिन्न-भिन्न चीजें हैं ना? यह तो एकदम स्पष्ट समझ में आता। पृथ्वी इसका नाम है, आग और चीज है, तो ये भिन्न-भिन्न पदार्थ हो गये। अच्छा मन, आकाश ये जुदे जुदे लगते हैं ना? हाँ भिन्न भिन्न पदार्थ हैं। अच्छा और चलो—ज्ञान और जानना इनमें कुछ भेद मालूम पड़ता है न? जानना तो एक पुरुषार्थ है, क्रिया है, व्यापार है। जो ज्ञान एक गुण है जानने का। लो ज्ञान जुदा पदार्थ है जानना जुदा पदार्थ है। कुछ भी थोड़ा भेद समझ में आया उसे भिन्न-भिन्न पदार्थ करार कर देना बस यह विशेषवादियों की कुञ्जी है। चलना, उठना, आदमी और जीव, इनमें चलना कहा तो उससे क्या समझे आप? क्या वही समझा जो उठना सुनने से समझे? कैसे समझें? उठना और बात है, चलना और बात है। और आदमी और बात है, जीव और है। तो जीव जुदा पदार्थ है, आदमी जुदा, चलना जुदा पदार्थ, उठना जुदा पदार्थ, लेटना जुदा पदार्थ। यों कितने पदार्थ हो जाते हैं? तो जितने अन्तर समझ में आये उतने पदार्थ मान लो। तो उसी आधार पर यह संख्या और संख्यावान ये भी जुदे जुदे समझ में आते। संख्या से हम कुछ और समझे पदार्थ से कुछ और समझे। ये जुदे पदार्थ हो गये। वैशषिक जन मूल में ७ तरह के पदार्थ मानते हैं द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव। फिर इनके भेद अलग होंगे, जैसे द्रव्य के भेद पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, आत्मा, दिशा, काल, मन आदिक ये द्रव्य के भेद हो गये। वैशेषिक सिद्धान्त के अनुसार तो गुण के भेद भी वहुत हैं। २५ गुण हैं। अलग होना, मिलना, समवाय होना, एकमेक होना आदिक ये भी गुण हैं, ज्ञानादिक भी गुण हैं, क्रिया मानी हैं ५, उसमें क्रिया एक अलग पदार्थ है। जैसे हाथ हिला तो हाथ अलग चीज है और हिलाना अलग पदार्थ है। कोई कहे वाह, अलग तो नहीं मालूम पड़ता। हाथ ही तो हिलता। हिलना नाम की जो अलग चीज है उसका इसमें सम्बन्ध हो गया हाथ में सो हाथ हिलाया ऐसा बोलते हैं। थोड़ा भी समझ में अन्तर आया तो जुदे पदार्थ हैं, यह है विशेषवाद की कुञ्जी। कर्म ५ हैं, फेंकना, धरना, उठाना, चलना आदिक। सामान्य एक है, जैसे ५० गायें खड़ी हैं और ५० गायों में जो यह ज्ञान होता कि ये सब गायें हैं तो गाय नाम का जो एक परिचय है, जो सबमें बन गया वह सामान्य गाय अलग है, गौ सामान्य जुदी चीज है, उन ५० से न्यारी है। वह गाय सामान्य जब उन ५० में घुस जाये तो वह गौ कहलाता है। उससे पहले गौ नहीं कहलाता? उनको जब कहा जाये कि इससे पहले गौ न कहलायेगा। तो कहेंगे कि पहला कुछ है ही नहीं, यह सामान्य चिरकाल से गायों में घुसी हुई है। जब कोई वस्तुस्वरूप से पृथक् बात सिद्ध करना होता है तो उसमें युक्तियों का बड़ा संग्रह और निर्माण करना पड़ता है। विशेष अलग चीज है। यह गाय न्यारी है, यह न्यारी है, इस तरह का कोई न्यारापन समझ रहा, यह लाल है, यह पीला है, यह अमेरिकन है यह हिन्दुस्तानी है, ऐसी जो जुदी जुदी बात समझना है यह विशेषता बिल्कुल अलग पड़ी है और जब यह विशेषता उन गायों में प्रवेश कर गई तो उन गायों में ऐसा बोध होने लगता। अच्छा, इसी प्रकाद समवाय। समवाय का अर्थ यह है कि आत्मा और ज्ञान का समवाय है, मायने आत्मा ज्ञान ये दोनों बहुत घनिष्ट मिले हुये हैं। वैशेषिक सिद्धान्त में संयोग को तो गुण

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कहा और समवाय को अलग पदार्थ कहा। समवाय में तो जैसे चौकी पर पुस्तक रखी तो यह संयोग हो गया और चौकी में रूप है तो यह समवाय हो गया। जिसे हम आप तादात्म्य कहते हैं उस ढंग का कुछ दिमाग बना है समवाय में। तो यहाँ वैशेषिक यह कहते हैं कि संख्या अलग चीज है और वस्तु अलग चीज है, लेकिन संख्या का पदार्थ में समवाय होता है, इसलिये ये पदार्थ संख्या वाले हो जाते हैं।

संख्या और पदार्थ को न्यारा न्यारा मानकर संख्या के समवाय से पदार्थ को संख्यावान मानने की आरेका का समाधान—उक्त मंतव्य का समाधान स्पष्ट यह है कि समवाय से यदि यह पदार्थ संख्यावान कहलाने लगे तो जरा समवाय की शकल तो बताओ, समवाय कहते किसे हैं ? कोई निरंश है या वह सर्वव्यापी है, या हर एक में जुदा है। विचार करें तो किसी तरह समवाय की सिद्धि नहीं होती। अगर समवाय सारी दुनिया में एक है तो क्या वजह है कि ज्ञान का समवाय आत्मा में हो और भींट में न हो। जब समवाय सब जगह मौजूद है तो वह ऐसा पक्षपात क्यों करता कि हम तो ज्ञान को आत्मा से जोड़ेंगे, ज्ञान को भींट में क्यों नहीं जोड़ देता ? और समवाय को निरंश कहे तो एक ही तरह की बात हर जगह कैसे जुड़ गई, यहाँ प्रकरण में यह बात समझियेगा कि जैन शासन के अनुसार या वस्तु स्वरूप जैसा बताया गया है वह यह है कि द्रव्य बस एक ही चीज है, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय, अभाव, ये जो ५ चीजें बतायी हैं विशेषवाद ने अलग से ये पाँचों ही अलग कुछ नहीं हैं। यह सब द्रव्य की ही तारीफ है। गुण क्या ? जो द्रव्य का स्वभाव है, द्रव्य का स्वरूप है, द्रव्य की शक्तियाँ हैं, उसी को ही गुण कहते हैं। कर्म क्या ? जो द्रव्य में प्रादेशिकी क्रिया होती है, भाव वाली भी क्रिया कहलाती, किन्तु वह परिणमन शब्द से संज्ञित है, परिणमन तो यह भी है, प्रदेश वाली क्रिया होने से वे सब क्रियाएँ कहलाती हैं। सामान्य क्या ? द्रव्य में जो द्रव्यत्व गुण होता है उसके विषयभूत जो तत्त्व है वह सामान्य है। विशेष क्या ? द्रव्य के असाधारण याने विशेष लक्षण जो परस्पर न्यारा-न्यारापन जाना जाता है वह विशेष है। सो विशेष कहीं अलग नहीं है, विशेष पदार्थ की ही विशेषता है। जैसे एक पीली चौकी, एक हरी चौकी रखी है तो विशेष कोई अलग होवे और फिर उन दोनों चौकियों में घुसे विशेष और फिर ज्ञान कराये कि यह पीली चौकी न्यारी है, हरी चौकी न्यारी है, ऐसा नहीं होता। पीला पीला ही है, हरा हरा ही है। पीला होना चौकी की विशेषता है, हरा होना भी चौकी की विशेषता है। जान लें दोनों विशेषों को और परख ले दोनों को न्यारा न्यारा। समवाय कोई साधने की बात ही नहीं है, क्योंकि पदार्थ के स्वरूप का पदार्थ में पदार्थ के ही कारण तादात्म्य है, और अभाव नाम का कोई पदार्थ नहीं। वैशेषिक तो अभाव को भी कोई पदार्थ कहते हैं। अभाव भी एक चीज है। किसी दिन कोई अभाव को हाथ पर धर कर बता तो दे। लो एक अभाव तुमने यह दिखाया, अभाव कोई चीज नहीं है, मगर विशेषवादी कहते हैं कि अभाव का ज्ञान स्पष्ट हो रहा। जैसे कहा कि अल्मारी पर पुस्तक है उठा लाओ तो वह पुरुष वहाँ पर जाता है, वहाँ पर पुस्तक थी नहीं तो वह कहता है कि वहाँ पुस्तक नहीं है। ......क्या आपने अच्छी तरह देखा ? ......हाँ अच्छी तरह देखा कि वहाँ पुस्तक नहीं है। ......क्या देखा ? ......'पुस्तक नहीं ? यह देखा, और आपको लगता होगा कि हाँ हाँ सच तो कह रहा कि 'पुस्तक नहीं' यह देखकर आया। अब यह बताओ –"नहीं" किसी को दिख सकता क्या ? अरे पुस्तक की चित्त में कल्पना करी और उस पुस्तक से रहित अलमारी देखा। यह ही तो उसने देख पाया, या पुस्तक का अभाव देखा ? अरे वास्तविकता तो वहाँ यह है कि पुस्तक नहीं, यह नहीं देख सका वह किन्तु पुस्तकरहित अल्मारी को देखा गया वह। जब वह कहता है कि पुस्तक

http://sahjanandvarnishastra.org/

नहीं है। तो अभाव पदार्थ नहीं होता। अभाव वहाँ किसका नाम है? पुस्तकरहित अल्मारी का ही नाम पुस्तक का अभाव है।

विशेषवाद में स्याद्वाद का सौरभ होने पर हित का प्रकाश—विशेषवादी विशेष पर उतरे और उनका ऐसा उतरना कोई निन्दा की दृष्टि से नहीं कह सकते, क्योंकि उन्होंने अपने कल्याण का मार्ग ढूँढ़ा। स्याद्वादी भी तो बड़े-बड़े भेद की चर्चा करके बहुत अन्तर में तत्त्व को निकालकर कल्याण की ही बात खोजते हैं ना? ···कैसे? ······जीव किसका नाम है? देह जीव नहीं है देह से न्यारा है जीव। तो क्या क्रोध, मान, माया, लोभ ये जीव हैं? नहीं नहीं, ये भी जीव नहीं हैं। क्रोधादिक कषायों से न्यारा है यह जीव। तो यह जो जान रहा है, सोच रहा है, विकल्प कर रहा है, क्या यह है जीव? नहीं नहीं। जीव तो इससे परे है, वह सहज ज्ञान स्वरूप है। यह है जीव। ····· अरे जब तक तुम मुझ मुझ कर रहे हो और सहज ज्ञानस्वरूप की एक सीमा बना रहे हो, ऐसे विकल्प में समझ में न आयेगा जीव। तो विकल्प को छोड़ और ज्ञान में केवल सहज ज्ञान स्वरूप ही रहे, तब समझोगे तुम कि जीव है। लो भेद करके ही तो स्याद्वादी प्रयोजन पर आये। तो विशेषवादियों ने भी तो भेद की रीति अपनाई है तो कोई मोटा अपराध नहीं है, वह भी मोह को दूर करने के ही ख्याल से यह सब कहा जा रहा। द्रव्य न्यारे, गुण न्यारे, कर्म न्यारे। कोन किसका क्या? वह भी मोह दूर करने को दशा में ही इस सिद्धान्त को कह रहे हैं। तो भाई प्रयोजन से तो अपराध नहीं, मगर उसमें वस्तु स्वरूप खण्डित होता है, और वस्तु स्वरूप जहाँ खण्डित हो जाये, जहाँ ऐसा अज्ञान बसे तो वह इस विकल्प में ही रहेगा। वह एक सीधा सुगम रास्ता नहीं पा सकता। बतलाओ कहाँ रखा है गुण न्यारा और द्रव्य न्यारा? कहाँ रखी है संख्या न्यारी और पदार्थ न्यारा? पदार्थ ही दिखते हैं और पदार्थों में ही संख्या का बोध करते हैं। तो समवाय के द्वारा संख्या को संख्यावान में जोड़ करके फिर संख्या का ज्ञान कराने का पौरुष भी एक कठिन क्रिया है, असफल क्रिया है और फिर जैसे आत्मा में ज्ञान का समवाय कराया तो यह हो तो कहा जायेगा—आत्मा ज्ञानवान है। यह तो नहीं कह सकते कि आत्मा ज्ञाता है। जैसे आम की टोकनी लिये जा रहा हो कोई बेचने वाला तो आम की टोकनी के सम्बन्ध से कोई उसे यह ही तो कहेगा—ऐ आम वाले, ऐ आम वाले यहाँ आओ। क्या कोई यह भी कह देगा ऐ आम यहाँ आओ? जहाँ संयोग हो, समवाय हो, सम्बन्ध हो वहाँ वाला इस तरह से ज्ञान में आयेगा, न कि वही ऐसा ज्ञान में आयेगा। आत्मा ज्ञान वाला है, ऐसा कहना सही नहीं है, किन्तु आत्मा ज्ञ है, ज्ञाता है, ज्ञापक है, यह कहना युक्त है। ज्ञान का समवाय कहने वाला बतावे कि पहिले जब तक ज्ञान उसमें न जुटा ही तब तक आत्मा है क्या? न जुटा तो ज्ञान भी कुछ न रहा, आत्मा भी कुछ न रहा। जैसे कोई एक टोकने में १० केले रखे हैं तो क्या उसे कोई यह कह कर बोलता है कि यह केला १० संख्या वाला है? यों कहता है कि १० हैं, संख्या है, पदार्थ है, न कि संख्यावान। संख्या कोई अलग चीज हो और पदार्थ अलग हो और उनमें संख्या जुटाओ तब गिनती बनती हो ऐसा स्वरूप नहीं है वस्तु का। देखिये बात कठिन नहीं है, बाद में आगे कभी यह जानने में आ जायेगा कि संख्या द्वारा दुनिया का परिचय किस तरह होता है। सम्यग्दृष्टि श्रावक मुनि, वीतराग सर्वज्ञदेव, सिद्ध भगवान इनका जब परिचय कराया जायेगा तो उसमें गिनती से भी परिचय कराया जायेगा। गति, इन्द्रिय, काय, योग मार्गणा आदिक अनेक ढंगों से जब वस्तु का परिचय कराया जायेगा तो संख्या द्वारा कराया भी जायेगा तो उसी संख्या का यहाँ वर्णन कर रहे हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

संख्या प्ररूपणा व संख्या प्ररूपणा द्वारा परिचय करने के प्ररूपण का उपसंहार यों समझिये कि रोटी खानी तो जिसको प्रिय लग रही हो, और रोटी बनाने में वह हिचक खावे तो कैसा रहा है। अरे रोटी पहले बनायें फिर आनन्द से खावें। तो रोटी खाने की तरह तो है संख्या द्वारा परिचय कराना, कहाँ कौन है ? और, यहाँ संख्या प्ररूपणा सही है और यह युक्ति है, यह सिद्ध करना एक रोटी बनाने की तरह है। यहाँ पसीना आ जाता, गर्मी लगती, रोटी बनाना नहीं चाहते तो संख्या की बात समझना कि यह पदार्थ की संख्या है किस तरह, यह बात समझने में कठिनाई लगती है। मन नहीं जमता है, शंकाएँ होती हैं, कितना कठिन विषय ले लिया हैं। अरे जिस संख्या द्वारा वस्तु का परिचय कराया जायेगा उस संख्या का स्वरूप बतला रहे हैं कि यह संख्या चीज है क्या ? तो यह संख्या पदार्थों से भिन्न नहीं है। पदार्थों में रूप है, संख्या भिन्न है, पदार्थ न्यारे हैं, फिर उनको जुटाने में समवाय समर्थ हो, यह बात संगत नहीं है। जैसे परमाणु सर्वथा निरंश है तो निरंश परमाणु जुटकर एक पिण्ड नहीं बना पायेंगे। जैन शासन में तो स्कन्ध माना है, पर अन्य जगह स्कन्ध नहीं है। बौद्ध तो साफ मना करते हैं केवल नींद में दिख रहा है तुमको ये सब चीजें। और परमाणु भी एक नहीं, रूप परमाणु, रस परमाणु. ये सब अलग-अलग चीजें हैं। तो जैसे निरंश अणु कोई मिलकर चीज नहीं बना सकता ऐसे ही निरंश समवाय इन पदार्थों को जुटा नहीं सकता। शायद यह कहो कि हम विशेषण विशेष्य को जुटा देंगे वह कैसे ? देखिये दो को जुटाना है, जैसे जीव अलग है, ज्ञान अलग है, और इन दोनों का सम्बन्ध बनाता है समवाय तो वहाँ विशेष्य तो हो गये जीव और ज्ञान तथा विशेषण बन गया समवाय याने यह जीव और ज्ञान तो अनुयोगी विशेष्य है प्रतियोगी विशेष्य है और उनमें समवाय गया तो समवाय बन गया विशेषण और वे दोनों बन गये विशेष्य ? तो समाधान में कहा कि अब एक आफत और ले लिया, अभी तो समवाय को सिद्ध करने की ही समस्या थी, अब विशेषण विशेष्य अलग है इसको सिद्ध करें तो यों उलझते चले जायेंगे। न विशेषण विशेष्य अलग हैं, न समवाय आदिक अलग हैं, ये तो सब पदार्थ हैं और उनकी ऐसी विशेषता है कि जिन विशेषताओं का हम विवरण किया करते हैं कि यह पदार्थ यों है, यह पदार्थ यों है, तो इस तरह न विशेषण विशेष्य बनेगा न हमवाय बनेगा, किन्तु सीधा पदार्थ को ही समझ लो। पदार्थ है। जब हम केवल निरपेक्ष ढंग से देखते हैं तो एक है ऐसा ज्ञान होता है। जब हम दूसरे तीसरे की अपेक्षा रखकर देखते हैं तो दो है तीन है आदिक ज्ञान होता है। इस तरह संख्या पदार्थ में है। और उस संख्या द्वारा पदार्थ का परिचय कराना युक्ति संगत है।

क्षेत्र प्ररूपणा द्वारा वस्तु के वर्तमान निवास धाम का परिचय—मोक्ष मार्ग के प्रयोजन भूत जीवादिक ७ तत्त्वों का परिचय होना रत्नत्रय धर्म की उपासना में प्रधान सहयोगी है। तो उन्हीं तत्त्वों के परिचय की चर्चा की जा रही है। तत्त्व प्रमाण और नयों से जाना जाता है। निर्देश स्वामित्व आदिक अनुयोगों से परखा जाता है और सत् संख्या आदिक प्ररूपणाओं से परखा जाता है। तो इस प्ररूपणा में से सत् और संख्या इन दो प्ररूपणाओं का वर्णन हुआ कि यह उपाय वास्तविक है, और इसके द्वारा तत्त्वों का परिचय करना चाहिये। अब क्षेत्र प्ररूपणा द्वारा तत्त्व के अधिगम की बात कह रहे हैं, क्षेत्र कहते हैं वर्तमान निवास को। जिस तत्त्व के बारे में प्ररूपणा की जा रही हो वह तत्त्व कहाँ रहता है ? उसका वर्तमान निवास क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर देना क्षेत्र प्रत्यय का प्रयोजन है, यहाँ कोई शंकाकार कहता है कि पदार्थ तो सभी अपने स्वभाव में व्यवस्थित रहते हैं। जिस पदार्थ का जो स्वभाव है उसका उस ही स्वभाव में निवास रहता है, उससे बाहर नहीं। तो ऐसी स्थिति में फिर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पदार्थ का क्षेत्र प्ररूपणा द्वारा वर्तमान निवास बताना गलत है, अर्थात् क्षेत्र प्ररूपणा अनावश्यक है। उत्तर में कहते हैं कि क्षेत्र होने पर ही तो निवास बताया जाता है। अगर क्षेत्र नहीं है तो निवास भी नहीं बता सकते हैं, इस कारण क्षेत्र की प्ररूपणा वास्तविक है। जैसे किसी राजा का वर्तमान निवास कुरुक्षेत्र है, यों किसी ने कहा तो कुरुक्षेत्र वास्तविक चीज है तब ही तो निवास बताया जायेगा। अगर कुरुक्षेत्र है ही नहीं तो निवास कहाँ बताओगे ? बाहरी क्षेत्र में पदार्थ का जो निवास है वह व्यवहार दृष्टि से है। यह तो निश्चय दृष्टि का कथन है कि प्रत्येक पदार्थ अपने स्वभाव में व्यवस्थित है, स्वभाव से बाहर नहीं है। तो स्वभाव से बाहर निवास न बताना चाहिये। यह तो निश्चय दृष्टि का मंतव्य है, पर इतने मात्र से पदार्थ का परिचय तो नहीं बनता है। व्यवहार अथवा बाह्य निवास बताना आवश्यक ही है। तो उस तत्त्व का जो बाह्य क्षेत्र में निवास है वह कहाँ तक है, इस वर्तमान निवास को बत ना यह ही कहलाता है क्षेत्र प्ररूपणा से परिचय करना।

कारण विशेषत्व की मुद्रा से भी क्षेत्र प्ररूपणा का परिचय- अब शंकाकार कहता है कि क्षेत्र प्ररूपणा से परिचय करना कोई अलग बात नहीं है वह तो कारण को देखना मात्र है, जिसे आप क्षेत्र प्ररूपणा कहते हैं वह तो कारण है। जैसे राजा का जिसका बसने का स्वभाव है उसका कुरुक्षेत्र कारण ही है, क्योंकि बसने के स्वभाव वाले राजा का जो कुछ वर्तमान प्रवर्तन हो रहा है वह तो कुरुक्षेत्र द्वारा उत्पन्न हो रहा है। अर्थात् यों कहो कि निवास करने के स्वभाव वाले राजा की उत्पत्ति उस कुरुक्षेत्र द्वारा हुई है। राजा की उत्पत्ति नहीं हुई कुरुक्षेत्र द्वारा किन्तु राजा के बसने के स्वभाव की उत्पत्ति हुई है कुरुक्षेत्र द्वारा। तो कुरुक्षेत्र कारण बना और बसन स्वभाव वाला राजा कार्य हुआ। तो कारण कार्य भाव के अतिरिक्त क्षेत्र प्ररूपणा का और कोई रहस्य नहीं है। इस शंका के समाधान में कहते हैं कि अगर ऐसा ही मान लिया जाये तो भी अनिष्ट कुछ नहीं है, क्योंकि जो कारण विशेष कहा जा रहा है उस ही का नाम तो हम क्षेत्र कहते हैं। हाँ कारण मात्र को अगर हम क्षेत्र कहें तो इसमें आपत्ति आयेगी। अब यहाँ शंकाकार फिर कहता कि क्षेत्र तो कोई वास्तविक चीज नहीं है, वह तो एक आपेक्षिक चीज है। जैसे मोटा पतला होना कोई वास्तविक चीज नहीं है, किन्तु आपेक्षिक चीज है, तो क्षेत्र प्ररूपणा में जो निवास की बात कही जाती है वह तो आपेक्षिक मात्र है। वास्तविकता कुछ भी नहीं है। उत्तर में कहते हैं कि यह बात कहना बिल्कुल असंगत है, कारण कि क्षेत्र प्रमाण द्वारा सिद्ध है। जैसे कि आत्मा की अन्य अन्य पर्याएँ परिणाम वास्तविक हैं, प्रमाण के विषयभूत हैं, सुख दुःख शान्ति अशान्ति आदिक सभी जैसे प्रमाण के विषयभूत हैं। ऐसा न समझना कि जो जो चीजें आपेक्षिक हों वह प्रमाण का विषय नहीं होता। आपेक्षिक है फिर भी प्रमाण का विषय होता है। जैसे कि शंकाकार द्वारा माना गया सुख या नील पीत आदिक आकार यह आपेक्षिक है, लेकिन प्रमाण के विषय हैं। सुख किसी अपेक्षा से हो तो कहा जाता है। सुख दुःख निरपेक्ष कुछ चीज नहीं है, किसी अपेक्षा से नाम धरा गया सुख कोई दुःख में रहता हो और वह दुःख कम हो जाये तो उस स्थिति को कहते हैं सुख। तो सुख आपेक्षिक चीज है, लेकिन प्रमाण का विषयभूत तो है। सुख पाने वाले सुख का अनुभव करने वाले भली भाँति अनुभव प्रत्यक्ष से समझ जाते हैं, इसी प्रकार क्षणिकवादियों ने नील पीत आकार को प्रत्यक्ष सिद्ध माना है। मगर नील पीत भी तो आपेक्षिक चीज है। जहाँ अन्य रंगों का ज्ञान हो तभी किसी एक रंग का परिचय कर सकते हैं। मानो जगत में केवल एक ही रंग होवे और कुछ होवे ही नहीं तो उसमें नील पीत का विशेषण दे सकते हैं क्या ? तो जैसे सुख नीलाकार आदिक आपेक्षिक हैं फिर भी ये

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रमाण के विषयभूत हैं, इसी प्रकार क्षेत्र वर्णन भी आपेक्षिक है। अर्थात् जिस जीव का निवास बताना है उस जीव को दृष्टि में लें। आकाश क्षेत्र से देखें तब ही तो प्ररूपणा बनती है। तो ऐसा आपेक्षिक होने पर भी प्रमाण सिद्ध है, यह क्षेत्र प्ररूपणा है।

क्षेत्र प्ररूपणा की प्रतीति व अनुमान से प्रसिद्धि के विषय में चर्चा—अब शंकाकार कहता है कि जो वास्तविक केवल सम्वित् मात्र तत्त्व मानता है तो शुद्ध सम्वेदन जिसमें बाह्य पदार्थ कुछ भी ज्ञेय नहीं होते इस दार्शनिक के मत में बाह्य पदार्थ की सत्ता ही नहीं है। केवल एक शुद्ध ज्ञान ही तत्त्व है। तो शुद्ध ज्ञान स्वरूप तत्त्व मानने वाले के यहाँ तो सुख नील प्रमाण के विषयभूत न रहे। तो ऐसे ही क्षेत्र भी प्रमाण का विषयभूत न रहेगा। तो इसके समाधान मे पहले बहुत वर्णन किया जा चुका, कोई भी सम्वित् ग्राह्य आकार से रहित नहीं होता, अर्थात् ज्ञान का विषयभूत कुछ भी ज्ञेय पदार्थ न न हो और ज्ञान कहलाये, ऐसा कुछ भी नहीं है। और, यदि ग्राह्य ग्राहक भाव नहीं है तो यह भी सिद्ध नहीं किया जा सकता कि सम्वित् तत्त्व प्रमाण है और सत्य है। तो क्षेत्र प्ररूपणा वास्तविक है। भले ही आपेक्षिक हो, लेकिन यह सबकी प्रतीति से सिद्ध है। शंकाकार कहता है कि जिसकी प्ररूपणा बता रहे हो वह आखिर किस प्रमाण का विषय है। प्रत्यक्ष प्रमाण का विषय तो हो नहीं सकता, क्योंकि प्रत्यक्ष द्वारा क्षेत्रपना जाना नहीं जा रहा है। अगर कहो कि उसका कार्य देखा जा रहा है, जाना जा रहा है, इस कार्य के द्वारा क्षेत्र का अनुमान हो जायेगा। तो कहते हैं कि वह तो अनुमान मात्र है, अनुमान का विषय वास्तविक नहीं होता। अनुमान तो अवस्तु का विषय करने वाला होता है। क्षणिकवादियों ने अनुमान को अवस्तु का विषय करने वाला माना। जैसे कि सविकल्प ज्ञान अवस्तु को विषय करता है, वस्तु को तो केवल निर्विकल्प प्रत्यक्ष ही अनुभव करता है। तो ऐसे दार्शनिक कह रहे हैं कि कार्य दर्शन से क्षेत्र की बात समझ लेने से कोई वास्तविक बात न बन जायेगी। उनके समाधान में कहते हैं कि अनुमान प्रमाण भी वस्तु को विषय करता है ? अगर अनुमान प्रमाण वस्तु का विषय न करे तो वह अप्रमाण हो जायेगा। सो अनुमान की प्रमाणता का भली प्रकार वर्णन दार्शनिक शास्त्रों में कहा गया है। इस प्रकार क्षेत्र प्ररूपणा प्रमाण का विषयभूत है और क्षेत्र प्ररूपणा के द्वारा तत्त्व का, जीवादिक का भली भाँति परिचय हुआ करता है।

क्षेत्र प्ररूपणा और अधिकरणानुयोग के स्वरूप की भिन्नता—क्षेत्र प्ररूपणा द्वारा वस्तुओं का परिचय कराया जायेगा। क्षेत्र नाम है वर्तमान निवास का। विवक्षित पदार्थ कितनी जगह में रहता है, जहाँ उत्पन्न हुआ हो, जहाँ इस प्रकार के व्यवहार से रहता हो कि यह मेरा गाँव है, यह मेरा जंगल है, इस प्रकार की बुद्धि जितनी जगह में होती हो उसे क्षेत्र कहते हैं। यहाँ शंकाकार कहता है कि निर्देश आदिक सूत्र में अधिकरण अनुयोग कहा है, उससे ही यह बात सिद्ध हो जाती है कि पदार्थ कितनी जगह में रहता है। अधिकरण मायने आधार, और क्षेत्र का भी मतलब यह ही है कि वह तत्त्व कितनी जगह रहता है। तो क्षेत्र में और अधिकरण में कोई अन्तर जब नहीं है तो फिर क्षेत्र अनुयोग की आवश्यकता क्या रही ? समाधान में कहते हैं कि अधिकरण और क्षेत्र का प्रयोजन भिन्न भिन्न है ? अधिकरण तो व्यापक को ग्रहण करता है और क्षेत्र व्याप्य को लेता है। अधिकरण तो समीपता आदिक का परित्याग करता है और क्षेत्र समीपता आदिक को ग्रहण करता है। इसका खुलासा यह है कि अधिकरण में जैसे कहा—शरीर में जीव है तो जीव कभी शरीर में है, कभी शरीर छोड़कर जुदा भी रहता है, जैसे विग्रह गति में। तो जीव तो व्यापक चीज है। उसका आधार बताया है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

शरीर। एक तो यों। दूसरी बात यह है कि आधार विस्तृत नहीं है, बस जितना शरीर है उस सबमें जीव है। जीव इससे बाहर नहीं जा सकता। जब शरीर में है तब शरीर से ही वह पूर्ण है, किन्तु क्षेत्र में स्थितियाँ विशेष होती हैं। जैसे मनुष्य का क्षेत्र कितना ? एक मनुष्य का क्षेत्र, वर्तमान निवास। जिस शहर में उत्पन्न हुआ है वह सारा शहर उसका क्षेत्र है। जहाँ आना जाना उठना बैठना होता है। यह उसका ग्राम है, उसका नगर है, इस प्रकार की बुद्धि से जितना भी विस्तार है वह सब क्षेत्र कहलाता है। क्षेत्र में तो समीपता का ग्रहण है। आधार में वही आधारमात्र है। उससे बाहर कहीं जीव की बात नहीं सोची जाती। तो इस प्रकार क्षेत्र में और अधिकरण में अन्तर है। अधिकरण द्वारा तो केवल एक व्यापकाधार ही सोचा जाता है, किन्तु क्षेत्र द्वारा वह वस्तु तत्त्व कितनी जगह में पहुँच सकता है यह देखा जाता है। तो क्षेत्र प्ररूपणा वस्तु परिचय के लिये उपयोगी है उसे पुनरुक्त नहीं कह सकते।

स्पर्शन प्ररूपणा में त्रिकाल स्पर्श का परिचय - अब स्पर्शन अनुयोग के विषय में सोचिये। स्पर्शन का अर्थ है छू लेना। यह शब्द ही यह बतलाता है कि वर्तमान निवास से भिन्न होता है स्पर्शन। किसी भी प्रकार, किसी भी ढंग से क्षेत्र से बाहर की जगह छू ले वह स्पर्शन कहलाता है। स्पर्शन में क्षेत्र में रहने जैसी बात नहीं आती। कौन कौन काल, कभी कभी, कहाँ तक छू आया ऐसी बात स्पर्शन में झलकती है। सो स्पर्शन शब्द से एक तो यह बात जाहिर होती कि स्पर्शन क्षेत्र से अधिक स्थान वाला है। दूसरी बात यह जाहिर हुई कि स्पर्शन भूतकाल और भविष्य काल में भी जहाँ तक छू आवे वह सब जगह ग्रहण की गई है। तो स्पर्शन का अर्थ है—त्रिकाल विषयक अर्थ का संश्लेषण होना। अर्थात् विवक्षित वस्तु कहाँ तक पहले पहुँची याने किस जगह को खू आई और भविष्य में कहाँ तक पहुँच सकती है, छू सकती है, यह दृष्टि स्पर्शन अनुयोग में है, किन्तु विवक्षित वस्तु वर्तमान में कहाँ तक रहती है यह क्षेत्र में वर्तमान निवास है। यहाँ शंकाकार कहता है कि जितने भी पदार्थ हैं वे सभी पदार्थ वर्तमान रूप हुआ करते हैं, क्योंकि पर्याय रूप से ही पदार्थ होता है और पर्याय सदा वर्तमान रूप ही होती है। तो चूँकि प्रत्येक पदार्थ वर्तमान रूप ही है इसलिये स्पर्शन अनुयोग की बात कहना असत्य है स्पर्शन होता ही नहीं है, याने भूतकाल, भविष्य काल रूप पदार्थ ही नहीं होता। जो पदार्थ है वह वर्तमान में है। आगे जो भी होगा वह भी तब के वर्तमान में है। फिर स्पर्शन अनुयोग का वहाँ अवकाश ही क्या है ? उत्तर में कहते हैं कि पदार्थ द्रव्य दृष्टि से अनादि अनन्त है, तीन काल में रहने वाला है। पर्याय यद्यपि वर्तमान मात्र है। जब जो पर्याय होती है वह पर्याय उस ही समय तक है, अगले समय में अगली पर्याय है। तो पर्याय दृष्टि से तो पदार्थ का वर्तमान रूप कह सकते हैं, किन्तु द्रव्य दृष्टि से पदार्थ अनादि और अनन्त है।

अतीतानागत पर्याय विशिष्ट वस्तु की अनादिता और अनन्तता—यहाँ यह शंका न करना कि पदार्थ को त्रिकाल विषयक कहा तो उसमें अर्थ आया कि पदार्थ अतीत भी रहा, पदार्थ अनागत भी है। सो जो अतीत है वह अनन्त कैसे ? जब बताया कि व्यतीत हुआ तो व्यतीत का ही अर्थ है कि अन्त हुआ। अनागत कहने में मतलब हुआ—आया ही नहीं तो उसका अर्थ है कि अनादि न हुआ आदि उसकी आ गई। तो यों पदार्थ त्रिकालवर्ती हो ही नहीं सकता, फिर स्पर्शन प्ररूपणा का विषय ही क्या रहेगा ? इस शंका के उत्तर में सोचना चाहिये कि अतीत और अनागत मानने से आदि अन्त कैसे आ सकता है ? जिस स्वरूप से अतीत मानते उसी स्वरूप से अनन्त कहें तो विरोध मानिये। अतीत का अर्थ है गुजर गया। पहली पर्याय गुजर कर अन्य हुई, फिर वह गुजरी अन्य हुई उसका जब शुरू से

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

काल हो नहीं है, अनादि से गुजरती चली आ रही है, उसकी संतान है, व्यतीत होने पर भी संतति तो अनादि से है तो अनन्त कैसे न कहलायेगी ? अनागत है उससे आदि कैसे बन जायेगा ? पर्याय नहीं आयी इसका अर्थ है कि आवेगी। तो अनन्त पर्यायें अतीत में हुई। अनन्त पर्यायें भविष्य में होंगी, और ऐसी अनन्त कि जिनका न अतीत में अन्त आये और न भविष्य में अन्त होगा। इस प्रकार द्रव्य दृष्टि से वस्तु की पहिचान होती है, और फिर जो पर्याय हुई वह वस्तु से सर्वथा भिन्न ही तो नहीं। भले ही पदार्थ में इस समय वर्तमान पर्याय है, अतीत और भविष्य में पर्याय नहीं है, लेकिन जो अतीत में पर्याय हुई, भविष्य में पर्याय होवेगी वह इस वस्तु से सर्वथा भिन्न नहीं है। भले ही वस्तु में अतीतपना है और भविष्यपना भी है, पर इससे अनन्तपना और अनादिपना मिटता नहीं है। वस्तु अनादि अनन्त है। वही त्रिकाल विषयक हो सकता है। तो जब वस्तु तीन काल में रहता है तो वस्तु में स्पर्शन का विरोध नहीं रहता।

विविध प्ररूपणाओं से जीव तत्त्व के वर्णन से जीव तत्त्व की श्रद्धा की पुष्टि— स्पर्शन का ही अर्थ है जो त्रिकाल क्षेत्र का स्पर्शन बतावे उसको स्पर्शन अनुयोग कहते हैं। क्षेत्र और स्पर्शन का का उदाहरण यों समझ लीजिए कि जैसे जो मनुष्य जिस शहर में उत्पन्न होता है उस मनुष्य का वह शहर क्षेत्र है, विहार करता है, घूमता है, तो सारे शहर में उसका आवागमन चल रहा है। यह तो हुआ उसका क्षेत्र। अब किसी कारण से इसको बहुत दूर जाना पड़ा, कोई इसकी मंशा भी न थी, पहुंचना पड़ा और वहाँ अधिकार है नहीं कि वहाँ रह सके। लौटकर आना पड़ा तो इसको कहेंगे कि वह इस जगह को छूकर आया। तो ऐसे ही समस्त तत्त्वों की, वस्तुओं की बात कही जाएगी कि वह वर्तमान में कहाँ तक रहता है और अतीत अनागत काल में कहाँ तक जगह छू सकता है यह ही क्षेत्र प्ररूपणा और स्पर्शन प्ररूपणा का प्रयोजन है। यह प्ररूपणावस्तुओं का परिचय कराने के लिए है। इसमें यद्यपि व्यवहारिक परिचय चल रहा है पर इससे पदार्थ की मुद्रा तो समझ में आती और जब व्यवहार दृष्टिको गौण कर ऐसे परिचित तत्त्व स्वभाव पर दृष्टि दी जाय तो प्रयोजन भूत तत्त्व ग्रहण में आ जाता है। जीव किस तरह की परिणति में है, किस आकार में है, किस भाव में है और यह कहाँ तक रहता है और किन-किन स्थितियों में कहाँ तक जगह छू आता है, इन सब बातों की प्रसिद्धि एक जीव तत्त्व के व्यवहारिक परिचय में उपयोगी है। इस तरह सही बात का ज्ञान भी होता है। जैसे चार्वाक कहते हैं कि जीव कुछ नहीं है, केवल एक शरीर की बिजली है। तो ऐसा जड़ एकान्त का निराकरण हो जाता है क्षेत्र और स्पर्शन प्ररूपणा की बात समझने से। स्वतंत्र है जीव। भले ही शरीर में बंधा हुआ है फिर भी शरीर से अधिक जगह, अन्य जगह जब इसका गमन होता है तो शरीर मात्र ही जीव कैसे कहा जाएगा ? एक एक जीव की यात्रा निवास बताने से यह भी सिद्ध होता है कि प्रत्येक जीव स्वतन्त्र है और ऐसे अनन्त जीव हैं। केवल एक ही ब्रह्ममात्र है, जिसकी मुद्रा कुछ नहीं, ऐसा जीव का स्वरूप नहीं इन प्ररूपणाओं से वस्तु का व्यवहारिक परिचय भी होता है और अनेक कुवादों का निराकरण भी हो जाता है। तो इस प्ररूपणा द्वारा वस्तु का त्रिकाल विषयक लोक के स्थानों का स्पर्शन बताया गया है।

तत्त्वों के अधिगमोपायमें काल प्ररूपणा का स्थान जिन ८ अनुयोगों द्वारा वस्तु का परिचय कराया जाएगा उनमें से सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन इन चार अनुयोगों के स्वरूप का तो अब तक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वर्णन किया गया है। अब काल प्ररूपण के सम्बन्ध में प्रकाश डाला जा रहा है। काल कहते हैं वस्तु की मर्यादा को, अथवा स्थित रहने वाले पदार्थ की अवधि को जो दिखाए उसको काल कहते हैं। ठहरना और समय इन दोनों में अन्तर है। अन्यथा जब कोई कहता है कि यह कितने समय तक ठहरेगा तो इसमें ठहरने और समय दो की बात अलग क्यों कहीं जाती है। तो ठहरने वाले पदार्थ में जो अवधि को को दिखाता है उसे काल कहते हैं। अवधि को दिखाने वाला काल व्यवहार काल है और मुख्य काल हुए बिना व्यवहार काल बन नहीं सकता, इससे सिद्ध होता है कि निश्चय काल द्रव्यभूत है और व्यवहार काल कालद्रव्य की पर्याय का संग्रह रूप है। पदार्थ का परिणमन का साधारण हेतु काल द्रव्य है। काल द्रव्य भी नहीं, किन्तु काल द्रव्य की पर्याय है। काल द्रव्य की पर्याय केवल समय होती है। अब उन समयों को कोई संग्रह कर बताए तो वह व्यवहार काल बन जाता है। तो काल प्ररूपण के द्वारा यह बताया जाएगा कि विवक्षित तत्त्व कितने समय तक रहता है। यहाँ यह न समझना चाहिए कि निर्देश स्वामित्व आदिक सूत्र स्थिति शब्द से जो कहा गया वही काल शब्द से कहा जा रहा है। स्थिति शब्द से तो उसका ठहरना मात्र बताया गया है और काल शब्द से एक एक समय तक की अवस्था बतायी जाती है। अर्थात ठहरने वाले पदार्थ में उनके ठहरने की जो मर्यादा बतायी है वह काल कहलाता है। यहां शंकाकार कहता है कि जो ठहरने की क्रिया है वही काल कहलाता है। व्यवहारकाल और निश्चयकाल कुछ अलग चीज नहीं है चीज है, समय है और ठहरने की जो क्रिया कराया बस वह ही व्यवहार काल है। उसके अतिरिक्त कोई मुख्य काल नहीं है। जैसे कि लोगों को कुछ प्रत्यक्ष में भी नहीं आता कि वह काल द्रव्य है, मुख्य काल है। सब मिनट, घड़ी, घण्टा, दिन, माह, वर्ष इससे ही परिचित हैं। इसके अतिरिक्त कोई मुख्य काल द्रव्य है या प्रत्येक लोकाकाश के प्रदेश पर एक एक कालाणु ठहरा है रत्नों की राशि की तरह, ऐसा कुछ प्रतीति में नहीं आता। इस शंका के समाधान में विचार करें कि जो वर्ष, माह आदिक का काल है वह तो आपेक्षिक काल है। कल्पना कर समझा हुआ काल है। व्यवहार काल है। व्यवहार काल मुख्य काल के हुए बिना बन नहीं सकता। जैसे भले ही किसी बालक को कह दें कि यह बालक तो आग है, क्रोधी था बालक। उसकी विशेषता कह रहे थे। बालक तो आग है, तो आग कोई मुख्य चीज है तब ही तो ऐसा कहा जाएगा। किसी मुख्य के माने बिना व्यवहार उपचार नहीं किया जा सकता। तो जो एक एक समय की बर्तना है वह तो है वास्तव में सही पर्याय और वह बर्तना, जिसकी परिणति है वह है काल द्रव्य। याने समय मात्र परिणति के स्रोत को काल द्रव्य कहते हैं। काल द्रव्य की प्रति समय समय नामक पर्याय है। अब समय अनेक मिल गए। असंख्यात समय मिल गए उनको कहा आवली। तो अब यह काल्पनिक चीज चली। वस्तुतः तो समय नाम की पर्याय कालद्रव्य की पर्याय है और यह समय नामक पर्याय प्रत्येक पदार्थ की उस समय की बर्तना का कारण है। अब उन समयों को, उन वर्तनाओं को संग्रह करके समझा जाय तो वह सब व्यवहार काल है और परिणमन का जो आधार है वह मुख्य काल है। मुख्य काल है तब व्यवहार काज समझा जा रहा है। यह कहना युक्त नहीं है कि जो ठहरने की क्रिया है उसी का नाम ही काल है। क्रिया मात्र को काल नहीं कहते, किन्तु काल नाम का कोई मुख्य द्रव्य है जिसका कि वर्तना लक्षण है।

प्रत्येक पदार्थ की परिणति के साधारण निमित्तभूत काल की प्ररूपणा की संगतता—काल अनुयोग द्वारा वस्तु का प्ररूपण किए बिना वस्तु ठहर नहीं सकती। व्यवहार में भी तो किसी भी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पदार्थ को देखकर यह कब तक ठहरेगा, कब से बना हुआ है, ऐसा बोध लोग करते ही हैं। तो काल को समझे बिना कुछ परिचय नहीं बनता। किसी मनुष्य को बालक समझना है तो काल परिचय जरुर करना पड़ता है। यह किस उम्र का है। यह किस पन में चल रहा है ? स्थूल रूप से काल द्वारा परिचय वस्तुओं का होता ही है। कुछ भाव पहले हो, कुछ भाव बाद में हो, कौन भाव कितने समय तक रहता है ऐसा परिचय किए बिना कुछ समझ स्पष्ट नहीं होती जैसे मिथ्यात्व कब तक रहता है? सम्यक्त्व कौन सा कब तक रहता है ? संसारी जीव मुक्त जीव कैसा कब तक रहा करता है यह सब समझे बिना उनका प्रयोग भी ठीक समझ में नहीं आ सकता। लोक में भी देखा जा रहा है कि जो किसी को कहता है यह जेठा है, यह लघु है, तो यह काल के बिना कैसे हो सकता है ? यह दो वर्ष पहले उत्पन्न हुआ था इस कारण यह ज्येष्ठ है, यह इसके पश्चात् दो वर्ष बाद हुआ इस कारण यह लघु है। तो ज्येष्ठपन, लघुपन इन सब ज्ञानों का कारण तो वे परिणाम हैं जो काल के कारण से हुए हैं। तो यद्यपि सभी पदार्थ अपने स्वभाव में व्यवस्थित हैं, अपने ही परिणमन में हैं फिर भी वह परिणमन अहेतुक नहीं है। परिणमन के कारण दो प्रकार के होते हैं। (१) साधारण, (२) असाधारण। साधारण तो काल द्रव्य है और साधारण कारण उपादान निमित्त सामग्री, ये परिणमन के विशेष कारण हैं। साधारण कारण न हों तो विशेष कारण उत्पत्ति के साधन नहीं हो सकते। इस कारण साधारणभूत काल का मानना आवश्यक ही है और इस काल के द्वारा जीवादिक तत्त्वों की प्ररुपणा की जाएगी। यदि प्रतीति के अनुसार स्वभाव की व्यवस्था नहीं मानते तो जगत के किसी भी पदार्थ की सत्ता सिद्ध नहीं कर सकते। यदि काल द्रव्य न माना जाय तब यह परिणमन कहाँ से हो सकेगा कि अमुक खट्टा था अब मीठा हो गया। परिणमन है तब तो यह दशा बन रही है। परिणमन न हो तो अज्ञानी जीव अज्ञान से हटकर ज्ञान ज्योति में कैसे आयें ? परिणमन ही तो हुआ। और व्यवहार काल निश्चय काल के बिना नहीं हो सकता। इससे जैसे जीवादिक पदार्थों की परिणति स्वयं चल रही है, उसका उपदान कारण काल नहीं है, और न विशेष कारण काल है। किन्तु साधारण निमित्त अवश्य है। जैसे कोई पदार्थ गमन करे तो गमन करने वाले पदार्थ का उपादान तो वही पदार्थ है जो गमन कर रहा है और विशेष कारण उसकी योग्यता, आधार, सामग्री ये सब विशेष कारण हैं। किन्तु सामान्य कारण धर्म द्रव्य न हो तो विशेष कारण जुटने पर भी गति नहीं हो सकती थी। इसी प्रकार देखा तो जाता है यह कि किसी वस्तु के परिणमन का कारण सामग्री विभिन्न होती है। भले ही ये सब असाधारण कारण हों। लेकिन एक साधारण कारण काल द्रव्य के हुए बिना पदार्थ का परिणमन सम्भव नहीं है तो मूल में निश्चय काल द्रव्य है। उसकी एक एक समय पर्याय है और उस समयों का संग्रह रूप व्यवहार काल है। उस व्यवहार काल के द्वारा वस्तुओं की अवस्था बताई जायगी।

स्थिति और काल में अन्तर बताते हुए काल प्ररूपणा के स्वरूप के वर्णन का उपसंहार— काल प्ररूपणा में व्यहारिक काल की दृष्टि से पदार्थ की ठहरने की अवधि बतायी जायगी तो यह व्यवहार काल और निर्देश स्वामित्वादिक सूत्र में कही गयी स्थिति इन दोनों में अन्तर है सामान्य विशेष, का कारण कार्य का। स्थिति तो सामान्य रूप है और काल उसमें विशेषताओं को बताता है। काल तो यहाँ कारण रूप है और स्थिति कार्यरूप है। व्यवहार काल न हो तो स्थिति कैसे बनेगी ? इस तरह स्थिति और काल में अन्तर है, तथा इस तरह भी स्थिति काल का अन्तर समझा जा सकता हैं कि इन दोनों पदार्थों की समान काल में स्थिति है। अगर स्थिति और काल दोनों का एक अर्थ होता

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो काल और स्थिति दो शब्द कहने की क्या जरूरत थी ? और काल विशेषण बनाया और स्थिति विशेष्य बनाया, इस तरह काल विशेषण देकर स्थिति कहने की पद्धति ही यह सिद्ध करती है कि काल से प्रयोजन है खास अवस्था का और स्थिति से प्रयोजन है ठहरने मात्र का। तो विशेषण से विशेष्य भिन्न होता ही है। तो यहाँ विशेषण रूप से उपस्थित किया गया काल विशेष्य रूप से उपस्थित किये गये स्थिति से जुदी चीज है। तो निश्चय काल द्रव्य का जो परम सूक्ष्म परिणमन है परिणमन तो एक ही प्रकार है। छोटा होते होते सबसे अन्त में जो परम सूक्ष्म काल होता है वही सम्पूर्ण क्रिया का मूल आधार निमित्तभूत होता है और फिर उसके आधार से आवली मुहूर्त आदिक काल समझ लिया जाता है, और फिर उन व्यवहार काल से वस्तुओं की अवस्था का परिचय कराया जाता है। यद्यपि वस्तुओं में उस अवस्था रूप से परिणमन करें ऐसी उनकी ही योग्यता है, किन्तु परिणमन का हेतु भूत तो काल का गुजरना ही है, इस कारण उनके परिणमन की अवस्था का कारण काल होता है। ऐसे इस प्ररूपणा द्वारा समस्त वस्तुओं का परिचय कराया जायेगा।

अन्तरानुगम का स्वरूप और अन्तरानुगम की कालानुगम से भिन्नता—अधिगम के उपायों में अब तक सत् संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल इन ५ अनुयोगों का स्वरूप बताया गया। अब अन्तरानुगम का स्वरूप कहते हैं। पदार्थ अपने कारणों से उत्पन्न होता है। यहाँ पदार्थ से मतलब द्रव्यपना नहीं किन्तु द्रव्य की अवस्था में, पर्यायें अपने कारण से उत्पन्न होती हैं। कोई पदार्थ उत्पन्न हुआ और कारणवश उसका विनाश हो गया तो फिर आगे कभी वही अवस्था उत्पन्न हो ऐसी स्थिति आये तो इस प्रसंग में जब पुनः उत्पन्न हो, इससे पहले जो अन्तर पड़ता है, विरह पड़ता है उसको अन्तर कहते हैं। जैसे किसी जीव को सम्यक्त्व उत्पन्न हुआ और कारणवश सम्यक्त्व मिट गया, मिथ्यात्व भाव में भ्रमण हुआ ओर सुयोगवश फिर कभी सम्यक्त्व उत्पन्न हो तो बीच में जितने काल सम्यक्त्व रहा उतने काल को मिथ्यात्व का अन्तर काल कहते हैं। शंकाकार कहता है कि वह अन्तर का समय भी आखिर काल ही रहा तो कालानुगम से अन्तरानुगम में कोई भिन्नता न रही। जैसे काल प्ररूपणा द्वारा काल को जानते हैं उसी काल-प्ररूपणा के द्वारा इस विरह को भी जगा लेंगे तो विरह को जानने के लिये अन्तरानुगम प्ररूपणा बताना अलग से आवश्यक नहीं है। इसके समाधान में कहते हैं कि काल में और अन्तर में भेद है। काल तो निरन्तर स्थिर बना रहने की ही सूचना करता है किन्तु अन्तर में विरह काल की सूचना करता है। जबकि वह पदार्थ न रहा ऐसा समय कितना गुजरा ऐसे विशेषण वाले काल की सूचना करता है। तो विरह वाले काल की सूचना करना और ठहरे रहने वाले काल की सूचना करना ये दो बातें हैं पृथक हैं, इसलिये अन्तरानुगम, कालानुगम से पृथक चीज है और अन्तरानुगम द्वारा पदार्थों का परिचय होता है।

अन्तरानुगम से विरह काल की सूचना अब शंकाकार कहता है कि अन्तर का अर्थ केवल विरह काल ही तो नहीं है। अन्तर के तो अनेक अर्थ हुआ करते हैं जैसे छिद्र है, मध्य है, बाहर है, पास है, भीतर है इस तरह अन्तर शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। किसी काष्ठ में अन्तर पड़ गया अर्थात् भीतर में छिद्र है, समुद्र के अन्तर में पर्वत है। यह मध्य अर्थ हो गया, ग्राम के अन्तर में कुएँ हैं यहाँ अन्तर का बाह्य अर्थ हो गया। जहाँ ग्राम समाप्त होता है वहीं निकट में कुएँ हैं तो इस प्रकार अन्तर के अनेक अर्थ हैं, उनमें से अन्य अर्थ को क्यों छोड़ दिया और विरह काल को ही क्यों लिया गया ? विरहता की भी दृष्टि से देखें तो जहाँ छिद्र कहा, वहाँ विरह अर्थ आ जाता है। काष्ठ का छिद्र है, अर्थात् उस जगह

http://www.jainkosh.org

काष्ठ का वियोग है। इस तरह किसी भी प्रकार से उनमें विरह अर्थ भी आ जाता है, फिर क्या वजह है कि अन्तर अधिगम से केवल काल के विरह की बात कही गई है। और अन्य अर्थ छोड़ दिया गया है। इस शंका के समाधान में कुछ तर्कणा करने से यथार्थता विदित हो जायेगी कि यहाँ अन्तर से मतलब विरह काल का ही लिया गया है और वही उपयुक्त होता है। जैसे अन्तर में विरह काल मुख्य अर्थ होता है इस तरह छिद्र मध्य आदिक में विरह काल मुख्य अर्थ नहीं आता है। वहाँ अन्य चीज है। जैसे सागर के बीच पर्वत है तो इसको कोई सागर का अन्तर रूप से नहीं देखता, किन्तु सागर के मध्य में पर्वत है ऐसे पर्वत के सद्भाव रूप देखता है। पर यहाँ अन्तरानुगम में बात यह दिखाई गई है कि उस पदार्थ की शक्ति तो नष्ट होती जब वह पर्याय भी न रही शक्ति रूप से रहने वाले उस द्रव्य में पुनः उस पर्याय की उत्पत्ति होती है। तो भीतर में जितने समय उस पर्याय का असद्भाव रहा उतने समय को विरह काल कहते हैं और यह विरह काल अन्तर प्ररूपणा में मुख्य उपयोगी है। कदाचित् छिद्र को द्रव्य का विरह कह दें, जैसे काष्ठ में छिद्र है तो यही तो अधिक से अधिक बताया जा सकता है कि इस ओर काठ है उस ओर काठ है, चारों ओर काठ है और बीच में काठ का वियोग है, लेकिन ऐसा द्रव्य विरह का कोई उपयोग वस्तु-प्ररूपणा में नहीं होता। यह तो काल प्ररूपणा द्वारा पर्याय की अवधि बताकर अन्तर बताया गया है कि वह पर्याय न रहे, पुनः आये तो बीच में अन्तर कितना पड़ता है। तो विरह काल ही अन्तर का प्रधान अर्थ है लोक व्यवहार में भी प्रधान अर्थ है और इस प्रकरण में भी वही उपयुक्त है। इस अन्तर प्ररूपणा के द्वारा जो वक्तव्य होगा उससे बहुत परिचय होगा। किसी सम्यग्दृष्टि जीव के सम्यक्त्व न रहे और पुनः सम्यक्त्व आये तो कम से कम कितने काल विरह रहे, अधिक से अधिक कितने काल विरह रहे आदिक अनेक तत्त्वों का वर्णन होगा। इस तरह यहाँ अन्तरानुगम का प्ररूपण उपयोगी है और इसके द्वारा अनेक प्रयोजनीभूत तत्त्वों का परिचय होता है।

भावानुगम की उपयोगिता – अब ७वीं प्ररूपणा भाव के विषय में कहते हैं। भाव प्ररूपणा द्वारा यह वर्णन होगा कि इसमें औपशमिक भाव है, क्षायिक भाव है, क्षायोपशमिक भाव है, औदयिक भाव है, अथवा पारिणामिक भाव है। जीव तत्त्व में औदयिक आदिक भावों की प्रतिपत्ति करने के लिये भाव प्ररूपणा बतायी गई है। यहाँ कोई शंका कर सकता है कि भाव का वर्णन तो पहले नाम स्थापना आदिक सूत्र में हो गया है। निक्षेप चार प्रकार के कहे गये हैं—(१) नाम, (२) स्थापना, (३) द्रव्य और (४) भाव। तो जब भाव के द्वारा पहले ही ज्ञान कर लिया गया। व्यवहार कर लिया गया। तो इस भाव को यहाँ पुनः कहने की आवश्यकता क्या रही? भाव का प्ररूपण पुनरुक्त हो गया। उसका समाधान यह है कि निक्षेपों से जो भाव का कथन है वह तो पर्याय रूप का कथन है। वर्तमान में जिस पर्याय में हैं उस पर्याय से उपलक्षित वस्तु का वर्णन करना भाव निक्षेप द्वारा व्यवहार है। पर यहाँ तो विशिष्ट भाव की बात कही जायेगी। जीव में वर्तमान भाव किस प्रकार का चल रहा है? औपशमिक आदिक भाव कौन से हैं? इस तरह विशिष्ट भाव का वर्णन इस भाव प्ररूपणा में किया जायेगा। भाव प्ररूपणा से कितनी विशेषताएँ जीव तत्त्व में ज्ञात होंगी। जीव का अन्दरुनी स्वरूप ही एकदम प्रकट कर दिया जायेगा, क्योंकि भाव प्ररूपणा में ५ प्रकार के भाव तो मूल हैं, पर इनमें संयोगी भाव बहुत हैं। जैसे औपशमिक भाव, क्षायिक भाव ये दोनों भाव भी किसी एक जीव में मिलते हैं तो परिचय होता है कि कोई जीव यदि क्षायिक सम्यग्दृष्टि है और वह उपशम श्रेणी में चढ़ा तो चारित्र मोह की अपेक्षा औपशमिक भाव हो गया और दर्शन मोह की अपेक्षा क्षायिक भाव हो गया। और, इस

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तरह दो भावों का सन्निपात, तीन भावों का सन्निपात, चार भावों का सन्निपात और ५ भावों का सन्निपात इस तरह अनेक संयोगी भावों का भी परिचय होता है। और, फिर उन भावों के भेद प्रभेदों का और सम्बन्ध जोड़ा जाये तो कितनी ही तरह से भाव प्ररूपणा द्वारा जीव की अन्दरूनी स्थिति का परिचय हो जाता है। भाव प्ररूपणा जीव तत्त्व के बारे में परिचय के लिये बहुत उपयोगी है, इसी भाव प्ररूपणा द्वारा परम शरणभूत पारिणामिक भाव का भी परिचय होता है।

औदयिकादि भावों का संक्षिप्त स्वरूप - औदयिकादिक भावों का स्वरूप क्या है ? औदयिक भाव—कर्म प्रकृतियों के उदय होने पर जो भाव होता है वह औदयिक भाव है। दर्शन मोह का उपशम हो तो औपशमिक सम्यक्त्व हो, चारित्र मोह का उपशम हो तो औपशमिक चारित्र होता है। क्षायिक भाव का अर्थ है—कर्म प्रकृतियों के क्षय से जो जीव में भाव प्रकट होता है वह क्षायिक भाव है। जैसे केवल ज्ञानादिक। क्षायोपशमिक भाव का अर्थ है कि कुछ प्रकृतियों का उदयाभावी क्षय है और सम्बन्धित प्रकृति का उपशम और उदय है, ऐसा भी क्षायोपशमिक होता है और एक ही प्रकृति में सर्वघाती स्पर्धकों का उदयाभावी क्षय है और उन्हीं का उपशम है जो कि आगे उदय में आ सकता है वह न आ सके ऐसा उपशम है, और देशघाती स्पर्धकों का उदय है ऐसी स्थिति को क्षयोपशम कहते हैं। कर्म प्रकृतियों का ऐसा क्षयोपशम होने पर जो जीवभाव होता है वह क्षायोपशमिक भाव है। औदयिक भाव कर्म-प्रकृतियों के उदय होने पर होने वाले भाव को कहते हैं। जैसे क्रोध प्रकृति का उदय हुआ तो जीव में क्रोध भाव हुआ, पारिणामिक भाव जो उदय उपशम, क्षय, क्षयोपशम की अपेक्षा न रखकर उत्पन्न होता है। वह पारिणामिक भाव है। तो पारिणामिक भाव में जो भव्यत्व अभव्यत्व है वह तो अशुद्ध भाव है। शुद्ध पारिणामिक जीवत्व भाव है, याने जीव चैतन्य स्वरूप से अनादि अनन्त रहता है, जीवता है ऐसा होने में न कर्म का उदय कारण है न उपशम आदिक कारण है, तो यही जीवत्व भाव जो सहज भाव है इसकी दृष्टि होना यह ही सम्यक्त्व का कारण होता है, और इस ही में परम सन्तोष प्राप्त होता है तो भाव प्ररूपणा के द्वारा जीव तत्त्व के बारे में प्रयोजनभूत विशेष परिचय प्राप्त हो जाता है।

पदार्थ परिचय में अल्प बहुत्वानुगम की उपयोगिता—अब अल्प बहुत्व नामक ८वाँ अनुयोग बतलाते हैं, अल्प बहुत्व प्ररूपणा द्वारा यह बताया जायेगा कि यह चीज इससे थोड़ी है और यह चीज इससे बहुत है, जैसे कि संख्या प्ररूपणा द्वारा बताया गया था कि यह इतनी संख्या में है, यह इतनी संख्या में है। अल्प बहुत्व में उस ही गणना द्वारा बतायी गई वस्तुओं में यह बताया जाता है कि यह इससे कम है यह इससे बहुत है। इससे यह शंका न करना चाहिये कि ऐसी संख्या तो संख्या प्ररूपणा में कह दी गई है, फिर अल्प बहुत्व कहने की क्या आवश्यकता है ? अल्प बहुत्व और संख्या प्ररूपणा में यह अन्तर है कि संख्या प्ररूपणा तो उनकी गणना मात्र करती है कि मनुष्य इतने हैं, नारकी इतने हैं आदिक, किन्तु अल्प बहुत्व गणना किये गए पदार्थों में ही ये इससे थोड़े हैं ये इससे अधिक हैं, जैसे यों कहना कि मनुष्य असंख्याते हैं, उनसे अनन्त गुने नारकी हैं, उनसे असंख्यात गुने देव हैं और उनसे अनन्त गुने तिर्यञ्च हैं। यह तो हुई गणना की बात। और अल्प बहुत्व में यों कहना कि सबसे कम मनुष्य हैं, उनसे ज्यादह नारकी हैं, उनसे ज्यादह देव हैं ·····' तो गणना में तो सीधी गणना है, और गणना किये गये को, उस पिण्ड संख्या को एक दूसरे से छोटा बड़ा बतलाना यह अल्प बहुत्वप्ररुपणा का काम है। कोई सोच सकता है ऐसा कि संख्या भी तो इसी को कहते हैं कि विशेष रूप से पदार्थों की गणना करना, और अल्प बहुत्व का अर्थ है कि पिण्ड रूप से पदार्थों की गणना करे तो इस

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अल्प बहुत्व की संख्या प्ररूपणा से अतिरिक्तपना क्या आया? विवेकी पुरुष समाधान में यह तुरन्त सोच सकते हैं कि शंकाकार के शब्दों ने ही भेद दर्शा दिया। गणना में तो विशेष रूप से गणना की गई, किन्तु अल्प बहुत्व में पिण्ड रूप से दर्शाया गया है। तो यदि यहाँ अल्प बहुत्व न माना जाये तो यह बतलाना कि यह संख्या का पिण्ड है और यह संख्या है, यह कैसे समझा जायेगा? संख्या पिण्डों में ही तो संख्या पिण्डता के कारण अल्प बहुत्व बनता है। रुपये पैसे की विशेष गिनती कर ली और अलग-अलग धर दिये गये, २०) की गड्डी, २५) की गड्डी तो यह हुई उसकी गणना और उसमें बताना पिण्ड रूप से कि यह इससे कम है, यह इससे ज्यादह है. तो ऐसा जो व्यवहार में अल्प बहुत्व का प्रयोग होता है वह व्यवहार मिट जायेगा। व्यवहार तो मिटता नहीं, व्यवहार ही सिद्ध करता है कि कहाँ किसे घटाना? सही समझना चाहिये। तो इस प्रकार अल्प बहुत्व प्ररुपणा करना बिल्कुल युक्ति संगत है।

सदादि आठ अनुयोगों द्वारा तत्त्वार्थाधिगम के प्रसिद्ध करने का उपसंहार—अच्छी तरह युक्ति सिद्ध सत् आदिक ८ अनुयोग स्याद्वादनय से प्रसिद्ध हुये समस्त पदार्थों के परिचय के कारणभूत हैं। इन अनुयोगों द्वारा पदार्थों का निश्चय होता है। तो इसमें क्रम तो देखिये जैसे सूत्र में क्रम दिया है वह क्रम जिज्ञासा को शान्त कर देने वाला है। सर्वप्रथम पदार्थ का सत् द्वारा निश्चय होता है। है तब तो उसके बारे में अन्य कुछ कहा जायेगा। तो सत्त्व से निश्चित हुआ पदार्थ, फिर संख्या द्वारा जाना जाता है कि ये कितने हैं, तब संख्या द्वारा पदार्थ का परिचय हो जाता है, तब उनका वर्तमान क्षेत्र कहा जा सकता है, क्योंकि वर्तमान निवास की सीमा में संख्या और प्रत्येक के शरीर की अवगाहना की प्रतिपत्ति भी सहयोगी होती है। तो संख्या द्वारा निश्चित होने पर फिर क्षेत्र से जाना जाता है। क्षेत्र से जानने के बाद स्पर्शन से समझा जाता है, फिर काल से समझा। जब किसी पदार्थ को, पर्याय को काल से समझ लिया गया तब उनको अन्तर में समझा जाता है। फिर भावों से समझिये सब तरह से समझ चुकने के बाद फिर अल्प बहुत्व से जाना जाता है। इस प्रकार प्रश्नवश से कहो, ऐसी ही जिज्ञासायें हुआ करती हैं उसके अनुसार इन सत् संख्या आदिक अनुयोगों का क्रम बहुत ही संगत रखा गया है। अब इन सत् संख्या आदिक आठों ही अनुयोगों के द्वार से पदार्थ का पर्याय का परिचय चलेगा, जिसमें जीव तत्त्व के परिचय में गुणस्थान और मार्गणाओं की पद्धति विशेष होती है। इस सम्बन्ध में गुणस्थान में मार्गणायें और मार्गणाओं में गुणस्थान की दृष्टि करके उनका सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन आदिक सब समझा जायेगा। जैसे गति की अपेक्षा नरक आदिक में सम्यग्दृष्टि का सत् संख्या किस प्रकार है, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टियों का संख्या क्षेत्रादिक किस प्रकार है, यों सामान्य रूप से और विशेषरूप से जीव का ८ अनुयोगों द्वारा परिचय कराया जाता है।

सारभूत तत्त्व के परिचय के लिए सम्बन्धित गुण पर्यायों के विस्तृत परिचय की आवश्यकता— हम सब जीवों को सारभूत शरण परमात्मतत्त्व का परिचय होना आवश्यक है, अन्यथा जैसे कि हम संसार में रुलते चले आए, यह ही बना रहेगा। तो सारभूतशरण तत्त्व क्या है यह बात आध्यात्मिक शास्त्रों में भले प्रकार बताया है। और उसका कथन बहुत थोड़ा है, संक्षिप्त है, विस्तार नहीं बन पाता। मगर संक्षिप्त सारभूत बात को समझने के लिए साधन अधिकरण द्वारा परिचय बड़े विस्तार से करना होता है। जैसे सारभूत मक्खन है, घी है, उस घी को ग्रहण करने के लिए कितना दूध-दही का ग्रहण करना होता है, बिलोना होता है तब मक्खन और घी के दर्शन होते हैं, ऐसे ही सारभूत जो आत्मा का अवक्तव्य शाश्वत सहज स्वरूप है उसका परिचय पाने के लिए हमें परिचय दृष्टि से

जीव के बारे में बहुत बड़ा परिचय करना आवश्यक है। उससे फिर हम संक्षिप्त सारभूत को जान लें। जिन जिन पुरुषोंने सारभूत इस तत्त्वको जाना है,उन सबने गुणस्थान मार्गणाओं द्वारा जीव तत्त्व का बहुत परिचय किया है। जिन दार्शनिकों ने अपने यहाँ सारभूत बात को एकदम ही बहुत सर्वस्व कर बताया है और उसका विस्तृत परिचय का साधन भूत उपाय जो पर्याय परिचय द्वारा उसका निषेध कर दिया है उनके यहाँ सारभूत तत्त्व का उपयोग नहीं बन पाता। जैसे ब्रह्मवाद एक ब्रह्म है, अपरिणामी है, सदा रहने वाला है, अन्य कुछ है ही नहीं, इतने मान कथन का किसी ने अनुभव कर पाया क्या ? बचनों से बोल जाते हैं, पर अनुभव में उतरे यह बात जरा कठिन मालूम होती है। अथवा जिसके अनुभव से यह बात उतर भी जाय चिद्ब्रह्म के ढंग से तो भी उसने तब यह ज्ञानवृत्ति बनाया है कि जबकि जो पर्याय में बनता है उसका परिचय कर पाता है। तात्पर्य यह है कि पर्यायरहित केवल स्वभाव का परिचय करने के ढंग से रहने वाला इस परिचय में सफल नहीं हो सकता। तो मोक्षशास्त्र में रत्नत्रय धर्म की उपासना के लिए प्रारम्भिक विस्तृत सारभूत का श्रोतभूत का तत्त्व परिचय भली प्रकार कराया है धर्म क्या है ? सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चरित्र का एकत्व। सम्यग्दर्शन क्या है ? आत्मवस्तु का, खुद का, स्वयं का जो सहज स्वरूप है उसका ज्ञान द्वारा, उपयोग द्वारा अनुभव होना, दर्शन होना, प्रतीति होना सम्यग्दर्शन है। किन तत्त्वों का परिचय इसमें साधक है ? वे तत्त्व बतायें गए ७। जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, सम्बर, निर्जरा और मोक्ष। सामान्य रूप से कहना और उसका विशेष रूप से विवरण करना, सभी मोक्ष मार्ग की दृष्टि कराने वाला है, वह है ७ विषयक।

सप्ततत्त्व विषयक संक्षिप्त परिचय - खुद को जानें, खुद के साथ कोई दूसरी विरुद्ध चीज लगी है तब इस खुद में बड़ी गड़बड़ी चल रही है। उसे भी जानें। जब भी किसी में गड़बड़ी होती है तो कोई विपरीत का संग होता है तब गड़बड़ी होती है। समान विचार वाले, समान जाति वाले, समान ढंग के सब तर्कणाओं वाले उनमें संघर्ष नहीं होता। जहाँ कोई विरुद्ध विचार वाले संग में हैं वहाँ संघर्ष होता है। तो जीव की जो इतनी निकृष्ट दशा हो रही है, कहाँ तो यह आज मनुष्य है, कैसा मन है, कैसे वचन हैं, इस तरह बोलते हैं, जो कुछ भी इसका व्यवहार है, यह मनुष्य मरकर मानो दो इन्द्रिय बन गया, केचुवा बन गया तो क्या हाल होगा ? पैर भी नदारत। बस पड़े हैं वृक्ष की तरह। शरीर की थोड़ी विशेषता यह कि रेंगरेंगकर चल रहा। वचन क्या हैं ? कैसे बोलते हैं ? जीव तो हैं मगर वचन की कीमत कुछ नहीं है। कोई बता ही नहीं सकता। विशेष ज्ञान ही नहीं, तो ऐसी अनहोनी विकृत दशा बनती ? यह जीव ने अपने आप से बनाया क्या ? स्वयं के स्वभाव से नहीं, उसमें कोई परसंग निमित्त है, वही कहलाया अजीव। जो जीव में संघर्ष कराने का कारण हो वह अजीव है और जीव में अजीव का आना, अगर जीव और अजीव अलग अलग पड़े रहें तो कुछ विकार नहीं। बुराई यहाँ से प्रारम्भ होती है जीव में अजीव आया इसका नाम है आश्रव। जीव में कर्म आया, इस शुद्ध प्रतिभास स्वरूप जीव में विकार आया, तो यह सब आश्रव है और यह ही बात बंध जाय, इसका संस्कार बने, ये अजीव कर्म कुछ समय को ठहरे तो बंध हो गया। तो आश्रव बंध तो जीव के विकार के सहयोगी हैं और अविकार भाव में आने में सम्वर और निर्जरा सही होती है। कर्म न आ सके, अर्थात् अब कार्माणवर्गणा में कर्मपना न बने, जितने का न बने उतना हुआ सम्बर और जो कर्म पहले से बने हुए हैं वे झड़ जाए वह निर्जरा। जवि में अब अशुद्ध भाव न आए सो सम्बर और जो कुछ अशुद्ध का संस्कार चल रहा वह कटने लगे सो निर्जरा है और जब जीव केवल अकेला रह जाय: सारी उपाधियाँ

http://www.jainkosh.org

इसकी दूर हो जायें वह हुआ मोक्ष तो जीव को चाहिए शान्ति। शान्ति इसको है तो मोक्ष अवस्था में है, संसार अवस्था में शान्ति नहीं। यहाँ शान्ति ढ़ूँढ़ता है जहाँ शान्ति है नहीं, बस यही इसकी विडम्बना का कारण है।

सांसारिक समागम से सुख की चाह रखने की विपन्मूलता – जैसे किसी अपराध में बहुत बड़ा सेठ, रईस जेल खाने में चला जाय तो वह सी० क्लास का अपराध ऐसा ही था तो चक्की भी पीसे, रस्सी भी बटे, खेत भी गोड़े, सब तरह का काम करना पड़े,खैर कभी किया नहीं ऐसा तो उस सेठ को बहुत दु:ख तो है ही, उसको यहाँ यह करना पड़ रहा है, पर अपने घर के आराम पर उसकी दृष्टि है— मैं ऐसे आराम से रहता था, इतने नौकर हमारी आज्ञा में चलते थे, इन बातों का ख्याल कर करसे वह और अधिक दु:खी था। तो एक कोई दूसरा कैदी था, उसने पूछा कि यह तो बतलाओ कि तुम इस समय हो कहाँ ? सेठ बोला, जेलखाने में। — जेल खाने में हो ना, ससुराल में तो नहीं हो ? फिर यहाँ तुम्हें सुख कैसे मिलेगा ? जेलखाने में जो करना पड़ता है सो ही तो करना होगा। इतनी बात सुनकर सेठ की आँखें खुल गईं। मायने जो घर के सुख वातावरण का ध्यान रखता था वह छोड़ दिया। यहाँ तो ऐसा ही होता है, ऐसा ही करना पड़ता है। तो देखो उसकी आकुलता में कुछ कमी आयी ना ? तो संसार में रहकर यहाँ जो यह आशा बनाए कि मेरे को सुख मिले, एक दु:ख का कारण यह ही बहुत बना हुआ है। यह जाने कि संसार का स्वरूप तो ऐसा ही है, दु:खमय। यहाँ शान्ति आराम का कोई काम ही नहीं है। इतना सझझे कोई तो भी उसका दु:ख थोड़ा कम हो जाएगा। आशा तो बन गई संसार में रहकर सुख पाने की, फिर वह पौरुष कैसे बनाएगा संसार से हटकर आनन्द पाने की। इस ओर इस की दृष्टि जागेगी कि संसार में रह रह कर मैं आनन्द पाऊं। मौज बनाऊं संसार सुख की ओर ज्ञानी की उमंग न रहेगी, क्योंकि उसने संसार का सही स्वरूप जान लिया। तो लो सम्वर, निर्जरा, मोक्ष। यह है आनन्दमार्ग, मोक्ष में निराकुलता है।

प्रायोजनिक परिचय के लिए सम्बन्धित वस्तु का विस्तृत परिचय – प्रयोजनभूत तत्त्व का परिचय कराने के उपाय में कुछ सिलसिला होता, पद्धति होती, तो वह ही पद्धति इन दो सूत्रों में बताई है एक तो निर्देश स्वामित्व आदि हैं– दूसरा बताया सत् संख्यादि। छठे सूत्र में भी प्रमाण नयैरधिगमः इस सूत्र में भी तत्त्वार्थाधिगम का परिचय बताया तो है कि प्रमाण और नय से ज्ञान होगा मगर वस्तु की तारीफ इसमें नहीं आयी। केवल एक ज्ञानात्मक ही उपाय है, पदार्थ किस भाँति का है, उस उस ढंग से परिचय करने का संकेत इसमें नहीं है, किन्तु ज्ञानात्मक जो उपाय है उससे ज्ञान होगा, और निर्देश आदिक सूत्र में मुख्यता की बात कही है, पर इस ८ वें सूत्र में पदार्थ के स्वरूप की ही बात कही जाएगी। सत् उसका अस्तित्त्व समझना, यह है। सत् और निर्देश में बहुत अन्तर है। निर्देश में केवल तो जो वक्तव्य सत् रखा है उसका निर्देश करके संक्षिप्त लक्षण बंधा दिया। इतना ही उसका प्रयोजन है, पर सत् प्ररूपणा में तो किसी का भी वर्णन करना है, अनेक प्रकार से उसको सत् समझना है। जैसे मिथ्यादृष्टि का ही वर्णन करना है तो मिथ्यादृष्टि किस नीति में है, किस जाति में है, किस क्रम में है, किस योग में है, बहुत बहुत परिचय बनाना, यह सब सत् प्ररूपणा का कार्य है। पहले तो वस्तु है यह जाना, उसके बाद संख्या समझें कि यह कितनी गिनती है। फिर उसका क्षेत्र समझना, कहाँ इसका वर्तमान निवास है ? फिर स्पर्शन जानना, यह कहाँ कहाँ तक हो आया है, कहाँ कहाँ तक जा सकेगा ? काल—इसकी म्याद समझ लें कितने दिन तक ठहरेगा ? अन्तर—यह वस्तु न रही फिर आयी तो ऐसा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

में अन्तर कितना पड़ता है ? भाव—औपशमिक आदिक भाव जानना। अल्प बहु–यह इससे कम है यह इससे ज्यादह हैं, ऐसा तारतम्य जानना, इस उपाय से वस्तु का परिचय होता है और, जब अधिक विस्तार रूप में यह परिचय बनेगा तो उसमें हम बहुत सी बातें समझकर सार बात को ग्रहण करेंगे। अब एक जीव की बात रखें। जीव को समझना है तो जीव स्वभावतः कैसा है, यह तो सब कुछ समझने का एक फल है और वह वस्तुतः अवक्तव्य है, अनुभवगम्य है और उसके बताने वाले शब्द थोड़े हैं, उसका विषय बहुत नहीं है। वह लक्ष्यभूत है, उसको समझने के लिए वह कहाँ है ? किसमें पाया जाता है। यह सब व्यवहारनय का वर्णन उचित है, जबकि हम व्यवहार से बाहरी बाहरी परिचय में ही चले आ रहे और ऐसे परिचय में आए कि व्यवहार से भी और हटकर उपचार में आए। तो जहाँ उपचार से अपना परिचय बना रहे थे वहाँ उसको उपचार से ही, व्यवहार से ही कुछ थोड़ा तात्विक परिचय बनाना होगा और फिर वहाँ निश्चय से परिचय बनावें, फिर शुद्धनय से उसका दर्शन करें। तो व्यवहारनय से तत्त्व के परिचय की बात चल रही है।

वस्तु परिचय करने की ८ विधियाँ— लोक में भी किसी चीज का ज्ञान करते हैं तो ये ही ८ अनुयोग चलते हैं। मानों घर के बाबू जी एक थैला में केला लाए तो बच्चे लोग, या सभी लोग उसे समझना चाहें तो कितने ढंग से समझते हैं ? सत् केला है यह समझ लिया, उसके साथ और भी समझ लिया, उसके साथ और भी समझ लिया कि यह भुसावली केला है। यह बम्बई का केला है। यह डलपक केला है। यह गर्मी देकर पकाया गया केला है। जानना है तो उसी सत् को जरा और विशेष जानता है, साथ ही उनको देखकर इतना ज्ञान हो जाता कि नहीं ? होता ही है, इसके बाद संख्या पर दृष्टि जाती है कि ८ केले हैं, १२ केले हैं। गिनती भी गिन लेते हैं और यह यहाँ है। क्षेत्र इसका यह है, कहाँ से आए ? बाजार से लाए, वहाँ से लाए, कहाँ तक ये जाएंगे, उपयोग करेंगे। कुछ मामा के यहाँ भी भेज दिये जायेंगे, वहाँ तक भी जायेंगे। ये सारी बातें बोल नहीं सकते मगर ज्ञान में आ जाएंगी, जानकारी रहती है। ये दो दिन तक टिकेंगे। बाद में सड़ जायेंगे। आज खा लेंगे फिर कल इसी वक्त खाएंगे, इसमें अन्तर इतना पड़ेगा, १०-१२ घंटे बाद फिर आयेंगे। यो कुछ अन्दाज रहता है ना ? और कैसा है, क्या गुण हैं, क्या शक्ति है, और उनका अल्प बहुत्व। ये उनके अच्छे केले हैं, उनके बढ़िया केले हैं, यों तो बहुत सी बातों का ज्ञान होता है, तो इतनी विधियों से ज्ञान किए बिना परिचय नहीं बनता है, तो उसका ढंग वही है। देखिए सूत्र जी पढ़ते हैं पाठ करते हैं और पढ़ जाते हैं सत् संख्या क्षेत्र स्पर्शन कालान्तरभावाल्प बहुत्वैश्च। किसी को थोड़ा बहुत अर्थ का भी ज्ञान होता है, किसी को जरा भी ज्ञान नहीं है, कितने ही पढ़ने वाले लोग तो ऐसे हैं कि जो थोड़ा भी अर्थ नहीं समझते, सिर्फ श्रद्धा से पढ़ते जाते हैं। जो भीतर में उनकी श्रद्धा है जिस प्रकार की उस प्रकार का फल उनको प्राप्त होता है। पर इसमें क्या रहस्य है, किस ढंग से बनाया गया है, इसको समझें तो उसे बहुत बड़ा प्रसाद मिलेगा।

सत्यप्ररूपणा से मिथ्यादृष्टि का सामान्य परिचय— जैसे जीव को समझना है तो जीव आपको पर्याय रूप से १५ प्रकारों में मिलेगा। १४ गुणस्थान और एक सिद्ध भगवान। उसमें पहला प्रकार क्या है ? मिथ्यात्व, मिथ्यादृष्टि। मिथ्यात्व का क्या अर्थ है ? मिथ्यात्व का वास्तविक अर्थ झूठ नहीं। झूठ चूंकि वह बनता है, उसका परिणाम है झूठ, इसलिए उसका अर्थ झूठ कह देते हैं, यह बात मिथ्या है इसका अर्थ लोग कहते हैं यह बात झूठ है, पर मिथ्या का अर्थ झूठ नहीं है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मिथ्या का अर्थ है संयोगी। उन दो के संयोग में एकता की बुद्धि करें उसके मायने मिथ्यात्व। यह बनता है मिथ् धातु से, और मिथ् धातु का अर्थ है संयोग। जिससे कि मैथुन शब्द बना, उसी धातु से मिथ्या शब्द बना। तो जीव और शरीर का, जीव और कर्म का संयोग में एकत्व बुद्धि करना मिथ्यात्व है। कर्म को तो जानते ही नहीं। शरीर तो एक प्रकट स्पष्ट है। तो शरीर में और जीव में एकता मानना इसका नाम मिथ्यात्व है। तो सीधे सादे शब्दों में बताया है "देह जीव को एक गिने, बहिरातम तत्त्व सुझा है।" जो शरीर और जीव को एक मानता है सो मिथ्यादृष्टि है। यह मिथ्यादृष्टि जीव किस तरह से परिचय में आए। जरुरत क्या है इसका परिचय करने की। जिससे हटना है उसका भी परिचय चाहिए। जिसमें लगना है उसका भी परिचय चाहिए। केवल जिसमें लगना है उसका ही परिचय करें तो स्पष्ट परिचय नहीं होता। जहाँ से हटना है उसका भी ज्ञान हो, जहाँ लगना है उस का भी ज्ञान हो, जिस जगह से उठकर जहाँ पैर रखना है। देखिए दोनों का ज्ञान रखता है, मनुष्य तब अच्छी तरह पैर रखता है। अब जहाँ रखना उसका तो ज्ञान किया, और जहाँ से हटकर रखना है उसका कुछ सोचते ही नहीं, अगर बहुत दूर का स्थान जहाँ जाना है वह ही लक्ष्य में रहे, जहाँ से हटना है उसका कुछ भी परिचय न करें तब तो वह बीच में गिर पड़ेगा। जब सीढ़ियों से उतरते हैं और कदाचित पैर एक सीढ़ी छोड़कर एक पैर नीचे चला जाय तो वह गिर जाता है। कहाँ के हम हट रहे और कहाँ धर चल रहे, इन दो का ज्ञान नहीं किया तो गिर जाते हैं। तो स्पष्ट बोध करिए यहाँ से हटना, यहाँ रखना। हालाँकि बहुत कुछ अभ्यास के बाद जहाँ से हटना है उसका बोध गौण हो जाता है और जहाँ जाना है वह मुख्य हो जाता है। अगर पहले अच्छा खासा बोध किया था जहाँ से हटना है और अब गौण हुआ तो हानि नहीं, क्योंकि वह उपादेय चीज नहीं है। जहाँ से हमको हटना है वह साधनभूत नहीं है इसलिए उसे जानलें गौण करके, और जहाँ हमें लगना है, जाना है, रहना है, जो शान्ति का स्थान है उसकी समझ बनाना बड़ा मुख्य काम है, वह ठीक है, मगर जानकारी सब की हो पाप जानने में आया तो पाप से हम अलग हो बैठें, पाप को पाप ही न समझें तो उससे अलग कैसे हों ? जिसकी दृष्टि में अनछना जल कुछ मायने ही नहीं रखता, समझते ही नहीं, वे पीते रहते हैं हटेंगे कैसे ? जिन देशों में कुशील को पाप ही नहीं मानते, जो समझते ही नहीं कि यह पाप है तो न समझें, मगर पाप तो पाप ही है। लगेगा ही, और उन्हीं की छाया जब भारत पर आयी तो यहाँ भी नए-नए ढंग के कानून बनने लग रहे जो पहले न थे। तो जो नहीं समझते वे उससे हटें कैसे ? तो समझो कि मिथ्यात्व से हमें हटना है तो मिथ्यात्व की बात समझना है।

अपने धाम में छुपे हुए बैरी का परिचय— मिथ्यात्व क्या है, कैसा है, किस ढंग से होता कितने कारण हैं, जितना अधिक परिचय करें उतनी ही जल्दी उससे प्रीति हटेगी। बुरी बातों का गंदी बातों का जितना अधिक आप वर्णन कर डालेंगे उतना ही अधिक ग्लानि होगी, हटेगा चित्त। जो होना है वह होता रहेगा। तो सबसे गन्दी चीज है मिथ्यात्व, मोह। इस जीव के लिए परेशानी होने का मूल कारण है मोह। मोह किसमें हो रहा है ? धन वैभव, कुटुम्ब परिजन आदि में हो रहा यह तो बहुत मोटी बात है। देह में मोह हो रहा, और यश, कीर्ति इज्जत, प्रतिष्ठा आदिक में हो रहा अपने आप में विवेक हो, समझदारी हो, सबको कल्याणपथ में लगाने वाला हो आदिक जो विकल्प हैं ये भी घुन की तरह इसको बरबाद कर रहे हैं। समझ लीजिए कि मिथ्या प्रसंग कितना गहरा है। यह तो इतना गहरा होता कि बहुत उत्तम ढंग मुनिव्रत पाले, कोई दोष न आए, व्याख्यान भी अच्छे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

करे भेद विज्ञान की भी बात करे ज्ञानी भी मुनी है, और व्रत चारित्र भी अच्छा पाल रहा, पर कुछ कह नहीं सकते कि कोई सूक्ष्म ढ़ंग की मिथ्यात्व की बात बनी हो कि सम्यक्त्व न जग रहा हो तो यह हमारा छुपा हुआ बैरी है। खुला बैरी हो तो जरा सावधानी भी हो जाय, उससे लड़ने की तैयारी भी कर लें, मगर यह तो ऐसा छुपा हुआ बैरी है कि पता नहीं पड़ता, उसी ढंग में रहने में मोह की परेशानी में रहकर यह अपना यत्न कर रहा है। तो समझना होगा अपने आपके भीतर बात को। ये भीतरी बातें धन वैभव, सम्पदा, दुकान, इज्जत आदिक इनमें ही चित्त रहा। इनमें ही उपयोग रहा तो सिवाय गर्व और दु:ख के और कोई फल न मिलेगा, और अपने आपके भीतर का परिचय चले — मैं क्या हूं, क्या गुजर रहा है, क्या बन रहा है। तो सन्मार्ग प्राप्त किया जा सकता है।

कर्म में और जीव में भेद विज्ञान के लिये इन दोनों के परिचय की आवश्यकता—यहाँ दो चीजों का नाटक चल रहा है (१) कर्म का, (२) जीव का। कर्म के मायने कार्माणवर्गणास्कंध। जो पहले बंधे हुए थे उनका अनुभाग आया तो उसमें ही उनका अनुभाग खिल रहा। जब उदय आता है तो कर्ममें कर्मका कुछ विकृत स्पष्ट असर बनता है। क्रोध प्रकृतिका उदय हो तो वहाँ क्रोध जगता है। अब कर्म में जगे हुए क्रोध को इस ज्ञान विकल्प ने अपनाया तो यहाँ क्रोध का अनुभव चलने लगता है। कर्म के क्रोध का तो अनुभव किया ही नहीं जा सकता। मगर परद्रव्य है। मगर कर्म की जो क्रोध दशा हो रही है एक क्षेत्रावगाह होने से ज्ञान का तुरन्त तिरस्कार होता है और यह ज्ञान विकल्प में चलने लगा है, उसमें इसके क्रोध का अनुभाग चल रहा है, अपने ही ज्ञान विकल्प रूप, जिसे कहा 'कोहुव जुतो कोहो' क्रोध में जो उपयुक्त है उसे क्रोध कहते हैं। क्रोध किसी कर्म की अवस्था है और उसमें उपयोग लगाया जीव ने तो उस क्रोध प्रतिफलन का नाम क्रोध कषाय है। यह बन रहा है। यहाँ पैदा हुई ना लड़ाई। असल में असल को देखो तो उसे शान्त किया जा सकता है, इस क्रोध भाव से हट सकते हैं। तो हमें परिचय होना चाहिए अपनी गल्तियों का। इस मिथ्यात्व का परिचय करना है, किस किस प्रकार से, इसका यह विपरीत आशय हुआ करता है, तो मिथ्यात्व यह विपरीत अभिप्राय कहाँ कहाँ पाया जाता है, यह ही सत् प्ररूपणा का मतलब है। यह विपरीत अभिप्राय किस दशा में है, किस जीव के है, यह सत् प्ररूपणा का विस्तार है। जैसे क्रोध कषाय नरक में है, तिर्यञ्च में है, मनुष्य में है, देव में है, चारों गतियों में है। स्वर्गादिक में क्रोध कषाय कुछ कम है, नरकादिक में अधिक है, ऐसी बहुत सी बातों का सत् रूप से परिचय करना यह कहलाता है सत् प्ररूपणा द्वारा परिचय। ऐसा परिचय होता है तो इसकी विशेष बात बोध में आए, ढंग में आये तो हम उसकी जड़ को काट सकते हैं। सत् को सर्व प्रकार से समझना है कैसे उत्पन्न हुआ, किस आधार में रहता. कितनी उसकी स्थिति है, वास्तविक स्वरूप मेरा क्या है? जीव से मेरा क्या मतलब? जीव ने अपना कितना नाता कर पाया है, ये सब बातें जानने में आती हैं तो उसके छोड़ने में भी सुगमता रहती हैं। इसी तरह पाप का परिचय करते हैं। तो पाप छूटने का उपाय बनता है। सर्व पापों में मुख्य है मोह मिथ्यात्व उस मिथ्यात्व का परिचय करें।

जीव का साधारण परिचय —कितने ही दार्शनिक अथवा बहुत से लोग जीव के अस्तित्व के बारे में संदेह करते हैं अथवा निषेध करते हैं। तो प्रथम तो यह ही परिचय करना आवश्यक हो जाता है कि जीव है कुछ। जीव का स्वरूप बतायें, जीव का बाहर में स्थान बतायें, जीवों की संख्या बतायें, जीव के बारे में बहुत-बहुत वर्णन करें तो इससे जीव के अस्तित्व का समर्थन और श्रद्धान बनता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है। जीव कहते किसे हैं? जहाँ चेतना पायी जाये सो जीव। ऐसा पदार्थ जहाँ चेतना पायी जाती है वह पदार्थ जीव कहलाता है। आत्मा कहो, जीव कहो। आत्मा का अर्थ है अतति सततं गच्छति जानाति इति आत्मा। अत धातु से आत्मा बना और अत धातु के दो अर्थ हैं - जाना और जानना। प्रायः करके जितनी जानें अर्थ में धातु हैं उन सबका जानना अर्थ भी होता है। तो जाना अर्थ में अत धातु का रूप बनता है आदित्य। आदित्य सूर्य को कहते हैं, क्योंकि आदित्य सूर्य का भी नाम है। अतति सततं गच्छति इति आदित्यः। जो निरन्तर चलता रहे उसका नाम है आदित्य। सूर्य कभी रुकत. नहीं है, अनादि से अनन्त तक के लिये ही चलता रहेगा। कैसी अकृत्रिम वस्तु है। तो जो निरन्तर चलता रहे उसे कहते हैं आदित्य और जो निरन्तर जानता रहे उसे कहते हैं आत्मा। आत्मा निरन्तर जानता है। अगर निरन्तर चानने की बात न हो तो उसको कुछ अनुभव नहीं हो सकता। सुख, दुःख, वेदना, शान्ति, अशान्ति। जो क्रोध मान आदिक भाव हैं उनमें तो अन्तर आता है। अभी क्रोध किया तो मान नहीं, मान किया तो माया नहीं। जब जो कार्य करता है जीव उस समय में वह कषाय है, दूसरा नहीं है, लेकिन जानना निरन्तर रहता है। जब कषाय कर रहा तब भी जान रहा। जानने का अर्थ यहाँ शुद्ध सम्वेदन की बात नहीं कह रहे। अगर जानना मात्र न हो तो फिर क्रोध कहाँ अनुभूत हो तो आत्मा कहते ही उसे हैं जो निरन्तर जानता रहता है। जो ज्ञानमय हो, ज्ञानस्वरूप हो, उसका नाम है आत्मा। अब यह ज्ञानस्वरूप आत्मा प्रायः शरीर में बँधा हुआ रहता है। भले ही जब शरीर का तबादला होता है, नये शरीर के ग्रहण के लिये चले जाते हैं उस समय को यह औदारिक वैक्रियक शरीर का सम्बन्ध छूटता है, पर सूक्ष्म शरीर तब भी रहता है - तैजस और कार्माण। यह जीव शरीर से निराला नहीं रह सका अब तक। कोई भी शरीर न रहे, अकेला आत्मा रहे उसी को तो कहते हैं सिद्ध भगवान।

समस्त परिचयों का प्रयोजन शुद्ध अन्तस्तत्त्व का दर्शन यहाँ जीव के परिचय में चर्चा चल रही है मिथ्यादृष्टि जीव की। जीव तीन दशाओं में रहता है - (१) बहिरात्मा, (२) अन्तरात्मा और, (३) परमात्मा। अनुभवशील तो है ही जीव। बाहरी पदार्थों में आत्मीयता का अनुभव बनाये तो बहिरात्मा। आन्तरिक अर्थात् स्वयं के बारे में अनुभव चले तो अन्तरात्मा और जहाँ लक्ष्मी ज्ञान-लक्ष्मी उत्कृष्ट प्रकट हो गई है ऐसा कोई आत्मा है वह है परमात्मा। बहिरात्मा जीव कहाँ कहाँ पाये जाते हैं, ऐसा समझने के लिये १४ मार्गणाओं में देखा जाता है। मार्गणा कहते ही उसे हैं जहाँ खोज की जाये। जीव का एक साधारण परिचय चल रहा है। परमार्थतः जीव क्या है, यह तो एक आध्यात्मिक और सूक्ष्म चर्चा है, प्रयोजनीभूत बात है, उसको ही समझने का प्रयोजन इन सब जानकारियों में है। कोई पुरुष गुणस्थान मार्गणाओं की बहुत जानकारी बनाये, बड़ा विद्वान हो, बड़ी चर्चा करे और जो शाश्वत सहज अन्तस्तत्त्व है, उस स्वरूप का आदर नहीं, दृष्टि नहीं, चर्चा नहीं तो उसका यह सब जानना एक लौकिक विद्याओं की तरह जानना कहलायेगा। जैसे कोई लौकिक विद्या में बहुत निपुण हो गया है, लौकिक विद्या में उपयोग बाहर ही बाहर तो डोलता है, इसी प्रकार आत्मा की बात बताने में भी उपयोग बाहर बाहर चल रहा है, अन्दर में नहीं चल रहा। तो प्रयोजन तो समस्त ज्ञानों का यह ही है। चाहे कुछ भी पढ़े प्रथमानुयोग हो, करणानुयोग हो, चरणानुयोग हो, जानें इस सहज शाश्वत ज्ञानस्वरूप को। ज्ञानमात्र ज्ञानस्वरूप, जिसमें क्रिया भी होती, जानना भी चलता मगर प्रत्येक जानन, प्रत्येक क्रिया वह मेरा सहज स्वरूप नहीं। सहज स्वरूप का चल तो रहा है ऐसा ही परिणमन, मगर सहज स्वरूप में तो शाश्वतता है और इस जानन आदिक क्रिया में शाश्वतपना नहीं है। जब जाना

http://sahjanandvarnishastra.org/

तब ही है वह, बाद में नहीं हैं। तो मैं ऐसा तो नहीं कि किसी समय होऊँ और फिर न होऊँ। तो ऐसे उस सहज स्वरूप की जानकारी करना ही समस्त शास्त्रों का प्रयोजन है। तब ही कुन्दुकुन्द देव ने बताया कि जो आत्मा को शुद्धनय से परख लेता है, अबद्ध अस्पष्ट, अवक्तव्य आदिक रूप से, वह समस्त जैन शासन को जानता है। समस्त शासन का प्रयोजन यह ही है कि उसे पहचान लें। जब कभी करणानुयोग की बातें पढ़ें —मगरमच्छ इतनी बड़ी अवगाहना वाला है, स्वयं भूरमण समुद्र में है कुछ भी बात जब जाना तो वहाँ ध्यान लाना चाहिये कि ओह ऐसी बेढंगी अवगाहना, ऐसा विचित्र आकार, ऐसी विचित्र दुर्दशायें इस जीव को हुई हैं तो एक सहज शाश्वत चैतन्य स्वरूप के बोध बिना हुआ। सलाका पुरुषों की बात सुनो प्रभु अरहंत की चर्चा करें तो वहाँ ध्यान होना चाहिये कि इस शाश्वत सहज स्वरूप का इन्होंने अवधारण किया, उसका यह प्रताप है कि ऐसी पवित्र स्थितियाँ होती हैं। कुछ भी सुनो, ग्रन्थों में, प्रयोजन पर आये। प्रयोजन तो एक आखिरी फल है। जैसे प्रयोजन तो मक्खन निकालना है, अगर कोई उतावलापन करे, मक्खन दूध से निकाले, तुरन्त निकाले, अरे वह निकलेगा जिन विधियों से, इन विधियों का प्रयोग करे तो सार निकलेगा। तो अनादि से अपरिचित लोग कैसे इस सार तत्त्व को पहिचानें, इसके लिये सब तरह से पदार्थों का परिचय कराया जाता है।

वहिरात्मा का विशेषताओं से परिचय - तीन प्रकार के आत्माओं में जो वहिरात्मा है तो यद्यपि वहिरात्मा वहिरात्मा के किसी भी ढंग से वह तीन गुणस्थानों में है लेकिन मिथ्यात्व के उदय वाला वहिरात्मा यह प्रथम गुणस्थान वाला है। मिथ्या जिसकी दृष्टि हुई है अर्थात् दो या अनेक पदार्थों के संयोग से एक ही द्रव्य है इस प्रकार की जिसकी दृष्टि है उसे कहते हैं मिथ्या दृष्टि। मिथ्या दृष्टि चारों गतियों में पाया जा सकता है, चारों गतियों में सम्यग्दृष्टि भी पाया जा सकता। चारों गतियों में यह मिथ्यादृष्टि है, पाँचों जातियों में यह मिथ्या दृष्टि पाया जाता है। एकेन्द्रिय से चार इन्द्रिय तक सब सदा मिथ्यादृष्टि हैं। भले ही थोड़ा एक ऐसा किसी के समय होता है कि किसी पञ्चेन्द्रिय जीव ने सासादन गुणस्थान में मरण किया और उसे जाना है एकेन्द्रिय से चौ इन्द्रिय में से किसी में भी उत्पन्न होने को तो विग्रह गति में और कुछ अपर्याप्त अवस्था में दूसरा गुणस्थान रह सकता है, पर यह एक विशेष स्थिति की बात है। साधारणतया तो एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय ये सब मिथ्यात्व गुणस्थान में हैं, इसे पैदा किया है केवल एक संज्ञा ज्वर ने। आहार, भय, मैथुन, परिग्रह इन चारों संज्ञाओं से जीवन में सारा काम चलता है। विवेक की हित अहित की वहाँ समझदारी की योग्यता ही नहीं है। कभी कभी ऐसा लगता होगा कि देखो चींटी वहाँ तक चली जाती है जहाँ शक्कर पड़ी हो तो इसके मन है और सोचकर जाती है, मगर मन नहीं है। मन तो उसे कहते हैं जो आत्मा के हित और अहित का विवेक कर सकता है, उसका नाम मन है। वह तो संज्ञा ही काम करा रही है। चूँकि जीव है, चेतन है, समझ है, ज्ञान है, ज्ञानावरण का क्षयोपशम है तो जितना आहार, भय, मैथुन, परिग्रह कार्य के लिए प्रवृत्ति हो सकती है वह सब संज्ञाओं के बल पर होती है, मन के बल से नहीं। तो ये जीव सब वहिरात्मा हैं। पञ्चेन्द्रिय जीवों में वहिरात्माओं की संख्या अधिक है। अन्तरात्मा कितने हैं ? कोई विरले ही नारकी, विरले ही तिर्यञ्च, विरले ही मनुष्य और विरले ही देव सम्यग्दृष्टि होते हैं। सम्यग्दृष्टि का अर्थ है कि बाह्य अर्थ का विकल्प न रहकर ज्ञान में केवल ज्ञानघन, ज्ञानमात्र सहज ज्ञानस्वरूप समाया है, अर्थात् ज्ञान ने इस ज्ञानस्वरूप का अनुभव किया है उस समय कोई विकल्प नहीं रहता। यह बात वह खुद बाद में समझ लेता है उस समय तो अनुभव में ही है, विकल्प नहीं,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

केवल एक सामान्य ज्ञान ज्योति, इस तरह की स्थिति होती है। तो ऐसे सम्यक्त्व का लाभ जिन जीवों को होता है वे संसार से पार होते हैं। यह लाभ जिसे नहीं मिला। जिसकी मिथ्यादृष्टि बन रही है ऐसे जीव पञ्चेन्द्रिय में बहुत हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति ये सब वहिरात्मा हैं। त्रस में कुछ ही जीव हैं पञ्चेन्द्रिय में भी बिरले हैं जिन्हें सम्यक्त्व जगा है। आप देखो कि मिथ्यादृष्टि जीव कितने फैले हुये हैं संसार पर। यदि संसार बनाये रहने की कृपा की है तो इन मिथ्यादृष्टि जीवों ने की है। अनन्त जीव यहाँ से सिद्ध हुये हैं। अनन्त निकल गये हैं संसार से फिर भी जीव राशि अक्षयानन्त हैं। घटने नहीं दिया संसारियों को। घट तो गये, पर रीता नहीं होने दिया संसार को। तो ऐसा जो संसार से रीतापन न आ सके तो यह सब निगोद जीवों की कृपा की बात है। वह ही अक्षयानन्त हैं। व्यवहार-राशि के जीव अक्षयानन्त नहीं है।

प्रत्येक पदार्थ की अन्य के लिये अकिञ्चनता—हम आप सब अपने आप में कभी कभी ऐसा ध्यान भी लायें कि वहिरात्मा होने में मेरे को लाभ नहीं है। मोह किया मेरा पुत्र है, मेरा घर है, इससे क्या काम चलेगा ? लौकिक दृष्टि से भी बेकार बात है। मर गये, कहीं पहुँचे तो क्या रहे ये पुत्र मित्र ? कौन किसका पुत्र, कौन किसका मित्र ? जब तक जिसकी कषाय की पूर्ति किसी का निमित्त पाकर हो रही है तब तक उसके लिये यह पिता है, माता है, पुत्र है, मित्र है, सब कुछ है। जब स्वयं के कषाय की पूर्ति नहीं बनती तो ये पिता माता भी उसकी दृष्टि में कुछ नहीं रहते। कौन किसका आज्ञाकारी है ? जब तक कोई अपनी बात बनती है तब तक हम आज्ञाकारी रहते हैं। अपना प्रयोजन, अपनी बात धार्मिक हो, लौकिक हो, परमार्थ की बात हो जब तक बात बनती है, हम उनके कृतज्ञ रहते हैं। अरहंत भगवान और आचार्य सन्त इनका हम उपकार गाया करते हैं, पर किसी नाते रिस्ते से तो नहीं गाते। हमको लाभ हुआ है, हमने बात पहचाना है, हम कृतज्ञ होते हैं। जगत में कोई किसी का वास्तव में लगता नहीं है। कुछ है नहीं। यह सब अपना उपकार अपनी वृत्ति जहाँ जैसी पुष्ट होती है हम उस प्रकार रिस्ता नाता कर लिया करते हैं। सर्व स्वतन्त्र हैं। वस्तु स्वरूप ही नहीं कि पर से कुछ मिले, खुदगर्ज भी किसको कहें, सब सत्त्व के भले।" (यह एक आध्यात्मिक भजन का छन्द है) वस्तु स्वरूप ही नहीं है ऐसा कि परसे कुछ मिल जाये। तो मेरे को किसी पर से कुछ मिलता नहीं है। मैं किसी पर को कुछ देता नहीं हूँ। यह स्थिति है, तो ऐसी स्थिति में फिर किसी को खुदगर्ज मत कहो। कहते हैं ना कि यह बड़ा खुदगर्ज है, अपने अपने प्रयोजन की बात सोचता है। अरे यह तो वस्तु का स्वरूप है। खुदगर्ज क्यों कहते ? वे सब अपने अपने सत्त्व के भले हैं। सत्ता का प्रयोजन क्या ? परिणमन होते रहना। परिणमन होते रहने का प्रयोजन क्या कि वस्तु की सत्ता बनी रहना। हम जो कुछ भी परि-णमते हैं, हम अपने परिणमनों का कुछ प्रयोजन न सोचें, वस्तु स्वरूप है, परिणम रहे हैं। परिणम रहे का फल यह है कि सत्ता बनी रहती है। कोई पदार्थ परिणमे नहीं तो सत्ता खत्म। ऐसा होता नहीं, परन्तु समझिये परिणमने का प्रयोजन है सत्त्व बना रहना। तो मैं जो परिणमता हूँ, बना रहता हूँ, पर्याय बनती है, इससे मुझे कुछ न चाहिये। इससे मुझे कुछ नहीं सोचना, बस जो है सो जानता रहूँ, परिणमन होता रहे, सत्ता बनी रहे। ऐसा तो वस्तु का स्वरूप नहीं है कि पर से मेरे को कुछ मिल जाये।

एकत्व विभक्तत्व के मनन के प्रयोग का अनुरोध भैया ! घर में बैठकर भी सोचें परसे विविक्तपना। धर्मस्थान में जैसे मान लो सुनने को बैठे तो ऐसा ही तो सुनना चाहिये। बोलने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बैठें तो ऐसा ही तो बोलना चाहिये । यह तो सभा है, यह तो बोलने सुनने की जगह है, प्रयोग कहाँ हो, जब आप घर में हैं तब प्रयोग बनावें । "वस्तु स्वरूप ही नहीं कि परसे कुछ मिले ।" घर में रहने वाले जितने जीव हैं सबकी अपनी अपनी सत्ता है । उनके साथ उनके कर्म हैं, उनकी क्रिया, उनका विचार, उनकी परिणति उनके पास है । मैं उनमें क्या कर सकता हूँ, वे मुझमें क्या कर सकते हैं ? मोह में आशा लगाये रहते हैं कि बच्चा हो तो मेरा कुल चले और जब मैं बूढ़ा होऊँ तो यह मेरी सेवा करे । ये दो ही बातें तो सोचते बच्चे के प्रति । तो प्रथम तो कुल की बात गलत है । मेरा कुल यह है ही नहीं । अग्रवाल, जायसवाल, खण्डेलवाल आदिक । मेरा कुल तो चैतन्य कुल है जिसकी संतति मुझमें रहती है । उस कुल को यह लड़का चला देगा क्या ? मेरा चैतन्य कुल तो यह नहीं बना सकता और फिर लौकिक दृष्टि से देखो लड़का कुपूत निकल जाये तो वह कुल में और कलंक का धब्बा लगा देता है । जितना लोग सोचते हैं उतना भी तो नहीं है । बुढ़ापा में लड़का काम आयेगा या नहीं, इसका कुछ पता भी है क्या ? कहो बुढ़ापा में यह कहना पड़ जाये कि यदि यह लड़का न पैदा होता तो कितना अच्छा था । तो कुछ भी दृष्टि से देखो – कोई मेरे किस काम आता, मैं किसी के क्या काम आता ? अगर परिजन सेवा करते हैं, समाज के लोग सेवा करते हैं तो यह सब आपके दर्शन, ज्ञान, चारित्र का चमत्कार है । कहीं वे किसी आपको ही समझकर सेवा करते हो सो नहीं । आपका विश्वास सही, ज्ञान सही, आचरण अच्छा करते हैं, पाप से दूर रहते हैं, सदाचार में रहते हैं तो सेवा होती है । जब हम ही खुद अच्छे चलते हैं तो निमित्त मिलता है, सेवायें होती हैं । तो कोई किसी का क्या करता है ? जो कुछ भविष्य है वह सब अपने आप पर निर्भर है । दूसरे पर निर्भर नहीं है । तो हमें अपने को सम्हालना है । देखो सर्व आपत्तियाँ समाप्त हो जायेंगी । जिसने अपने आत्मा को नहीं सम्हाला, अपनी सुध नहीं ली वह जीव किस किस तरह की परिस्थितियों में रहता है यह सब आप गुणस्थान और मार्गणाओं के अध्ययन से परख सकते हैं ।

मिथ्यादृष्टि के योग उपयोग की दुर्दशायें— किस किस योग में चलता है मिथ्यादृष्टि जीव उसने कभी जीव आहारककाययोग व आहारक मिश्रयोग पाया ही नहीं । पुरुष, स्त्री, नपुंसकवेद इन वेदों में किस तरह की स्थिति है, झुलसते रहते हैं । वेदों की उदीरणा होती है । एकेन्द्रिय से लेकर सब मिथ्यादृष्टि वेदों में झुलसते ही रहते हैं । सोचते होंगे कि एकेन्द्रिय के क्या वेद का उदय ? भला कोई मनुष्य बूढ़ा हो जाय जिसकी आदत पहले से खराब हो, बुढ़ापा होने के सारी इन्द्रियाँ शिथिल हो गई तो क्या उसे कहेंगे कि यह वेद से रहित हो गया है ? तो ऐसी एक अशक्त दशा मिली पेड़ पौधों को वे स्थावर हैं । ये कीड़े-मकौड़े वेद में व्यक्त क्रिया नहीं कर सकते, लेकिन वे झुलसते हैं, अन्दर में यह भाव चल रहा है । कुछ लोग बताते हैं कि वृक्ष के फूल में कुछ नर जाति के वृक्ष फूल के कण धर दे भवरा वगैरह तो उससे फल बनता है । ऐसा होता होगा, लोग जानें, फिर भी ऐसा होते हुए भी कहीं यह नहीं बन जाता कि वे सम्मूर्छन न रहते हों । सम्मूर्छन में भी तो मेल मिलावट चलती है । पर माता-पिता हुए बिना जो मेल मिलावट से शरीर रचना होती है ये सब सम्मूर्छन कहलाते हैं । उपपाद वाले और गर्भ वाले को छोड़कर सब सम्मूर्छनज हैं । इस तरह वे वेद में झुलसते रहते हैं कषायें बहुत बहुत तीव्र बनी रहती हैं मिथ्यादृष्टि की । प्रथम तो यह ही अपनी बड़ी भारी हिंसा है कि अपने स्वरूप को वह समझ नहीं पाया ऐसी कषाय बनती है बाहर में दृष्टि रहती है । स्वयं का बोध नहीं होता । जिसको स्वयं का बोध नहीं होता है वह ऐसा झुलसता रहता है कि उसे चैन नहीं पड़ती ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कदाचित कोई मन के अनुकूल चीज मिल गई और उसमें वह मौज मानता है तो उस मौज में भी क्षोभ बसा हुआ है। इन्द्रिय मन चंचल है, क्षोभ बना हुआ है, आकुलता बनी हुई है। संसार का सुख आकुलता के आधार पर टिका है, और दुःख भी आकुलता के आधार पर टिका है। कोई भी संसारिक सुख ऐसा नहीं है कि जहाँ आकुलता न हो और शान्ति में पाया जा रहा हो। शान्ति से बिल्कुल विरुद्ध है सांसारिक सुख, पर संसार सुख का लोभ लगा है तो आकुलता भी चित्त में चलती है और उसे आकुलता नहीं समझते हैं। यह तो उस समय और डबल उपसर्ग है। दुःखी होते हुये भी, आकुलता होते हुये भी अपने को माना कि मैं बड़े सुख में हूँ तो यह उसके साथ और एक डबल उपसर्ग आया है संसार का सुख आकुलता से भरा है, संसार का दुःख आकुलता से भरा है। जो विवेकी पुरुष हैं वे न सुख चाहते न दुःख। वे तो एक शान्त स्वरूप निज अन्तस्तत्त्व की ही रूचि रखते हैं। बस जान लिया समझ लिया, वही जानन में रह गया, ऐसी वृत्ति बनाना यह ही उसकी रुचि के लक्षण हैं।

मिथ्यादृष्टि के कषायों का संताप— यह मिथ्यादृष्टि कैसा भिन्न भिन्न दशाओं में है कैसी विपरिणतियों में है, इसे कितना तीव्र लोभ है। एक कथानक सुनाया था एक वकील ने कि एक मनुष्य बहुत सा गेहूं बेचकर आया, पंजाब की घटना है, हजार रुपये के नोट लिये था। जाड़े के दिन थे आग ताप रहा था। बड़ी तेज आग वहाँ जल रही थी। वहीं उसका बच्चा भी खेल रहा था, खेलते हुये में वे नोट उस बच्चे के हाथ में आ गई। बच्चा क्या जाने नोट की बात तो उसने उस नोट बंडल को आग में डाल दिया, नोट जल गये। तो वहाँ उस पुरुष को ऐसा क्रोध आया कि उसने अपने बच्चे को उठाकर उसी आग में पटक दिया, वह भी जलकर मर गया। तो देखिये कषाय कितनी बेढंगी होती है कैसी उसकी मुद्रा कठिन होती है। तृष्णा करने वाले की बुद्धि ठिकाने नहीं रहती। एकदम बाह्य पदार्थों पर उसकी दृष्टि रहती है। यह मिले, यह आये और इसी के पीछे मायाचार बढ़ता है। किसी से कुछ किसी से कुछ कहना, मन में कुछ सोचना, वचन से कुछ बोलना, इस माया को सम्हालने के लिये कितना भीतर में परिश्रम करना पड़ता है। परिश्रम भी करें और दुःखी भी हों। जहाँ आत्मा की सुधि नहीं, पर्याय में आत्मबुद्धि है जहाँ गर्व उत्पन्न होता। मैं हूं, यह हूं बाकी लोग तुच्छ हैं, कुछ नहीं हैं, यह गर्व बना रहता है। जहाँ लोभ है, गर्व है, अथवा कहीं क्षति आयी उसको क्रोध जगता है। तो कहाँ यह आत्मस्वरूप जिसको भूलकर कैसी कैसी परिणतियों में यह लग गया है। उसको देखकर वह तो दुःखी नहीं होता। बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि जीव अपनी गलतियों को करके भी दुःख तो नहीं मानता, मगर उसपर दुःखी होने वाले ज्ञानी पुरुष हैं। देखो ना इस ज्ञानी पुरुष के भी अज्ञानियों पर तरस आती है। उसका दुःख आ रहा, पर उसे सुख न कहेंगे। वह तो करुणाभाव में आया। मगर करुणा भी तब ही आती है जबकि चित्त में कोई क्लेश उत्पन्न हो। कोई भूखा चिल्ला रहा रोटी मांग रहा, आप तब तक उसे रोटी नहीं दे सकते जब तक आप अपने में दुःखी न हों। उसकी भूख का अन्दाज करके भूख का कैसा दुःख होता है ऐसा जब ज्ञान में आया और जब यहाँ भी कुछ क्लेश महसूस हुआ, वह आपका ही क्लेश है तब आपने उसे रोटी दी। प्रत्येक करुणा में आप यही रहस्य पायेंगे कि जब खुद महसूस करने लगते हैं तब जाकर रोटी कपड़ा आदिक देंगे। तो जब तक आत्मा की सुध नहीं है तब तक उसकी सारी बातें उल्टी चलती हैं। ज्ञान होता है। संयम की प्रवृत्ति नहीं, असंयम में बना रहेगा लेश्याओं का भले ही कभी अच्छा भी हो, खोटा भी हो, पर भीतर में कषाय है वह एक अनन्तानुबंधी कषाय है। सम्यक्त्व है नहीं। ऐसी किन किन अवस्थाओं में यह अज्ञानी जीव रहता है यह सब सत्

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्ररूपणा बतला रही है। इन ८ अनुयोगों द्वारा जीव का किस तरह परिचय किया जाता है सो आप देख लो। लौकिक परिचय भी ८ अनुयोगों द्वारा होता है और तत्त्व का परिचय भी इन आठ अनुयोगों से होता है। हम जीव की सारी स्थितियों को जानें और जानकर समझें कि इन सब स्थितियों में भी जीव जीव एक चैतन्यस्वरूप मात्र है, इस प्रयोजन को पाने के लिए इतने विस्ता से इसका परिचय होता है।

मिथ्यात्व के परिचय के लिए कुछ ज्ञातव्य— जीव के विषय में चार बातों का परिचय भली प्रकार कर लेना चाहिये। बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा और चैतन्य स्वभाव। जिसको वेदान्तियों ने चार पाद कहा है— जागृति, सुषुप्ति, अन्तःप्रज्ञ और ब्रह्म। तो शरण लक्ष्यभूत तो होना चाहिये, चौथी चीज, चैतन्य स्वरूप, पर वह चैतन्य स्वरूप इन तीन को छोड़कर अलग कहीं नहीं है। एक वह निराधार अवस्था में अलग कहीं विराज रहा हो सो नहीं है। वह मिलेगा इसीमें, तो प्रथम बहिरात्मा की बात चल रही थी। बहिरात्मा के परिचय के बाद अन्तरात्माओं का परिचय भी किया जायेगा, परमात्मा का परिचय भी होगा और तब समझें कि इन सब अवस्थाओं में रहने वाला समान रूप से रहने वाला जो स्वभाव एकत्व है वह परमब्रह्म स्वरूप है। तो मिथ्यात्व की बात समझना कुछ बुरा तो नहीं लगता। बुरा तो किसी को लग भी सकता। जो अप्रयोजन की चीज है जिससे हमें अलग हटना चाहिये। जो हेय है उसकी चर्चा क्यों की जा रही है। पर जैसे जहाँ आप खड़े हैं वहाँ बहुत से गड्ढे हैं और उन गड्ढों का परिचय हो तो भली भाँति कहाँ से निकलकर आगे पहुंच सकते हैं। तो जरा जिस अवस्था में हम चल रहे थे उस अवस्था का थोड़ा परिचय देखो— जिसमें जो रह रहा है वह उस अवस्था का परिचय करे। मिथ्यात्व नाम किसका है कि वस्तु के स्वरूप का यथार्थ श्रद्धान न हो, संयोगी में एकत्व का श्रद्धान हो तो उसे मिथ्यात्व कहते हैं। इसमें कारण क्या है? तो उपादान तो खुद की भूल है और निमित्त कारण है अनन्तानुबंधी क्रोध मान, माया लोभ और मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति ये ७ प्रकृतियां, उनमें से मिथ्यात्व प्रकृति यह मिथ्यात्व भाव का प्रधान निमित्त कारण है।

जीवविकार के कारणों का विश्लेषण— देखिये जीव के विकार के प्रसंग में तीन कारण होते हैं—(१) उपादान कारण, (२) निमित्त कारण, और (३) आश्रयभूत कारण। उपादान कारण तो खुद विकार रूप परिणमने वाला जीव है। निमित्त कारण कर्म का उदय है और आश्रयभूत कारण ५ इन्द्रिय और मन के विषयभूत पदार्थ हैं आश्रयभूत और निमित्त कारण में अन्तर क्या है कि निमित्त कारण तो अन्वय व्यतिरेकी होता है। निमित्त के होने पर ही विकार होना। निमित्त के न होने पर विकार न होना। यह बात पायी जाती है, पर आश्रयभूत कारण के प्रति यह नियम नहीं है। जैसे कहते कि मेरी गुस्सा का निमित्त है यह नौकर है तो वह अन्वय व्यतिरेकी तो नहीं है उस नौकर के होने पर क्रोध जरूर हो और नौकर के न होने पर क्रोध न हो, किसी भी आश्रयभूत में अन्वय व्यतिरेक नहीं बनता। जब जो लोग ऐसा कहा करते कि निमित्त कुछ चीज नहीं है, देखो भगवान के रोज दर्शन करते और सम्यक्त्व नहीं जगता तो भगवान का दर्शन निमित्त तो न रहा सम्यक्त्व का, तो इसी तरह अन्य अन्य पदार्थ भी कोई भी किसी कार्य के निमित्त नहीं होते और जब सम्यक्त्व होता है तो इसे हम निमित्त कहते हैं। ऐसी बात आश्रयभूत के प्रति कही जा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सकतो है। जब कार्य होता है तो उनमें निमित्तपने का व्यपदेश किया जाता है। अर्थात तब यह निमित्त कहलाता है कार्य न हो तो यह निमित्त नहीं कहलाता। यह आश्रयभूत कारण के प्रति बात ठीक है, पर जो वास्तविक निमित्त कारण है उनके होने पर अव्यक्त या व्यक्त नैमित्तक काम होना चाहिये। वह होता ही है और उनके न होने पर नहीं होता है। तो यहाँ मिथ्यात्व में जो आश्रयभूत कारण की बात आती है वह तो गृहीत मिथ्यात्व का रूप ले सकता है और उनमें अगृहीत भी है और उनका कारण वास्तविक है मिथ्यात्व प्रकृति का उदय।

मिथ्यात्व की पञ्चविधता— यह मिथ्यात्व जीवों में ५ तरह से पाया जाता है संशय करने रूप से मिथ्यात्व। वस्तु का जैसा स्वरूप है उस ही प्रकार निर्णय नहीं कोई कर पाता। उसमें संशय रखते हैं कि यह ऐसा या ऐसा है। यह मिथ्यात्व का एक रूप है। दूसरा है ऐकान्तिक रूप। पदार्थ में अनेक धर्म हैं। सिद्ध किया जाता है उनमें से किसी एक ही धर्म का भाग का कोई एकान्त करले, हठ कर ले तो वह ऐकान्तिक मिथ्यात्व है। विपरीत मिथ्यात्व –विरुद्ध बात मान लें उसकी हठ करलें। जिसे कहा कि जीव भौतिक ही है। विपरीत मिथ्यात्व है। विनय मिथ्यात्व—सबको समान, देवशास्त्र गुरु समान जैसा मानकर सबको समान विनयभाव श्रद्धा हो यह वैनिक मिथ्यात्व है, क्योंकि स्वरूप का वहाँ कुछ निर्णय नहीं है, स्वरूप का निर्णय बिना सबका विनय किया जाता है। और ५ वां मिथ्यात्व है अज्ञान मिथ्यात्व। कुछ विवेक ही नहीं है, बोध ही नहीं है। ये ५ प्रकार के मिथ्यात्व भाव होते हैं, उनमें यदि इस तरह कुछ परखना हो कि किस मिथ्यात्व वाले जीव अधिक हुआ करते हैं? किस मिथ्यात्व वाले जीव कम होते हैं? तो कुछ समझ बनाकर परखा जा सकता है। वहाँ तो ५ ही मिथ्यात्व जिसमें है सो है, अब प्रकट होने का भीतर में बसे रहने का यह अन्तर पड़ता है फिर भी बाह्य प्रकट की अपेक्षा देखा तो ऐसा समझा जा सकता कि सांशयिक मिथ्यात्व की पद्धति कम मिलती है। स्वरूप ऐसा है या ऐसा है, ऐसा संशय करना इसमें कुछ ऐसा लगता है कि भलेपन की ओर आये। जहां एकदम विपरीत की ओर हठ करके मिथ्या परिणाम में था ऐसे जीवों की अपेक्षा सांशयिक मिथ्यात्व में कुछ भली जैसी बात का अवसर तो है। व्यक्त रूप में सांशयिक मिथ्यात्व वाले प्राणी कम मालूम होते और उससे अधिक एकान्त मिथ्यात्व वाले जीव उससे अधिक विनय मिथ्यात्व वाले, उससे अधिक विपरीत मिथ्यात्व वाले और अज्ञान मिथ्यात्व वाले तो हैं ही सब। तो ऐसे मिथ्यात्व के परिणाम जीव ये मिथ्यादृष्टि कहलाते हैं, क्योंकि उन्होंने धन, पुत्र, मित्र, स्त्री, कुटुम्ब इन सब से निराला अपने आपको समझ नहीं पाया। और तब ही किसी का वियोग हो जाय तो ऐसी बुद्धि बनती कि हाय मैं बरबाद हो गया। अब मेरा जीना न जीना बराबर है और कितने ही लोग तो अपना मरण भी चाह लेते हैं। ऐसे इन अत्यन्त भिन्न परवस्तुओं में जिनके मोह लगा है आप समझिये कि कितना गहन अन्धकार है, कितनी बड़ी विपत्ति उनपर छायी हुई है।

मिथ्यात्व में शान्ति का अनवसर— मिथ्यात्व परिणाम वाले जीवों की तो अति बहुलता है यहाँ और जब तक मिथ्यात्व परिणाम है तब तक यहाँ किसी को शांति नहीं मिल सकती। तो इसको लोक में जो बड़े बड़े लोग दिखते हैं, धनी लोग, प्रतिष्ठित लोग, नेताजन, जिनकी ऊपरी यह चमक धमक लोगों को सुहावनी लगती है। कारों में चढ़ते हैं, पहरेदार साथ हैं, लोग बड़ी इज्जत करते हैं,

http://sahjanandvarnishastra.org/

समारोह में उनको स्थान देते हैं। कितना ही उनका स्वागत होता है, देखा ही है, लेकिन जहाँ मिथ्यात्व बस रहा है वहां शाँति रंच भी नहीं है। दिखने में चिकने चुपड़े लगते हैं मगर भीतर में उनके बड़ी अशान्ति बसी हुई है, और सुना जाता है कि हार्टफल भी ऐसे ही बड़े बड़े लोगों के हुआ करता है। वह क्यों होता है कि विकल्प करके, कल्पनाएं करके वे दिल को तरोड़ मरोड़ डालते हैं और उनका इतना बल क्षीण हो जाता है कि जल्दी ही उनका हार्ट फेल हो जाता है। तो जगत में सुख कहीं रंच मात्र भी नहीं है। सब दुःखमय है बाहर देखो तो और, भीतर स्वरूप में देखो तो वहाँ कष्ट का नाम नहीं है। तो जो स्वरूप में नहीं आ पाते। बाहर ही बाहर जिनकी दृष्टि डोलती है उनको तो सर्वत्र ही दुःख भोगना पड़ता है। दुःख भोगते जाते हैं और मानते हैं कल्पना से सुख तो यह उनके ऊपर और भी कठिन विपत्ति आयी हुई है।

आत्मा का सम्यक् परिचय हुए बिना मिथ्या बुद्धियों में परिभ्रमण मिथ्यात्व भाव को प्राप्त प्राणी शरीर, मकान, धन आदि को अपनाता है, उससे अपने को जुदा नहीं समझ पाता। पदार्थ का जैसा स्वरूप है वैसा विश्वास न होना इसी के मायने मिथ्यात्व है, और, अन्दर चलें तो क्रोध, मान, माया, लोभ आदिक कषायें ये मेरे स्वरूप नहीं हैं। लेकिन क्रोधादिक करता हुआ यह जीव कैसी उनमें अपनायत रखता है कि कभी कषायों में कोई फर्क डालना चाहता है तो उस पर उसे द्वेष उत्पन्न होता है। क्रोध से लड़ने वाले पुरुष के बीच बचाने वाला कोई आता है तो उन्हें उस बचाने वाले पर क्रोध होता है कि अगर शान्त हो गए तो शायद मैं ही मिट जाऊंगा। ऐसी क्रोध में आत्मीय बुद्धि रहती है। तो कषायों को अपना स्वरूप समझने वाला प्राणी मिथ्यात्व में है। जिसको अवस्था विकार रूप भी है, अविकार रूप भी है, मगर मात्र उन अवस्थाओं को ही जीव समझना यह भी एक मिथ्यात्व की बात है। जीव तो एक सहज शाश्वत चैतन्य मात्र है जहाँ तरंग नहीं। जहाँ विकल्प नहीं, जहाँ आकुलता नहीं किसी प्रकार का विकल्प नहीं, केवल चित्तस्वरूप कह लीजिए, जिसे कि सांख्य लोग कहते चित्मात्र फर्क यह है कि वे उस एकान्त में आ गए कि उसमें परिणाम न था, न है, न होगा, पर वस्तु स्वरूप इसके विपरीत है। जैसे कि एक सर्वथा सद्‌वासियों ने माना इस कारण वह सिद्धान्त विपरीत होता, हित दृष्टि से हम जिसका स्वरूप लक्ष्य करते हैं वहाँ यह ही कहना पड़ता कि वह चित् तो चित् ही है, न परिणाम से हम उसकी पहिचान करा सकते, न हम उसकी अवस्थाओं से पहिचान करा सकते, ऐसा शुद्ध सम्वित उसे छोड़ कर अन्य अवस्थाओं रूप जीव को मानना यह भी एक मिथ्यात्व की विधि है। और खोटे देव, खोटे शास्त्र, खोटे गुरु, राग बढ़ाने वाले शास्त्र राग करने वाले गुरु और रागी द्वेषी देव इनको देव, शास्त्र, गुरु के रूप में मानें यह मिथात्व है, इसे गृहीत मिथ्यात्व कह लीजिए। देखिए जरा सी आपत्ति आयी और उस आपत्ति के निवारण का कोई उपाय बतायें, किसी देवी दहाड़ी का पूजना, अथवा और और प्रकार के देवताओं की मान्यता कराना, उसके लिये जी ललचा जाय, उसके लिए यह तैयार हो जाये तो आप बतलाओ उसकी गाँठ में, उसके अन्दर में कुछ बल भी है क्या ? कोई बल नहीं है तब जिसने जैसा बहकाया उसके लिये वह तैयार हो जाता है, पर कोई सचाई पर कायम रहे तो हानि नहीं है उसमें कुछ, क्योंकि बच्चे का जैसा भाग्य है, जैसी स्थिति है, जैसा उदय है वह उसके अनुसार उसका होगा। हाँ हमारा कर्त्तव्य है जितना उतना कर्त्तव्य निभायें, क्योंकि वह भी तो गुजारा कमेटी का मेंबर बन गया, अतः उसके गुजारे का साधन बनाएगा। दवा हो, औषधि हो, देखिये दवा और औषधि वह तो कारण बन जाता है, रोग निवृत्ति का तो उपचार करें उपचार मगर श्रद्धा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

को बिगाड़ देना और रागी द्वेषी देवता से अपने लिए कुछ मान्यता बनाना यह तो अपने को बिगाड़ लेना है।

आत्मश्रद्धान बिना अटपट प्रवृत्तियों द्वारा शान्ति का बहिष्कार— ये खोटे देव, खोटे शास्त्र, खोटे गुरु इनकी सेवा देवी दहाड़ी होली आदि कितने ही पर्व जाते हैं और उनमें किस-किस प्रकार से पूजते हैं, उनकी विधि को देखा होगा । रागमय, अज्ञानमय चेष्टा है तो वह मिथ्यात्व है, क्योंकि पदार्थ जिस स्वरूप में है उस प्रकार का वहाँ विश्वास नहीं होता। एक ने इस विषय की एक घटना सुनायी। एक बार भैसों पर चेचक का रोग हो उठा, तो एक के यहाँ करीब १०० भैंसे थीं, तो भैंसे हमारी न गुजरें, चेचक का प्रकोप हम पर न हो तो यह भवानी माता की एक अर्द्धाकार मूर्ति रोज पानी से ढाले, मान्यता करे और हुआ क्या कि रोज एक भैंस मरती जाय। सिर्फ उसकी चार पाँच भैंसे ही बची थीं तो उसे उस भवानी माता पर गुस्सा आया, माता क्या, कोई एक पत्थर की बटरिया थी तो उस बटरिया को चूर-चूर किया और वहीं पास के किसी तालाब में फेंक दिया। अचानक ही ऐसा हुआ कि उसकी वे पाँचों भैंसे बराबर जिन्दा रहीं। देखिए जब तक वह पूजता रहा तब तक भैंसें मरती रहीं, और जब पूजना बंद कर दिया, अपमान कर दिया, तो मरना बन्द हो गया। तो अपमान करने से वे भैंसें बची यह बात नहीं बतला रहे, किन्तु होता क्या है कि एक रागी द्वेषी देवताओं की मान्यता करने से पाप का ही बन्ध होता है, सुधार की कोई बात नहीं आती। एक अपने आत्मतत्त्व पर अडिग विश्वास हो, मैं ज्ञानानन्द स्वरूप हूं। मेरे में आनन्द निज से प्रकट होगा, किसी बाह्य वस्तु से प्रकट न होगा। मेरा मात्र मैं ही हूं इसलिये इस मेरे ही भगवान से आशा है, अन्य से मैं कुछ आशा नहीं करता। अपने आप में अपने आपको समृद्ध देखें, इसी में अपना सर्वस्व देखें तो शान्ति का अवसर मिलेगा, वाह्यदृष्टि से शान्ति नहीं प्राप्त हो सकती है।

अनादि अनन्त मिथ्यादृष्टि और अनादि सांत मिथ्यादृष्टि— मिथ्यात्व जिन जीवों के होता है उनमें कितने ही जीव तो अनन्त मिथ्यादृष्टि हैं अर्थात् अनादि से रहे, अनन्त काल तक रहेंगे। जैसे कितने ही जीव तो अनादि अनन्त निगोद कहलाते हैं, अनन्तकाल तक निगोद है। भला यह बात सुनकर अपने आप में संतोष तो आना ही चाहिये कि अनादिसे निगोद है । अनादि अनन्त निगोद तो हम नहीं हैं। और और जीवों को देखें संसार में तो संतोष होना चाहिये कि हमने एक अच्छी पर्याय प्राप्त की है। श्रेष्ठ मन पाया है, बुद्धि पायी है, तत्त्व विचार कर सकते हैं, किन्तु हम अपना सदुपयोग करें और इन संसार संकटों से छूटने का उपाय बना लें। कुछ न मिलेगा यहाँ बाहरी समागम में अपने दिल को रगड़ने से। बाह्य चीजों में दिल को रगड़े चले जाते तभी लोग अपने जीवन में बड़े व्याकुल रहते। मैंने बालक को ऐसा पढ़ाया और यह बालक मुझसे ऐसा व्यवहार कर रहा, मैंने इसकी इतनी मदद की और यह भूल गया, आज यह मेरे विरुद्ध चल रहा है। कितनी कल्पनायें उठतीं। आखिर बाह्य तो बाह्य ही है। उनपर अपना अधिकार तो नहीं कि जैसा मैं चाहूं वैसा मैं पदार्थ को परिणमाऊं। परिणमेगा वह अपने में जैसा परिणमन होना है, किन्तु मिथ्यात्व में यह जीव उनका अर्थ लगायेगा ऐसा जिससे यह दुःखी होता रहेगा। तो सम्यक्त्व जब नहीं है तब इस जीवन को बड़ी बेचैनी रहती है मिथ्यात्व के समान विपत्ति और कोई दूसरी चीज नहीं है। कितने ही जीव तो अनन्त मिथ्यादृष्टि हैं, कितने ही जीव अनादि सान्त मिथ्यादृष्टि हैं, अनादि से मिथ्यादृष्टि चले आये मगर मिथ्यात्व का अन्त हो जायेगा। सम्यक्त्व पा लेंगे।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

२८, २७, २६, २४ मोह प्रकृति की सत्ता वाले मिथ्यादृष्टि व अनोदय रहित मिथ्या दृष्टि—देखिये जो मिथ्यादृष्टि जीव हैं कर्म सिद्धान्त के अनुसार उनकी दर्शन मोहनीय, चारित्र मोहनीय प्रकृतियाँ विपाकरूप बन रही हैं। वे सब मिलकर २८ हैं। मिथ्यात्व, सम्यक्‌मिथ्यात्व, सम्यक्‌प्रकृति, तीन तो ये दर्शन मोहनीय हैं, जो दर्शन को मोह लें, सम्यक्त्व को बिगाड़ दें और २५ चारित्र मोहनीय १६ कषायें और ६ हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद। ये २८ प्रकृतियाँ जीव के विकार के निमित्तभूत हैं। देखिए विकार मोहनीय कर्म से ही माना जाता है, ज्ञानावरण से यद्यपि विशेष ज्ञान प्रकट नहीं होता हो पाता, न हो एक स्थिति है यह, अन्य अन्य प्रकृतियों की भी क्रिया देखो जुदी जुदी है। मगर विकार आयें, खोटे भाव बने, काम, क्रोध, मोह, लोभ, ईर्ष्या आदिक जितने ऐब कहे जाते हैं उन सब ऐबों की जड़ मोहनीय है। तो ऐसी २८ प्रकृतियाँ ये विकार के कारणभूत हैं, मगर उनमें से जो अनादि मिथ्यादृष्टि जीव हैं उनके २६ की सत्ता मिलेगी। दो क्यों नहीं होते कि सम्यक् मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति इनका कभी बंध नहीं होता, आश्रव नहीं होता, किन्तु ये बंध कैसे जाते हैं कि जब किसी मिथ्यादृष्टि जीव को उपशम सम्यक्त्व होना होता है तो उस उपशम सम्यक्त्व होने के परिणाम से वह मिथ्यात्व चकनाचूर हो जाता है। दबा हुआ है ना मिथ्यात्व। वहीं उसके टुकड़े हो जाते हैं तो जो एकदम चूरा हुआ वह हुआ सम्यक् प्रकृति, जो दो दालों की तरह हुआ वह हुआ सम्यग्मिथ्यात्व। देखो कोई मिथ्यादृष्टि २८ प्रकृतियों की सत्ता वाला हो जाय वह भी अच्छा मिथ्या-दृष्टि है। यह तो निर्णय हुआ कि इसके कभी सम्यक्त्व था। सम्यक्त्व हुए बिना २८ प्रकार की सत्ता नहीं बन सकती। सम्यक्त्व हुआ और फिर भी मिट गया। अब २८ की सत्ता हो गई तो वह सत्ता बनी है भले ही उद्वेलना हो जाय फिर भी बहुत काल तक तो सत्ता बन गई। ऐसा इस जीव के साथ में कार्माणवर्गणायें लगी हुई हैं। ऐसे ही परस्पर निमित्त नैमित्तिक भाव है और जैसा उनका विपाक होता है और जैसे ही यह उनमें जुड़ता रहता है ऐसे ही इसका विकार चलता रहता है। तो हम इस स्थिति में हैं कि जिसे कहते हैं पुद्गल कर्म प्रदेश में स्थित है। अब यहाँ भेद विज्ञान करें तो बस यही एक मात्र सहारा है। ये सब पौद्‌गलिक हैं। यह शरीर पौद्‌गलिक है, ये कषायें पौद्‌गलिक हैं। जितने विकार हैं विभाग हैं वे सब पौद्‌गलिक हैं। तो मैं एक शुद्ध ज्ञानानन्द स्वरूप हूं अथवा सहज ज्ञानस्वरूप हूं सहज आनन्दमय हूं। इस तरह अपने आपके स्वरूप के प्रति रुचि जगे और बाह्य पदार्थों को न अपनायें तो बस कल्याण प्रारम्भ है। यह अनुभूति यह दृष्टि जिनके नहीं हो पाती वे मिथ्यादृष्टि जीव कितनी तरह के होते हैं? तो करणानुयोग प्रक्रिया को देखिये— कोई २८ प्रकृतियों की सत्ता वाले, कुछ समय में वे २७ की सत्ता वाले हो गये, उद्वेलना हो गयी सम्यक् प्रकृति की। कुछ समय बाद २६ की सत्ता वाले हो जाते हैं जबसम्यग्मिथ्यात्म की भी उद्वेलना हो जाती २६ की सत्ता वाले अब ये सादि मिथ्यादृष्टि हैं और अनादि तो थे ही २६ वाले और कभी अनन्तानुबंधी की विसंयोजना हो तो ऐसी स्थिति में २४ की सत्ता रह जाती है। ये जो कर्म साथ में लगे है उनकी दृष्टि से यह बात कही जा रही है। कभी अनन्तानुबंधी का उदय न आ पाया और मिथ्यात्व का आ गया ऊपर से गिरने पर तो अनन्तानुबंधी रहित मिथ्यादृष्टि है, अनन्तानुबंधी के उदयरहित है। उनका उतने समय में मरण नहीं होता। ऐसे अनेक प्रकार के मिथ्यादृष्टि हैं।

भले के लिये प्रगतिशील मिथ्यादृष्टियों का आलोचन — अब प्रगतिशील मिथ्यादृष्टियों को देखें तो कोई सम्यक्त्व के अभिमुख मिथ्यादृष्टि है। कोई सम्यक्त्व और संयमासंयम दोनों को एक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

साथ कर ले, उसके अभिमुख मिथ्यादृष्टि है। कोई सम्यक्त्व और संयम दोनों को एक साथ कर लें उसके अभिमुख मिथ्यादृष्टि हैं। मिथ्यादृष्टि कितनी तरह के पाये जाते हैं जिनके सब प्रकारों का वर्णन करना एक कठिन है, असम्भव है, पर कुछ ही बातें कही जा सकती हैं। कुछ होते हैं तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाले मिथ्यादृष्टि। देखिये – यह भी एक गजब घटना है। किसी को मानो क्षायोपशमिक सम्यक्त्व है अथवा उपशम सम्यक्त्व है और उसने तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर लिया। उनके क्षायोपशमिक सम्यक्त्व तो चलता रहेगा किन्तु सम्यक्त्व जगा उससे पहले नरक आयु का बंध कर लिया हो उसकी तो नरक में तो जावेगा ही। सो यदि क्षायिक सम्यक्त्व होता तो सम्यक्त्व के साथ मरता। लेकिन उपशम और क्षायोपशमिक सम्यक्त्व में मरण नहीं है नरक में जाने वाले को तो सम्यक्त्व तो मिट गया, पर तीर्थंकर प्रकृति की जो सत्ता कर ली थी बंध कर लिया था वह तो मौजूद है तो ऐसी अन्तर्मुहूर्त की स्थिति होती है नरक में पहले बांधी हुई तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता है और है मिथ्या दृष्टि। तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाले का यह मिथ्यात्व अन्तर्मुहूर्त से ज्यादा नहीं खिचता, वहाँ फिर क्षयोपशम सम्यक्त्व हो जाता है, तो ऐसे भी मिथ्यादृष्टि हैं जिनकी तीर्थंकर की सत्ता है,कदाचित ऐसे भी हैं, जिनके आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग इनकी भी सत्ता है। सम्यग्दृष्टि था, इसका बंध हो गया, सम्यक्त्व विघट गया तो सत्ता तो अभी बनी है जब तक उद्वेलन नहीं होता। कितनी विचित्र स्थितियों में मिथ्यादृष्टि जीव पाये जाते हैं।

मिथ्यादृष्टियों की गणना—मिथ्यादृष्टि जीव कितने हैं जगत में ? समस्त मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तानन्त हैं, इन्हीं की बदौलत तो संसार चल रहा है। कितने अनन्तानन्त हैं ? अक्षय अनन्तानन्त हैं फिर भी और किस तरह हम समझें ? तो समझ लीजिये आज तक कितना उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल व्यतीत हो गया ? अनन्तानन्त व्यतीत हो गया। बुद्धि में उन गुजरे हुये सारे समयों की संख्या रख लें सामने, संख्या नहीं हो सकती। आँख की पलक एक बार गिरने उठाने में जितना समय लगता है उसमें असंख्याते समय होते हैं, फिर अनन्तानन्त उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल गुजर गया, उनके समय की संख्या को कौन कहे ? एक उत्सर्पिणी अवसर्पिणी में २० कोड़ा कोडी सागर होते उन सबके समयों को एक तरफ रख लो और एक तरफ रख लो सब मिथ्यादृष्टियों को, ऐसा कोई रख नहीं सकता, कल्पना द्वारा बतला रहे, अब एक समय और एक मिथ्यादृष्टि दोनों को लेकर दूसरी जगह धरते जाओ तो वे सारे समय तो खतम हो जावेंगे, पर मिथ्यादृष्टियों की संख्या न खतम होगी। अनन्तानन्त मिथ्या दृष्टि जीव हैं। अब समझ लीजिये कि उनमें से अगर नाम कट जाये, हमारा और सिद्ध की लिस्ट में नाम आ जाये तो समझिये कि यह कितने बड़े सुभवितव्य की बात है। आयेगा लिस्ट में नाम यदि रुचि हुई है एक आत्मस्वरूप मात्र ही रहने की। मुझे और कुछ नहीं रहना है। न इज्जत, न प्रतिष्ठा, न घर द्वार इन रूप मैं हूँ ही नहीं। शरीर से भी निराला हूँ। केवल एक चैतन्य ज्योति मात्र हूँ। मैं ऐसा ही रहूँ और कुछ न चाहिये, ऐसा भीतर में जिसके विश्वास है, ऐसी ही जिसकी उमंग है, ऐसी ही जिसकी धुन है, वे तो सिद्ध भगवान की लिस्ट में एक उम्मीदवार सा बनकर आ गये। तो मिथ्यात्व का कण भी इस जीव को पतित कर देता है, मिथ्यात्व का कण भी मेरे न रहे बस एक धुन इस सहज स्वरूप को दृष्टि में लेकर बस ऐसा ही रहना, ऐसा ही ज्ञाता रहना, ऐसा ही अब बने रहने की जिसके उमंग है वह निकट भव्य जीव है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मिथ्यादृष्टियों के व्यावहारिक भेद और मिथ्यात्वध्वंस की महिमा— मिथ्यादृष्टियों में दो भेद हैं—(१) अगृहीत और, (२) गृहीत। गृहीत मिथ्यादृष्टियों की संख्या कम है, अगृहीत में ज्यादह है। जो गृहीत मिथ्यादृष्टि है उनमें भी अगृहीत मिथ्यात्व है, और जिनके गृहीत नहीं, उनमें अगृहीत तो हैं ही। जैसे एकेन्द्रिय आदिक जीव अगृहीत हैं। जो खोंटे देव, शास्त्र, गुरूओं को माने वह गृहीत भी है, अगृहीत भी है। देह जीव को एक की श्रद्धा करे वह अगृहीत, और जो धर्म के नाम पर खोंटे देव, शास्त्र, गुरुओं की उपासना में लगें, उनसे हित समझें वे गृहीत मिथ्यादृष्टि है। सो उनमें भी तो पर्याय-बुद्धता है अगृहीत मिथ्यात्व है। तो यह अगृहीत मिथ्यापन ऐसा छुसा है प्राणियों में कि इनका भेद करना कठिन लग रहा है बस यह ही तो सारा पुरुषार्थ है कि स्व व पर में भेद ज्ञान हो जाये। जितने कर्म विध्वंस संख्या में, अनुभाग में, स्थिति में मिथ्यात्व का ध्वंस होते समय होते हैं उसके बाद तो बहुत थोड़े कर्म रह जाते हैं जिनका ध्वंस करना होता है। अनन्त संसार मिटा दिया, अन्त. कोड़ा कोड़ी सागर स्थिति रह गई। कितना पुरुषार्थ किया खुद में और कितना विध्वंस किया इस सम्यग्दृष्टि जीव जीव ने कर्मों का, उसके मुकाबले कृत्य आगे ऐसा रह जाता है कि अब तो कुछ भी काम न रहा। सम्य-क्त्व हो यह ही सबसे ऊँचा हिम्मत वाला पुरुषार्थ वाला काम है कि कषाय में, परके परिणमन में, कर्म विपाक में और अपने आपके ज्ञानस्वरूप में भेदकर देवे मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, कर्म विपाक कर्म में है। मेरे में ज्ञान ज्ञानस्वरूप ही है। इस ज्ञान में कहाँ गुंजाइश है कि यह क्रोध कर सके, मान कर सके, ज्ञान में तो ज्ञान जैसी वृत्ति ही चले, इतनी ही तो बात चल सकेगी। मैं ऐसा शुद्ध ज्ञानस्वरूप हूँ, भेद जहाँ हुआ और भेद करके इसका ही ग्रहण जहाँ हुआ बस समझो यह अलौकिक और बहुत महान पुरुषार्थ है, यह जिसके बन गया वह पूज्य है। और उनके ही विषय में समंतभद्र कहते हैं कि सम्यग्दर्शन सम्पन्न-मपि मातंग देहजम्। देवा देवं विहुर्मस्मगूढाङ्गारान्तरौजसम्। सम्यक्त्व ऐसा उपासनीय उपादेय पूज्य तत्त्व है। उसका जिनको लाभ नहीं होता उन मिथ्यादृष्टि जीवों की ऐसी दुर्दशायें चल रही हैं।

मिथ्यादृष्टियों की गणना का अन्दाज करने के लिये कुछ जीव जातियों का परिचय— आत्मा का स्पष्ट परिचय पाने के लिये १४ गुणस्थान और १४ मार्गणाओं द्वारा अवस्था विशेष का परि-चय भी बहुत सहयोगी होता है, तिनमें गुणस्थानों का तो परिचय अवश्य ही कुछ होना चाहिये। जीव कैसे होते हैं उनके कैसे परिणाम होते हैं और कैसे कैसे परिणामों की विशुद्धि बढ़ती है, कैसे आगे बढ़ते हैं और प्रभु हो जाते हैं। जीव १५ विधियों में हैं। १४ गुणस्थान और १ गुणस्थान से अतीत। प्रथम गुण-स्थान मिथ्यादृष्टि बताया है और अन्तिम गुणस्थान अयोगकेवली कहा है सिद्ध होने से पूर्व अतिनिकट पहुँचे हुये परमात्मा को। सिद्ध होने से पूर्व अतिलघु। प्रथम अन्तर्मुहूर्त में जो स्थिति होती है उसे अयोगकेवली कहते हैं। मिथ्यादृष्टि जीव निकृष्ट अवस्था वाली चीज है, ऐसे जीवों की संख्या अनन्त है। ऐसे जीव इस लोक में सब जगह ठसाठस भरे हुये हैं। जहाँ हम समझते हैं कि यह पोल है, आँगन है, यहाँ कुछ नहीं है, यहाँ भी अनन्त जीव बसे हुये हैं। जीव की भाँति समझिये—मूल में दो भेद हैं—(१) मुक्त और, (२) संसारी। संसारी के दो भेद (१) त्रस और, (२) स्थावर। त्रस के भेद चार, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय। स्थावर के भेद ५—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति। वनस्पति काय के भेद दो - (१) साधारण वनस्पति, (२) प्रत्येक वनस्पति। प्रत्येक वनस्पति काय तो वह है जो हरी हैं, खाने में आती हैं, जिन्हें हम छूते हैं वे सब प्रत्येक वनस्पति हैं और साधारण वनस्पति कहते हैं निगोद को। जिनका शरीर देखने में नहीं आता, छूने में नहीं आता, वे सब साधारण

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वनस्पति कहलाते हैं। तो प्रत्येक वनस्पति सभी हरी का नाम है, चाहे वह भक्ष्य हो चाहे अभक्ष्य, चाहे आलू, सकरकन्द आदिक हों, चाहे सेम, केला आदिक हों, वे सब प्रत्येक वनस्पति कहलाते हैं। परन्तु, उनमें भेद यों पड़ा कि प्रत्येक वनस्पति दो तरह के होते हैं—कोई होते हैं साधारण सहित प्रत्येक वनस्पति और कोई होते हैं साधारणरहित प्रत्येक वनस्पति। याने कोई वनस्पति तो निगोदों से भी भरी हुई है। उनमें मुख्य एक जीव एकेन्द्रिय तो है ही, पर उनमें अनन्त निगोद जीव भी भरे हैं, उन्हें कहते हैं सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति। कुछ वनस्पति होती है जहाँ साधारण निगोद नहीं पाये जाते हैं उसे कहते हैं अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति। अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति इस शब्द को लोग ज्यादह नहीं बोलते। और शब्द भी कुछ कठिन लगते सो "साधारण" कह देते हैं। आलू वगैरह तो साधारण हैं, पर ये साधारण नहीं हैं, साधारण सहित प्रत्येक वनस्पति हैं।

त्रसघात अभक्ष्य की आमरण हेयता साधारण सहित प्रत्येक वनस्पति को अभक्ष्य बताया है, क्योंकि प्रयोजन कितना ? पेट भरना। थोड़ी क्षुधा मिटाना, और घात कितना ? अनन्त निगोद जीवों का घात। हैं वे एकेन्द्रिय। माँस का दोष नहीं है। जैसे कोई बाजार का मैदा का पकवान या गोभी का फूल खाये, साग बनाये, उसमें तो मांस का दोष है। कोई बैंगन भर भी आलू खाये उससे भी अधिक दोष गोभी का फूल खाने में है, सड़ी गली चीजें खाने में है। उसमें संख्या की अपेक्षा चूंकि अनन्त एकेन्द्रिय का घात होता है और फल कुछ थोड़ा सा है इसी कारण सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति को अभक्ष्य कहा। तो जो लोग अभक्ष्य का त्याग करने में उमंग रखते हैं उन्हें यदि जानकारी न हो तो वे समझ लें कि सबसे अधिक दोष गोभी का फूल, बाजार की दही, पकवान, जलेबी जो सड़-सड़कर चीजें बनती हैं उनका त्याग पहले करें। वे बहुत अभक्ष्य चीज हैं अभक्ष्य ५ प्रकार के कहे गये—(१) अनन्त स्थावर घात, (२) त्रस घात, (३) प्रमाद कारक घात, (४) अनिष्ट घात और (५) अनुपसेव्य। सबसे अधिक अभक्ष्य, अयोग्य है त्रस घात वाला अभक्ष्य। जिसमें त्रस जीव का घात हो वह पदार्थ त्रस घात अभक्ष्य है। अब तो कोई ही लोग विवेक करते हैं नहीं तो देखने में साफ हो, सुन्दर हो बस यह ही देखते हैं और अण्डा, मांस आदिक तो प्रकट अभक्ष्य हैं। त्रस घात अभक्ष्य, जिसका छूना भी वर्जित। जहाँ इसका व्यवहार है वह कुल उच्च कुल नहीं कहला सकता। भला बतलाओ एक अपना पेट भरने के खातिर और यों त्रस जीवों का घात कर डालें, मांस भक्षण करें तो यह उनकी अज्ञानता है, क्रूरता है और ऐसा मनुष्य धर्म में प्रगति नहीं कर सकता, और इसीलिये यह कहना तो संगत ही है कि जो मनुष्य मांस खाता हो, त्रस घात करता हो, शिकार खेलता हो, ऐसा जीव सम्यग्दृष्टि नहीं हो सकता। उसे जब परिचय है, जीव जाति का। कौन कहाँ जीव रहता है, कैसा जीव है, सभी तो परिचय है ७ तत्त्वों में और फिर मनुष्य होकर ऐसा विशेष अभक्ष्य भक्षण का आचरण करे तो कैसे कहा जा सकता कि इसके सम्यक्त्व है ? जिस इन्द्रिय को जब हम नहीं जीत सकते और उसमें यह महसूस करें कि अरे गोभी का फूल कैसे छोड़ा जा सकता है ? अरे उससे भी स्वादिष्ट अनेक पदार्थ हैं, और हम तो जानते नहीं, पर उसकी (गोभी की) शकल देखकर हम ऐसा अन्दाज करते कि खाली गोभी के फूल का एक भुस जैसा स्वाद आता होगा, मसाला डालने पर ही स्वाद चाहे बनता हो। तो ऐसी चीजें जिन्दगी भर को छोड़ देना चाहिये।

साधारण वनस्पति अर्थात् निगोदों की गणना अक्षय अन्तानन्त - हाँ प्रकरण था वनस्पतिकाय का। साधारण वनस्पति अर्थात् निगोद जीव। यह वनस्पति प्रत्येक वनस्पति के आधार पर भी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रहती है तथा त्रस याने दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पञ्चेन्द्रियों में मनुष्य पशु पक्षी तिर्यञ्च, इनके शरीर के आधार पर भी रहते हैं, पर कुछ अनेक अनन्त ऐसे हैं निगोद जो किसी के आधार नहीं रहते हैं। निराधार जहाँ पोल है यहाँ भी ठसाठस जीव हैं, और वे ऐसे सूक्ष्म निराधार हैं कि उनकी मृत्यु अग्नि वगैरह से नहीं होती। तो वे अपने आप एक श्वांस में १८ बार जन्म मरण कर रहे। उनमें इतनी ही आयु होती है, तो ऐसे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्ता अनन्त हैं और बताया था जैसे की अनन्त उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल में कितने समय होते हैं उन समयों से भी मिथ्यादृष्टि जीव अपहृत नहीं होते। और यही बात आज कह रहे हैं तथा यही बात अनगिनते उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी और व्यतीत हो जायें तब भी यह ही बात रहेगी कि अनन्त उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी काल में जितने समय होते हैं उनसे मिथ्यादृष्टि जीव अपहृत नहीं होते। कितनी अक्षयानन्त संख्या है, सीधा सुनने में यों लगता है कि जब जीव अनादि से मोक्ष चले जा रहे हैं और चले जाने के बाद वहाँ से लौटते नहीं हैं तब तो यह संसार कभी का खाली हो जाना चाहिए। जब मोक्ष तो जा रहे और लौटकर आते नहीं तो ऐसा कब तक कोटा पूरा होगा ? पर जीव राशि की संख्या देखो कैसा बसे हुये हैं। व्यवहार राशि में जितने जीव सिद्ध हो जाते हैं उतने ही निगोद से आ जाते हैं। तो निगोद का है इतना बड़ा भारी कोटा कि वहाँ से एक निगोद शरीर में इतने जीव हैं कि जितने सिद्ध हो गये। उनसे भी अनन्त गुने हैं। अब एक निगोद शरीर को क्या कहेंगे ? उसमें सिद्धराशि से भी अनन्त गुणे अनन्तान्त मिथ्यादृष्टि जीव हैं। इनमें ही बसे हम आप सब थे, या जो हैं सो हैं। यह इतनी सुविधा की बात है कि इतनी बुद्धि पायी, ज्ञान पाया, चर्चा करते, प्रभुस्वरूप जानते, आत्मस्वरूप समझते, पर साथ ही साथ मोह राग का लगाव रहे, पुट बना रहे तो यह सारा जानना बेकार सा हो रहा। चित्त को दृढ़ बनायें, अपना स्वरूप संकल्प मजबूत करें, और निःशंक बने कि चाहे दुनिया के किसी पदार्थ का कैसा ही परिणमन हो, मैं अपने चैतन्य स्वरूप से चलित न होऊंगा। जो होता है सो होने दो। ऐसा अपना भाव विशुद्ध चले तो इन अनन्तान्त मिथ्यादृष्टि जीवों की लिस्ट से हमारा नाम खारिज हो जायेगा। तो बड़ी अच्छी बात है।

मिथ्यादृष्टियों की गणना और गतिमार्गणाकी अपेक्षा उनका अल्पबहुत्व-मिथ्यादृष्टि जीव सारे लोक में व्याप्त है, जब जिसका क्षेत्र हो सारा लोक है तो स्पर्शन तो सारा लोक है हां ये मिथ्यादृष्टिजीव सदा रहते हैं। कोई समय ऐसा नहीं है कि मिथ्यादृष्टि न हों हाँ एक जीव की अपेक्षा देखा जाय तो किसी मिथ्यादृष्टि जीव ने सम्यक्त्व पाया और अन्तर्मुहूर्त में हो सम्यक्त्व नष्ट हो गया, मिथ्यादृष्टि हो गया। तो उसके मिथ्यात्व का अन्तर पड़ गया एक अन्तर्मुहूर्त का। मिथ्यात्व का उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम १३२ सागर पड़ सकता है। मिथ्यादृष्टि इसका भाव औदयिक भाव है। मिथ्यात्व प्रकृति का उदय है, इसमें अल्प बहुत्व क्या ? मगर गतियों की अपेक्षा देखो तो जैसे गतियों में संख्या है वैसे ही इसके अल्प बहुत्व है। जगत के जीव गतिमार्गणा की दृष्टि से ५ प्रकार के हैं—(१) नरक (२) तिर्यञ्च (३) मनुष्य (४) देव और (५) सिद्ध (गतिरहित)। इन ५ प्रकार के जीवों में सबसे कम मनुष्य गति के जीव हैं। मनुष्य गति में भी दो तरह के मनुष्य होते हैं— (१) पर्याप्त (२) अपर्याप्त। पर्याप्त तो ये सब हैं मनुष्य, स्त्री, नपुसंक, बालक वगैरह, और अपर्याप्त मनुष्य वे हैं जो अत्यन्त सूक्ष्म हैं, जो आंखों दिखते नहीं, जो काँख आदिक गुप्त स्थानों से उत्पन्न होते हैं। वे नाम के मनुष्य हैं, संज्ञी हैं, अपर्याप्त हैं। एक श्वांस में १८ बार जन्म मरण करते, ऐसे मनुष्य असंख्याते हैं। पर्याप्त मनुष्य संख्यात

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हैं। अधिक से अधिक २९ अंक प्रमाण हैं। अभी लोग बतलाते हैं कि इस सारी दुनिया में कुल तीन अरब मनुष्य हैं। पर इतने ही मनुष्य नहीं हैं दुनिया में। अब जितनी आज की परिचित दुनियां है उतनी को ही पूरी दुनिया समझ लिया। लेकिन दुनिया इतनी ही बड़ी नहीं है। जब इतने से अधिक हम जान नहीं पाते तो उतने को ही सारी दुनिया समझ बैठते। अरे सारी दुनिया में असंख्याते द्वीप समुद्र हैं, जिनमें मनुष्य ढाई द्वीप के अन्दर हैं। पहला द्वीप है जम्बूद्वीप जो कि एक लाख योजन का सूची में है। है गोल। और २००० (दो हजार) कोश का एक योजन होता है। जम्बूद्वीप से दूना है एक तरफ लवण समुद्र। उतना ही दूसरी तरफ गोल है। यह चूड़ी के आकार की तरह और, लवण समुद्र से दूना है दूसराद्वीप एक तरफ और उससे दूना है,कालोद समुद्र और उससे दूना है तीसरा द्वीप एक तरफ उससे आधे में मानसोत्तर पर्वत है, यों ढाई द्वीप में मनुष्य रहते हैं। आज की जितनी मानी हुई दुनिया है वह जम्बूद्वीप के १९० वाँ हिस्सा भरत क्षेत्र और उसमें भी याने १९० वें हिस्से का भी कोई ५वाँ हिस्सा आर्यखण्ड उसमें भी थोड़ी जगह है जहाँ कि रूस, अमेरिका, चीन आदिक सारे देश आ गये। इतनी सी जरा सी परिचित दुनिया में तीन अरब मनुष्य हैं, पर जगत में कितने मनुष्य होंगे। कुछ अन्दाज तो करो तो देखो दहाई में कितने अंक होते हैं? ··· दो। १०० में तीन अंक। हजार में चार, १० हजार में ५, लाख में ६, १० लाख में ७, करोड़ में ८, १० करोड़ में ९, अरब में १०, १० अरब में ११: खरब में १२, १० अरब में १३, नील में १४, १० नील में १५, पदम में १६, १० पदम में १७, शंख में १८, १० शंख में १९। अब आगे जानते हैं कि अगर एक संख्या बढ़े तो उसका १० गुना हो जाता है। अगर २० हो गये तो १० महाशंख, और २१ हो गए तो डबल महाशंख तो एक-एक अंक बढ़ने से १० गुना होता जाता है, इस तरह २९ अंक प्रमाण ये मनुष्य हैं और असंख्याते अपर्याप्त मनुष्य हैं। और, मनुष्य गति से असंख्याते गुना नारकी हैं। उनकी संख्या बहुत अधिक है। अब भला बतलाओ, कोई अगर सैर करने जाय नरक तो खड़े होने को जगह न मिलेगी (हँसी)। और, उससे असंख्यात गुने देव हैं, और देवों से असंख्यात गुने हैं पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, उनसे असंख्यात गुने हैं सारे त्रस जीव और उनसे असंख्यात गुने हैं निगोद को छोड़कर बाकी सब स्थावर जीव, उनसे अनन्त गुने हैं सिद्ध महाराज और उनसे अनन्त गुने हैं निगोद साहब। तो ऐसे ही मिथ्यादृष्टि जीवों की संख्या समझ लो, उनमें से सिद्ध राशि को अलग कर दो। वे भगवान है तथा सम्यक दृष्टि तो इने गिने हैं थोड़े हैं। तो बाकी में इसका भी अल्प बहुत्व इसी ढंग का मिलेगा। मनुष्य से ज्यादह नारकी, नारकियों से ज्यादह देव और देवों से भी ज्यादह हैं तिर्यञ्च मिथ्यादृष्टि।

दुनिया अन्धेर नगरी— यह संसार तो मिथ्यादृष्टियों का राज्य है। और लोग भी मिथ्यादृष्टियों के वोट के आधार पर ही अपना कर्त्तव्य चला रहे हैं तब ही तो दुःखी हैं। यह ऐसा है, इसकी इतनी प्रगति है हमें भी ऐसा ही करना। तो यह सब अंधेर नगरी बेबूझ राजा, टकासेर भाजी टका सेर खाजा। जैसी बात है। यह संसार अंधेर नगरी है। इसमें जो लोग विश्वास करते हैं उनको कष्ट के सिवाय और कुछ फल न मिलेगा। झूठा मौज है। यह कथानक प्रसिद्ध है अंधेर नगरी का। एक बार कोई गुरु और शिष्य एक नगरी में पहुंचे। वहीं ठहर गये। गुरु ने शिष्य को कुछ पैसे देकर कहा-- जावो बाजार से कोयला, आटा, चावल आदि भोजन सामग्री ले आओ। जब वह बाजार पहुंचा तो क्या देखा कि कोयला टका सेर, नमक टका सेर, शक्कर टका सेर, सभी मिठाईयाँ टका सेर। सारी चीजें टका सेर बिक रही थीं। वहाँ उसने सोचा कि यह तो एक अजीब नगरी है। इसमें तो सभी चीजें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

टका सेर बिक रही हैं। यदि यहाँ छः माह ठहर जावें तो खूब पेड़ा, बरफी, लड्डू, रसगुल्ले आदि टका सेर खा-खाकर मस्त हो जायेंगे। यह सोचकर वह गुरु के पास आया और निवेदन किया कि महाराज यहाँ ४ ६ माह के लिये ठहर जाइये। परन्तु गुरु ने कहा— बेटे यह अंधेर नगरी है, यहाँ का रहना योग्य नहीं। आखिर शिष्य के बार-बार कहने पर गुरु को वहीं रुकना पड़ा। अब वह शिष्य खूब टका सेर मिठाइयाँ खा खाकर मस्त हो रहा था। कि एक दिन अचानक ही ऐसी घटना घटी कि कोई बाबू जी किसी गली में से जा रहे थे, देखा कि किसी भींट में से ईंटा खिसक गया है ? सो बाबू जी ने झट कचेहरी में पहुंचकर राजा के यहाँ रिपोर्ट कर दी कि महाराज अमुक गली में अमुक नम्बर के मकान में भींट से एक ईंटा खिसक गया है। मैं उधर से जा रहा था, यदि वह ईंटा वहाँ से गिरकर मेरे सिर पर गिर पड़ता तो मेरा सिर चकनाचूर हो जाता, इसलिये महाराज उस मकान मालिक को दण्ड मिलना चाहिये। मकान मालिक को राजदरबार में बुलाया गया, और राजा ने पूछा — अबे तूने ऐसी भींट क्यों बनवाया कि उसमें से ईंटा खिसक गया। वह ईंटा यदि वहाँ से गिर जाता और बाबू जी का सिर फट जाता तो क्या होता ? तुझे सजा दी जायगी। तो मकान मालिक बोला, महाराज इसमें मेरा क्या दोष ? दोष है तो उस कारीगर का जिसने भींट बनाया, मैंने तो पूरा पेमेंट किया।··· ठीक है कारीगर को बुलवाया।··· अरे तूने ऐसी भींट क्यों बनाया जिससे ईंटा खिसक गया ?··· महाराज इसमें मेरा क्या दोष ? दोष है गारा बनाने वाले का। यदि गारा पतला न बनता तो यह नौबत न आती। गारा वाला आया।·· अरे तूने गारा पतला क्यों बनाया जिससे भींट में से ईंट खिसक गई ··· महाराज इसमें मेरा क्या दोष ? दोष है मसक बनाने वाले का। उसने बड़ी मसक बनाया जिससे पानी अधिक भर गया और गारा गीला हो गया। मसक वाले को बुलाकर राजा ने कहा– अबे तूने इतनी बड़ी मसक क्यों बना दी कि जिसमें पानी अधिक भरा और गारा गीला हुआ, यह नौबत आयी ?··· महाराज इसमें मेरा क्या दोष ? दोष है बड़ा जानवर बेचने वाले का। उसने बड़ा जानवर क्यों बेचा ? जिससे बड़ी मसक बनी। जानवर बेचने वाले को राजा ने बुलवाया तो वहाँ वह कुछ भी उत्तर न दे सका। वह बड़ा दुबला पतला सा था। राजा ने उसे फांसी का हुक्म दे दिया। जब जल्लाद फांसी पर उसे लटकाने लगा तो बड़ा दुबला पतला होने से फाँसी के फंदे में उसका गला ठीक ठीक बैठता हो न था सो जल्लादों ने कहा महाराराज इसका गला तो इतना पतला है कि फाँसी के फंदे में ठीक ठीक आता ही नहीं। तो राजा बोला - अबे जल्दी करो, किसी मोटे गले वाले को पकड़लाओ देर न करो, तुरन्त फाँसी के फंदे पर चढ़ाओ। चले जल्लाद ऐसे मोटे गले वाले की खोज में तो वही शिष्य साहब मिल गये। जल्लादों ने कहा चलो जल्दी चलो, तुम्हें फाँसी दी जायगी। शिष्य बहुत घबराया, गुरु से कहा - बचाओ, बचाओ। गुरु ने अवसर पाकर धीरे से कहा— बेटे घबराओ मत हम तुम्हारी रक्षा करेंगे। तुम फाँसी के तख्त पर चढ़ना, नीचे से हम कहेंगे कि पहले हम फाँसी के तख्त पर चढ़ेंगे तुम कहना कि नहीं नहीं पहले हम चढ़ेंगे, यों लड़ना। इस तरह से गुरु ने शिष्य को समझा दिया। सो जब फाँसी के तख्त पर शिष्य को लटकाया जाने लगा तो शिष्य और गुरु परस्पर में लड़ाई होने लगी—गुरु ने कहा — पहले हम फाँसी के तख्त में चढ़ेंगे, शिष्य ने कहा हम ही चढ़ेंगे तो वहाँ राजा ने पूछा — भाई तुम दोनों फाँसी पर चढ़ने के लिए क्यों लड़ते हो ? गुरु बोला— महाराज तुम चुप रहो। इस समय शुभ घड़ी है कि फाँसी के तख्त पर जो चढ़ेगा वह सीधे बैकुण्ठ जायगा। राजा बोला - अच्छा तुम दोनों (गुरु शिष्य) नीचे उतरो, फाँसी के तख्त पर मुझे चढ़ने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

दो। तो देखो ऐसी विचित्र है दुनिया अन्धेर नगरी, यहाँ का निवास ठीक नहीं।

तृष्णान्धता से हटकर लब्धि बल से ज्ञान प्रकाश में आने का अनुरोध—इस अन्धेर संसार में धन वैभव की तृष्णा करके कितना लोग बहे जा रहे हैं, आशा कर करके रात दिन दुःखी रहते हैं। यह आशा का गड्ढा इतना विचित्र है कि ज्यों ज्यों इसे भरते जाओ त्यों त्यों खाली होता जाता है, याने बढ़ता जाता है। और गड्ढे तो भरते हैं पर यह नहीं भरता। आशायें बढ़ती ही जाती हैं। परिणाम इसका क्या, कि दुःखी रहा करते हैं। यह है मिथ्यादृष्टियों का एक सामान्य कथन (इतिहास)—जो अनादि काल से दुःख ही दुःख भोगते आये। कदाचित इस जीव को सुयोग मिला, पंचलब्धि मिली—क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धि लब्धि, देशनालब्धि, प्रायोग्यलब्धि और करण लब्धि, और इसको सम्यक्त्व हो तो संसार संकटों से छूटने का इसको अवसर मिलता है। वर्तमान में हम आपको ये लब्धियाँ मिली हुई हैं या नहीं? तो जो विज्ञ हैं, सम्यग्दृष्टि हैं, वे तो पांचों ही लब्धि पा चुके, पर एक साधारण मानव की दृष्टि से सोचें तो क्षयोपशम लब्धि है कि नहीं? अगर न होती तो ऐसे मनुष्य कहाँ से बन जाते? विशुद्धि कुछ है. पूर्व कर्म के अनुभाग भी घट गये। आज मनुष्य हैं, अपनी बात दूसरे को बता सकते, दूसरे की बात समझ सकते, इतना क्षयोपशम तो है। तो क्षयोपशम लब्धि भी हैं, विशुद्धलब्धि भी है, देशनालब्धि भी है, उपदेश होता है। ज्ञानीजन बतलाते हैं, शास्त्रों में भी है, सुन भी सकते हैं। अब उसका मनन हो, अभ्यास हो, जो स्वरूप समझा है, जो आत्मा का सहज स्वभाव है उसकी दृष्टि बनाकर अभ्यास बनावें, प्रायोग्यलब्धि भी बनेगी। करणलब्धि भी बनेगी। तो जिसको पंचलब्धियों का सुयोग हुआ उनके सम्यक्त्व उत्पन्न हुआ। है विशेषता निज स्वभाव की भावना की। कहाँ क्या मिलता, क्या होता? इसको अधिक नहीं सोचना। केवल एक ही काम में लगें। मेरा जो अपने ही सत्त्व के कारण सहज स्वरूप है वह क्या है, उस रूप अपने को मानने का पौरुष बने, एक ही काम करना है, सारे काम हो जायेंगे जो जो होना चाहिये।

सत्प्ररूपणा द्वारा सासादन गुणस्थान का परिचय अनादि मिथ्यादृष्टि जीव को मिथ्यात्व गुणस्थान न रहे तो कौन सा गुणस्थान मिलता है? तो यह चतुर्थ गुणस्थान अथवा सम्यक्त्व वाला गुणस्थान। अनादि मिथ्यादृष्टि दूसरे तीसरे गुणस्थान में नहीं पहुँच सकता है। सम्यक्त्व पाता है चौथे में पहुँचा। संयमासंयम सहित सम्यक्त्व पाये ५वाँ हो गया, सम्यक्त्व सहित सम्यक्त्व पाये तो ७वाँ हो गया। तो मुख्य मानने में चतुर्थ गुणस्थान में पहुँचा और अनादि मिथ्यादृष्टि के सम्यक्त्व हो तो प्रथमोपशम सम्यक्त्व होता है पश्चात् कुछ भी हो तो प्रथमोपशमसम्यक्त्वी होता है वह या आगे क्षायिक सम्यक्त्व को छोड़ अन्य सम्यक्त्व वाला हो वह जब सम्यक्त्व की विराधना कर ले और मिथ्यात्व का उदय न आये तो उसे कहते हैं दूसरा गुणस्थान। यह आपके याने आत्मा के गुण के स्थान की बात चल रही है। यहाँ मिथ्यात्व था, फिर सम्यक्त्व हुआ, सम्यक्त्व छूटा और गिरा, मिथ्यात्व भूमि पर जब तक नहीं पहुँचा, ऐसे थोड़े समय की स्थिति सासादन गुणस्थान की होती है। अब सोच लो उसकी क्या हालत? कोई लड़का छत से गिर जाये और जमीन पर न आ पाये तो क्या वह कोई उसके खैर वाली स्थिति है? सासादन गुणस्थान में भी विपरीत अभिप्राय है, केवल कारण भेद से, भेद है कि वहाँ मिथ्यात्व का उदय है मिथ्यात्व में और यहाँ मिथ्यात्व का उदय नहीं पर गड़बड़ी जैसी वहाँ चल रही है ही यहाँ, यहाँ विपरीताशय है अनन्तानुबंधी के उदय से सो ऐसी यह दूसरा गुणस्थान है, सासादन, जहाँ सम्यक्त्व का आसादन याने विघात हो गया है। जिसके सम्बन्ध में आगे कहेंगे।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सत्प्ररूपणा द्वारा सासादन गुणस्थान के आवान्तर सत्त्व का अनुगम सत् प्ररूपणा द्वारा सासादन गुणस्थानवर्ती जीव का वर्णन किया जा रहा है। सासादन गुणस्थान में जीव के अभिप्राय विपरीत हैं, और यह विपरीत अभिप्राय अनन्तानुबंधी कषाय के उदय से हुआ है किन्तु मिथ्यात्व प्रकृति का उदय नहीं है इस कारण इसे मिथ्यात्व नहीं कहा गया। इस सासादन का एक नाम सासन भी है, आसन अर्थात् विनाश सम्यक्त्व का विघात उससे जो सहित है उसे सासन कहते हैं। इसका नाम सास्वादन भी है। आस्वादन से जो सहित हो सो सास्वादन। आस्वादन यहाँ सम्यक्त्व रूप रस का है, किन्तु जैसे भोजन का स्वाद एक तो खाते हुये में आता है, दूसरा वमन करते हुये में आता है। तो जैसे वमन करते हुये में स्वाद आता है इसी प्रकार यह जीव सम्यक्त्व का वमन कर रहा है और उस प्रकार का यह विपरीत स्वाद ले रहा है, इस कारण इसको सास्वादन भी कहते हैं। इसका एक नाम सान भी है। अनसहित अर्थात् जहाँ अनन्तानुबंधी का उदय है ऐसे गुणस्थान को सान कहते हैं। यद्यपि अनन्तानुबंधी का उदय प्रथम गुणस्थान में भी है किन्तु अलग से विशेषता के साथ अन कहने का अर्थ यह है कि जहाँ केवल अनन्तानुबंधी का उदय है, मिथ्यात्व का उदय नहीं है उसे कहते हैं सान। यह द्वितीय गुणस्थान गिरने में आता है, जो सम्यग्दृष्टि सम्यक्त्व से च्युत हो और मिथ्यात्व का उदय न आ पाये ऐसी स्थिति तक यह द्वितीय गुणस्थान वर्तता है। क्षायिक सम्यग्दृष्टि का सम्यक्त्व कभी नष्ट ही नहीं होता, उसमें द्वितीय गुणस्थान सम्भव ही नहीं।

सासादन गुणस्थानवर्ती जीव की कुछ विशेषतायें यह द्वितीय गुणस्थान चारों गतियों के जीवों में पाया जाता है, किन्तु सास्वादन गुणस्थान में मरण करके जीव नरक गति में नहीं पहुँच पाता। सासादन गुणस्थान मुख्यतया पञ्चेन्द्रिय जीव में है। कोई पञ्चेन्द्रिय जीव मरकर एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चारइन्द्रिय में उत्पन्न होने को जाये और वह रहे द्वितीय गुणस्थान में तो ऐसी स्थिति में अपर्याप्त अवस्था और विग्रह गति में एकेन्द्रिय आदिक में भी रहता है, किन्तु अपर्याप्त काल पूर्ण होने से पहले ही पहले यह गुणस्थान मिट जाता है। और मिथ्यात्व गुणस्थान आ जाता है। सासादन गुणस्थान वाले जीव में तीर्थंकर आहारक शरीर आहारक अंगोपाङ्ग इन तीन प्रकृतियों की सत्ता न मिलेगी इसका कारण यह है कि जिन जीवों ने तीर्थंकर प्रकृति का और आहारक द्विक का बंध कर लिया है वह द्वितीय गुणस्थान में नहीं जा सकता। जिसके उपशम सम्यक्त्व है और उस जीव के अनन्तानुबंधी कषाय में से किसी एक कषाय का उदय आने को हो तो उस उदय से प्रेरित होकर यह जीव सासादन होता है। कोई जीव अनन्तानुबंधी क्रोध से प्रेरित होकर द्वितीय गुणस्थान में आता है, कोई अनन्तानुबंधी मान से प्रेरित होकर दूसरा गुणस्थान पाते हैं, कोई अनन्तानुबंधी माया से आच्छन्न होकर सासादन गुणस्थान को भोगते हैं और कोई अनन्तानुबंधी लोभसे प्रेरित होकर सासन होता है। सासादन गुणस्थान कोई प्रथमोपशम से च्युत होकर पाता है कोई द्वितीयोपशम से गिरकर पाता है। जब उपशम सम्यक्त्व का काल कम से कम एक समय व अधिक से अधिक ६ आवली शेष रहता है उस समय अनन्तानुबंधी कषाय का उदय होने पर और मिथ्यात्व का अनुदय रहने तक सासादन गुणस्थान होता है। यदि कोई जीव एक दो समय शेष रहने पर ही याने सासादन गुणस्थान का समय केवल एक दो समय ही रहा और मरण हुआ तो विग्रह गति में सासादन गुणस्थान रहता है और वहाँ ही समाप्त हो जाता है। यदि विशेष समय रहा और मरण हुआ तो विग्रह गति में भी सासादन है और अगले भव में जाकर निर्वृत्य-पर्याप्त अवस्था में भी सासादन रहता है और वहाँ ही उसकी समाप्ति हो जाती है। सासादन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

गुणस्थान छहों कामों में पाया जाता है। सासादन गुणस्थान में आहारक काय योग और आहारक मिश्र काय योग नहीं होते, शेष सभी योग हो सकते हैं। वेद और कषायें ये सब हो सकती हैं। तीन खोटे ज्ञान एक असंयम, चक्षु, अचक्षु ये दो दर्शन, ६ लेश्य, भव्यत्व भाव इस गुणस्थान में होते हैं। यह जीव मरता भी है, नहीं भी मरता है। अतएव आहारक अनाहारक दोनों होते हैं। संज्ञो तो पर्याप्त अपर्याप्त दोनों अवस्थाओं में सासादन गुणस्थानवर्ती सम्भव है, परन्तु असंज्ञो जीव केवल अपर्याप्त में ही पूर्ण भव से चले आये द्वितीय गुणस्थान के कारण रहते हैं।

मार्गणा स्थानों में सासादन सम्यग्दृष्टि के दर्शन—मार्गणाओं की अपेक्षा से सासादन गुणस्थान किन-किन स्थानों में रहता है इस पर कुछ चिन्तन करना है। सासादन गुणस्थान चारों गतियों के जीवों में पाया जाता है, किन्तु नरक गति में मात्र पर्याप्त अवस्था में ही पाया जाता है। एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय इन जीवों में तो अपर्याप्त अवस्था में ही दूसरा गुणस्थान सम्भव है, किन्तु सैनी पञ्चेन्द्रिय में पर्याप्त और अपर्याप्त दोनों अवस्थाओं में द्वितीय गुणस्थान सम्भव है। काय की अपेक्षा पृथ्वीकाय, जलकाय, वनस्पतिकाय, और त्रसकाय इन चार स्थानों में द्वितीय गुणस्थान होता है। द्वितीय गुणस्थान में मरा हुआ जीव अग्निकाय और वायुकाय में उत्पन्न नहीं होता। योग की दृष्टि से आहारक काय योग और आहारक मिश्र काय योग को छोड़कर सभी योगों में द्वितीय गुणस्थान हो सकता है। वेद तीनों ही इस गुणस्थान में पाये जा सकते हैं। कषायें पञ्चासों सासादन गुणस्थान में होती हैं। कुज्ञान तीन, असंयम एक, दर्शन २, लेश्या ६, भव्यत्व-मार्गणा में केवल भव्य है, सम्यक्त्व मार्गणा में सासादन सम्यक्त्व, संज्ञी और असंज्ञी आहारक अनाहारक, इस प्रकार इन वर्गणाओं में द्वितीय गुणस्थानवर्ती जीव होता है। सासादन गुणस्थानवर्ती जीव के देह की अवगाहना कम से कम अंगुल के असंख्यातवें भाग और अधिक से अधिक एक हजार योजन तक हो सकती है, क्योंकि उत्कृष्ट अवगाहना वाले महामत्स के द्वितीय गुणस्थान सम्भव है।

सासादन सम्यक्त्व का कालादि की अपेक्षा से विवरण द्वितीय गुणस्थानवर्ती जीव संख्या में अधिक से अधिक पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण है। याने पल्य के असंख्यातवें भाग जितने समय होते हैं वे अन्तर्मुहूर्त के समय से विभक्त हो जाये इस पर भी वे पल्य के असंख्यातवें भाग हैं। उसमें जितने समय हैं उतनी ही सासादन सम्यग्दृष्टि जीवों की संख्या है। सासादन सम्यग्दृष्टि जीव सदैव निरन्तर रहें ऐसा नियम नहीं है। जब कभी अधिक से अधिक समय तक रहे तो काल पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण हो जायेगा। कम से कम एक जीव भी रह सके और कभी ऐसा भी होता है विश्व में द्वितीय गुणस्थानवर्ती जीव एक भी नहीं होता। सो यों कभी ऐसा भी होता कि जघन्यतः एक समय ही सासादन गुणस्थान रहे ये सासादन गुणस्थान वाले जीव लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं। और, स्पर्शन भी इसके लोक का असंख्यातवाँ भाग है अथवा एक जीव की अपेक्षा सासादन सम्यक्त्व का समय कम से कम एक समय, व अधिक से अधिक ६ आवली प्रमाण है। जैसे कि कोई पुरुष या बालक छत से गिर जाये तो जमीन पर पहुँचने में उसे कितना समय लगता है? जल्दी ही नीचे गिर जाता है, इसी प्रकार सम्यक्त्व से च्युत हुआ जीव मिथ्यात्व भूमि में शीघ्र ही आ जाता है, उस बीच ज्यादह से ज्यादह ६ आवली का काल लगता है। आवली का प्रमाण कितना हैं? कोई पुरुष अपनी आँख की पलक जितनी देर में जल्दी गिरा सकता है उतने समय में असंख्यात आवली हो जाती है। उसमें से ६ आवली प्रमाण काल सासादन गुणस्थान का उत्कृष्ट है। सासादन गुणस्थान वाले जीव

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नियम से मिथ्यात्व गुणस्थान में पहुँचते हैं। उसकी अन्यत्र गति नहीं है। हाँ गिरने की दशा में वह चौथे से गिरकर भी दूसरे में आता, ५वें या छठवें से गिरकर भी दूसरे में आ सकता है। उपशम सम्यक्त्व की विराधना हो तो वह चौथे से दूसरे में आता है। उपशम सम्यक्त्व संयमासंयम दोनों को एक साथ विराधना हो तो ५वें से दूसरे गुणस्थान में आता है और उपशम सम्यक्त्व व महाव्रत इन दोनों की एक साथ विराधना हो तो छठवें गुणस्थान से दूसरे गुणस्थान में आता है। यह सासादन गुणस्थान किस निमित्त से उत्पन्न होता है इस पर विचार करें तो जैसी दृष्टि लगायें वैसा उत्तर आ सकता है, फिर भी जो आचार्य सन्तों ने दिशा बतलायी कि पहले के चार गुणस्थान दर्शन मोह की अपेक्षा से कहे गये हैं, इसका नामकरण दर्शन मोह प्रकृति की अवस्थानुसार है। तो इस दशा से विचार करते हैं तो इस गुणस्थान में दर्शन मोह प्रकृति का उदय है नहीं, इस कारण औदयिक भाव नहीं कह सकते। इसी प्रकार दर्शन मोह प्रकृति का उपशम, क्षय, क्षयोपशम भी नहीं है। इस कारण औपशमिक, क्षायिक, व क्षायोपशमिक भी नहीं कह सकते। तो दर्शन मोह का उदय उपशम, क्षय, क्षयोपशम न होने से दर्शन मोहनीय की दृष्टि से इसे पारिणामिक भाव कहा जाता है। इस प्रकार सासादन गुणस्थान यद्यपि विपरीत आशय वाला है, वहिरात्मा की श्रेणी में ही माना जाता है फिर भी जिसके सम्यक्त्व हो चुका उस ही जीव के सासादन गुणस्थान होता है, इस कारण यह गुणस्थान भव्य जीव के हैं, और इसका नियम से कभी न कभी मोक्ष होना निश्चित है।

सत्प्ररूपणा द्वारा सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान का निर्देश—अब सत् प्ररूपणा द्वारा सम्याग्मिथ्यात्व गुणस्थान का वर्णन करते हैं। सम्यग्मिथ्यात्व उस भाव को कहते हैं जिस भाव में सम्यक्त्व और मिथ्यात्व दोनों एक साथ रहते हैं ? जब दोनों एक साथ रहते हैं तब यह तो नहीं कहा जा सकता कि सम्यक्त्व पूर्ण है या मिथ्यात्व पूर्ण है। सम्यक्त्व और मिथ्यात्व दोनों ही ये पूर्ण नहीं हैं किन्तु सम्यक्त्व और मिथ्यात्व की कुछ मिली हुई अवस्था है। यह अवस्था होती है सम्यग्मिथ्यात्व के उदय से। यद्यपि यह गुणस्थान सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से होता है फिर भी इसको औदयिक भाव न कहकर क्षायोपशमिक भाव कहा गया है। इसका रहस्य यह है कि सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति में सम्यक्त्व का पूर्णतया प्रतिबन्ध करने का सामर्थ्य नहीं है और इसी कारण उसके उदय से क्षयोपशम जैसी दशा ही निरखी गई है, तथा सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति पूर्ण सम्यक्त्व का प्रतिबन्ध करती है अतः यहाँ सम्यक्त्व भी पूर्णतया नहीं है। यहाँ शंका की जा सकती है कि सम्यक्त्व और मिथ्यात्व ये दोनों विरुद्ध चीज हैं। सम्यक्त्व का अर्थ समीचीनता है और मिथ्यात्व का अर्थ विपरीत आशय है। ये दोनों बातें एक साथ एक जीव में कैसे सम्भव हैं ? यदि कोई यह कहे कि क्रम से सम्भव हो जायेगा, मानो कभी सम्यक्त्व नहीं है तो फिर सम्यक्त्व आ गया, मिथ्यात्व है। फिर सम्यक्त्व आ गया। यदि ऐसे क्रम से ये दोनों भाव हों तो वह तो प्रथम गुणस्थान और सम्यक्त्व वाला कोई स्थान ही कहा जायेगा। तृतीय गुणस्थान तो नहीं बना ? समाधान इसका यह है कि समीचीन श्रद्धा वाला भाव और असमीचीन श्रद्धा वाला भाव, ये दोनों एक साथ एक जीव में रहे ऐसा कोई विरोध नहीं, क्योंकि वस्तु अनन्त-धर्मात्मक होती है। एक पदार्थ में अनेक धर्म रह सकते हैं। यहाँ शंका हो सकती है कि ऐसा यदि अनन्त धर्म मान लिया जाये तब तो एक वस्तु में चेतन अचेतन ये दोनों धर्म समा जावें, फिर तो वस्तु का स्वरूप ही न रहेगा। लेकिन ऐसी आशंका करना व्यर्थ है। सभी धर्मों का एक पदार्थ में रहना स्याद्वाद ने नहीं माना, किन्तु यह माना है कि जो धर्म एक साथ रह सकता है किसी दृष्टि से कभी कोई क्रम

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

से भी जो रह सकता है, जिसका एक पदार्थ में रहना सम्भव है उन उन सब धर्मों का कभी एक साथ भी उस पदार्थ में रहना सम्भव है। और इस प्रकार जब कि समीचीन श्रद्धा और असमीचीन श्रद्धा क्रम से रहा करती है तो एक साथ एक जीव में ये दोनों भी सम्भव हो सकते हैं। इस भाव को इस गुणस्थान में क्षायोपशमिक भाव कहा है। यद्यपि है यहाँ सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति का उदय फिर भी क्षायोपशमिक भाव कहा उसका कारण स्पष्ट तो यही है कि सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति स्वयं क्षायोपशमिक जैसा अनुभाग लिये हुये हैं।

सत्प्ररूपणा द्वारा सम्यग्मिथ्यात्व के साधनादि का निर्देश— सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान बनने की साधना किस तरह है। वह इस प्रकार है कि वर्तमान में तो मिथ्यात्व कर्म सर्वघाती स्पर्धकों का उदयाभावी क्षय हो और उन्हीं का आगामीकाल में उदय उनमें योग्यों का उदयाभावरूप उपशम हो अर्थात् जो आगे उदय में आ सकते हैं और अब सत्ता में रह रहे हैं उनका उपशम हो और सम्यग्मिथ्यात्व कर्म के सर्वघाती स्पर्धकों का उदय हो ऐसी स्थिति में सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान उत्पन्न होता है। अब यहाँ दो बातों पर ध्यान देना है एक तो सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति सर्वघाती प्रकृतिमानी गई है और फिर भी उसके उदयको क्षापोयशमिक भाव कहा गया है। तो उसका उत्तर यही है कि सर्वघाती स्पर्धक है यद्यपि सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिमें फिर भी उनमें यह सामर्थ्य नहीं है कि सम्यक्त्व का निरन्वय नाश कर सके। इसी कारण उसको क्षायोपशमिक भाव कहा है। और चूंकि सम्यग्दर्शन की पूर्णता हो नहीं सकती उसका प्रतिषेध किया है सम्यग्मिथ्यात्व ने उस कारण उस प्रकृति को सर्वघाती स्पर्धक कहा जाता है। सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान का क्या उदाहरण है सो यद्यपि इसको स्पष्टतया नहीं बताया जा सकता। ऐसा ही कोई अवक्तव्य परिणाम है कि जहाँ न तो सम्यक्त्वपूर्ण है और न मिथ्यात्व ही पूर्ण है फिर भी इस तरह के भावों से समझा जा सकता है कि जैसे कोई पुरुष पहले अन्य देवताओं को (रागी द्वेषी देवताओं को) मान रहा था और कहीं सुयोग से उसकी वीतराग देवताओं के प्रति श्रद्धा हुई तो जहाँ पहले माने गये अन्य देवताओं का त्याग तो किया नहीं, उनकी मूर्ति घर में हो, या जो कुछ पद्धति हो उसका त्याग तो किया नहीं और वीतराग सर्वज्ञदेव की श्रद्धा हो रही है तो जैसे यहाँ समीचीन और असमीचीन भाव दोनों एक साथ रह रहे ऐसे ही सर्व तत्व के सम्बन्ध में श्रद्धा और अश्रद्धा की बात एक साथ होती है अथवा जैसे किसी पुरुष की किसी में मित्रता है और किसी में शत्रुता है तो एक पुरुष में शत्रुता और मित्रता दोनों प्रकार के परिणाम एक साथ सम्भव हैं ना इसी प्रकार तत्त्वश्रद्धान और अतत्त्वश्रद्धान ये दोनों एक साथ जीव में सम्भव होते हैं। इस गुणस्थान में जीव को रसास्वाद किस प्रकार होता है उसके लिये उसका दृष्टान्त दिया गया है कि जैसे दही और गुड़ मिला दिये जाए तो उसका स्वाद कैसा कहा जायगा? वह न दही रूप स्वाद रहा न गुड़ रूप, किन्तु कोई तृतीय जाति का स्वाद आता है, इसी प्रकार अनुभव परिणमन में सम्यक्मिथ्यादृष्टि जीव का न तो सम्यक्त्व रूप ही स्वाद है और न मिथ्यात्व रूप ही स्वाद है किन्तु दोनों से विलक्षण मिश्र स्वाद है। इस गुणस्थान में सम्यक्त्व घातक ७ प्रकृतियों की क्या स्थिति रहती है? अनन्तानुबंधी का तो उदयाभावी क्षय और सदवस्था उपशम रहता है जैसा कि मिथ्यात्व का रहता है। इसी प्रकार सम्यक्त्व प्रकृति का भी। किन्तु सम्यग्मिथ्यात्व का उदय रहता है। तो ऐसी स्थिति को अनन्तानुबंधी की दृष्टि से क्षायोपशमिक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यह आचार्य जनों का संकल्प है पहले के चार गुणस्थान दर्शन मोहनीय प्रकृति के निमित्त से हुये। और दर्शन मोहनीय में सम्यग्मिथ्यात्व की यहाँ प्रधानता है इस भाव

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

में और उसका उदय शिथिल है, इसलिये इसको क्षायोपशमिक भाव ही कहा।

वेदकयोग्य मिथ्यात्व से आया हुआ सम्यग्मिथ्यादृष्टि— सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव किस गुण स्थान से आकर होता है और किस किस गुण स्थान में जाता है। इस बात का विवरण कुछ किया जा रहा है। इससे यह भी विदित होगा कि विशुद्ध या संक्लेश किस प्रकार के परिणाम से जीव तीसरे गुणस्थान में पहुंचता है और विशुद्ध या संक्लेश किस तरह के परिणाम के कारण यह सम्यग्मिथ्यात्व को छोड़कर अन्य गुणस्थान में पहुंचता है। यह विषय समझने के लिए जीव के साथ सम्यग्दृष्टि का विशेषण बना लेना चाहिए जैसे वेदक योग्य मिथ्यात्वगत सम्यग्मिथ्यादृष्टि याने जो जीव वेदक सम्यक्त्व पाने के योग्य है, किन्तु अभी मिथ्यात्व में है ऐसा मिथ्यात्व गुणस्थान में आकर जो तीसरे गुणस्थान में आया है उसे कहेंगे वेदकयोग्य मिथ्यात्वगत सम्यग्दृष्टि। यह जीव इस प्रकार से बंधा है कि किसी जीव ने जबकि उसके सम्यक्त्व घातक ७ प्रकृतियों की सत्ता थी वहाँ प्रथमोपशम सम्यक्त्व किया और प्रथमोपशम सम्यक्त्व के परिणाम के कारण मिथ्यात्व के तीन खण्ड किए और इस प्रकार वह सम्यक्त्व घातक ७ प्रकृतियों की सत्ता वाला हो गया। अब इसके बाद उसका सम्यक्त्व छूट गया तो भी यह ७ प्रकृतियों की सत्ता वाला है। और अब जैसे बहुत समय इसी तरह व्यतीत होगा तो यह सम्यक् प्रकृति का उद्वेलन होकर सम्यक् मिथ्यात्वरूप परिणमन हो जायगा और सम्यक् मिथ्यात्व प्रकृति का उद्वेलन होकर मिथ्यात्वरूप परिणमन हो जायगा और इस प्रकार बहुत काल के बाद प्रायः पल्य के असंख्यातवें भाग काल तक यह जीव पुनः ५ प्रकृतियों की सत्ता वाला हो जायगा। तो जब तक ७ प्रकृतियों की सत्ता वाला रहा तब तक इस जीव के वेदक सम्यक्त्व के आविर्भाव की सम्भावना रहती है। तो जब तक उद्वेलन नहीं हो चुकता तब तक इस जीव को वेदक योग्य कहा करते हैं, ऐसा जीव जब सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान में आता तो इसका नाम है यह वेदकयोग्य मिथ्यात्वगत सम्यग्मिथ्यादृष्टि। इस जीव के मिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृति व अनन्तानुबन्धी इन ६ प्रकृतियों का तो उदयाभावी क्षय रहता है तथा आगे यह उदय में आ सकता है, उन निषेकों का उदयाभावरूप उपशम रहता है तथा सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति का उदय रहता है इसके साथ अन्य कषायों का भी उदय है, परन्तु इस गुणस्थान के निर्माण में उनका योग नहीं है इस कारण उन्हें नहीं कहा, किन्तु समझ लेना चाहिए कि अप्रत्याख्यानावरण आदिक कषायों का भी इस गुणस्थान में उदय है।

सत्प्ररूपणा द्वारा द्वितीयोपशमागत सम्यग्मिथ्यादृष्टि का विवरण— अब ऐसे सम्यक् मिथ्यादृष्टि का स्वरूप देखिये जो द्वितीयोपशम सम्यक्त्व से आया हुआ है। इसका नाम रखा द्वितीयोपशमागत सम्यग्मिथ्यादृष्टि। किसी जीव ने प्रथमोपशम सम्यक्त्व उत्पन्न करके वेदक सम्यक्त्व प्राप्त किया था और साथ ही उसने संयम अवस्था को प्राप्त कर ली ऐसे क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि मुनि का परिणाम जब उच्च होता है और कारणवश चारित्रमोह का उपशम ही कर सकेगा ऐसी योग्यता है, और द्वितीयोपशम सम्यक्त्व को उत्पन्न कर रहा है तो जब इस मुनि ने द्वितीयोपशम सम्यक्त्व उत्पन्न कर लिया और वह उपशम श्रेणी में भी ऊपर गमन किया वे जीव द्वितीयोपशम सम्यक्त्व को तो छोड़ेंगे ही, क्योंकि इसका अन्तर्मुहुर्त ही काल है। अब यदि इस जीव के सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति का उदय आ जाता है तो यह सम्यक् मिथ्यादृष्टि होता है। उपशम सम्यक्त्व वाले जीव के भविष्य के लिये कितनी ही स्थितियाँ सम्भव होती हैं। यदि मिथ्यात्व का उदय आ जाय तो मिथ्यादृष्टि हो जाता है। सम्यक्प्रकृति का उदय हो जाय तो वेदक सम्यग्दृष्टि हो जाता है। अथवा मात्र अनन्तानुबंधी का उदय

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हो जाय तो द्वितीय गुणस्थानवर्ती जाता है। यहाँ इस द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि जीव ने सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति का उदय हो पाया सो यह सम्यग्मिथ्यादृष्टि हुआ इस जीव के मिथ्यात्व व सम्यक् प्रकृति का तो उदयाभाव रूप उपशम रहता है, उदयाभावरूप क्षय भी रहता है और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति का उदय रहता है। यह जीव पहले द्वितीयोपशम सम्यक्त्व में था और वहाँ श्रेणियों में चढ़ा था। वह अधिक से अधिक ११ वें गुणस्थान तक ही पहुंच सकता था। इसका गिरना निश्चित है, क्योंकि सम्यक्त्व घातक प्रकृतियों का उपशम करके ही चढ़ा था। तो यह गिरकर क्रमशः छठे गुणस्थान में आता है ११ वें गुणस्थान से गिरकर १० वें में, १० में ९ वें में, ९ में से ८ वें में, ८ वें में से ७ वें में, और ७ वें में से ६ ठवें गुणस्थान में आता है। यहाँ तक तो क्रम रहता है जबकि द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि का मरण नहीं हो रहा है, अब ६ ठवें गुणस्थान के बाद कोई क्रम नहीं रहता। छठे से ५ वें में भी आ सकता, चौथे में भी आ सकता, तीसरे में भी आ सकता, दूसरे में भी आ सकता, पहले में भी आ सकता। इन इन गुण स्थानों में आने के पृथक् पृथक् साधन हैं। यदि सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति का उदय आता है तो यह तृतीय गुणस्थान में आ जाता है।

प्रथमोपशमागत सम्यग्मिथ्यादृष्टि — अब इसी प्रकार एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि होता है प्रथमोपशम सम्यक्त्व से आया हुआ। जिस जीव ने प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त किया है उसके ७ प्रकृतियों की सत्ता है, उनमें से यदि सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति का उदय होता है तो प्रथमोपशम सम्यक्त्व से वह सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान में आ जाता है इस प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि जीव ने अनन्तानुबंधी क्रोध मान माया लोभ का प्रशस्त उपशम किया था, तो वहाँ अब मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति का उदयाभाव है और साथ ही अनन्तानुबंधी का वहाँ उदय का प्रसंग ही नहीं है। सम्यग्मिथ्यात्व का आ गया उदय तो ऐसे निमित्त सन्निधान में इस जीव के सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान होता है।

वेदक सम्यक्त्वागत सम्यग्मिथ्यादृष्टि — जिन जीवों ने अनन्तानुबंधी चार मिथ्यात्व व सम्यग्मिथ्यात्व इन ६ प्रकृतियों का उदयाभावी क्षय करके व उन्हीं ६ प्रकृतियों का सद्‌वस्था रूप उपशम करके सम्यक् प्रकृति का उदय पाकर वेदक सम्यक्त्व प्राप्त किया था वे जीव परिणामवश सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति का उदय आने पर सम्यग्मिथ्यादृष्टि होते हैं। ऐसे जीवों को वेदक सम्यक्त्वागत सम्यग्मिथ्यादृष्टि कहते हैं। इन जीवों के भी सम्यक्त्वघातक ७ प्रकृतियों में से सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति का तो उदय रहता है और शेष बची हुई सम्यक्त्वघातक ६ प्रकृतियों का उदयाभावी क्षय तथा उदयाभावरूप उपशम रहता है। ऐसे जीव सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान में अन्य प्रकार के सम्यक् मिथ्यादृष्टियों की अपेक्षा अधिक संख्या में पाये जाते हैं। इन जीवों की सत्ता २८ प्रकृतियों की होती है, क्योंकि २८ प्रकृतियों की सत्ता बिना वेदक सम्यक्त्व नहीं होता और इसी प्रकार जब तक सम्यग्मिथ्यात्व नहीं है तब तक सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान भी नहीं हो सकता।

उपर्यागतोपरिगतिक सम्यग्मिथ्यादृष्टि — अब सम्यक् मिथ्यादृष्टियों के बारे में भी ऐसी दृष्टि से निरखा जा रहा है कि कोई उच्च गुणस्थान से आये, और उच्च गुणस्थान में जाये, ऊपर से आये नीचे जाय, नीचे से आये ऊपर जाय, नीचे से आये नीचे जाय, ऐसे सम्यग्दृष्टियों के वर्णन में यह बात समझने को मिलेगी कि किस परिणाम से तो इस गुणस्थान में आये हैं और कैसा परिणाम लेकर इस गुणस्थान में जाते हैं तो पहले ऐसे सम्यग्दृष्टियों को निरखें जो ऊपर के गुणस्थानों से च्युत हुये

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

और सम्यग्मिथ्यादृष्टि बने। इसके पश्चात् अविरत सम्यक्त्व में पहुंचे ऐसे सम्यग्मिथ्यादृष्टियों को कहते हैं कि ऊपर से आये और ऊपर ही गए। ऐसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जो जीव उच्च गुणस्थान से आकर सम्यग्मिथ्यादृष्टि बनकर पुनः उच्च गुणस्थान में जाएगा वहाँ उसका सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान में सर्व जघन्य काल में रहना नहीं बनता. क्योंकि यह तो एक मोटी सी बात है कि कोई ऊपर के गुणस्थान से नीचे के गुणस्थान में जाये तो संक्लेश परिणाम होगा, तब ही नीचे गुणस्थान में जायेगा और फिर वह ऊपर के गुणस्थान में जाये तो उसे विशुद्ध परिणाम होना चाहिये तब ही ऊपर के गुणस्थान में जायेगा। तो संक्लेश परिणाम करके आया हो और फिर विशुद्ध परिणाम करे तो इसमें कुछ विलम्ब लगता है। और इसी कारण सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान में जो कि ऊपर से आया, ऊपर जायेगा, उसका सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान सर्व जघन्य काल का नहीं हो सकता। यद्यपि यहाँ भी अन्तर्मुहूर्त काल लगता है, लेकिन अन्तर्मुहूर्त के अन्दर ही अनेक प्रकार हैं, उनमें से सर्व जघन्य प्रकार नहीं हैं।

उपर्यागत अधोगतिक सम्यग्मिथ्यादृष्टि अब ऐसे सम्यग्मिथ्यादृष्टियों को निरखें जो ऊपर के गुणस्थान से आये और सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान पाकर नीचे के गुणस्थान में जायेगा, ऐसे जीवों को कहते हैं उपर्यागत अधोगतिक सम्यग्मिथ्यादृष्टि। जैसे उदाहरण में लीजिए कि कोई जीव चौथे, ५वें अथवा छठे गुणस्थान से च्युत होकर सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान में आये और इसके बाद वह मिथ्यात्व गुणस्थान में जायेगा तो ऐसा जीव जो कि संक्लेश परिणाम से ही तो गिरा था और संक्लेश परिणाम से ही आगे गिरेगा, चूँकि संक्लेश परिणाम के ही संतान से गुणस्थान में आना और इस गुणस्थान से जाना बन रहा है तो ऐसी धारा में सर्व जघन्य काल इस गुणस्थान में बन सकता है। विलम्ब तो वहाँ लगता है कि कोई संक्लेश परिणाम से तो आये और विशुद्ध परिणाम से जाये, अथवा विशुद्ध परिणाम से तो आये और संक्लेश परिणाम से जाये, क्योंकि अन्य प्रकार के परिणाम किये जाने से कुछ समय विशेष लगता है। अब यह जीव ऊपर के गुणस्थान से तृतीय गुणस्थान में आया तो संक्लेश परिणाम से ही आया और मिथ्यात्व में जायेगा तो संक्लेश परिणाम से ही जायेगा। सो इस जीव के सर्व जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त होता है।

अधः समायात उपरिगतिक सम्यग्मिथ्यादृष्टि – अब ऐसे सम्यग्दृष्टि को निरखें कि जो नीचे गुणस्थान से तो आया है और ऊपर के गुणस्थान में जायेगा। जैसे—मिथ्यात्व गुणस्थान से विशुद्ध परिणाम के बल से सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से तीसरे गुणस्थान में पहुँचा और शीघ्र ही विशुद्ध परिणाम करता हुआ अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान में पहुँचेगा। ऐसा जीव चूँकि विशुद्ध परिणाम के बल से ही तो आया और विशुद्ध परिणाम के बल से ही आगे गया, तो चूँकि विशुद्ध परिणाम की धारा रही तो इस गुणस्थान में भी जघन्य अन्तर्मुहूर्त रह सकता है। ऐसे जीव का नाम रखो अधः समायात उपरिगतिक सम्यग्मिथ्यादृष्टि। ऐसे सम्यग्मिथ्यादृष्यिों के वर्णन में विशुद्ध परिणाम और संक्लेश परिणाम चक्र स्पष्ट होता जाता है।

अधः समायात अधोगतिक सम्यग्मिथ्यादृष्टि कोई सम्यग्मिथ्यादृष्टि मिथ्यात्व गुणस्थान से आता है और सम्यक्त्व गुणस्थान में रहकर फिर मिथ्यात्व गुणस्थान में चला जाता है। ऐसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि का नाम रखना चाहिये अधः समायात अधोगतिक सम्यग्मिथ्यादृष्टि। याने नीचे के गुणस्थान से आया है और नीचे के ही गुणस्थान में जायेगा। दूसरे गुणस्थान से तीसरा गुणस्थान तो होता ही नहीं है, पहले गुणस्थान से ही तीसरे गुणस्थान में आता है जो नीचे से आने वाला है। ऐसा जीव

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विशुद्ध परिणाम के बल से तृतीय गुणस्थान में आता है, किन्तु जब तृतीय गुणस्थान में संक्लेश परिणाम होने लगे तब मिथ्यात्व गुणस्थान में पहुँचेंगे तो इसकी स्थिति ऐसी हुई कि विशुद्ध परिणाम से आये, और संक्लेश परिणाम से गये। तो चूँकि उसकी कोई एक धारा न रही इस कारण इस सम्यग्मिथ्यादृष्टि का जघन्य काल सर्वाधिक अन्तर्मुहूर्त नहीं होता। सर्वाधिक जघन्य काल वाले अन्तर्मुहूर्त से कुछ विशेष काल लगता है जो अन्तर्मुहूर्त के ही अन्दर है। तो विशुद्ध परिणाम के बाद संक्लेश परिणाम करने के लिये कोई विशेष काल लगता है।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि के मरण, आयुबन्ध, तीर्थं सत्त्व आहारकद्विक सत्त्व का अभाव—अब सम्यग्मिथ्यादृष्टियों की कुछ विशेषतायें देखें। इस गुणस्थान में मरण नहीं होता, अर्थात् जब मरण काल आता है तो यह गुणस्थान नहीं रहता। मरण काल में तो पहला गुणस्थान होगा या चतुर्थ गुणस्थान होगा। यदि दुर्गति का ही बन्ध किया है तो अपनी उस आयु के अनुरूप मिथ्यात्व गुणस्थान में जाकर मरण होगा। यदि कुछ सद्गति का बन्ध किया है तो उस आयु के अनुरूप चतुर्थ गुणस्थान में आकर उसका मरण होगा। तो इस सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान में मरण नहीं होता है और आयु बन्ध भी नहीं है। इस गुणस्थान वाले जीव के तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता नहीं रहती और और आहारकद्विक याने आहारक शरीर और आहारक अंगोपांग नाम कर्म की भी सत्ता नहीं होती। अर्थात् जिस जीव ने तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध किया है वह तीसरे गुणस्थान में कभी आ ही नहीं सकता। तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध करने वाला मिथ्यात्व गुणस्थान में भी नहीं आ सकता। परन्तु जिसने पहले नरक आयु का बन्ध कर लिया और पीछे क्षायिक सम्यक्त्व को छोकर शेष सम्यक्त्व में तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध किया वह जीव मरते समय सम्यक्त्व से च्युत होता है और नरक गति में जाता है। तो एक अन्तर्मुहूर्त तो उनके मरण काल और एक अन्तर्मुहूर्त अपर्याप्त काल और एक अन्तर्मुहूर्त पर्याप्त वाले का तो ऐसे तीन अन्तर्मुहूर्त तक मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है, ये तीन अन्तर्मुहूर्त एक छोटे अन्तर्मुहूर्त में ही माने गये हैं, इसके पश्चात् उनके क्षयोपशम सम्यक्त्व हो जाता है। तो इतने समय तक तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाले, मिथ्यात्व गुणस्थान में रहे। इस स्थिति के अतिरिक्त कोई भी स्थिति ऐसी नहीं है कि तीर्थंकर की सत्ता वाले आत्मा को सम्यक्त्व न रहे, आहारक द्विक का जिसने बन्ध किया वह भी तृतीय गुणस्थान में नहीं आता।

सम्यग्मिथ्यात्व में अन्य स्थानों का संक्षिप्त घटन—सम्यग्मिथ्यादृष्टि चारों गतियों में पाये जाते। इन्द्रिय जाति में केवल पञ्चेन्द्रिय में ही पाये जाते। काय में केवल त्रस काय में ही पाये जाते। इसके योग में आहारक काय योग व आहारक मिश्रकाय योग नहीं होता तथा औदारिक मिश्रकाय योग और वैक्रियक मिश्रकाय योग तथा कार्माणकाय योग भी नहीं होता, इसका कारण यह है कि तृतीय गुणस्थान में मरण नहीं है। तो अपर्याप्त काल सम्बन्धी योग नहीं हो सकता। इस गुणस्थान में ३ वेद, व २१ कषायें हैं। सम्यग्मिथ्यात्व में अनन्तानुबन्धी कषाय नहीं होती। इसके तीन ज्ञान होते हैं उन्हें न सम्यक कह सकते, न खोटे कह सकते, किन्तु मिश्र ज्ञान कहते हैं। फिर भी जहाँ खोटे की मिश्रता हो वहाँ खोटा ही कहा जायेगा। सम्यग्मिथ्यात्व में असंयम होता है, दर्शन, चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन होता है। लेश्यायें छहों सम्भव हैं, सम्यग्मिश्यादृष्टि भव्य जीव है। सम्यक्त्व मार्गणा में सम्यग्मिथ्यात्व भाव है, यह संज्ञी जीव है और आहारक रहता है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव बड़ी से बड़ी अवगाहना

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वाले मिले तो एक हजार योजन तक की लम्बी अवगाहना वाले मिलते हैं। जैसे स्वयंभू रमण समुद्र में मच्छ होते हैं उनके भी तृतीय गुणस्थान हो सकता है।

सम्यग्मिथ्यादृष्टियों का संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल व अन्तर प्ररूपणा में विवरण—सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों की संख्या असंख्यात है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव का निवास स्थान लोक का असंख्यातवाँ भाग है। चूंकि यह पर्याप्त है। संज्ञी पञ्चेन्द्रिय है इसलिये इसका क्षेत्र अधिक नहीं है, मनुष्य लोक से अधिक है किन्तु तिर्यक लोक से कम है। यह लोक के असंख्यातवें भाग क्षेत्र को छू आता है और अतीत काल की अपेक्षा से देखा जाये तो इसका स्पर्शन कुछ कम ८/१४ (आठ बटे चौदह) वें भाग लोकप्रमाण है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव नाना जीवों की अपेक्षा से अधिक से अधिक निरन्तर रहा करे तो पल्य के असंख्यातवें भाग काल तक रहते हैं और कम से कम रहे तो अन्तर्मुहूर्त काल तक रहते हैं। इसका अन्तर काल अर्थात् जिस समय लोक में कहीं भी सम्यग्मिथ्यादृष्टि न मिले तो वह है कम से कम एक समय अर्थात् कोई एक समय ऐसा गुजर सकता है कि जिस समय उस विश्व में कहीं भी सम्यग्दृष्टि जीव न हो, और, यदि इसका उत्कृष्ट अन्तर बने तो पल्य के असंख्यातवें भाग तक का अन्तर हो सकता है। इतने बड़े अन्तर के बाद नियम से सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव बनते ही हैं।

सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान की क्षायोपशमिकरूपता—सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान में परिणाम मिश्र होता है, इसलिये इसे न तो पूर्णतया सम्यक् कहते और न पूर्णतया मिथ्यात्व कहते। वह सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव है। इन जीवों में प्रायः विशुद्ध परिणाम होते हैं। इसका भाव क्षायोपशमिक कहलाता है। सम्यग्मिथ्यात्व रूप परिणाम यद्यपि होता सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से लेकिन इसमें सम्यक्त्व को पूर्णतया घातने की शक्ति नहीं है, और पूर्ण सम्यक्त्व को घातने की है इस कारण इसका रूप क्षायोपशमिक कहलाता है। जैसे कि आचार्यों ने विज्ञप्ति की कि पहले के चार गुणस्थान दर्शन मोह की अपेक्षा से हैं तो दर्शन मोह का जो भेद सम्यग्मिथ्यात्व है उसका यहाँ उदय है। उदय होने से औदयिक कहना चाहिये था किन्तु यह उदय एक मिश्र दशा के फल को देता है, इस कारण इसका क्षायोपशमिक भाव कहा गया है।

शान्ति साता का प्रारम्भ सम्यक्त्व के प्रादुर्भाव में—इस संसार में कषाय और विषयों में भटकते हुये प्राणियों को शान्ति साता का प्रारम्भ कहाँ से होता है, शान्ति का दर्शन कहाँ से होता है, आज उसकी चर्चा चलेगी। अथवा सत्प्ररूपणा द्वारा अविरत सम्यक्त्व का वर्णन होगा, यों कहिये। ससार के प्राणी जैसे सभी पदार्थ हैं वैसे ही ये भी पदार्थ हैं। प्रत्येक पदार्थ अपने प्रदेश में ही रहता है। प्रदेश में ही उनका उत्पाद व्यय होता है, अपने ही वजूद में उनका सर्व कुछ परिणमन होता है, ऐसे ही प्रत्येक जीव को अपने आपके प्रदेशों में हो स्वरूप में ही सर्व कुछ परिणमन होता है। जब ऐसी सबकी स्थिति है तो इसको कहाँ से गुंजाइश आयी जो यह कहा जाये कि हमने इसको सुख दिया, हमने इसको दुःख दिया। किसी भी प्राणी के सुख दुःख को देने में दूसरा समर्थ नहीं, अनेक घटनाएँ बतावेंगे कि भावना तो की कि मैं इसको सुख दूँ और कहो उसको दुःख ही मिला। भावना तो कि किसी ने कि मैं इसे दुःख दूँ और कहो ऐसा योग जुड़ जाये कि उसी के निमित्त से उसे आनन्द मिल गया। तो कोई किसी के सुख दुःख को करने में समर्थ नहीं। प्रत्येक प्राणी आजाद है, अपने भावों को बनाता है। अपने ही भावों से अपने में सुख दुःख आनन्द पाता है। अब तक जो हैरानी रही वह सब कर्ता कर्म विधि की रही, मैं इसको करता हूँ, मेरा यह कर्म है, मेरा यह अधिकारी है, इसका मैं मालिक हूँ। इस प्रकार से

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अपने आपमें जो बेतुकी, बेबुनियाद बढ़ेंगी जो एक बात सोची उसका फल है कि यह संसार में सलता है और दुःखी होता है। कभी अचानक जीव को अपने आपके स्वरूप का भान हो उठता है। मैं यह ज्ञानमात्र हूँ, मेरे में किसी दूसरे पदार्थ का प्रवेश नहीं। जैसे देखते तो भले ही हैं लोग कि आकाश में बहुत सी चीजें रखी हैं। आकाश में टेबुल है, हम हैं, लेकिन वास्तविकता यह है कि आकाश में कोई दूसरी चीज का प्रवेश ही नहीं हो सकता। आकाश में आकाश है, टेबुल में टेबुल है। स्वरूप में देखो ना, जैसे एक किलो दूध में पाव भर पानी मिला दिया तो दूध और पानी एक रस सा हो रहा, लेकिन सूक्ष्म निरीक्षण से देखें तो दूध के अणु में दूध ही है और पानी के अणु में पानी ही है। दूध में पानी नहीं आया और पानी में दूध नहीं आया। स्वरूप दृष्टि से यह भेद मालूम होगा, ऐसे ही स्वरूप दृष्टि से देखो तो हमारा सब कुछ हममें ही है, हमसे बाहर नहीं। दूसरे का सब कुछ उसमें ही है, उससे बाहर नहीं, यह तो निमित्त दृष्टि है, परस्पर उपग्रह हो रहा है जीवों के द्वारा। तो जहाँ वस्तु की स्वतन्त्रता का भाव होता है वहाँ इसका मोह नष्ट हो जाता है और अपने आप में सहज शाश्वत स्वरूप में प्रकाशमान आनन्द का अनुभव होने लगता है तब उसे कहते हैं सम्यग्दृष्टि जीव।

सम्यक्त्व होने पर हुई आन्तरिक सद्वृत्ति का चित्रण—सम्यग्दर्शन तो हो गया, पर अभी कोई व्रत नहीं है इस ओर हमारा अभ्यास नहीं हो पाया कि जिससे बाह्य पदार्थों की बिल्कुल उपेक्षा हो जाये। सम्यग्दृष्टि घर में रहता है, दुकान पर जाता है, सारे काम करता है, परिस्थिति ऐसी है, उसका अभी दृढ़ अभ्यास नहीं बना कि सबसे विरक्त होकर केवल एक आत्मध्यान में ही तृप्त रह सकें। रह रहा है गृहस्थी में, रह रहा है असंयमी ऐसे जीव को कहते हैं अविरत सम्यग्दृष्टि। जिसे कहते हैं चौथा गुणस्थानवर्ती। सम्यग्दर्शन की कला एक ऐसी अद्भुत कला है कि नरक के नारकी भी कोई यदि सम्यग्दृष्टि है तो कठिन दुःख भोगते हुये भी भीतर में आकुलित नहीं होते। सम्यग्दृष्टि देव जिनके अपार भोग सामग्री सामने पड़ी है, पर वे भोग सामग्री में आसक्त नहीं होते। यहाँ भी जो पुरुष विवेकी हैं, सम्यग्दृष्टि हैं, अपने आपके इस सहज स्वरूपको देख लेने से एक अद्भुत आनन्दका स्वाद लिया है वे पुरुष न बाहर विशेष कषाय कर सकते हैं न कहीं भोगों में आसक्त हो सकते। उपेक्षा भाव, समता भाव उसमें रहता है। कर्म की चोट है, कुछ लगना तो पड़ता है अर्थ काम पुरुषार्थ में, मगर आसक्ति नहीं रहती। एक हिरण जंगल में अपना भोजन करता है और बिल्ली भी जैसा उसका खाना है चूहों को पकड़ना, यों वह भी समय गुजारती है, पेट दोनों भरते हैं, मगर हिरण को अपने भोजन में आसक्ति नहीं है, एक दृष्टान्त दे रहे, थोड़ी सी आहट मिल जाये तो हिरण घास छोड़कर मुख उठा लेता है, सावधान हो जाता है चौकन्ना हो जाता है और बिल्ली ने कोई चूहा पकड़ लिया हो तो उस पर कोई कितने ही डण्डे बरसाये तो भी उसे छोड़ती नहीं। कितना अन्तर आप देख रहे हैं आसक्ति में और निराशक्ति में। मनुष्य हैं, कमजोर हैं, गलतियाँ होती हैं, विषयों में लगते हैं, उपार्जन में लग रहे, कुछ अगल बगल सम्मान धन प्रतिष्ठा उसको भोग रहा, इतने पर भी यदि सम्यक्त्व है तो इसमें आसक्ति नहीं है, इसको पकड़ कर नहीं रहता। कोई समय ऐसा बनाता है कि सबका ख्याल छोड़कर गुप्त ही गुप्त अपने आपमें प्रकट हुई सम्यक्त्व निधि का आनन्द लेता है।

महामहिम सम्यक्त्व के लिये ही अपने जीवन का निर्णय—यहाँ प्रकरणवश सम्यक्त्व की बात सुनो; सम्यक्त्व नाम है विपरीत अभिप्राय निकल जाने का। प्रत्येक पदार्थ मुझसे निराला है, पर जब तक सम्यक्त्व न था तब तक यह पर पदार्थों को अपनाता था। विपरीत अभिप्राय था, अब विपरीत

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अभिप्राय नहीं बन रहा। भोगों से विषयों से इस जीव को आनन्द नहीं किन्तु बरबादी है, पर सम्यक्त्व न था तो यह नहीं समझ सके। विपरीत अभिप्राय था, भोग साधन ही उसके लिये सर्वस्व था, उसके अतिरिक्त अपना जीवन भी न मानता था, लेकिन सम्यक्त्व जगने पर वे सब तृणवत् असार लगने लगे। उसकी अब मुनीम जैसी वृत्ति हो गई। सेठ के यहाँ मुनीम खूब लगन से काम करता है, नुकसान नहीं होने देता, लाखों रुपयों का उठाना धरना जमा करना सब कार्य करता है, रक्षा भी करता है, लोगों से बोलता भी है, लेनदेन में हमारा तुम पर इतना गया है। पर श्रद्धा उसकी यह है कि इसमें से मेरा कुछ भी नहीं है, ड्यूटी है, ऐसे ही घर में रहते हुये अगर ड्यूटी की बात रह जाये चित्त में, कर्तव्य है, ड्यूटी है, दुकान सम्हालना है, अच्छी तरह बोलना, सद्व्यवहार रखना, चूँकि गृहस्थी में हैं तो यह हमारी ड्यूटी है, पर यह मेरा कोई सारभूत काम नहीं है। मैं हूँ चैतन्य स्वरूप आत्मतत्त्व। आज यहाँ है कल कहीं है, आज यहाँ हैं, कल कहीं है, आज यह समागम मिला, कल कुछ मिला। मेरे को जो कुछ ज्ञान और आनन्द मिला सो मेरे से ही मिलता है, बाह्य वस्तु से नहीं। बाह्य वस्तु जानने में आते और मलिनता साथ में लगी सो झट यों दिखने लगता कि इन पदार्थों से मेरे को आनन्द मिला। संसार में आनन्द क्या है? अपना बल खोना इसी को कहते हैं संसार का आनन्द। आत्मशक्ति बिगाड़ना इसी को कहते हैं संसार का आनन्द। कितना धोखा है। तो अपने अपने लिए कुछ बात निर्णय करके रखो कि मेरा जीवन किसलिए है, किसलिए मैं जिन्दा हूँ? क्या द्रव्य कमाने के लिये। लाखों करोड़ों का धन जोड़कर धर दिया इसमें क्या विवेक? अब भी कुछ लाभ नहीं पा रहे, और भविष्य में तो कुछ लाभ पावोगे नहीं। ये तो यहीं पड़े रह गये। इज्जत प्रतिष्ठा के लिये जीवन है तो इज्जत प्रतिष्ठा के मायने क्या कि संसार के दुःखी प्राणी ये कुछ अच्छी बात कह दें, प्रशंसा कर दें बस इसी के मायने यश और प्रतिष्ठा है, इससे हम क्या पायेंगे? हम भी दुःखी हैं प्रशंसक भी दुःखी हैं। देखो संसार दुःखमय है, उससे मेरे को क्या लाभ मिल जायेगा? किसलिये जीवन है, निर्णय तो बनावो। अच्छा जरा अन्तर में आओ, मैं अपने सहज ज्ञानस्वरूप को पहचान लूँ और इसी को ही निरन्तर तकता रहूँ तो निरख लो शान्ति मिली, आनन्द मिला? निर्भर हुये, शल्य कुछ न रही, पवित्रता जगी, स्वाधीन हो गये, यह काम है उचित, इसके लिये है यह जीवन है, बाकी बातों के लिये जीवन नहीं। ऐसे अन्तस्तत्त्व की उपासना बने तो मरण के बाद यह साथ जायेगा। यहाँ के धन दौलत, यश सब यहीं पड़े रह जायेंगे, पर अन्तस्तत्त्व की दृष्टि जगे तो यह साथ में जायेगा, इसका प्रभाव समस्त कर्मों से दूर हो जायेगा, यह बनेगा। ऐसी सम्यक्त्व की भावना भावें। मैं सम्यक्त्व रूप हूँ। मेरा सम्यक्त्व प्रकट हो, अन्य कुछ मुझे न चाहिये, जिस पर हमारा वश चल सकता उसकी अभिलाषा करें, जिस पर हमारा वश ही कुछ नहीं उसकी क्यों वाञ्छा करें? क्यों आसक्ति करें। मेरा वश मेरे पर ही चल सकता दूसरे पर नहीं चल सकता। शुद्ध विचार शुद्ध आचार, शुद्ध दृष्टि, शुद्ध स्थिति ये सब हम अपने आप में कर सकते हैं। सो सम्यक्त्व जगे यही धुन रहे।

सम्यक्त्व साधन— यह सम्यक्त्व कैसे उत्पन्न होता है तो इसका कारण सुनो। कारण दो प्रकार के मिलेंगे - एक मिलेगा अंतरंग कारण और कुछ मिलेंगे बहिरंग कारण। सम्यक्त्व तो हम ही पैदा करेंगे। उपादान तो हम ही हैं, मगर बाहर में कारण है तो दो प्रकार से अंतरंग कारण और बहिरंग कारण। सम्यक्त्व जगने का अंतरंग कारण है सम्यक्त्व घातक ७ प्रकृतियों का उपशम, क्षय, क्षयोपशम देखिये। युक्ति से विचारें, कोई भी चीज अगर बिगड़ती है, स्वभाव के विपरीत प्रवृत्ति होती

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है तो यह बतलाओ कि यह बिगड़ना और यह स्वभाव के विपरीत बनना उस पदार्थ में अपने आप याने अपने निरपेक्ष स्वभाव से होता है क्या ? या उसमें किसी परपदार्थ का सम्बन्ध है तब हुआ ? दो प्रश्न हैं आपके सामने। किसी पदार्थ में कुछ भी बिगाड़ हुआ वह उस पदार्थ ने अकेले ही परसंबंध बिना स्वतः कर लिया या पर का संबंध पाकर हुआ ? अगर बिगाड़ केवल अपने आप हुआ तो बिगाड़ सदा रहना चाहिए। फिर उस बिगाड़ को कोई मिटा नहीं सकता। क्योंकि वह मेरे में अपने आप से हुआ। उसमें किसी दूसरे का सम्बन्ध नहीं है। अकेले एकत्व भाव से अपने ही स्वभाव से विकार हुआ तो फिर विकारमय सदा रहेगा, सो तो है नहीं। विकार सदा रहता नहीं, मिटता है, तो यह निश्चय करें किसी भी पदार्थ में कुछ भी बिगाड़ होता है तो वहाँ उसके विपरीत कोई पदार्थ का संबंध है तब होता है। उपादान दृष्टि से तो यह ही कहेंगे कि इसने अपने भाव से बिगाड़ किया। तो ऐसा भाव बना क्यों ? क्या कारण है ? क्या सब अपने आप से ही बन गया ? तो अपने आपसे जो होता है वह तो सदा रहता है। दार्शनिक शास्त्र बतलाते हैं सदकारणवन्नित्यम्, कि जो चीज है और उसका कारण नहीं तो वह हमेशा रहेगा। आत्मा चित्स्वरूप है, उसका कारण नहीं, उसकी सत्ता है, उसका कारण नहीं, तो यह नित्य है, सदा रहेगा, ऐसे ही रागद्वेष, क्रोध, कषायभाव, जिन कषायों से हम दुःखी रहते हैं व जितनी हैं ? अगर बिना कारण के हों तो ये भी सदा रह बैठेंगी। कारण है इनका। और कारण है क्या ? मेरे स्वभाव से विरुद्ध किसी दूसरी चीज का सम्पर्क। पानी गर्म हो गया, यह पानी अपने आप केवल अपने ही स्वभाव से गर्म हो गया सो तो नहीं, पानी से विरुद्ध चीज का सम्पर्क है, आग उसका सन्निधान है तब वह गर्म हो गया। तो सबके साथ कर्म लगे हैं तब यह विडम्बना चल रही है, भटकता है, अनेक दुर्गतियों में जन्म लेता है, अनेक अवस्थायें बनती हैं। उन कर्मों की ७ तरह की प्रकृतियाँ ऐसी हैं कि जो सम्यक्त्व को नहीं होने देतीं। उनका नाम है अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति। तो इसका उपशम हो, क्षय हो, क्षयोपशम हो सीधा, ऐसा करने पर हमारा अधिकार नहीं, वे भी परद्रव्य हैं और उन्हें हम जानते ही नहीं, पकड़ ही नहीं सकते, सूक्ष्म है, उनपर हम क्या कर सकते हैं ? हम तो कैवल्य स्वरूप भावना भावें, थोड़ा बहुत समझकर स्वरूप दृष्टि की ओर अपना पौरुष बनायें, उस अभ्यास बल से ऐसी विशुद्धि जगती है कि जिसके प्रताप से इन ७ प्रकृतियों का उपशम क्षयोपशम होने लगता है। तो सम्यक्त्व जगने के लिये कर्त्तव्य है भेदविज्ञान और सहज आत्मस्वरूप की दृष्टि रखना, दो बातें, दो में भी एक ही अन्तिम, मगर उपाय है भेद विज्ञान। भेद विज्ञान को हम समझें। कषायें हैं, सब कर्म का झमेला है, और यह मैं ज्ञानस्वरूप आत्मा उस कर्म के झमेले में उलझा हुआ अपने उपयोग को फंसाता हूं। तद्रूप अपने को समझता हूं, मुझपर झमेला आ गया। कर्म का झमेला था, रहने देते, उस झमेले को हम नहीं अपनाते तो मेरे में झमेला न आता और कर्म का भी झमेला कम हो जाता।

स्वयं के अपराधों को दूर कर सहज समृद्धि की ओर उमंग रखने में हित— देखिए हम किसी भी असफलता में दूसरे को गाली देते या दूसरे को उपालम्भ देते मगर सारी असफलताओं में, सारी विरुद्ध बातों में खुद का अपराध है इसको नहीं देखते। जो भी जब भी दुःखी होता है तो अपना पक्का निर्णय बनायें कि कुछ हमसे गलती होती है तब मेरे को दुःख होता है। मेरा दुःख किसी दूसरे की गलती से नहीं होता। देखिए — यह आध्यात्मिक रहस्य भी है और लोक में सुख से जीवन बिताने की कुञ्जी भी है। जब भी हमें क्लेश हो। हम अपना अपराध टटोलें। दूसरे का अपराध न देखें। बिल्कुल

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

निश्चित बात है, जब भी हम दुःखी होते है तो अपने अपराध से दुःखी होते हैं, दूसरे के अपराध से हम दुःखी नहीं हो सकते। आप उन घटनाओं को दृष्टान्त में रख लीजिए। कोई कहे कि मेरा लड़का मेरे से अच्छा नहीं बोलता है, बुरा बोलता है, और सुविधा भी नहीं देता है। तो मेरे को जो दुःख है वह लड़के की वजह से ही तो हुआ ना ? नहीं, नहीं, लड़के के अपराध से तुम्हें दुःख नहीं हुआ। आपको अपने ही अपराध से यह दुःख है। आपने परजीवको अपना लड़का समझा यह पहला अपराध है, मैंने इस पर एहसान किया, पढ़ाया-लिखाया, बड़ा किया, ऐसा श्रम किया यह दूसरा अपराध। और यह मुझे यों बोलता है, यों उस पर दृष्टि लगाया, विकल्प पर विकल्प करते जा रहे और कहते हो कि दूसरे ने मेरे को दुःखी किया। अपनी देखो ना मोह और राग लगा है यह मैं अपराध करता हूं और दुःखी होता हूं। मैंने ऐसा ही अशुभ भाव किया था। ऐसा ही कर्मबन्ध हुआ है कि जिसके उदय में में ऐसा ही योग मिल रहा इसमें अपराध दूसरे का क्या ? प्रत्येक क्लेश में अपना अपराध सोचने लगो। इस जीवन में भी सुख से रहेंगे और आध्यात्म साधना भी बनेगी। कर्म करने का भी अवसर हो जायगा। सम्यक्त्व में और मिथ्यात्व में यह ही तो अंतर है। नाम ही उसका मिथ्यात्व है, जो संयोगी बुद्धि लगाए उसका नाम मिथ्यात्व है, जो असंयोगी स्वतंत्र स्वरूप वाली दृष्टि लगाए उसे कहते हैं सम्यक्त्व। यह सम्यकत्व जिसके जगा और अभीव्रत नहीं पाल सक रहा है ऐसी स्थिति वाले को कहते हैं अविरत सम्यग्दृष्टि। सम्यक्त्व की आदि होती है किन्तु मिथ्यात्व बुराई की परम्परा की आदि नहीं है, मिश्यात्व परम्परा की आदि नहीं है मिथ्यात्व अनादि से है। भले ही किसी सम्यग्दृष्टि का सम्यक्त्व छूट जाय तो सादि मिथ्यात्व हुआ, पर उसके स्वामी कितने देखो कैसा सुन्दर अवसर मिला ? अनादि काल से हम रगड़े चले आ रहे थे मिथ्यात्व में, कुभाव में, कुबुद्धि में, जिसके समय की कोई आदि नहीं, और आज यदि बुद्धि जगती है अर्थात स्वरूप की दृष्टि जगती है तो कितना बड़ा पावन दिन है। कैसा पावन अवसर है, कितनी बड़ी पवित्रता है। उसका कितना बड़ा समारोह मनाना चाहिए। हो ही नहीं सकता इसका समारोह बाहर की क्रिया में। यह अंतरंग का एक इतना ऊंचा पवित्र भाव है। जीना समझें तो इसमें समझें, इससे पहले जिये वही जीना नहीं। भाव मरण था। अपने परमात्मस्वरूप की निरंतर हिंसा करते आ रहे थे। वह जीवन क्या जीवन है ? जीवन तो सम्यक्त्व के दिन से उत्पन्न होता है तो ऐसा अविरत सम्यग्दृष्टि जीव था तो पहले मिथ्यात्व में ना ? और इसके सम्यक्त्व घातक ५ प्रकृतियों की सत्ता अनादि से चली आ रही थी। सम्यक् मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति, ये दो प्रकृतियाँ तो उपशम के परिणाम से निर्मित होती हैं मिथ्यात्व के चकनाचूर होने से। तब ७ की सत्ता होती है। तो इन ५ प्रकृतियों का उपशम हो तो सबसे पहले इस जीव को प्रथम उपशम सम्यक्त्व प्राप्त होता है।

आनन्द के वास्तविक धाम में विश्राम करने का अनुरोध— देखो भैया लोग खुशी मनाते हैं खुद का विवाह हो रहा। बेटे का विवाह हो रहा। या कोई बालक उत्पन्न हुआ तो लोग खुशी मनाते हैं। वे उस समय यह ज्ञान नहीं करते कि जितना यह संयोग है, समागम है यह सब उलझन है, जितना समागम की ओर लगाव है उतना ही उलझन का फसाव है। जब कभी खोटा संयोग होता तब तो यह कह देते कि बेकार है समागम। और जब कुछ भला सा समागम मिलता है, घर के लोग भी प्रेम से बोलते हों, घर के लोग भी बड़े खाने पीने सुख समागम का ख्याल रखते हों, बड़ा अच्छा लगता हो, लेकिन जितनी उलझन खोंटे वातावरण में नहीं है उतनी उलझन अनुकूल वातावरण में

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

होती है। कुपूत हो गए तो मन में सोच लिया कि कुपूत है, उससे प्रेम हट गया, लगाव हट गया। कुछ सम्बन्ध भी न रखा। सबको जाहिर कर दिया ताकि उसकी वजह से लोग मेरे पर उपद्रव न डालें। निवृत्त हो गये, और अगर पुत्र भला है, नम्र है, कलावन है, ज्ञानी है, सज्जन है तो उसका बाप क्या करेगा कि सारा जीवन उसका चिन्ता में रहेगा। इसको मैं कितना कमा जाऊँ, कितना धन जोड़ जाऊँ, इसको मैं कैसे सुखी करूँ, इसे रंच मात्र भी दुःख न हो, यों सारे जीवन भर उसके लिये क्लेश सहेगा और कुपूत के लिए तो एक बार निर्णय कर लिया, तो चैन में बैठ गये। अनुकूल वातावरण में हर्ष मानने की बात न होनी चाहिए और प्रतिकूल वातावरण में विषाद भी क्यों लाना? सबसे निराले ज्ञानमात्र इस अन्तस्तत्त्व की परख कर लें। यह हूं मैं ज्ञानमात्र, अन्य कुछ नहीं। अन्य कुछ न चाहिए। मैं अपने को जानूँ यह भी न चाहिए। मैं पर से हटूँ, यह भी न चाहिए। बस जो है सो है। शान्ति समताभाव में प्रतिभास रहे। ऐसी स्थिति वाञ्छनीय होती है सम्यग्दृष्टि की। मोटी बात – "मोह राग रुष दुःख की खान।" "सुख दुःख दाता कोइ न आन।" कोई दूसरा सुख दुःख देने वाला नहीं। हमारा ही मोह रागद्वेष हमको पीड़ित करता है। उसके मिटाने का उपाय कोई दूसरा नहीं है। एक ही उपाय है "निज को निज परको पर जान।" मैं निज क्या? ज्ञानमात्र ज्ञानस्वरूप, कैसा अलौकिक तत्त्व है और ज्ञानमय है। इसको कैसे बतायें दूसरे को, इसकी रचना भी कोई कर सकता क्या? जो है स्वयं है, स्वतः सिद्ध है ऐसा अपूर्व ज्ञानस्वरूप यह हूँ मैं और मेरा सब कुछ मेरे में है। मेरी वर्तना इसी में है। मेरा परिग्रह बस यह ही मात्र स्वरूप है। ऐसे अपने ज्ञानमात्र स्वरूप में रत रहना, सन्तुष्ट रहना, तृप्त रहना, यह कला नहीं पायी जीव ने, इसीलिए अब तक संसार में भटकता है और भय और प्रलोभन इन दोनों से दुःखी हो रहा है। अहा···आशा और भय। देखो आशा रहने रखने से सुख किसी को नहीं मिला और भय करने से निःशंक कोई नहीं हुआ। ऐसे तत्त्व के दर्शन कर लें कि जहाँ आशा ही न रहे, भय ही न रहे तो सर्व सिद्धि हो जायेगी। वह तत्त्व है अपने आप में विराजमान सहज चैतन्य स्वरूप, जिसके लिए अनेक दार्शनिकों ने अपनी-अपनी विधियों से बहुत-बहुत वर्णन करना चाहा, मगर धन्य है स्याद्वाद शासन कि इस जीव तत्त्व को प्रत्येक नयों से समझाकर ऐसा स्पष्ट कर दिया गया कि अब नयों को छोड़कर केवल लक्ष्य में आ गया था उसी का दर्शन करके यह मोक्ष का मार्ग बना लेता है। ऐसा शासन पाया, सत्कुल पाया तो भाई इसका सदुपयोग करलें अन्यथा पतझड़ की तरह यह सब झड़ जायगा और अन्त में पछताना पड़ेगा।

सम्यक्त्व लाभ के साधन—समन्त भद्राचार्य ने बताया कि सम्यक्त्व के समान श्रेयस्कर कुछ अन्य नहीं और मिथ्यात्व के समान अश्रेयस्कर अकल्याणकारी अन्य कुछ नहीं। इस जीव को सर्वस्व शरण सम्यक्त्व से प्राप्त होता है। सम्यक्त्व में कोई कठिनाई की बात तो आती नहीं, किन्तु जो जैसा है वैसा मान ले, इतनी बात आती है। अब इतने में भी कोई कष्ट है क्या? जो पदार्थ जैसा है उसे वैसा समझ ले, श्रद्धान करले, सम्यक्त्व हो गया। कठिन क्यों लगता कि मोह से बुद्धि विपरीत बन गई। बाह्य में कुटुम्ब धन वैभव को सर्वस्व मान बैठे, पर अपने आप में क्या स्वरूप है। जो अपना सर्वस्व है उसकी सुध नहीं लेते। तो कठिन तो लगेगा ही, पर सहज सुगम स्वाधीन शरणभूत सारभूत तत्त्व सम्यक्त्व है। यह सम्यक्त्व कैसे पैदा होता? सो मूल में तो चाहिए अपने स्वरूप को समझने का अभ्यास। और वास्तविक निमित्त कारण है सम्यक्त्व घातक ७ प्रकृतियों का उपशम आदिक।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जीव में कर्म लगे हैं इसे कोई इन्कार नहीं कर सकता। चाहे उसका नाम कर्म धरो चाहे और कुछ धरो। इतना तो मानना ही पड़ेगा कि जीव का स्वभाव जब चैतन्य और आनन्द है तो क्या वजह है कि जिससे शुद्धि नहीं प्रकट हो रही। उत्तर तो दे सकते, इसकी योग्यता है। यहाँ भी प्रश्न है, क्यों इसकी ऐसी योग्यता है। परसम्पर्क बिना बिगाड़ की बात सम्भव नहीं है। तो उस करणानुयोग की भी बात समझें। कर्म ८ माने गये हैं जिनके भेद होने से १४८ हो जाते हैं। उन १४८ प्रकृतियों में मोहनीय कर्म की ७ प्रकृति बहुत कठिन प्रकृतियाँ हैं। अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृति, ऐसा प्रचण्ड क्रोध जो भव-भव में साथ चले। जिसका ६ महीने से अधिक संस्कार रहना है, चाहे देखने में बड़ी मंदकषाय लग रही हो, किन्तु जब तक निज सहज स्वरूप का अनुभव नहीं जगता तब तक इसके अनन्तानुबन्धी कषाय है।

अनन्तानुबन्धी कषाय की भयंकरता—अप्रत्याख्यानावरण कषाय अनन्तानुबन्धी से हल्की है लेकिन अप्रत्याख्यानावरण तीव्र हो जाय तो ऐसा लगेगा कि यह तो अनन्तानुबन्धी से भी बढ़कर है। श्री राम भगवान को, जब वह भगवान न बने थे, गृहस्थावस्था में थे, सीता जब हरी गई तो कैसा विषाद किया कि लोग देखें तो कहेंगे कि वे तो पागल से हो गये। लक्ष्मण की मृत्यु हो गई तब लक्ष्मण के देह को लिए-लिए फिरे। लोग जलाना चाहें पर वह दें नहीं। अप्रत्याख्यानावरण लेकिन ६ माह से अधिक यह प्रवृत्ति न चल सकी, क्योंकि राम ज्ञानी थे कर्म का ऐसा तीव्र उदय था। फिर भी देखो जब अप्रत्याख्यानावरण कषाय की तीव्र प्रवृत्ति थी तब तो लगते थे पागल से हो गए। और कोई बड़ा मन्द कषाय मुनि महाराज अपनी बड़ी बुद्धिपूर्वक व्रत, समिति, गुप्तिका पालन कर रहे हों, कषायें मन्द हों, शत्रुको शत्रु भी न समझे, कोल्हू में भी पेल दे तो भी पेलने वाले को दुश्मन नहीं मानते और कहो रह जाय अनन्तानुबन्धी कषाय। हो मिथ्यात्व अन्दर में। एक दृष्टांत में बात कह रहे हैं किसी मुनि की। इतनी मन्द कषाय होकर भी जो लोगों को दिखे कि बहुत मन्द कषाय है। और हो भीतर अनन्तानुबंधी कषाय। तो इतने मन्द होकर भी परमार्थस्वरूप का घात करने वाले अनन्तानुबन्धी विकट कषाय वहाँ पड़ी हुई हैं। तो हम बाहरी रूप रेखाओं से उससे भीतर की कषाय का भली प्रकार निर्णय नहीं कर सकते। अनन्तानुबन्धी के लक्षण तब प्रकट होते, कुछ समझना चाहें तो जो धर्म के प्रसंग में भी क्रोध करे, जरा-जरा सी बातों में झगड़े होते। मन्दिरों में भी प्रक्षाल करते हुए में भी इसने यों किया, ऐसा क्यों किया। वहाँ भी झगड़े होते। तो ऐसे धार्मिक प्रसंगों से भी जहाँ क्रोध बर्ते तो वह अनन्तानुबन्धी क्रोध समझिये। आप कहेंगे कि धार्मिक प्रसंग में आया तो है। यह तो भली बात है, तो हम यह थोड़े ही कहते कि इसका लगाव धार्मिक प्रसंग में नहीं है। उनके अनन्तानुबन्धी कषाय नहीं है। घर गृहस्थी के संयोग समागम उनमें क्रोधादि के अनेक अवसर आते हैं। आते हैं मगर धर्म का रूप देकर कषाय करें तो इसमें अन्दर में कषाय की अधिकता समझिये। घमण्ड सबको आ जाता है संसार में रहकर। कहते भी हैं मान में कि मैं धनवान हूँ, परिवार वाला हूँ, श्रेष्ठ कुलीन हूँ और कितने ही तो धर्म धारण करके गर्व अधिक बनाते। ओह मैं साधु हूँ। ये कैसे लोग हैं, नमस्कार करने नहीं आते। अमुक तमुख अनेक वहाँ धार्मिक प्रसंगों में गर्व (अहंकार) होता है। अपनी सुध नहीं रखते तो उसे क्या कहेंगे? उसे तीव्र कषाय कहेंगे। देखने में मन्द लगेगा मगर भीतर में जो परमार्थ तत्त्व के ध्वंस से सम्बन्धित जो कषाय है वह कठिन कषाय है। मायाचार—धर्म के प्रसंग में भी मायाचार

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

करना, अन्यत्र छल कपट करना उससे कठिन है। जो घर गृहस्थी के कारण मायाचार करते हैं वे परिस्थितियाँ हैं, किंतु धार्मिक प्रसंग में मायाचार रखे वह उद्दण्डता है। ऐसे ही लोभ कषाय धार्मिक प्रसंग में शक्ति होते हुए भी लोभ किये जाने की बात अनन्तानुबन्धीपने को सूचित करती है।

मोक्षमार्ग में प्रगतिशील आत्मा की सम्यक्त्व परिणति का कथन--१४८ प्रकृतियों में ७ प्रकृतियाँ ऐसी हैं कि जो सम्यक्त्व नहीं होने देतीं। तो सर्वप्रथम अनादि मिथ्यादृष्टि जीव के ७ में से ५ की ही सता है। तो जब ५ का उपशम होता है तो वह प्रथमोपशम सम्यक्त्व पाता। सारा अनन्त काल अन्धकार में था। अब सम्यक्त्व सूर्य का उदय हुआ। इस समय भी मिथ्यात्व सत्ता में दबा पड़ा है, जोर नहीं डाल रहा। जोर तो सम्यक्त्व का है, और सम्यक्त्व परिणाम से उस मिथ्यात्व का चकनाचूर किया जा रहा है। दबे दबाये में वहाँ सम्यक्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति, दो प्रकृतियाँ बन जाती हैं। अब इसके मोहनीय की २८ की सत्ता हो गई। सम्यक्त्व घातक सातों की सातों दबी हैं। प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि जीव, अब इसका जो अगला कदम बढ़ता है तो वेदक सम्यक्त्व होता है। यद्यपि वेदक सम्यक्त्व में कुछ दोष रहता है जो सम्यक्त्व में रहता है और उपशम सम्यक्त्व में न था मगर उपशम सम्यक्त्व थोड़े समय को होता है। प्रगतिशील सम्यक्त्व वाले के क्षायोपशमिक सम्यक्त्व होता है, वहाँ सम्यक् प्रकृति का उदय है तब वह कहलाता है वेदक सम्यग्दृष्टि। देखो कैसी निमित्त की स्थिति चल रही है। अनन्तानुबन्धी ४ और मिथ्यात्व व सम्यग्मिथ्यात्व इन ६ प्रकृतियों का उदयाभावी क्षय व उपशम तथा सम्यक्त्व प्रकृति का उदय। ऐसे इस सम्यग्दृष्टि के परिणाम तो निर्मल रहते हैं, मगर जिनको हम बता नहीं सकते, ऐसा कुछ सूक्ष्म दोष वहाँ रहता है। इतना सूक्ष्म दोष जो सम्यक्त्व का विघात नहीं कर सकता। यह जीव प्रगति करता है तो भीतरी परिणाम से किस तरह की उन्नति करता है यह बात देख लीजिये। जल्दी उन्नति और प्रगति में फिर क्या होगा? उसके बाद क्षायिक सम्यक्त्व बनेगा। क्षायिक सम्यक्त्व में अति निर्मल परिणाम और ७ प्रकृतियों का क्षय हो जाता है जहाँ प्रथम चार अनन्तानुबन्धी का विसंयोजन करना क्षय हुआ, फिर मिथ्यात्व का, फिर सम्यक्त्व का, फिर सम्यक्प्रकृति का क्षय होने लगता है। तो क्षय की विधि में स्थितिघात अनुभागघात आदि भी होता है। तो जब सम्यक्प्रकृति की अन्तिम स्थिति कांडक का घात हो जाता तब से कृतकृत्यवेदक कहलाता है। अब क्षायिक सम्यक्त्व पूर्ण प्रकट अन्तर्मुहूर्त में ही हो जायेगा लेकिन उस समय मरण हो जाय, नरक में जाय तो उनका क्षायिक सम्यक्त्व नरक में उसी अन्तर्मुहूर्त में पूरा हो जावेगा। तिर्यञ्च में जाय, वहाँ भोगभूमि में पूरा करेगा। मनुष्य में जाय वहाँ भोगभूमि में पूरा करेगा, देव में जाय वहाँ भी पूरा करेगा। मरण न हो तो जिन्दा में पूरा करेगा ही। क्षायक सम्यक्त्व हो गया तो यह सम्यक्त्व कभी छूटने का नहीं।

ज्ञानबल की महिमा—सम्यग्दृष्टि का भाव समस्त पापों से हटने का है। इसकी ओर दृष्टि रहती है—ज्ञान और वैराग्य मेरे स्वभाव हैं। हम आप को जितनी भी विजय है आत्मबल, वह सब ज्ञान और वैराग्य के बल पर है। एक पुरुष दूसरे को धमका दे तो वह दबने वाला स्वयं अपने में निर्बल ज्ञान का अनुभव कर रहा है और एक शहरी तेज मिजाज का छोटा बच्चा किसी गाँव के बड़े से बड़े को धमका दे तो वह दब जाय। यहीं देख लो एक ८ वर्ष का बालक बड़ी-बड़ी भैंसों पर अधिकार जमा लेता है। डंडे से हांकता है, चले जाते हैं वे भैंसे। जिन भैंसों में इतना बल है कि अगर भैंसा बिगड़ जाय तो बच्चे क्या १० आदमी भी उस पर अधिकार नहीं पा सकते। तलवार से या बन्दूक से सामना करना वह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बात अलग है । पर भैंसा के पास तो नहीं है तलवार, बन्दूक । यदि १० आदमी भी निहत्थे हों तो उन्हें भी एक भैंसा पर अधिकार पाना मुश्किल हो जाय । और यह ८ वर्ष का बालक ५-७ भैंसों को जिधर चाहे नचाता फिरता है, जरा भी गड़बड़ी की तो झट लाठी दिखाता, भैंसें शान्त हो जाते हैं । यह ज्ञान की महिमा की ही तो बात हुई । सम्यग्दृष्टि की ज्ञान कला और वैराग्यकला सर्वसदा अद्भुत है । सम्यग्दृष्टि सर्वराग रसवर्जनशील: । सम्यग्यदृष्टि होता है समस्त राग छोड़ने के स्वभाव वाला । कोई रईस बीमार हो जाय तो उसको बड़े आराम के साधन दिये जाते, अच्छा कमरा, अच्छा पलंग, नौकर, नाते रिश्तेदारों का आना जाना, समय पर डॉक्टर आना, समय पर दवा मिलना आदि सब प्रकार के आराम के साधन दिये जाते हैं, पर बताओ उस रोगी को उन सब आराम के साधनों में ममता है क्या ? ममता नहीं है । हाँ समय पर औषधि न मिले तो वह झुंझला जाता है इतने पर भी उसे उस औषधि से प्रीति है क्या ? अरे यह औषधि जल्दी छूट जाय इसलिये वह औषधि खाता है । भीतरी भाव उसका यह है । दृष्टांत तो जल्दी समझ में आ गया होगा क्योकि सभी बीमार हुए, सबको दवा हुई, सबके मनकी बात कह रहे । औषधि खाते हुए यह भाव रहता है कि यह औषधि मेरी जल्दी छूट जाय, उसके उपाय के लिये औषधि खाता है । ऐसी ही बात सम्यग्दृष्टि की समझना वह विषयों में भी है, कषायों में भी है, कुछ चल रहा है, भोगता भी है, पर कह सकते कि यह भोग उसका बिल्कुल उपेक्षित है ।

सम्यग्दृष्टि की सर्वरागरसवर्जनशीलता—इस ज्ञानी आत्मा को वर्तमान परिस्थिति में ऐसी बाधा भोगनी पड़ती है किन्तु है सर्वरागरस वर्जनशील: । अभी किसी को यह विदित हो जाये कि हमारी २-४ दिन की आयु है तो महामोही की तो बात छोड़ो, एक जनसाधारण की बात कह रहे, उसे किसी बात में रागरस ही न आयेगा । जिसको फाँसी दी जा रही हो उससे यदि कोई कहे कि क्या तुम्हें खूब इच्छा भर रसगुल्ले खिलावें ? तो शायद ही कोई कहे कि हाँ खूब हमारी इच्छा भर रसगुल्ले खिलाओ । अरे मरने का संभय जब निकट आ रहा है तो वह रसगुल्लों का क्या रस लेगा ? सम्यग्दृष्टि जीव ने समस्त वस्तुओं का सही स्वरूप जानकर जो अपने आपकी ओर झुककर आनन्द लिया है उसकी ऐसी दृढ़ स्मृति रहती है जैसे लोगों को अपने नाम को प्रतीति रहती है कि मैं अमुक नाम का हूँ, ऐसे ही सम्यग्दृष्टि को ज्ञानमात्र स्वरूप में प्रतीति रहती है । मैं तो यह हूँ, उस आनन्द का इतना बल है कि सारे विषयों के रस फीके लगते हैं । एक भजन में है "सहजानन्द स्वरस शुचि पीके, अस्थिर विषय क्यों लागें नीके ?" तो जब हम सब लोगों का एक ज्ञान ही करण है, माध्यम है कि हम सुख भोगें, दु:ख भोगें, विह्वल हों, शान्त हों, ऐसा ज्ञान हो हम आप सबके पास करण है, दूसरा कोई साधन नहीं सुख दु:ख भोगने का । भले ही निमित्त है, सामग्री है, आश्रयभूत है, कर्मोदय है, मगर ये तो सब परवस्तु हैं, उनकी परिणति उनमें ही पड़ी हुई है । जब यह जीव ज्ञान विकल्प करके उनको अपनाता है, वेदना तो तब से प्रारम्भ है । जिसने अपने ज्ञान विकल्प को डाट लिया, मन को डाट लिया उसका रास्ता साफ हो गया । अब विपत्ति विडम्बना उसके नहीं है । भले ही यह जीव अनादि से पुण्य रस को बड़ा महत्त्व देता चला आ रहा था और उसमें वह तारीफ समझता था । यह पुण्यवान है, इसके पुण्य का उदय है यों कोई तारीफ कर दे कि इसके बड़ा भारी पुण्य का उदय है तो उसे सुनकर यह फूल जाये ऐसी पुण्य की महिमा समझ रहा था और उसका एहसान मान रहा था, लेकिन जब यह जाना कि मेरे में तो अनन्त आनन्द की निधि पड़ी है, इस पुण्य के लगाव से तो उसका वह अनन्त आनन्द छिन गया है । जैसे कोई सेठ गुजर जाये, उस कुटुम्ब में केवल एक छोटा बालक ही रहे तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सरकार उस जायदाद को कोर्ट कर लेती है और बदले में ५००) माहवार उस बालक के घर भेज देती है। उससे उस बालक का पालन पोषण होता है। जब वह बालक १४-१५ वर्ष का होता है तो वह सरकार के बड़े गुण गाता है, अहो कितनी दयालु सरकार है, घर बैठे ५००) माहवार भेज देती है। जब वह १८-२० वर्ष का हो जाता है और भली भाँति समझ लेता है कि मेरी कई लाख की सम्पत्ति सरकार ने कोर्ट कर ली है उसके बदले में ये ५००) माहवार देती है तो वह झट सरकार को नोटिस दे देता है कि मुझे ये ५००) माहवार न चाहिये, अब मैं बालिग हो गया हूँ, मेरी लाखों की जायदाद मुझे वापिस दी जाये, ठीक ऐसे ही ये मिथ्यादृष्टिजन इस पुण्य सरकार के बड़े गुण गाते हैं—अहो! कितना वैभव मिला, वही जब बालिग हुआ, सम्यग्दृष्टि हुआ, अपनी आनन्द निधि की सुध आयी, अहो कितना दिव्य अलौकिक आनन्द! प्रभुता समझ में आयी, बस तब से पुण्य का एहसान खतम। पुण्य सरकार जो वैभव दे रहा था उसको वापिस कर देता, मुझे न चाहिये। यह सर्व परद्रव्य छिदो भिदो, ले जाओ, कुछ भी स्थिति हो, यह मेरा परिग्रह नहीं। वापिस करता है, दावा करता है, सम्यक्त्व और चारित्र परिणाम की वृद्धि बल से वह अपने अनन्त आनन्द को वापिस ले लेता है।

ज्ञान बल से ही जीवन में विजय—सम्यक्त्व ही जीव का सर्वस्व कारण है। अनित्य पदार्थ को अपने सर्वस्वपने का विश्वास मत रखो। बड़ा धोखा होगा। जो लोग दुःख में हर्ष मानते हैं उन पर इतना कठिन दुःख आयेगा कि सारी जिन्दगी जो हर्ष माना उसका जितना कोटा हुआ हर्ष का, जितना उसका जोड़ हुआ, उससे अधिक मात्रा में दुःख आता है। और, ऐसा दुःख आता है कि कहो अपने प्राण भी छोड़ दे। सांसारिक सुख में हर्ष मत मानो और कभी दुःख आये तो दुःख से मुक्त होने की भगवान से प्रार्थना भी मत करो। भगवान से अगर कुछ चाहो तो यह ही बात मांगो कि दुःखों के सहन करने की मेरे में शक्ति प्रकट हो। समता परिणाम हो। संसार में रहे और भगवान से माँगे कि दुःख न आये, ये बेढंगी बेढंगी बातें क्यों चाहते? आने तो दो जो आवे, और प्रायः बड़े-बड़े महापुरुषों ने जिनका भवितव्य अच्छा होने को हुआ दुःख आने पर ही भवितव्य अच्छा बनाया, अब तक के पौराणिक इतिहास में आप देखेंगे दुःख क्या चीज है? ज्ञान सही बनायें तो कोई दुःख ही न रहेगा। बाह्य वस्तु की घटना की माँग करें कि ऐसा न हो, यह अज्ञानता है, अपने आपके बारे में माँग करें कि मेरे में ज्ञान और समता प्रकट हो, यह ढंगकी बात है, अपने को अपने में निहारो, अपने में अपना बल प्रकट करो, शान्ति का मार्ग मिलेगा।

दुःखपूर्ण संसार में आत्मविवेक से ही दुःखरहित स्थिति की सम्भवता—जो भोग आज सस्ते लगते हों ये कितने महंगे पड़ेंगे उसका उदाहरण ये संसार के सभी दुःखी प्राणी हैं। एक शराबी शराब की दुकान पर गया, बोला हमको बहुत बढ़िया शराब दो। ···अजी बहुत ही बढ़िया। ·· हाँ हाँ बहुत ही बढ़िया शराब है और यदि आपको विश्वास न हो तो ये जो तुम्हारे बाबा दादा वगैरह नालियों में पड़े हैं, जिनके मुख पर कुत्ते भी मूत रहे हैं उन्हें ही देखकर यह अन्दाज करलो कि हमारे यहाँ की शराब बढ़िया है, या नहीं। तो पाप का क्या फल होता है उस पर विश्वास ही कर लो दुनिया के इन समस्त प्राणियों को देखकर। ऐसा नहीं है कि हम मनुष्य हैं, हम अच्छे हैं, हम अच्छे ही रहेंगे, ये तो और लोग हैं। जो खराब बनते हैं। क्या विशेषता है हम आपकी, जीव जीव सब समान हैं और जिस जिस पर जिस विधि से जो गुजरना है उस पर उस विधि से वह गुजरता है। इसमें किसी पर कोई छूट नहीं होती। तो यह सारा संसार दुःखपूर्ण है। यहाँ के समागमों का लगाव सम्बन्ध, व्यामोह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यह सब दु:खपूर्ण है। सबसे चित्त को हटाकर भीतर अपने आत्मा को देखें और आत्मा में ही शाश्वत सहज स्वरूप को देखें, विचार करें। चिन्तन करें। मैं हूँ तो अपने आप क्या हूँ, दूसरे के सम्बन्ध बिना स्वयं अपने आपकी सत्ता के कारण ही मैं क्या हूँ ? जो उस अपने सत्त्व के कारण निरपेक्षतया सहज हो सो मैं हूँ और बातें कितनी ही आयें वे मैं नहीं हूँ। मैं मनुष्य नहीं, मैं त्यागी नहीं, गृहस्थ नहीं, साधु नहीं, जो जो भी बातें पर के सम्बन्ध से हों, जैसे कर्म के उदय उपशम, क्षयोपशम आदिक से हो वह मैं नहीं। मैं वह हूँ जो मैं अपने सत्त्व के कारण सहज निरपेक्ष होऊँ। इसी को कहते हैं पारिणामिक भाव। जीवत्व भाव, सहज चैतन्य भाव। यह हूँ मैं। यही एक अमृत है। अगर यह श्रद्धा बन जाये कि मैं ज्ञानमात्र चैतन्यमात्र हूँ, प्रतिभास मात्र हूँ, अन्य कुछ हूँ ही नहीं। ऐसी श्रद्धा अमृत का पान हो जाये तो यह अब भी अमर है, आगे अमर है, स्वत: नि:शंक है। कष्टों से हीन है।

कष्ट का भी ज्ञानविकल्प से प्रादुर्भाव-- भैया ! कष्ट बाहरी चीजों से नहीं आता। बाहरी चीजों के विषय में यह ज्ञानविकल्प बनावे कि उन विकल्पों से कष्ट आता, बाह्य चीजों से कष्ट नहीं आता। एक बच्चे को कोई माँ अपने कंधे पर बिठाये हुई किसी दरवाजे से निकल रही थी। दरवाजा बच्चे के सिर में लग गया, बच्चा रोने लगा, अब उसे चुपवाने के लिये वह माँ क्या करती है कि उस दरवाजे में एक दो थप्पड़ वह माँ लगा देती है, वहाँ बच्चे का रोना बन्द हो जाता है। अब बतलाओ वहाँ बात क्या हो गई। क्या उसे किवाड़ से दु:ख आया ? अगर किवाड़ से दु:ख आता तो अभी भी दु:ख रहना चाहिये था, आखिर किवाड़ कहाँ गया था ? लग ही तो गया था। पर वह लड़का किवाड़ से दु:ख नहीं मान रहा। कुछ कल्पना से मान रहा। किवाड़ में माँ ने दो तमाचे लगाया तो वह बच्चा शान्त हो गया, खुश हो गया। तो ऐसे ही हम आपको बीसों किवाड़ लगते रहते हैं। किसी के गालियों का किवाड़, किसी के धन का किवाड़, किसी का किसी तरह, किसी का किसी तरह, और दु:खी होते, मानते यह हैं कि इन लोगों से मुझे दु:ख हुआ। किसी से दु:ख नहीं। अपने में ज्ञानविकल्प किया उससे दु:ख बन गया। तो श्रद्धा बनावें कि मैं ज्ञानमात्र हूँ। उस भावना से कि सारे दु:ख एक साथ ही – ध्वस्तता को प्राप्त हों। ऐसी जिसने ज्ञानमात्र की अनुभूति पायी है बस जीवन उसका ही सफल है।

वर्तमान विगाड़ का हेतु जीव की अनादित: सोपाधिता—यह जीव अनादि काल से सोपाधि चला आ रहा है। यह अकेला बन्धरहित, सम्बन्धरहित केवल अपने आपमें स्वरूपत: ही अन्तर्बाह्य जुदा न रहा आया, और इसका प्रमाण यह है कि विषय कषाय के ये बिगाड़ चल रहे हैं विषय कषाय के ये बिगाड़ किसी विरुद्ध पर के सम्बन्ध बिना नहीं हो सकते। अगर पर सम्बन्ध बिना निरपेक्ष यह बिगाड़ हो जाये तो यह स्वभाव भाव बन जायेगा। फिर इसका विनाश ही सम्भव न होगा। यह विगाड़ है, मिटता है। तो ऐसी विरुद्ध चीज क्या लगी है जीव के साथ, इसका वर्णन जैन शासन में किया गया है। कुछ लोग ऐसा भी तो कहने लगते हैं कि जीव की तकदीर, जीव का भाग्य, पर भाग्य क्या ? तकदीर क्या ? इसका मूर्तरूप कुछ नहीं बखान पाते और जैन शासन में इसका मूर्त रूप कर्म का विवरण कैसे एक एक समय की अवस्था में बताया ? वह भी तो हो रहा। यद्यपि अध्यात्म दृष्टि से केवल आत्मा आत्मा को ही तकें अवगुण देखें तो अपने में देखें, भूल देखें, त्रुटि देखें, पर एकमुखी निर्णय तो नहीं बनता। अध्यात्म से एकान्त या निश्चय से एकान्त कर दिया जाये कि यह तो आत्मा की योग्यता से ही होता है। तो फिर वहाँ भी प्रश्न करो वे जो योग्यतायें हैं, ऐसी योग्यतायें कैसे हुई ? क्यों नहीं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बहुत ही पहले या अनादि से अपना वही स्वभाव योग्यता में रहता है। तो निश्चय दृष्टि एक द्रव्य को देखकर एक द्रव्य की बात करनी है, पर इसके अतिरिक्त कुछ नहीं, ऐसा कुछ विरोध रखकर निश्चय एकान्त की बात कही जाये तो वह विरुद्ध पड़ती है जीव के साथ कर्मों का सम्बन्ध और उन कर्मों की दशाओं के वर्णन से जीव के भावों का भी अनुमान बनता है।

सत्ता भेद से विभिन्न सम्यग्दृष्टियों का चित्रण—जीव को सम्यक्त्व हुआ और उस सम्यक्त्व परिणाम के प्रताप से मिथ्यात्व के अनुभाग प्रकृति भाव चकनाचूर हुये। सम्यक्त्व घातक दो प्रकृतियों की सत्ता और बनी। ७ हो गये और दो मिलकर कुल २८ मोहनीय कर्म की सत्ता हो गई। अब यह जीव मिथ्यादृष्टि हो गया तो भी उसके साथ सबकी सत्ता है। ऐसी २८ प्रकृतियों की सत्ता वाला मिथ्यादृष्टि जीव जब सम्यक्त्व करे तो उसे कहेंगे २८ की सत्ता वाले मिथ्यात्व से आया हुआ सम्यग्दृष्टि। अब सम्यक्त्व नष्ट होने पर सत्ता तो २८ की रहती है मगर जैसे जैसे काल व्यतीत होता है वैसे वैसे सम्यक् प्रकृति बदल कर उकलकर सम्यक्मिथ्यात्व में बन जाता है और सम्यक् मिथ्यात्व उकलकर मिथ्यात्वरूप हो जाता है तब यह कहलाता है, फिर २६ की सत्ता वाला। कैसा परिणाम है? जैसे अन्धा रस्सी बटता है तो आगे आगे बटता जाता, पीछे उकल रही, इसका उसे पता नहीं। इसी तरह जिस प्रकार मिथ्यात्व को हल्का करे, सम्यक् मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति बनाये तो कुछ उकलकर अब गाढ़े की ओर बनने लगे तो ऐसी २६ की सत्ता वाला पुनः सम्यक्त्व करे तो वह २६ की सत्ता वाला मिथ्यात्व से सम्यक्त्व वाला हुआ यह कहा जावेगा। और न हो सके २६ प्रकृति २७ ही हो पाती और फिर सम्यक्त्व हो तो भी हो सकता है। इसे कहेंगे २७ की सत्ता वाला मिथ्यादृष्टि से सम्यग्दृष्टि हुआ। यह सम्यग्दृष्टि जीव तीसरे गुणस्थान में आये और फिर सम्यक्त्व पैदा कर ले तो भी हो सकता है। यह कहलायेगा सम्यग्मिथ्यात्वागत सम्यग्दृष्टि। वेदक सम्यग्दृष्टि में अनन्तानुबंधी का क्षय किया हो तब चार प्रकृतियाँ इसकी और दूर हो जाती हैं, उसके बाद मिथ्यात्व का क्षय हो जाता है बाद में सम्यग्मिथ्यात्व व सम्यक प्रकृति का घात का उद्यम है। जब तक यह क्षायिक सम्यग्दृष्टि नहीं बनता, वेदक सम्यग्दृष्टि ही रहता तो वह २३ प्रकृतियों की सत्ता वाला सम्यग्दृष्टि है मिथ्यात्व के क्षय के बाद। इस तरह प्रकृतियों की दृष्टि से इतना विडम्बनायें वहाँ हैं तो उसी के मुताविक इसके परिणामों में भी विभिन्नतायें हैं।

सम्यक्त्व के प्रलय से संसार की अधिक से अधिक अर्द्धपुद्गल परिवर्तन काल का अवशेष—सम्यक्त्व होता है कब? इस विषय में लोग ऐसा भी कह देते हैं कि जब अर्द्धपुद्गल परिवर्तन काल शेष रहता है तब जीव सम्यक्त्व के योग्य होता है। इस विषय में एक समस्या सामने आ जाती कि तब तो एक कोई निश्चित सी बात है। समय इतना रहेगा तो सम्यक्त्व हो पायगा, पर इसे कह तो दिया जाता यों, लेकिन वास्तविकता क्या है? इसको धवल में कालानुगम अन्तरानुगम के प्रकरण में स्पष्ट बताया है कि यह जीव सम्यक्त्व परिणाम के बल से अर्द्धपुद्गल परिवर्तन काल शेष कर देता है अर्थात् इतना काल शेष रहने पर सम्यक्त्व होता यह बात नहीं, किन्तु जिस जीव को सम्यक्त्व होता है उसका काल इससे अधिक नहीं रह सकता। सम्यक्त्व परिणाम की महिमा है - जो अर्द्धपुद्गल परिवर्तन काल से अधिक संसार नहीं रहता। यह काल लम्बा इसलिए बताया कि कारणवश सम्यक्त्व छूट गया, मिथ्यात्व हो गया। ऐसी स्थिति में यह जीव अधिक से अधिक संसार में कब तक रह सकता है?

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वह है कुछ कम अर्द्धपुद्गल परिवर्तन काल अविरत सम्यक्त्व में रहने का। सम्यक्त्व हुआ, छूट गया, मिथ्यात्व हुआ तो अर्द्धपुद्गल परिवर्तन काल इसमे अन्तिम ११ अन्तर्मुहुर्त जो मिलकर भी एक अंतर्मुहूर्त है, कम कर दिया जाय कि आखिर में जितना जल्दी यह सम्यक्त्व पाकर मोक्ष जा सके। सो यों यह अन्तर देशोन अर्द्धपुद्गल परिवर्तन रहा, जैसे फिर जब उपशम सम्यक्त्व चरमभव में संयम के साथ हो गया फिर वेदक सम्यक्त्व, फिर अनन्तानुबन्धी का विसंयोजन, फिर दर्शन मोहनीय का क्षय व परिणामवश अविरत सम्यग्दृष्टि हुआ। फिर संयम, फिर ६ के ७वें में परिवर्तन फिर सातिशय अप्रमत्त ८, ६, १०, १२, १३, १४, इस तरह ११ अन्तर्मुहुर्त में यह निर्वाण को प्राप्त हो जायेगा तब ही तो अविरत सम्यक्त्व का उत्कृष्ट अन्तर बन गया।

ज्ञानमात्र अन्तस्तत्त्व के उपासक की मंगलमयता—जीव को सम्यक्त्व हो जाय तो इतना तो निश्चित ही है कि वह निश्चित मोक्ष जायगा, पर इतने से संतोष होता ही नहीं ज्ञानी को। वह तो अपनी एकत्वमयी दृष्टि रखता है। उसकी धुन रखता है। त्रुटि हो तो उस पर खेद करता है, पाये हुए रत्न को सम्हाल कर रखता है, फिर भी उदय की ऐसी विचित्रतायें है कि ऐसी स्थिति भी आये, छूट जाय तो भी यह जीव नियम से मुक्ति में तो जायगा ही। अब जरा अपने परिणाम बर्ताव को देखो कहाँ संतोष कर रहे ? यह जीव अध्रुव असार विनश्वर दृश्यमान चीजों के समागम में विश्वास कर रहा है अतः मनोबल, आत्मबल ही कम हो रहा। प्रायः लोग कर ही रहे हैं बाह्य में विश्वास, और उसी के आधार पर यहाँ शत्रु मित्र कहलाते हैं कि जिसकी कषाय में कषाय मिल जाय वे हो गये यहाँ के मित्र और जिसकी कषाय से कषाय न मिले तो वे हो गये आपस में शत्रु। यहाँ की मित्रता का कितना मूल्य ? वास्तविक मित्र, वास्तविक गुरु, हमारे पंचपरमेष्ठी हैं, धर्मात्माजन है, पर मोह की ऐसी लीला है कि इस मोही का यह निर्णय रहता है कि मेरा सर्वस्व तो मेरा कुटुम्ब है। तन, मन, धन, वचन सब कुछ न्योछावर हो इस कुटुम्ब पर। इसके अतिरिक्त और कुछ एक दिल बहलावा की धर्मदृष्टि से भले ही कोई दूसरा वर्ताव लग जाय, मगर श्रद्धा में तो वे परिजन ही रहते हैं। जहाँ इतना सम्पर्क हो, भीतरी लगाव हो वहाँ ज्ञानानुभूति का मौका कैसे प्राप्त हो ? मोह के उच्छेद का उपयोग, भ्रमण के उच्छेद का सुगम सरल उपाय है ज्ञान भावना। मैं ज्ञानमात्र हूँ, इस ज्ञान को ऐसी जानकारी में पहुँचाने की चेष्टा करो। अपने आप के बारे में यह ही जानना रहे कि मैं ज्ञानमात्र हूँ ज्ञान ज्ञानघन, ज्ञान सिवाय मेरा कोई स्वरूप नहीं। ज्ञान की वृत्ति चले इसके सिवाय मेरा कोई भोगना नहीं। अन्य किसी से रंचमात्र सम्बन्ध नहीं। मैं ज्ञानमात्र हूँ, ज्ञान ही ज्ञान हूँ, ऐसी ज्ञानमात्र की भावना जितनी विशिष्ट होती जायेगी विशुद्धि, कर्मक्षय उतना ही विशेष विशेष चलता रहेगा। बहुत सीधा उपाय कभी भी उलझन हो, जब कभी किंकर्तव्यविमूढ़ता हो, जब कभी नरक आदिक गतियों के दुःख सुनकर, आत्मा की इस सोपाधि अवस्था की दुर्दशायें जानकर, इसका दुष्परिणाम समझकर जब एक चिन्ता अथवा शुभ विषाद हो, धर्मध्यान सम्बन्धी अपाय पिचय जैसी कुछ भीतर में उमंग उठती हो तो बस एक ही यह काम है—मैं ज्ञान मात्र हूँ, ऐसी अपनी भावना को दृढ़ बनायें। अपेयका अपाय होगा, उपेयका उपाय होगा। मैं ज्ञानमात्र हूँ, ज्ञान ही लोक है, ज्ञान ही परलोक है। ज्ञान ही परिवार है, ज्ञान ही जीवन है, ज्ञान हो मेरा सर्वस्व है। ज्ञानसिवाय अन्य कुछ हैं नहीं, सही बात है यह और इसीलिए ऐसी दृढ़ता संतजन कराते हैं। यह सामान्य चिज्ज्योतिका परिचय अन्दर में जिसके दृढ़ हो जाया उसके लिये शांति

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

का मार्ग सुलभ है। जिसके ज्ञानमात्र अन्तस्तत्त्व की प्रतीति बन गयी है उसके कदाचित् बड़े से बड़े उपद्रव भी आयें। पूर्वबद्ध कर्मों के ऐसे तीव्र उदय होने से बाधायें सामने हों और वे बाधायें इस ज्ञानी के उपयोग को ग्रहण भी करें और उसका उतना अधिक आग्रह हो जाय कि दुनिया के लोग उसे पागल की तरह दिखने लगें। इतनी कठिन विषम स्थितियों में भी ज्ञानी अन्दर में गुप्त क्या करता है इसे कौन समझता है ? और उसी का ही बल है कि विरुद्ध से विरुद्ध स्थिति का संस्कार ६ महीना से अधिक नहीं टिक सकता। और उसे उस उलझन के मिटाने में कुछ देर नहीं लगती। दुःख से क्या घबड़ाना ?

मानसिक कष्ट मानने की महामूढ़ता मानसिक दुख तो प्रत्यक्ष उद्दण्डता है। क्या बिगड़ गया जो क्लेश कर रहा मानसिक बात की। अमुक यों नहीं बोलता, अमुक यों नहीं करता, अमुक यों नहीं चलता। बड़े कष्ट मानते। बीती बात का कष्ट तो कम है और मानसिक कल्पना से जो कष्ट बनाया है उनकी संख्या इससे असंख्यातगुणी है। भूख लगी, बहुततेज लगी, नहीं सह सक रहे, दुःख हो रहा, चलो कोई बात तो है, पर मानसिक दुःख में कौन सी बात आयी जिससे दुःख माना जा रहा ? अभी वे हमारे मित्र थे, हमने उसकी भलाई की थी, लेकिन वह हमारा एहसान नहीं मानता। बताओ इस घटना में कौन सी वेदना आ गई आत्मा में ? परजीव है, उसका उसमें परिणमन है, जैसा योग विधान है हो रहा है, इसमें कौन सा कष्ट आया ? तो इतना ज्ञानबल तो रहना ही चाहिये कि व्यर्थ की पीड़ाओं में मन आये। संकल्पजनित बिना ही प्रयोजन, बिना ही बात के, बिना ही अपने आप के कुछ कष्ट न आये फिर भी जो एक मानसिक चिन्तन द्वारा निजको कष्ट मानते हैं वे इसके लिये बहुत बड़े भारी अपराधी हैं। यहाँ सुनने में तो लगता कि देवगति के जीव बड़े सुखी हैं। और बहुत से लोग धर्मपालन इसी लिए करते कि हम स्वर्ग में जायें, क्योंकि वहाँ कमाना नहीं पड़ता, भूख हजारों वर्षों में लगती, सो गले में से ही उनके कण्ठ से अमृत झर जाता। उनका वैक्रियक शरीर के ढंग का थूक उतर जाता। थूक अमृत से कम नहीं है, जिन लोगों की ज्यादह थूकने की आदत है उन्हें तो इसका कुछ पता नहीं और जो अपने आप में थूक गटक लेते हैं, बाहर फेंकते ही नहीं वे कभी-कभी ऐसा अनुभव करते हैं कि मानो बड़े विश्राम में बैठे हैं, शान्ति में हैं, एक हर्षमय स्थिति रहती है। उन देवताओं का जरा कुछ और अच्छा थूक होगा। हजार वर्ष में उनके कण्ठ से अमृत उतर गया। भूख, प्यास, ठण्ड गर्म आदिकी कोई वेदना उनके लगती नहीं, कमाना उन्हें पड़ता नहीं, बस विलास, यहाँ घूमना वहाँ घूमना, यह ही रहता है। बड़ा सुख है, बड़ा मौज है, पर मानसिक दुःख उनके कितना है उसका उदाहरण और गति के जीवों में नहीं है। यहीं देख लो, जब किसी मनुष्य को बहुत अच्छे साधन मिले होते हैं, कुछ चिन्ता की बात नहीं, किराया आ रहा, ब्याज आ रहा, पेन्शन आ रही बड़े सुख साधन हैं तो उनका मन देखो कैसा सुख समता में रहता है। कितनी कल्पनायें करते हैं, कषायें किया करते हैं। तो मानसिक क्लेश बहुत बड़ा क्लेश है।

सम्यग्दृष्टि की स्वयंशरण्यता—सम्यग्दृष्टि जीव के मानसिक क्लेश तो रहता नहीं। सम्यक्त्व हुआ, सदा रहेगा, इसे निमित्तदृष्टि से कहते हैं क्षायिक सम्यक्त्व। जिसकी संसार में रहते हुए उत्कृष्ट स्थिति है, कुछ अधिक ३३ सागर। सम्यक्त्व परिणाम में समय गुजर रहा है संसार जितना शेष है और अन्त में निर्वाण है। जिसका सम्यक्त्व में ही निरन्तर समय गुजरे, कैसी पूज्यता है, कैसी पवित्रता। बेचारों की महिमा बहुत बड़ी होती है। कोई सदाचार से चले, सरलता से रहे, अच्छी तरह रहे, भले ही गरीबी आये, दुःख आये तो उसे देखकर सबके मन में उसके प्रति आकर्षण हो जाता है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जो परमार्थतः बेचारा बन जाय अर्थात् बाहरी पदार्थ को कुछ भी शरण न जाने न करें. केवल अपने आत्मा के बस ज्ञान ध्यान मनन चिन्तन अपना सदाचार बस वही दृष्टि में रहे, वह तो तीन लोक के इन्द्रों द्वारा भी पूजित होता है। वह वास्तविक शरण पा गया। जो बाह्य पदार्थों से अपने को शरण मानते वह तो है अशरण और जो बाह्य से अपने को शरण नहीं मानते वे हैं वास्तव में सशरत्र।

मोहविकार रूप असावधानी दूर करने में लाभ—भैया ! अपने कर्तव्य में बहुत सावधान रहने की आवश्यकता है। थोड़ी सी त्रुटि और प्रमाद में कितना ही अनर्थ सम्भव है। भला जब कोई जीव द्वितीयोपशम सम्यक्त्व पाकर चारित्रमोहका उपशम करता हुआ आखिर एक बार वीतराग अवस्था को प्राप्त हो गया। वीतराग और केवल ज्ञान इनमें कितना अन्तर है ? अन्तर्मुहूर्त। लेकिन वह चारित्र-मोह का उपशमक केवलज्ञान नहीं पाता और वीतराग अवस्था पाकर ऐसा गिरे कि कहो गिर-गिर कर मिथ्यादृष्टि हो जाय। इसे कहते हैं ११वें गुणस्थान तक चढ़कर अन्त में मिथ्यात्व में आना। थोड़ी भी असावधानी कुछ भी हो, उसका इतना दुष्परिणाम। अपने में बुद्धिपूर्वक असावधानी कितनी चलती है, वह सब मन की असावधानी है। जिसका मन पवित्र नहीं, मन में मलीमसता है, लोभ कषाय का रंग सब पवित्रताओं में सबसे बड़ी अपवित्रता है, तो अपनी अपनी परीक्षा कर सकते कि हम कितना अधिक परिग्रह में आसक्ति रखते हैं। कुछ त्याग के प्रसंग में इसका परिचय विशेष जल्दी हो जाता है। तृष्णा का रंग बहुत गाढ़ा रंग होता है और यह ही कारण है कि कषायें नष्ट होती हैं, पर *अन्त में एक लोभ* रह जाता है। उस पर विजय प्राप्त हुई कि संसार सागर से पार ही हो गये, कुछ देर नहीं लगती। हम अपनी प्रवृत्ति ऐसी रखें कि जिसमें यह कौतूहल सा रहे कि बाह्य परिग्रह मेरे लिए कुछ परिग्रह नहीं। ऐसी निर्मोह वृत्ति रहे, इससे तो जीवन में कुछ मिलेगा, और मोह भरी वृत्ति से न अब कुछ न आगे कुछ। मोही जीव का परिवार में भी आदर नहीं रहता और निर्मोह जीव रागवश परिवार में रहता तो परिजनों की दृष्टि उसके प्रति आदर विशेषमयी रहती। परीक्षा करके देखो, और उसका कारण यह है कि जो जीव मोही है। विशेष आसक्त है। तन, मन, धन, वचन, प्राण न्योछावर करके भी सेवा में लगता है तो उसके प्रति परिजनों की यह धारणा रहती कि इससे डरना क्या है ? यह तो हम पर मरता है। इसकी ज्यादह खबर क्या रखना। यह तो बड़ा कठिन हमारे खूंटे से बंधा हुआ है। और मोह में विशेष राग करने की जो वृत्ति होती है, उससे भी परिजन का चित्त उसके प्रति हल्का हो जाता है। कुछ प्राकृतिक बात ही है ऐसी। निर्मोह होकर राग रहे तो व्यवस्था अच्छी रहती है। परि-जन के चित्त में भी उसके प्रति महत्त्व की दृष्टि रहती है। और, जो अधिक आसक्ति की प्रवृत्ति दिखाया तो परिजनों के चित्त में उसकी महिमा नहीं रहती। निर्मोह पुरुष को इस जीवन में भी लाभ है। परिवार में रहकर भी प्रतिष्ठा है और परमार्थ मार्ग में भी प्रतिष्ठा है।

मोह गन्दगी से हटकर निर्मोह चित्स्वरूप की उपासना का कर्त्तव्य—अहो कितना बेकार है यह मोह भाव। लोग गन्दा कहते हैं सड़ी नाली को, मल आदिक को, कोई चूहा मर गया हो, उसके शरीर के सड़ने की बदबू आती हो तो लोग उससे घृणा करते हैं, पर यह तो बतलाओ कि ये दृश्यमान जो पौद्गलिक स्कन्ध हैं ये पहले कैसे थे, जब कि इस मोही जीव ने इनको ग्रहण न किया था। जितने हैं वे सब आहार वर्गणायें हैं, उनमें न मांस है, न बदबू है, सूक्ष्म आहार वर्गणायें अपनी भली स्थिति में हैं। उनको इस मोही जीव ने ग्रहण किया तब उनकी ऐसी बुरी दशा बनी जिससे लोग घृणा करते हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तो बतलाओ जो पहले अच्छा हो, वह जिसके सम्बन्ध से बुरा बना हो तो बुरा कौन ? घृणा के योग्य कौन ? गन्दा कौन ? जिसके सम्बन्ध से बुरा बना है। तो गन्दा हुआ मोह। जगत में सबसे अधिक अपवित्र चीज है मोह। उससे तो घृणा नहीं उपजती और बाहरी चीजों से घृणा उपजती है। इस मोह को दूर करें, लौकिक हानि सहकर भी मोह को दूर करें, निर्मोह वृत्ति रहेगी तो अब भी सुखी, अब भी शान्त और भविष्य में भी शान्त। अविरत सम्यग्दृष्टि की महिमा गाई है कि संयम नहीं है फिर भी संयम की ओर उनकी लगन है और ऐसे जीव हर्ष के समागम पाकर भी फूलते नहीं हैं, विषाद के समागम पाकर भी आकुलित होते नहीं हैं। यह कहलाता है किसी रत्न की प्राप्ति कर लेना। यह रत्न बाहर कहीं नहीं हैं। बाहर तो सब जगह आग है, संताप है। यह रत्न तो अपने आपके अन्दर ही सहज स्वभाव के दर्शन से प्राप्त होता है।

अपर्याप्त अवस्था में सम्यक्त्व रह सकने की जिज्ञासा आत्मा के सहज स्वभाव रूप में अपना प्रत्यय होना, अनुभव होना, रुचि होना, सहज स्वभाव रूप में मान्यता होना ये सब सम्यक्त्व के ही रूप हैं। ऐसा सम्यक्त्व इस जीव के जगते समय पर्याप्त अवस्था में तो सम्भव है, किन्तु अपर्याप्त अवस्था में भी सम्यक्त्व होता या नहीं। जैसे कि एक मोटे रूप में कुछ ऐसा निरखा जाता है कि जब मरण काल होता तो उस समय जीव कुछ बेहोश हो जाता है, बेसुधी हो जाती है। सुनना देखना बन्द हो जाना ऐसी अवस्था में कोई पूछे कि बतलाओ इसका परिणाम निर्मल है या मलिन ? तो वहाँ कोई फैसला तो नहीं दे सकता। निर्मलता भी रह सकती, मलिनता भी रह सकती। कहो इन्द्रिय की बेसुधी है और भीतर में अन्तः स्वरूप के प्रति धुन है तो लोगों को देखने में यों आता कि यह बेसुध है, लेकिन भीतर में सम्यक्त्व जग सकता, अनुभव भी हो सकता, तो ऐसे ही जब कोई जीव एक भव को त्यागकर दूसरे भव में जाता है तो यह शरीर तो छूट गया, विग्रह गति में तो यह स्थूल शरीर रहा नहीं, और जिस शरीर को धारण करेगा पहले तो उन वर्गणाओं पर यह जीव पहुँचा वे वर्गणायें थीं विस्फुट, बिखरी। कोई उनमें सिलसिला नहीं। अब ऐसे बेसिलसिले बिखरे आहार वर्गणाओं को शरीर रूप बनाया, इसमें तो कुछ देर लगती है, लगती है अन्तर्मुहूर्त, बस इस नव्य शरीर की जब तक शरीर रूप से बनने की शक्ति न हुई तब तक उसे अपर्याप्त अवस्था कहते हैं। तो विग्रहवती गति के प्रारम्भिक समय से और शरीर पर्याप्ति पूर्ण न होने तक की अवस्था अपर्याप्त दशा है इस दशा में भी सम्यक्त्व होता है क्या ? तो उत्तर है कि होता है। अब, उसका विवरण सुनिये।

अपर्याप्त अवस्था में द्वितीयोपशम, क्षायोपशमिक व क्षायिक सम्यक्त्व रहने की सम्भावना —सम्यक्त्व को आप इतने हिस्सों में रख लीजिये प्रथमोपशम सम्यक्त्व, द्वितीयोपशम सम्यक्त्व, वेदक सम्यक्त्व क्षायिक सम्यक्त्व। तो प्रथमोपशम सम्यक्त्व तो होता नहीं अपर्याप्त अवस्था में, इस सम्यक्त्व में मरण नहीं या यों कहो कि जब मरण होता है तो प्रथमोपशम सम्यक्त्व नहीं रहता। इस तरह से देखना बहुत उपयुक्त है। प्रथमोपशम सम्यक्त्व जब तक रहता तब तक मरण नहीं होता, इसके मायने क्या यह है कि मृत्यु डरा करती है प्रथमोपशम सम्यक्त्व से। या आयु का क्षय होने का समय हो तो वह प्रथमोपशम सम्यक्त्व चल जाता है, क्या ऐसा है ? बात यही है, मरण काल जब होता है तो प्रथमोपशम सम्यक्त्व रह नहीं सकता, उससे कुछ समय पहले विघटित होकर किसी अन्य अवस्था में आ जाता है। मिथ्यात्व में आ जाए, पर मरण काल में प्रथमोपशम सम्यक्त्व नहीं है तो अपर्याप्त दशा में प्रथमोपशम सम्यक्त्व नहीं मिलता, द्वितीयोपशम सम्यक्त्व होता है विशिष्ट मुनियों के श्रेणी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

में चढ़ने वाले मुनियों के द्वितीयोपशम नाम है क्षयोपशम सम्यक्त्व के अनन्तर श्रेणी में चढ़ने के लिये जो उपशम सम्यक्त्व होता है उसका। क्षयोपशम सम्यक्त्व में निर्दोषता नहीं है। यद्यपि वह सूक्ष्म है, पर उसकी अपेक्षा उपशम सम्यक्त्व निर्दोष है और श्रेणी पर कोई जीव क्षयोपशम सम्यक्त्व से नहीं चढ़ सकता। उस सम्यक्त्व में ऐसी निर्दोषता नहीं जो श्रेणी में जा सके, उसके लिये क्षायिक सम्यक्त्व हो या द्वितीयोपशम सम्यक्त्व हो। तो द्वितीयोपशम सम्यक्त्व जिसने प्राप्त किया वह उपशम श्रेणी में ही चढ़ सकता है। चढ़ा, ११वें में पहुँचा, वहाँ से गिरा तो गिर गिरकर जहाँ भी अथवा कहीं न गिरा, वहीं मरण हो गया तो द्वितीयोपशम में मरण हो गया, उसका द्वितीयोपशम विग्रहगति में रहा और ऐसा जीव देव गति में ही उत्पन्न होता है। वहाँ जाकर अपर्याप्त अवस्था में भी द्वितीयोपशम सम्यक्त्व होता है। तथा अपर्याप्त अवस्था में वेदक सम्यक्त्व भी है और क्षायिक सम्यक्त्व भी है।

सम्यक्त्व परिणाम का फल निराकुलता सम्यक्त्व का परिणाम जब तक रहता तब तक अन्तः निराकुल रहता है, क्योंकि यह स्पष्ट परिचय है कि मेरा मात्र मैं, मेरा सर्वस्व मैं, मेरी क्रिया मुझमें, मेरी दुनिया मैं ! मेरा सुख दुःख सब कुछ जितना जो कुछ है वह यहाँ की कल्पना से चल रहा है, मेरा कुछ भी सम्बन्ध बाहर नहीं और इसी कारण मुझे कुछ भी बाहर न चाहिए ऐसी एक दृढ़ता रहती है और साक्षात् तो अपने स्वरूप का एक परिचय सम्वेदन रहता है जिससे उसकी बडी निराकुल स्थिति और प्रसन्नता की स्थिति रहती है। तो ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव जब तक किसी प्रकार के व्रत और संयम नहीं प्राप्त कर पाते तब तक उन्हें अविरत सम्यग्दृष्टि जीव कहते हैं। दर्शन मोह का क्षय करने वाले जीव सम्यग्दृष्टि ही होते हैं। अर्थात् मिथ्यात्व के बाद क्षायिक सम्यक्त्व नहीं जगता और मिथ्यात्व के बाद द्वितीयोपशम सम्यक्त्व भी नहीं होता। तो जो वेदक सम्यग्दृष्टि है, जब दर्शन मोह का क्षय करने को उद्यत होता है तो अनन्तानुबंधी की विसंयोजना करके क्षय करता है और मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्व में मिलकर सम्यग्मिथात्व सम्यक् प्रकृति मिलकर उन दोनों का क्षय करता है और सम्यक् प्रकृति का साक्षात् क्षय करता है। जब इन ७ प्रकृतियों का विनाश होगा तो बस निःशंक किसी प्रकार की विपरीत सम्भावना ही न रही, ऐसा निर्मल क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव होता है। यह बात अपने ही आत्मा की चल रही है। आत्मा में ऐसा परिणाम होता है। भीतर का अन्धकार दूर हुआ कि यह जीव शान्ति की ओर बढ़ जाता है।

विपरीत अभिप्राय का विध्वंस हो जाने से सम्यक्त्व में अभिव्यक्त अलौकिक स्वच्छता— सम्यग्दर्शन के समझने की बात व्यय के रूप से स्पष्ट होती है। विपरीत अभिप्राय जहाँ नहीं रहता उसे कहते हैं सम्यक्त्व, और पुरुषार्थ सिद्धयुपाय में व्यय के रूप से दिखाया सम्यक्त्व को, उत्पाद के रूप से दिखाया सम्यग्ज्ञान को और ध्रौव्य के रूप से दिखाया सम्यक् चारित्र को। विपरीत अभिप्राय को त्याग कर और तत्त्व का भली प्रकार निश्चय कर जो अविचल स्वरूप में स्थित है वह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र है, वही पुरुषार्थ की सिद्धि का उपाय है। विपरीत अभिप्राय क्या ? परसे मेरा सम्बन्ध नहीं, फिर भी कुछ लगाव रखना किसी भी किस्म का यह विपरीत अभिप्राय है। क्रोध, मान, माया, लोभादिक कषाय तूफान इनको मैं करता नहीं, मैं तो ज्ञानरूप हूँ, ज्ञान की ही वृत्ति को तो करूँगा। ज्ञान का विकल्प ही तो कर सकूँगा। ऐसे मोहादिक भाव, क्रोधादिक भाव इस ज्ञानमय आत्मस्वरूप में कैसे हो, इसकी क्या गुंजाइश है ? वह भाव मेरा नहीं, वे भाव उपादान दृष्टि से कर्म के हैं। अभी ज्ञान विकल्प वाले कषाय की बात नहीं कह रहे। जो कर्म प्रकृति में विपाक होता है वह विपाक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वह है मोह, क्रोध, मान, माया, लोभ आदिक अचेतन । उसमें विकल्प किया। जैसे कि यहां दृश्यमान पदार्थों को ज्ञेय बना देते तो यहाँ यह जानकर ज्ञेय बने, बुद्धिपूर्वक ज्ञेय बने, पर कर्म विपाक जो अन्तः प्रकट हाता है वह भी प्रतिफलित होता है, ज्ञेय होता है, मगर बुद्धिपूर्वक ज्ञेय नहीं हो पाता, इसलिये उसे प्रतिफलन कहा। उदित कर्मविपाक का ज्ञानस्वरूप जीव में प्रतिबिम्ब (प्रतिफलन) होता है। अब ज्ञानविकल्प में जब वह आया तब इसका विकार हुआ ज्ञानविकल्प रूप कषाय और उसको ही कहा गया है समय सार में कि क्रोध में उपयुक्त को क्रोध कहते हैं, मान में उपयुक्त को मान कहते हैं। जिसमें उपयुक्त हो रहा वह तो है कर्म भाव और जो उपयुक्त हो रहा है वह है ज्ञानविकल्प। तो मेरे में मोह, क्रोध, मान आदिक भाव नहीं हैं, लेकिन उसे अपनाये, यह ही हुआ विपरीत भाव। और, यह ज्ञान, यह सहज ज्ञान, सहज रहे यह ही तो आशीर्वाद मिलना चाहिये इसे, लेकिन विचार उठाकर जो एक यहाँ श्रम बनता, कष्ट बनता है, जैसे समुद्र है, शान्त है, एक पत्थर डाल दिया तो क्षोभ मच गया। तो यह सहज ज्ञानस्वरूप शान्त है। है अन्दर में गुप्त, स्वयं सहज कैसा सामान्य चैतन्यमात्र है, ऐसा ही रहे यह आशीर्वाद मिलना चाहिये इस प्रभु को। अच्छा प्रभु को भी कोई आशीर्वाद देगा क्या ? हाँ हाँ जब भिखारी अपने दातारों को आशीर्वाद दे डालता है तो उसका मतलब क्या ? प्रभु के प्रति भक्ति, प्रभु के प्रति कृतज्ञता, ऐसा ही आशीर्वाद मिलना चाहिये कि हे सहज ज्ञानस्वरूप तुम सहज ज्ञानमात्र रहो। द्वैत भाव ही न जगे, स्वपर का भेद भी न जगे। सामान्य ज्ञान वर्तनामात्र रहे, जिस समय वह विचार का पत्थर पटका जाता है, कोई बाहर, कोई ज्ञेयाकार ग्राह्यत्व जब इसमें पटका जाता है तो यहाँ कुछ श्रम होता है, कष्ट होता है, सहज स्थिति से चिग जाते हैं और फिर इस ग्राह्यपने को इस जाननपने को जो लोक में ये सब जान जाते हैं उनके प्रति उमंग रखें यह भी समझूँ, यह भी जानूँ, ऐसा विचारु तो वह विरीपत भाव में है। विपरीत भाव जहाँ न रहे ऐसी स्वच्छ अवस्था को कहते हैं सम्यग्दर्शन। वह आत्मस्वरूप बताया गया है। ऐसी परिणति, ऐसी स्थिति जिन जीवों के होती है वे ऐसे लगते कि यहाँ रहते हुये भी वे परमात्मा से ही हो गये। बड़ी अलौकिक स्थिति है ना ? परमात्मत्व प्रकट होने में विलम्ब है, मगर सम्यक्त्व पा लेने में कितना उपद्रव, संकट सब समाप्त कर दिया तो कितनी बड़ी भारी बात है।

सम्यक्त्व के अभ्युदय की सूचना काल से ही विशुद्धि का प्रारम्भ - सम्यक्त्व नहीं हो पाया, उससे ही पहले सम्यक्त्व जब होने को है तो प्रायोग्य लब्धि में ही करण लब्धि भी नहीं हुई, तब भी इतनी विशुद्धि जगी कि जिन प्रकृतियों का उदय छठे गुणस्थान में आ जायेगा, जिनका बन्ध छठे गुणस्थान वाला भी कर ले, मगर प्रयोग्य लब्धि वाला ऐसी अनेक प्रकृतियों को रोक देता है। तो देखो छठे गुणस्थान में तो जिनका बन्ध सम्भव है, पर यहाँ प्रायोग्य लब्धि में मिथ्यादृष्टि जीव के नहीं बन्ध हो रहा, इसी को कहते हैं चौंतीस बंधापसरण और करण लब्धि में इतनी विशुद्धि, इतनी निर्जरा, इतना क्षय, सम्यक्त्व परिणाम होते समय इतना कर्म क्षय। अगर कोई गिनती का, स्थिति का, अनुभाग का हिसाब लगायें तो यह कह सकते कि उसने पौने सोलह आने काम कर लिया, अब पाव आना ही काम बाकी रह गया। जैसे किसी पर एक लाख का कर्जा हो और ९९९९९) निपटा दिया, सिर्फ एक रुपया कर्ज रहा। भले ही कर्जा तो कर्जा ही कहलाया, पर बोझ कितना हट गया ? तो जिसको सम्यक्त्व प्रकट हो गया वह अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान में ही है मगर कितना ध्वंस, कितना कर्जा उसने चुका लिया। हे सम्यक्त्व परिणाम धन्य हो, पूज्य हो, तुम ही शरण हो, तुम ही माता हो, तुम ही

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पिता हो, तुम ही गुरु हो, तुम ही बन्धु हो। जब तक सम्यक्त्व सूर्य की किरण न जगे तब तक जीव की बड़ी दयनीय दशा है। दुःखी हो रहे और दुःख का स्वरूप न समझ सकें तो वह तो दयनीय दशा है।

जीव का प्रारम्भिक मंगलमय क्षण—हाँ तो इस जीव का भला कब से हुआ ? अनादि मिथ्यादृष्टि जीव का वह मंगल दिन कौन सा था ? जिसके बाद फिर मंगल मंगल ही हो रहा। वह था प्रथमोपशम सम्यक्त्व के लिए हुए करण परिणाम। उससे पहले याने जब सम्यक्त्व राजा का अभ्युदय हुआ। सवारी निकली, प्रकट दर्शन हुआ उससे ही पहले कितना बड़ा बन्दोबस्त। प्रथम तो प्रायोग्यलब्धि के प्रारम्भ समय ही अधिक से अधिक इस जीव के अन्तः कोड़ा कोड़ी सागर की स्थिति बन्ध रहता है। एक समय भी यह दुष्परिणाम करे तो इस जीव से साथ ७० कोड़ा कोड़ी सागर तक के लिए कर्म बँध जाते हैं। अब समझिये ७० कोड़ा कोड़ी सागर क्या ? उपमा द्वारा ही समझा जा सकता है। गिनती का तो काम है नहीं। मानों २००० कोश का लम्बा चौड़ा गहरा गड्ढा हो उसमें बहुत ही कोमल बारीक रोम और उनके भी इतने छोटे-छोटे टुकड़े कर दिये जायें जिनका दूसरा हिस्सा कैंची वगैरह से न किया जा सके, वे उस उतने बड़े गड्ढे मे ठसाठस भर दिये जायें और उन पर हाथी फिरा दिया जाये ताकि वह पूरा गड्ढा ठसाठस भर जाये, अब उनमें से एक-एक टुकड़ा हर १०० वर्ष में निकाला जाय, उस गड्ढे में भरे हुए सारे टुकड़े निकलने में इस तरह से जितना काल लगे उतने काल का नाम है व्यवहार पल्य। उससे असंख्यात गुणाकाल का नाम है उद्धार पल्य। उससे असंख्यातगुने काल का नाम है अद्धापल्य। अब १० करोड़ अद्धापल्य में १० करोड़ अद्धापल्य का गुणा करके जो काल आये उतने काल का नाम है एक सागर। १ करोड़ सागर में १ करोड़ सागर का गुणा करके जो काल आये उसे कहते हैं एक कोड़ा कोड़ी सागर। ऐसे ७० कोड़ा कोड़ी सागर तक के लिये कर्म बंध जाते हैं। एक क्षण के तीव्र मोह परिणाम से पुण्य का उदय है, ठाठ बाठ मिले हैं, मन स्वच्छन्द है, जैसा चाहे भाव कर लेते हैं, पर परिणाम क्या निकलता है, कितनी सावधानी की जरूरत है ? अब इतनी बड़ी स्थिति के कर्म जहाँ अन्तः कोड़ा कोड़ी सागर से बहुत ही कम इतनी स्थिति के रह जाते हैं। अभी सम्यक्त्व राजा प्रकट नहीं हुआ, उसके पहले इतनी भूमिका में कितनी स्वच्छता सफाई हो रही है जहाँ सम्यक्त्व सम्राट विराजेगा वहाँ की सफाई इसके अभ्युदय से पहले कैसा होने लग रही, उसका विशुद्ध परिणाम पहले से जगने लगा और ३४ बंधापसरण भी हो गये। जैसे कहते हैं कि निष्प्रयोजन को रोक देना। जहाँ सम्यक्त्व सम्राट आये वहाँ हर एक को न जाना चाहिये। निष्प्रयोजन का सम्वर कर दिया। कितना उत्साह, कितनी उमंग, कितना बड़ा काम और जिसको रोका है यह चाहे सम्यक्त्व राजा के आने पर आने लगेगा मगर उससे पहले की तैयारी तो देखिये – बताया है छठें गुणस्थान में अस्थिर, अशुभ, असाता, अयशःकीर्ति अरति शोक इन प्रकृतियों का बंधविच्छेद प्रमत्तविरत गुणस्थान में है याने छठे गुणस्थान तक इनका बंध होता है, किन्तु इनका बंधापसरण प्रायोग्यलब्धि में हो गया याने कितनी तैयारी है उस जगह को साफ करके निर्बाध बनाने में जहाँ आशा लगी है कि सम्यक्त्व सम्राट यहां आयेगा और उसके बाद अधःकरण, अपूर्णकरण, अनिवृत्तिकरण परिणाम होता है। तो अपूर्वकरण परिणाम के समय कितनी कटा कटी, छटाछटी, विशुद्धि अनन्तगुणी बनी, पापका पुण्य में संक्रमण हुआ, स्थिति निर्जरा, अनुभाग निर्जरा, कितनी तरह की बातें होने लगती हैं। अनिवृत्तिकरण परिणाम जहाँ समाप्त हुआ उस समय प्रथमोपशम सम्यक्त्व का उदय होता है। बस इसकी धुन है यह सहज चैतन्यस्वभाव। कहीं का कुछ मान नहीं कुछ भी विकल्प नहीं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ज्ञानानुभूतिपूर्वक ही सम्यक्त्व का अभ्युदय— जब सम्यक्त्व होता है तो ज्ञानानुभूतिसहित ही होता है। सम्यक्त्व होने के बाद फिर अनुभूति रहे न रहे, कभी कभी आये मगर उत्पत्ति के समय तो अनुभूति नियम से होती है। अनुभूति सहित ही सम्यक्त्व होता है। वेदान्त की एक जागदीशी टीका में कहा है कि कोई बहू थी, उसके गर्भ रह गया, उसे बड़ा डर लग रहा था कि अब न जाने क्या होगा? सो वह अपनी सासू से बोली — सासू जी जब मेरे बच्चा पैदा हो तो मुझे जगा देना, कहीं ऐसा न हो कि बच्चा सोते में हो जाय, मुझे कुछ पता ही न पड़े। तो सासू बोली अरी बहू तू डर मत। बच्चा होगा तो तुझे जगाता हुआ ही होगा। किसी के द्वारा जगाने की जरूरत न पड़ेगी। प्रथमोपशम सम्यक्त्व जब होता तब किसी से पूछने की जरूरत न पड़ेगी कि मुझे आनन्द हुआ कि नहीं। उस ज्ञान के बारे में पूछा जावे, परखा जावे वहाँ तो निर्विकल्प सहज ज्ञान की अनुभूति हुई, तत्पूर्वक ही सम्यक्त्व का उदय होता है, अन्यथा सम्यक्त्व नाम की क्या चीज? यदि सम्यक्त्व अनुभवहीन हो, सम्यक्त्व उत्पन्न हो गया और आत्मानुभूति, ज्ञानानुभूति हुई नहीं तो फिर ऐसे सम्यक्त्व का क्या स्वरूप? तो ऐसा सम्यक्त्व सम्राट जहाँ उदित होता है वहाँ प्राकृतिक रूप में कैसे-कैसे अन्तर्मुहूर्त पहले से तैयारियाँ चलती हैं। उसे जानकर अपने लिये कुछ शिक्षा लें।

धर्म और धर्मात्माओं की निश्छल प्रीति में धर्मलाभ—हम देवदर्शन करने जाते, प्रतिमा के सामने तक भी पहुँच जाते तब तक भी मन की सावधानी नहीं रखते। सावधानी तो रखना चाहिये इस देवालय के द्वार से ही मगर वहाँ तक भी सावधानी नहीं रखते और दर्शन के समय भी नहीं रखते। मन कहीं जा रहा, कुछ सोचा जा रहा और चिन्ताएँ करते कि बहुत दिन हो गये धर्म करते करते लेकिन न कुछ शांति मिली, न कुछ उन्नति हुई तो भाई धर्म किया ही कहाँ? जो धर्म करे और शांति न मिले, यह कभी हो नहीं सकता। धर्म का स्वरूप ही शांतिस्वरूप है। तो धर्म है यह सहज स्वभाव में उपयोग को धर देना, सीधा तो धर्म का स्पष्ट रूप है। अच्छा, अब इस उपयोग को धरे तो फिर रहे बाल बच्चों में, और और बातों में, धन वैभव में, सोच करे ऐसा कि हमें धर्मफल नहीं मिला। अरे देह से भी निराला और उन कषाय भावों से भी निराला और विचार बोझ से भी अतीत जो सहज ज्ञान ज्योति है, यह हूँ मैं, ऐसा विश्वास हुये बिना धर्म कहाँ से आयेगा? धर्म और धर्मात्मा जिसको धर्म में रुचि है उसकी धर्मात्मा में सत्कारबुद्धि है, जहाँ परिजन में तो रह रहे, और धर्म का भी बड़ा एक अधिकार समझ रहे एक द्रव्य दूसरे का कुछ नहीं करता, अमुकतमुक चार छः बातें सीख लिया और उसके बल से एक अपने को धर्मात्मापने का सर्टीफिकेट भी ले लिया ऐसे ही नशावालों से, लेकिन धर्मात्माजनों से ग्लानि करे, दूसरे को मन्द देखे। मैंने बहुत कुछ समझा ऐसी वृत्ति चले धर्मात्माजनों में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रकेपात्र जनों में जिसका स वात्सल्य नहीं अपने बालबच्चोंमें प्रतिष्ठा में है वात्सल्य, तो उसे धर्मलाभ नहीं मिलता। परिजन, जिनमें मोह है उनके प्रति कैसी निःशंकता है कि खुद तो चाहे रूखा सूखा कुछ भी खा ले, खुदकी तो कुछ परवाह नहीं, पर बालबच्चों का मिलाप होना चाहिये। की नाक, मल, मूत्र, आदि साफ करेंगे। उसमें तो जरा भी ग्लानि नहीं करते। कैसा उन बाल बच्चों के प्रति निर्विचिकित्सा का भाव है। तो ये सारी बातें जिस मोह के विषयभूत में होती हैं ऐसी वृत्ति निर्मोह मोक्ष मार्ग में लगे हुए धर्मात्माजनों के प्रति हो तो उसकी वृत्ति प्रशंसनीय है। बाहर में अलग धर्म दिखता क्या कहीं? अन्दर में देखो। धार्मिक के बिना धर्म कुछ नहीं, उसी आत्मा का नाम

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

धर्म है। जो आत्म सम्यक्त्व ज्ञान चारित्र से विभूषित हो वही धर्म है। धर्म की श्रद्धा, धर्म की उपासना धर्म की सेवा, सहज ज्ञानस्वभाव की दृष्टि इनमें जितनी हमारी प्रगति हो, अभ्यास बने बस उसी से ही यह जीवन सफल है।

सत्प्ररूपणा में अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान के सम्यक्त्वयोग्य जीव के पौरुष का वर्णन— सत् प्ररूपणा में अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान का विवरण चल रहा है। कोई मिथ्यादृष्टि जीव किस प्रकार सम्यक्त्व को प्राप्त करता है इसके विधान का पुनः स्मरण करो। कोई अनादि मिथ्यादृष्टि जीव जो कि अनेक कोड़ा कोड़ी सागर के कर्मों की स्थिति रखता था और बंध भी करता था। ऐसा यह मिथ्यादृष्टि जीव जब क्षयोपशमिक लब्धि पाता है अर्थात् कर्मों के अनुभाग जब अनन्तवें भाग घटते जाते हैं और उनमें एक विशेषता क्षयोपशमकी प्राप्त होती है। ऐसी स्थिति पाये उसे कहते हैं क्षयोपशमलब्धि इसका ध्यान देना। हम आप की क्षयोपशलब्धि तो है ही, इसमें भी कोई शक है क्या? अगर ऐसी क्षयोपशमलब्धि न मिली होती तो हम ऐसी पर्याय, उच्च कुल, मनुष्यभव में ही कैसे आ पाते? और उस क्षयोपशमलब्धि के बाद विशुद्धलब्धि भी प्राप्त की। कहाँ रहते अधिक संक्लेश परिणाम, क्रूरता कहाँ बसती है, सुन्दर वातावतरण में हैं, धार्मिक प्रक्रियाओं में चल रहे तो तद्योग्य विशुद्धलब्धि भी है, तीसरी लब्धि है देशनालब्धि। देशनालब्धि कहते हैं आचार्य ज्ञानी संतपुरुष तत्त्वविषयक जो उपदेश दें उनको ग्रहण करने की शक्ति होना, सो शक्ति है, उसमें भी क्या संदेह? जब बहुत बड़ी बड़ी विवेचनाओं के हम एक अधिकारी से बनते हैं तो हमारी शक्ति नहीं क्या? और कर भी रहे हैं। तत्त्व की चर्चा भी चलती है तो समझिये कि ये तीन लब्धियाँ प्राप्त कीं। जैसे ही मिथ्यादृष्टि जीव के और इन लब्धियों की विशेषता बढ़ी, विशुद्धि बढ़ी तो उसको प्रायोग्यलब्धि प्राप्त होती है। प्रायोग्यलब्धि प्रकृष्ट योग्यता प्रयोग करने की योग्यता की प्राप्ति, प्रायोग्यलब्धि जब प्राप्त होती है तब देखिये कि कर्मों में कितनी खलबली मचती और आत्मा में कितनी विशुद्धि जगती। प्रायोग्यलब्धि में जब यह जीव आता है तद्योग्य विशुद्धि प्राप्त होती है तो यह जीव अन्तः कोड़ा कोड़ी सागर की ही स्थिति बांध सकता है। इससे अधिक स्थिति का बंध नहीं कर सकता। विशुद्धि बढ़ती जा रही, स्थिति बंध कम होता जा रहा और इस स्थिति में कैसे कैसे निर्मल भाव परिणाम हो रहे कि अनेक प्रकृतियों का बंध भी रुकता जाता है। यहाँ के होने वाले बंधापसरण को सम्बार नहीं बताया। उसका कारण यह है कि अभी यह जीव मिथ्यात्व में है, दूसरी बात यह है कि थोड़ी देर बाद चाहे इसी गुणस्थान में ही रहकर अथवा अगले गुणस्थान में पहुंचकर इनमें से अनेक प्रकृतियों का बंध करने लगेगा, इसलिए सम्बार रूप नहीं है भले ही प्रायोग्लब्धि के समय इस मिथ्यादृष्टि जीव ने इन प्रकृतियों का बंध रोक दिया।

प्रायोग्य लब्धि में प्रथम पाँच चार आयुओं के बन्धापसरण व नरकद्विकका बंधापसरण— प्रायोग्यलब्धि में आया हुआ जीव अन्तः कोड़ा कोड़ी सागर की स्थिति बाँध रहा है तथा इस स्थिति बंध को और कमती करता जा रहा है। अब जब पृथक्त्वशतसागर स्थिति बंध और कम हो जाता है अर्थात् ३०० से ६०० के बीच सागर का स्थिति बंध और कम हो जाता है तो उस समय प्रथम बंधापसरण होता है, और उस बंधापसरण में नरक आयु का बंध विच्छेद होता है। देखो भैया! बंधापसरण को चर्चा सुनते समय कितनी ही बातें स्पष्ट होती जायेंगी कि जो प्रकृति ज्यादह पापरूप है उसका बंधापसरण पहले और बाद में कुछ उससे कम बुरी वाली प्रकृतियाँ बंधापसरण में आयेंगी आयु के क्रम की विधि अन्य है। यह ३४ बंधापसरण है, उनमें यह भी जानने को मिलेगा, साथ ही यह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भी जानने को मिलेगा कि उत्तरोत्तर इसके ऐसे विशुद्ध परिणाम होते जा रहे कि जैसे जैसे अगला बंधापसरण हो रहा वहाँ की प्रकृति अगले गुणस्थान में बंधने योग्य है जिसका कि यहीं बंधावसरण कर दिया पृथक्त्वशतसागर कहते हैं ३०० से ऊपर व ६०० से नीचे जैसा कि बोलचाल में आदत पड़ी हुई है यहाँ भी लोगों को। भाई १०-५ बादाम उठा लाना, ५-७ केले ले आना, ८-१० आम उठा लाना , ज्यादह अन्तर करके कोई नहीं बोलता कि ८-१५ आम उठा लाना। जितना सम्भव है निकट अन्तर करने का उतना बोलचाल में भी बोलते हैं। यहाँ शास्त्रों में पृथक्त्वशत बताया है ३०० से ६०० की संख्या के बीच। तो जिस समय पहले बंधापरण आया उस समय इस जीव का स्थिति बंध अन्तः कोड़ा कोड़ी सागर से भी आठ, ६ सौ सागर कम होती है। स्थिति बंध प्रति समय कम होता चला जा रहा है। प्रथम बंधापसरण के बाद जब एक पृथक्त्वशत सागर और कम बंध होने लगेगा तब दूसरा बंधावसरण होगा, जिसमें तिर्यञ्च आयु का बंध रुक जाता है। परिणाम विशुद्धि बढ़ रही है और परिणाम विशुद्धि का वहाँ कारण क्या ? लक्ष्य विशुद्धि। कुछ अन्तर की ओर आया। यद्यपि यह जीव मिथ्यादृष्टि है और प्रायोग्य लब्धि के बाद यह नियम भी नहीं कि वह सम्यग्दृष्टि हो ही जाये, अभव्य जीव तक के भी प्रायोग्य लब्धि हो जाती है। मगर इसमें आत्म विचार सम्बन्धित विशुद्ध परिणाम देखो कितना यह विशुद्ध हो जाता है कि जिसमें सम्यग्दर्शन नहीं भी है तो भी इस विशुद्ध परिणाम के निमित्त से कर्मों में इतनी काट छाट हो जाती है। स्थिति बंध बराबर कम होता जा रहा है, विशुद्ध परिणाम बढ़ते जा रहे हैं। जब और पृथक्त्वशत सागर स्थिति बँध कम होता तो तीसरा बंधावसरण हुआ जिससे मनुष्य आयु का बंध रुक जाता। अब बताओ मनुष्य आयु का बंध चौथे गुणस्थान तक चलता है मगर यहाँ इसने रोक दिया। इसके बाद पृथक्त्व सागर और स्थिति बंध कम होता है तो देव आयु का बंध रुक जाता है। अब देव आयु का बंध तो ७वें गुणस्थान तक चलता है और उसके लगार से ८वें गुणस्थान के कुछ भाग तक चलता है पर यहाँ देखो उसका भी बंधापसरण हुआ। यहाँ तक तो ४ आयु का बंधावसरण रुक गया। यद्यपि इसमें कुछ आयु प्रशस्त है कुछ अप्रशस्त, पर शरीर के बन्धन के कारण यह आयु अनिष्ट हुई है। रुक गया आयुओं के बंधापसरण बाद पाँचवें बंधापसरण में नरक गति व नरक प्रत्यानपूर्वी इन दोनों का एक साथ बंधापसरण होता है। एक बात यहाँ समझने की है कि नरक आयु व गति दोनों पापप्रकृति हैं, पर तिर्यञ्च आयु तो पुण्य प्रकृति है, तिर्यञ्च गति पाप प्रकृति है। देखिये इन दोनों में क्या अन्तर आया ? तिर्यञ्च आयु तो पुण्य में ली है और तिर्यक गति पाप प्रकृति में ली है। कुछ लग रहा होगा कि यह बड़ा बेजोड़ हिसाब है। उसका कारण यह है कि कोई भी तिर्यञ्च मरना नहीं चाहता और तिर्यञ्च गति की अवस्था में तो अनेक विडम्बनायें हो ही रही हैं।

प्रायोग्यलब्धि में छठे से चौदहवें बंधापसरण अपर्याप्त संयुक्त स्थानों का बंधापसरण— अब छठे बंधापसरण में सूक्ष्म अपर्याप्त साधारण इन तीन का संयोगपने रूप में बंध रुक जाता है। अब यहाँ से यह समझ में अधिक आयेगा कि आयु के बाद की उत्तरोत्तर ये प्रकृतियाँ कुछ पूर्व पूर्व से हल्की हल्की हैं, ये तीनों ही खोटी हैं। सूक्ष्म—जिसके उदय से सूक्ष्म शरीर बने, किसी से रुके ही नहीं। भले ही लगता होगा ऐसा कि यह तो बड़ा अच्छा है। इसे कोई पीट भी नहीं सकता, दाब नहीं सकता, मगर सूक्ष्म प्रकृति एकेन्द्रिय में ही होती है। ऐसा यह सूक्ष्म शरीर और साथ में लगा लब्ध्य पर्याप्त। अपर्याप्त नाम कर्म के मायने है लब्ध्य पर्याप्त और साथ में लगा है साधारण। एक जीव के अनेक जीव

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्वामी हैं। ७वें बंधापसरण में सूक्ष्म, अपर्याप्त, प्रत्येक इन तीन संयुक्त प्रकृतियों का बंध रुकता है। साधारण से प्रत्येक कुछ भली प्रकृति है। ८वें में बादर अपर्याप्त साधारण याने सूक्ष्म से बादर होना भला है उसका यहाँ बंध रुक जाता है। ९वें बंधापसरण में बादर अपर्याप्त प्रत्येक इन तीन संयुक्त प्रकृतियों का बंध अपसृत होता है। साधारण से प्रत्येक भला, सूक्ष्म से बादर भला, परन्तु ये सब अभी अपर्याप्त वाले संयोगी चल रहे हैं। १०वें बंधापसरण में होता है दो इन्द्रिय जाति अपर्याप्त इन दो का संयुक्त बंधापसरण। एकेन्द्रिय की अपर्याप्त की बात निकल गई। एकेन्द्रिय से दो इन्द्रिय प्रकृति भली है। अब इसका बंधापसरण चला जा रहा है, विशुद्ध परिणाम बराबर बढ़ते चले जा रहे। और प्रत्येक बंधापसरण के लिये पृथक्त्वशत सागर स्थिति बंध कम होता चला जा रहा है। अब ११वें बंधावसरण में तीन इन्द्रिय अपर्याप्त, १२वें में चार इन्द्रिय जाति और अपर्याप्त, इनका संयुक्त रूप में बंधापसरण होता है। १३वें में असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त, १४वें में संज्ञी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त, यहाँ तक अपर्याप्त से सम्बन्धित संयोगी दशाओं का बंधापसरण हुआ। इससे अन्दाजा लगाओ कि अपर्याप्त अवस्था कितनी क्षुद्र अवस्था है। जीव एक भव छोड़कर दूसरे भव में जन्म ले, और वहाँ शरीर की रचना होने लगे, शरीर रचना की शक्ति पूरी भी नहीं आ सकी और नियम से मरना ही पड़े, ऐसी स्थिति को कहते हैं अपर्याप्त अवस्था।

प्रायोग्य लब्धि में १५वें बंधापसरण से १८वें बंधापसरण तक एकेन्द्रिय के पर्याप्त से संयुक्त प्रकृतियों के बंधापसरण का वर्णन—अब इसके बाद १५वें बंधावसरण में सूक्ष्म पर्याप्त साधारण इन संयुक्त प्रकृतियों का बंधावसरण होता है यहाँ यह बात ध्यान में देने की है कि सूक्ष्म भी खोटी प्रकृति, साधारण की खोटी प्रकृति पर इन प्रकृतियों के साथ पर्याप्त प्रकृति बंध रही हो तो पहले के उन बड़े अपर्याप्तों से भी यह भला है। विशुद्ध परिणाम बढ़ते जा रहे, प्रत्येक बंधावसरण के लिये पृथक्त्व शत सागर बंध कम होता जा रहा, १६वें बंधापसरण में उस सूक्ष्म पर्याप्त प्रत्येक का बंध रुक जाता है। ये पर्याप्त और प्रत्येक दोनों ही भली प्रकृतियाँ हैं, उनके साथ सूक्ष्म की बात कही गई। इसके बाद १७वें बंधावसरण में बादर पर्याप्त साधारण इन संयुक्त प्रकृतियों का बंध रुकता है। बादर भी भला, पर्याप्त भी भला इनके साथ साधारण लगा है। जिस प्रकृति के उदय में शरीर बादर मिला उसे बादर प्रकृति कहते हैं। जिस प्रकृति के उदय से नियम से पर्याप्त होगा, पर्याप्त होने से पहले मरेगा ही नहीं उसे कहते हैं पर्याप्त प्रकृति। इसके बाद बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, एकेन्द्रिय, आताप स्थावर इन ६ प्रकृतियों का संयुक्त बंध रुक जाता है। यहाँ तक बात यह आयी कि एकेन्द्रिय सम्बन्धी सारी बातें समाप्त हो जाती हैं बंधापसरण में। प्रायोग्यलब्धि का कितना बिशुद्ध परिणाम कि जिस विशुद्धि के वेग में ऐसी ऐसी प्रकृतियों का बंधावसरण होता है। जिसका अगले ऊँचे गुणस्थान में बंध होने लगता है यह सम्भव है।

प्रायोग्यलब्धि में १९, २०, २१, २२, २३वें बंधापसरण तक मात्र तिर्यग्गति सम्बन्धित प्रकृतियों के बंधापसरण का वर्णन—१९वें बंधावसरण में दो इन्द्रिय जाति पर्याप्त, फिर आगे तीन इन्द्रिय जाति पर्याप्त, फिर चार इन्द्रिय जाति पर्याप्त, फिर आगे २२वे बंधावसरण में असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त २३वें बंधावसरण में तिर्यञ्च गति तिर्यञ्च प्रत्यानुपूर्वी और उद्योत इन तीनों का एक साथ संयुक्त बंधावसरण होता है। यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि यह उद्योत प्रकृति ऐसे पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चों में किन्हीं के होती है। बंधापसरण के हिसाब से कह रहे, तो उद्योत प्रकृति, आताप प्रकृति

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

की अपेक्षा कुछ भली है। आताप प्रकृति केवल एकेन्द्रिय के ही उदय में आती है, किन्तु उद्योत प्रकृति एकेन्द्रिय से लेकर पञ्चेन्द्रिय तक के तिर्यग्गति के जीवों के उदय में आती है।

प्रायोग्यलब्धि में २४वें व २५वें बन्धापसरण का कथन—फिर २४वें बंधापसरण में नीचे गोत्र २५वें बंधापसरण में, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय इनका एक साथ में बंधापसरण होता है। जीव के साथ कैसे कैसे कर्म का बन्धन है। जिसके विपाक में इस जीव को भी कैसा घसिटता रहना पड़ता है। देखिये बात दोनों तरफ की है। अध्यात्मदृष्टि से, निश्चय दृष्टि से देखते हैं तो केवल एक आत्मदृष्टि से देखने का प्रयोजन है, सो जैसी दृष्टि करे वैसा ही आगे दिखेगा। मगर इसके मायने यह नहीं है कि कर्म नहीं है, निमित्त नहीं है। वह एक प्रकार का भाव है, खरगोश पर शिकारी लोग कुत्ते छोड़ते हैं तो खरगोश आखिर दौड़ता है और थककर एक झाड़ी के पास बैठकर अपने कानों से आँखें बन्द कर लेता है। देखो ये भी बड़ी नामकर्म की विचित्रतायें कि खरगोश के इतने बड़े कान होते हैं कि अपने ही कानों से आँखें बन्द कर लेता है। कितने ही बार जब कुछ सोचते हैं कि कैसी कैसी स्थितियाँ जीवों को शरीर रचने में मिली हैं कि जिसको जैसे अंग मिले उस स्थिति में वे अंग उसको उपयोगी से बन गये। गाय, घोड़ा, भैंस आदिक के पूँछ हुआ करती। एक कल्पना करो कि इनके अगर पूँछ न हो तो इनको कितनी तकलीफ होगी? आप समझ सकते, मक्खी, मच्छर वगैरह उनके ऊपर बैठा करते, अगर पूँछ न होती तो कैसे वे उन्हें उड़ाते? एक दृष्टि में और दो, यह आत्मा आखिर है तो ईश्वर। यह चाहे कितना ही बिगड़ गया हो मगर इसके ऐश्वर्य तो है शक्ति रूप में। तो इसकी कठिन से कठिन दुर्दशायें भी हो रहीं और उन दुर्दशाओं में जब कुछ उस शरीर रचना पर ध्यान दिया जाता है तो अनेक विशेषतायें विदित होती हैं। सबसे छोटा जीव एकेन्द्रिय और अच्छा जीव मानो मनुष्य। अब एकेन्द्रिय से लेकर मनुष्य होने तक के बीच की जितनी स्थितियाँ हैं उनके शरीर ढाँचों को देखें तो उसमें उत्तरोत्तर विकास जैसी बात विदित होती जाती है, और हो रहा है प्राकृतिक। इस ढंग की बात तो समझें नहीं, किन्तु कुछ वैज्ञानिकों ने यह कह डाला कि यह मनुष्य पहले मछली था, फिर मेढक बना, कुछ और विकास हुआ तो बन्दर बन गया, और बन्दर की पूँछ घिस गई, आदमी बन गया। कैसा अट्ट सट्ट विचित्र संयोग जोड़ा है। और, यों प्रकृति उदय की दृष्टि से देखें तो उनकी जो शरीर रचना हो रही है वह विकस्वर है। मनुष्य से यों हल्के की ओर लगा लें, बन्दर लगा लें, गाय, भैंस लगा लें उनके खुर देखो, ढाँचा देखो, ऐसे ही जगह-जगह। एकेन्द्रिय जीव के देखो तो अंगोपाङ्ग भी नहीं, अटपट खड़े। कोई कैसा पेड़ कोई कैसा पेड़। तो ये सब प्राकृतिक दृश्य हैं। लोग कह तो देते हैं कि शिमला में, काश्मीर में बड़े प्राकृतिक दृश्य हैं। कुदरती है, पर वह कुदरत क्या चीज, और प्रकृति क्या चीज? वह भी किसी को आँखों दिखती है क्या? कह तो बैठते हैं ये सब प्रकृति के दृश्य हैं, लेकिन वह प्रकृति क्या चीज? जैन सिद्धान्त बताता है कि वे प्रकृतियाँ हैं १४८ और उनका प्रभेद रूप असंख्यात अनगिनते प्रकृतियाँ उनके ये दृश्य हैं। बढ़िया फूल, रंग बिरंगे पत्ते। कई आकार के पर्वत, कहीं से निकल बैठा जलप्रवाह यह सब प्रकृति को उदय का निमित्त पाकर जीवों के शरीर की अवस्था है। रंग बिरंगे फूल पत्ते ये सब क्या हैं? प्राकृतिक है मायने प्रकृति के उदय का निमित्त पाकर हुये हैं। यहाँ यह कुछ निर्णय नहीं बनता कि जिसके भली प्रकृति का उदय हो वह जीव सुखी रहेगा। जिसकी शरीर रचना सुन्दर हो उसे सुख मिलेगा। गुलाब के फूल सुन्दर होते हैं तो वे ही ज्यादह तोड़े जाते हैं और जंगल के नीले

http://sahjanandvarnishastra.org/

फूल जिनका नाक की तरह आकार है उन फूलों पर कोई दृष्टि ही नहीं देता। वे, बेचारे आराम से बने रहते हैं। और, अखबारों में यत्र तत्र अपहरण के भी समाचार आते हैं। सुन्दर शरीर मिला तो फल क्या मिला? ऐसे दुःख भोगने पड़ेंगे। यहाँ अपहरण किया, यहाँ बेचा वहाँ रखा, आदि अनेक स्थितियाँ गुजरती हैं। तो संसार में अच्छा सुन्दर शरीर मिला या धन आदिक मिला, कुछ भी समागम मिला, इनमें सुख मौज का कोई नियम नहीं। यह ही बात विपत्ति का साधन बनती है। यह सब प्राकृतिक बात है।

प्रायोग्यलब्धि में २६वें बंधापसरण में सर्वाधिक हीन संस्थान व संहनन की दो प्रकृतियों का बन्धापसरण—प्रायोग्यलब्धि में यह मिथ्यादृष्टि जीव उत्तरोत्तर विशुद्ध परिणाम बना रहा है, और पृथक्त्व, शत् सागर स्थिति बंध कम कम करता जा रहा है और प्रत्येक पृथक्त्व शत सागर स्थिति हीनता पर कोई बंधावसरण कर लेता है। ऐसा यह जीव २६वीं बार में हुंडक संस्थान और असंप्राप्त-सृपाटिका संहनन इन दो संयुक्त प्रकृतियों का बन्धापसरण कर लेता है। हुंडक संस्थान जैसे वृक्ष है, पर्वत है, दो इन्द्रिय कीड़ा मकोड़ा हैं, इनका आकार कैसा है? शरीर का हुंडक संस्थान। यह स्पष्ट उदाहरण है। मनुष्यों में भी हुंडक संस्थान होता है। ५ संस्थान अकेले करके नहीं हों, मिल जुल जायें तो बेढंगा शरीर बनता तो शरीर में खोटा है हुंडक और संहनन में खेंटा है असंप्राप्तसृपाटिका संहनन। असंप्राप्त-सृपाटिका संहनन में नशा जाल से हड्डी बंधी हैं, एक झटका दें तो शिथिल हो जाये। ऐसे इस बंधापसरण में उत्तरोत्तर कुछ भली भली प्रकृतियों का भी बंधापसरण है। किंतु हैं खोटे, उनका बंधापसरण कर रहे हैं, ऐसी योग्यता इसके प्रायोग्यलब्धि में है यहाँ तक २६ बंधापसरण बताये हैं, अब ८ बन्धापसरण और कहेंगे। उसके बाद जब यह जीव करणलब्धि पायगा तो करणलब्धि में इससे भी और अधिक विशुद्धता और कर्मों की काट छांट चलेगी। करणलब्धि पूर्ण होते ही इस जीव को सम्यक्त्व उत्पन्न होगा।

ज्ञानबल से क्षोभानुभवविमुक्त होकर अन्तस्तत्त्व की भावना होने का चमत्कार- संसार के सभी जीव प्रायः अनुभव करते हैं कि इस संसार में सर्वत्र क्लेश ही क्लेश हैं। कदाचित् किसी के पुण्य का उदय हो और कुछ आराम के साधन मिले हों तो भी ऐसी स्थितियाँ प्रतिदिन सैकड़ों बार गुजरती हैं कि अशांति और क्लेश उन्हें भी मिलता है। तो ऐसे दुःखपूर्ण संसार में मानव जीवन पाकर हमको क्या करना है। इसका हल करना बहुत बड़ी जिम्मेदारी की बात है। संसार के जीवों को देखो कोई पेड़ पौधे हैं कोई कीड़ा मकोड़ा है, कोई कुत्ता बिल्ली हैं, कितनी तरह के जीव पाये जाते हैं, आखिर ये भी जीव हैं। जैसे ये जीव हुए वैसे ही मैं भी तो था, और करनी खोटी बने तो ऐसा ही मैं हो सकता हूँ। तो यदि इस मनुष्यभव के बाद ऐसे खोटे भव में जन्म लेना हो तो बताओ वहाँ कौन समझाने आयेगा? कौन तत्त्व की बात बतायेगा? कैसे आकुलता दूर होगी? इससे समझो, इस जीवन में न तो धन की कीमत है न यश प्रतिष्ठा का मूल्य है और न विषय साधन आराम का मूल्य है। मूल्य है तो उस तत्त्वज्ञान का है, उस परमात्मस्वरूप के दर्शन का है कि जिस दर्शन में रहे जीव तो सर्व भला ही भला होता है। उसका मूल्यांकन करें। बाहरी पदार्थों को तृणवत् असार समझें। यह माया तो छाया की तरह है। इसकी ओर लगेंगे तो माया छाया दूर होती जायेगी। इससे पीठ फेरेंगे तो माया छाया पीछे चली आयेगी। तीर्थंकर भगवान ने गृहस्थावस्था से मुख मोड़ा और जब अरहन्त अवस्था हुई तब

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तो पूर्ण वीतराग ही हो गये। तो पहले उपेक्षा की फिर भी विभूतियाँ अन्य-अन्य प्रकार से सामने आयीं। भगवान हो गये तो समवशरण के रूप में यह लक्ष्मी सामने आयी, मगर उससे भी ऊपर उठ गये अरहन्त देव वहाँ भो गंधकुटीर बनकर अमूल्य सिंहासन के रूप में लक्ष्मी आयी। यह उससे भी चार अंगुल ऊपर रहे, तो सिर के ऊपर छत्र के रूप में लक्ष्मी गिरी मगर इन्हें छू न सकी। सर्व कुछ ज्ञान का ही तो खेल है, प्रताप है। जैसा ज्ञान बनायें वैसी आकुलता दुःख सुख प्रसन्नता पायेंगे। कठिन से भी कठिन बाधायें आयें मगर अपने ज्ञान से सबको विविक्त निरखो तो सर्व से छूटा हुआ अनुभव तो करें, बाधाय इसको न सतायेंगी। जिन जीवों को इस तरह का ख्याल बनता है और आत्मतत्व का लक्ष्य बनाने का यत्न करता है वह जोव देशनालब्धि पाकर प्रायोग्यलब्धि में आता है। जहाँ बतलाया था इतने विशुद्ध परिणाम होते कि ३४ बार बंधावसरण होता है और ३४ बार ८००-६०० सागर स्थिति बंध कम होते जाते हैं अब तक २६ बंधावसरण की बात कही थी, ५ मिनट में शेष बंधावसरण की बात कहकर फिर आगे बात करेंगे।

प्रायोग्यलब्धि में होने वाले अन्तिम आठ बन्धापसरणों का निर्देश —अब २७वें बंधापसरण में नपुंसकवेद का बंधावसरण होता है। २८वां बंधापसरण में वामन संस्थान व कीलित संहनन का बंध अपसृत हो जाता है। २६वें नम्बर में कुब्जक संस्थान व अर्द्धनाराच संहनन का बंधापसरण होता है। ३०वें बंधापसरण में स्त्रीवेदनाम मोहनीय प्रकृति का बंधापसरण होता है। ३१वें बंधापसरण में स्वाती संस्थान व नाराच संहनन इन दो प्रकृतियों का बंधापसरण हो जाता है। ३२वें बंधापसरण में न्यग्रोध-परिमण्डल संस्थान व वज्र नाराज संहनन इन दो नाम कर्म प्रकृतियों का बंधापसरण हो जाता है। देखिये जो प्रकृतियां उदय में आकर इस जीव को नाना कष्टों के साधन बनाती हैं, दुःखी करती हैं, उन प्रकृतियों का इस लब्धि में बंध नहीं होता। उनकी निर्जरा होना यह ही तो ठीक उचित बात है, सो देखिये सम्यक्त्व अभी नहीं हुआ किंतु सम्यक्त्व जैसे पौरुष में लग रहा तो यहाँ भी थोड़े समय को कैसी कैसी प्रकृतियों का बंध दूर हो जाता है। ३३वें बंधावसरण में मनुष्यगति मनुष्य-गत्यानुपूर्व औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, वज्रवृषभनाराच संहनन ये ५ प्रकृतियाँ जो चार गुणस्थान तक बंधती हैं, लेकिन यहाँ मिथ्यात्व गुणस्थान में ही प्रायोग्यलब्धि में इसका बंध से बाहर से हो रही, आगे भले ही इनका हुआ करेगा। ये मनुष्यगति सम्बंधित प्रकृतियाँ हैं। और ३४वें बंधाव-सरण में ऐसी ६ प्रकृतियों का बंध रुक जाता जिन ६ प्रकृतियों का बंध छठे गुणस्थान तक चलता है। अस्थिर, अशुभ, असाता वेदनीय, अयशःकीर्ति, अरति, शोक, इन छह प्रकृतियों का बन्धापसरण हो जाता है। देखो कितना विशुद्ध परिणाम एक सम्यक्त्वसूर्य के प्रकट होने के पहले हो रहा। जैसे सूर्य निकलता है ६ बजे, पर आध पौन घण्टा पहले कुछ उजेला सा होने लगता, दिखने लगता। लोगों को उत्साह जगता, लोग चलने फिरने लगते। तो सम्यक्त्वसूर्य तो उदित होगा आगे, मगर उससे पहले इन लब्धियों में ऐसे ऐसे विशुद्ध परिणाम और ज्ञान परिणाम बढ़ते। फिर इसके बाद करणलब्धि होगी। उन तीन करणों में बहुत कार्य होते हैं तो उसके बाद प्रथमोपशम सम्यक्त्व होता है।

सम्यक्त्वभाव की समुदापेयता सम्यक्त्व क्या वस्तु है? आत्मा का विशुद्ध परिणाम, विप-रीत अभिप्राय दूर हो जाना। जिस जीव के मन छल कपट हो, तृष्णा का रंग हो, गर्व का आशय हो,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जरा-जरा से प्रसंगों में क्रोध आ जाता हो ऐसे इस पुरुष के हृदय में मलिनता है । यह मलिनता परमात्मस्वरूप का दर्शन करने नहीं देती । पहले आशय को, हृदय को स्वच्छ बनायें। दो चित्रकारों ने एक राजा के बड़े हाल में चित्रकारी शुरू की। और राजा ने उन चित्रकारों की कला पीछे निश्चित करने के लिये उसके बीच में बहुत मोटा पर्दा डाल दिया। एक भीट प्रथम चित्रकार को दे दिया और दूसरी भीट द्वितीय चित्रकार को दे दिया। अब प्रथम चित्रकार ने तो कुछ ऐसे मसाले मंगाये कि जिनसे भींट का रगड़ना शुरू कर दिया। ६ महीने तक उसने रगड़ने रगड़ने का ही काम किया और दूसरे चित्रकार ने दस-पाँच तरह के रंग, बुरुस आदि मंगाकर चित्रकारी शुरू किया। ६ महीने तक उसने बहुत से चित्र बना डाले। ६ महीने समाप्त हुए, चित्रकारी की परीक्षा का समय आया तो पसीक्षा तो तब तो जबकि दोनों को एक साथ देखें, मुकाबला करे तो पर्दा बीच में से हटवा दिया। जब राजा प्रथम भींट को देखता है तो बहुत सुन्दर चित्रकारी नजर आती है। क्योंकि भींट इतनी चमकीली हो गई थी रगड रगड से कि दूसरी तरफ के जितने चित्र थे वे सब उसमें झलक रहे थे, और भींट साफ थी, खूब निर्मल, उज्ज्वल भींट थी। उस पर दूसरी ओर के चित्रों की छाया पड़ने से वे बड़े चमकीले सुन्दर लग रहे थे और दूसरी ओर के चित्रों में कोई चमक न थी, कांति न थी, बड़े भद्दे लग रहे थे। तो राजा ने प्रथम चित्रकार को बहुत सा इनाम दिया। तो ऐसे ही यहाँ भी देखिये— प्रायः करके लोग धर्म के नाम पर बहुत समय भी देते, पूजा, सामयिक, स्वाध्याय और और भीं विधान उपवास आदि बहुत बहुत काम करते, मगर चित्त को रगड़ा क्या उन्होंने ? चित्त को स्वच्छ किया क्या उन्होंने ? सब जीवों के प्रति समता की दृष्टि बने, घर के लोगों में मोह न फसे, ऐसी चित्त में शुद्धि आयी क्या ?

चित्तशुद्धि के प्रयोग का कर्तव्य– भैया ! अगर चित्त में शुद्धि नहीं आयी तो थोड़ा यह भी फर्ज हो जाता कि हम ज्ञानियों के पादमूल में रहकर कुछ तत्त्वाभ्यास करें और कुछ अपने पर प्रयोग बनायें। क्रोध के कारण उपस्थित हों तो भी तत्त्वदृष्टि करके क्रोध को अवकाश न दें। जहाँ ज्ञानमात्र ज्ञानपुञ्ज निज स्वरूप का दर्शन हुआ, सुध हुई, ख्याल हुआ वहाँ गर्व किस बात का रहता है ? इस देह को वह मिट्टी समझता है, तुच्छ समझता है, भार समझता, कलंक समझता। तो जिसे कलंक समझा उस पर कोई क्या गर्व कर सकता है ? ज्ञानी पुरुष के गर्व नहीं होता। मायाचार किसके लिये करेगा? मुझे संसार में क्या धर जाना है, क्या छोड़ जाना है, क्या रख जाना है, क्या करना है ? कुछ प्रयोजन ही नहीं। मायाचार किसके लिये करना ? मायाचार में भीतर दिल का बड़ा व्यामोह करना पड़ता है। जैसे व्यायाम करने वाले पहलवान लोग दण्ड लगायें, बैठक लगायें, ऊपर जाएँ, नीचे जाएँ, जैसे बहुत परिश्रम करते हैं, ऐसे ही मायाचार में दिल झकझोर हो जाता है। इसको विचारा उसको विचारा, इसके खिलाफ सोचा, उसके खिलाफ सोचा। दिल को ऐसा हैरान कर डालते हैं कि उस दिल में बल नहीं रहता। मायाचार छल कपट से क्या प्रयोजन ? ज्ञानी पुरुष अन्तरात्मा छल कपट नहीं रखता। तृष्णा का रंग उसके कैसे आये ? उसे तो यह सूझ होती है कि मेरे ज्ञानस्वरूप के अतिरिक्त अन्य सब आरम्भ परिग्रह बाह्य हैं, बेकार हैं, भिन्न हैं। मेरे काम आने के नहीं, फिर उनमें तृष्णा कैसे करेंगे ? ऐसी विशुद्धवृत्ति बनावें।

दुर्लभ मंगलस्वरूप जिनशासन का सदुपयोग करने में ही विवेक– अहो जैन शासन पाया है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बड़े भाग्य से, जिसको जैन शासन का योग मिला उसके भाग्य का कैसे वर्णन करें ? कितना ऊँचा पुण्य था तो जैन शासन के समागम में आये, जिसमें तत्त्वों का यथार्थ स्वरूप दिखाया गया। ऐसा यह भगवान वीतराग जिसने कभी यह नहीं कहा कि तुम मेरी शरण में आओ, तुम मेरी ही पूजा करते रहो; कभी उनको यह लोभ नहीं सताया। तत्त्व का प्रतिपादन हुआ। तत्त्वप्रतिपादन में स्वरूप दिग्दर्शन हुआ। शुद्ध स्वरूप दीखा भक्तों को तो वे निश्चल प्रभु की भक्ति में लग गये। स्वरूप दर्शन हुआ अपने अन्तरमें तो भक्त अपने आत्मतत्त्वमें लग गये। जहाँ कभी यह राज्य परम्परा जैसी राज्यगद्दी न रही प्रभु की कि एक प्रभु कोई है, अब उसने यह अवतार लिया, अब इस तरह राज्य कर रहा, फिर और अवतार लिया, फिर और तरह दुनिया पर राज्य कर रहा, ऐसी कोई राजगद्दी नहीं है प्रभु की। प्रभु तो वह है जो दोषों से रहित और गुणों से समृद्ध हो गया। चैतन्य ज्योति ज्ञानपुञ्ज, उसका नाम प्रभु। उसमें नाम ही नहीं है। ऋषभदेव भगवान बन गये मगर भगवान का नाम ऋषभदेव नहीं कोई नाभिनन्दन थे। इस तृतीयकाल के अन्त में चतुर्थ के प्रारम्भ में जिसका जीवन था, तपश्चरण किया था, प्रभु हो गये पर प्रभु होने पर क्या वे ऋषभदेव हैं, वे तो ज्ञानपुञ्ज हैं, निर्दोष हैं, जगजायमान हैं, चकचकायमान हैं, शुद्ध, स्वच्छ हैं। अपने आप जहाँ विश्वप्रतिविम्बित हो ऐसा शुद्ध स्वच्छ ज्ञानपुञ्ज है, उसका नाम प्रभु है। यहाँ नाम का पक्षपात नहीं है। जो ऐसा ज्ञानपुञ्ज हो वही प्रभु है, तत्त्व का दिग्दर्शन है। जिसमें पक्ष का, सम्प्रदायका, व्यामोहका, पार्टी के उपकारका, रंगका नाम भी तो नहीं है, ऐसे जैन शासन को पाया तो कितना बड़ा भाग्य है, और, फिर इसका सदुपयोग न करें, व्यामोह, ममता, कषाय ये ही बातें बनी रहें, ये ही जीवन में चलते रहें तो समझो कि जैसे किसी ने चिन्तामणि रत्न पाया हो और एक कौवा को उड़ाने के लिए फेंक दे और समुद्र में गिर जाय तो उसे आप कितनी हानि समझते ? यह तो कोई बड़ी हानि नहीं, मगर इसमें अनन्तगुणा हानि है कि ऐसे पवित्र उद्धारक धर्म की दिशा बताने वाले जैन शासन को पाकर इस जैन शासन से हमने कुछ लाभ न लिया तो लाभ क्या ? आत्मलाभ, अपना आत्मा अपने आप की दृष्टि में विराजे, यह हूँ मैं। सत्य, शुद्ध, स्वच्छ अपने ही सत्त्व की वजह से अपने आप में जो निरपेक्ष भाव है, यह हूँ मैं। इस तरह की श्रद्धा, एक ऐसी दृष्टि आये तो विकल्प जाल छूट जायेंगे। विशुद्ध सत्य निरपेक्ष आनन्द जग जायेगा। ऐसी स्थिति पा लेने में समझो कि हमने जैन शासन का सदुपयोग किया।

सदाशयपूर्वक क्रियाओं के करने का लाभ—बाह्य क्रियायें दो तरह से होती हैं। एक तो हो जाती हैं और एक दूसरे को देखकर हम क्रिया करते हैं। जहाँ सत्य ज्ञान प्रकाश जगा वहाँ वह पाप तो करेगा नहीं। उसके लिये दिल बन ही नहीं सकता। क्या प्रवृत्ति उसकी बन जायेगी ? तो यह ही ज्ञान, ध्यान, तप, सत्संग इस रूप प्रवृत्ति बनेगी, और कुछ को धर्म की बात मनमें आयी और यह सब निगरानी की कि अमुक धर्मात्मा क्या करता है ? उन जैसी क्रियायें अपन करने लगें तो लाभ तो इसमें भी है, आगे लाभ होगा, एक क्रम में तो है। कोई सत्संग बनेगा, ज्ञान प्रकाश हो सकता, मगर जब तक ज्ञानप्रकाश नहीं है तब तक वह क्रिया, ज्ञानियों की क्रिया की नकल कहलाती है। चलो नकल भी ठीक पर यह असल बन जाय, तो कितना लाभ है ? अविरत सम्यग्दृष्टि जीव जिसके व्रत नहीं है, पर सब बात स्पष्ट है। अपने सहज स्वरूप की सुध है। उसके अनन्तानुबन्धी क्रोध बनता नहीं, मायाचार, लोभ, गर्व बनता नहीं। अपने आप के प्रति सजग रहते हैं। उसकी महिमा कौन वर्णन करे ? नही है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

व्रत लेकिन सम्यक्त्व का इतना प्रताप है कि वह पुरुष तो अब पूज्य हो गया, भगवान की लिस्ट में उसका नाम आ गया। अब दल बदल हो गया। बहुत दल था अज्ञानियों का और ऐसा भूला भटका रहा कि इस फल से हट ही नहीं पाया। सुयोग हुआ अब प्रभु के दिल में आ गया। तो अभी भगवान से थोड़ा पीछे है, लेकिन पहुँच जायेगा। सम्यक्त्व परिणाम से। देखा ना स्वच्छ अभिप्राय। जिनका विपरीत आशय होता है उनसे जो प्रवृत्ति होगी वह विपरीत होगी और जिनका स्वच्छ आशय होता है वे कदाचित कर्मयोग से कुछ गलत प्रवृत्ति में भी जायें तो भी हटते हुए से रहते हैं। स्वच्छ आशय वाले से किसी ने विरोध नहीं माना। विपरीत आशय वाले की बात दूसरा सह नहीं पाता। बच्चे को यदि कोई आँख दिखाये तो बच्चे को चोट पहुँचती है, रोने लगता है, और माता पिता उसे पीट भी दें, मार भी दें तो भी बच्चे के दिल में आन्तरिक वेदना नहीं होती। क्या कारण है? माता पिता का आशय बच्चे के हित के लिये ही रहता है। समाज में घर में रहते हुये विचार यदि स्वच्छ है, साफ है, दूसरों के हित के करने में है तो कुछ विपरीत बात भी हो जाये तो समाज को बुरा नहीं लगता। डॉक्टर का हृदय स्वच्छ है, बचाना ही है। आपरेशन करके जिन्दगी देने का है और अच्छे भाव से करता है चिकित्सा और कदाचित वह बीमार मर जाय तो डाक्टर को किसी ने भी हत्यारा नहीं कहा। शुद्ध आशय की बड़ी महिमा है। संसार में क्या रखा है। किसके लिये गन्दा अभिप्राय बनायें? कौन सा प्रयोजन है कि दूसरों पर विरोध की दृष्टि लायें, ग्लानि करें, तुच्छ मानें। ऐसी कौन सी बात पड़ी है? यहाँ तो मात्र एक ही काम है।

परिस्थितिवश आजीविका का कार्य करते हुए भी मौलिक कर्तव्य निभाते रहने का मूल कर्तव्य भैया! कर्त्तव्य है सो आजीविका तो करें, पर आजीविका के अतिरिक्त यदि कोई काम है तो वह है आत्महित का, तत्त्वज्ञान का, ज्ञान चर्चा का। दो ही मुख्य काम हैं—एक जीव की जीविका, दूजे जीवोद्धार। जिस मनुष्य ने अपना ऐसा जीवन बनाया हो कि मेरे को दो से ही काम है—(१) आजीविका और (२) आत्मोद्धार। गृहस्थी में रहकर आजीविका न करें तो न चलेगा, आत्मकल्याण न करें तो मूल ही मिट गया। दो के अतिरिक्त किसी दूसरे दंद फंद में न फंसना, इनका ही सहयोग जहाँ है वैसा ही इसका व्यवहार होगा। फालतू व्यवहार इसका न होगा। जैसे कि लोग अनर्थदण्ड किया करते हैं, प्रयोजन नहीं है और सोचा करते हैं। ऐसे अनर्थदण्ड की क्या आवश्यकता है? अरे कुछ हित का काम बने तो चलो थोड़ा पाप हो गया विकल्प हो गया, कुछ ढंग से तो रहे, सो इतना भी ठीक ठिकाना नहीं। यदि निर्मल आशय रख कर भी कुछ त्रुटि हो जाये तो उसका प्रत्याख्यान हो जायेगा, मगर कुछ प्रयोजन नहीं और पाप करते जा रहे, तो ऐसे स्वच्छन्द जीवन का बहुत कठिन दुष्परिणाम है। हमें चाहिये कि हम अपने ६ कर्त्तव्यों में लगें। (१) देवपूजा (२) गुरुपास्ति (३) स्वाध्याय (४) संयम (५) तप और (६) दान। और अन्तर में इन ६ कर्तव्यों में लगते हुए उपासना करें तो अपने सहज स्वरूप भगवान आत्मतत्त्व की। मैं यह हूँ। उपासना ही क्या है? केवल एक लक्ष्य बन गया, मैं यह हूँ, उपासना भी हो गई। काम भी बनेगा, मोक्षमार्ग चलेगा। सारी बातें सही बन जायेंगी। केवल एक इस सम्यक्निर्णय में कि यह मैं हूँ, मैं हूँ, ऐसी सुध, और सहज सामान्य चैतन्यमात्र, जिसमें राग विरोध तरंग कुछ नहीं, ऐसा शुद्ध स्वच्छ निरपेक्ष अपने ही सत्त्व के कारण अनादि अनन्त प्रकाशमान उस चैतन्य को ज्ञाननेत्र के सामने रखकर यह हूँ मैं, इस प्रकार की सुध रखना बस यह ही धर्मपालन है। यह हो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मोक्षमार्ग का प्रारम्भ है। यह ही शांति का मार्ग है। ऐसा निर्णय हुये बाद फिर सब कुछ भला ही भला होता चला जायेगा। जिन पर हमारा अधिकार नहीं, पुत्र, मित्र, स्त्री, बन्धुजन उनके प्रति मोह और आसक्ति मत करें। विवेक बुद्धि नहीं है। यहाँ तो गुजारा कमेटी के मेम्बर जैसे बनकर रहे, इससे आगे कुछ नहीं सोचना और अपने आप के विषय में लक्ष्य बनाकर यह मैं हूँ ऐसी सुध बनाये रहें, ऐसा पावन जीवन रहेगा तो कर्म भी अवश्य कटेंगे, संसार संकटों से सदा के लिये मुक्ति प्राप्त होगी।

संख्यादिप्ररूपणा की अपेक्षा अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान का विवरण - अविरत सम्यग्दृष्टि जीव के अप्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय है और इस कारण उसका किसी भी प्रकार से व्रत नहीं है फिर भी उसकी स्वच्छन्द प्रवृत्ति नहीं होती। जिस जीव ने अपने सहज स्वरूप का अनुभव किया है और यह ही मैं हूँ इस प्रकार का निर्णय किया है, इसके अतिरिक्त और कुछ मैं करने में समर्थ नहीं हूँ, इसकी निरपेक्ष वृत्ति से केवल ज्ञातादृष्टपन ही होता है, ऐसा निर्णय करने वाले पुरुष की स्वछन्द वृत्ति नहीं होती। ऐसे अविरत सम्यग्दृष्टि असंख्यात होते हैं। नाना जीव की अपेक्षा ये सदा काल रहते हैं इन जीवों का अन्तर नहीं होता। ऐसा कोई भी समय न आयेगा कि जिस समय जगत में अविरत सम्यग्दृष्टि न रहेंगे, इसलिए अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान का नाना जीवों की अपेक्षा कभी भी अन्तर नहीं होता है, ये सर्वकाल पाये जाते हैं किंतु एक जीव को अपेक्षा अविरत सम्यग्दृष्टि जीव कम से कम अन्तर्मुहूर्त तक रहता है और अधिक से अधिक कुछ अधिक ३३ सागर तक रहता है। यह तो उसका काल है और एक जीव की अपेक्षा से अन्तर अविरत सम्यक्त्व का पड़े तो कम से कम अन्तर्मुहूर्त का अन्तर पड़ता है याने कोई जीव किसी गुणस्थान से चतुर्थ गुणस्थान में आया, अब उसके चतुर्थ गुणस्थान नरहे कोई दूसरा स्थान हो जाये और फिर चतुर्थ गुणस्थान आये तो जल्दी से जल्दी एक अन्तर्मुहूर्त में आ सकता है, इसलिए अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान का अन्तर अन्तर्मुहूर्त होता है और अधिक से अधिक अन्तर कुछकम अर्द्ध पुद्गल परिवर्तन कालतक होता है। अर्थात् कोई एकजीव जो प्रथमोपशम सम्यक्त्व में आये और उसका सम्यक्त्व छूट जाये और मिथ्यात्व में रहना पड़े तो अधिक से अधिक यह अर्द्धपुद्गल परिवर्तन कालतक मिथ्यात्व में रह सकता है, लेकिन अर्द्ध पुद्गल परिवर्तन काल में कुछ अन्तिम अन्तर्मुहूर्त कम कर देना चाहिये। अधिक से अधिक उन अन्तर्मुहूर्त से कम अर्द्ध पुद्गल परिवर्तन कालतक जीव मिथ्यात्व में रहा, किंतु अन्तिम भव में, अन्तिम समय में सम्यक्त्व पाकर वेदक सम्यक्त्व पाकर फिर क्षायिक सम्यक्त्व व संयम पाकर और क्षापक श्रेणी के ८वें ९वें १०वें १२वें गुणस्थान में चढ़कर अन्तर्मुहूर्त १३वें में रह कर १४वाँ गुणस्थानपाकर निर्वाणपाये तो इतना कम अर्द्ध पुद्गलपरिवर्तन काल वह मिथ्यात्व में रहा तो यही एक जीव का अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान का अन्तर अधिक से अधिक कहलाया। अविरत सम्यग्दृष्टि जीव अधिक से अधिक काल पाता है तो कुछ अधिक ३३ सागर पाता है। जैसे कि यह जीव सर्वार्थसिद्धि में उत्पन्न हो तो वहाँ ३३ सागर की आयु पाता है, इतने समय तक अविरत सम्यक्त्व में रहता है, फिर वहाँ से चलकर मनुष्य पर्याय पाकर मोक्ष पाता है। तो मनुष्य पर्याय पाने में जितनी आयु व्यतीत हुई उतना अधिक ३३ सागर अविरत सम्यक्त्व का रहा। उसमें अन्तिम अन्तर्मुहूर्त कम कर देना चाहिये। इसके सिवाय अन्य पद्धति से अगर अधिक से अधिक अविरत सम्यक्त्व का काल बताया जाय तो यों संभव नहीं होता कि क्षयोपशम सम्यक्त्व से यह किन्हीं देव पर्याय में जायगा वहाँ से आकर मनुष्य हुआ, तो उसके संयम हो जायगा। अविरत सम्यक्व तो उसे कहते हैं कि जहाँ संयम न हो और सम्यक्त्व हो। तो ऐसी स्थिति अधिक से अधिक सर्वार्थसिद्धि के देवों की रहती है।

http://sahjanandvarnishastra.org/

मार्गणाओं की अपेक्षा अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान का संक्षिप्त दिग्दर्शन—अविरत सम्यग्दृष्टि जीव चारों गतियों में पाये जाते। इन्द्रिय जाति की अपेक्षा केवल पञ्चेन्द्रिय में ही मिलते हैं। त्रस काय में ही अविरत सम्यग्दृष्टि मिलेंगे, अन्य में नहीं। योग की अपेक्षा अविरत सम्यग्दृष्टि जीव आहारक काययोग, आहारक मिश्र काययोग को छोड़कर शेष में मिलेंगे, अर्थात् १३ योग में अविरत सम्यग्दृष्टि हो सकते हैं। आहारक काय योग व आहारक मिश्रकाय केवल छठवें गुणस्थान में रहता है। वेद की अपेक्षा अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान तीनों वेदों में होता है। इसमें कषायें, अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ नहीं होते। शेष सब कषायें होती। अतः अविरत सम्यक्त्व में २१ कषायें सम्भव हैं। ज्ञान मार्गणा की अपेक्षा अविरत सम्यग्दृष्टि जीव मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान इन तीन ज्ञानों में पाये जायेंगे। अविरत सम्यग्दृष्टि में मनः पर्याय ज्ञान नहीं होता। मनः पर्याय ज्ञान ऋद्धिधारी मुनि के ही होता है। केवल ज्ञान अरहंत के, सिद्ध के होता है। खोटा ज्ञान अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान में होता नहीं। अविरत सम्यक्त्व में असंयम ही रहता है। दर्शन तीन होते हैं (१) चक्षु दर्शन, (२) अचक्षुदर्शन और, (३) अवधिदर्शन। लेश्यायें छहों सम्भव हैं। लेश्या कषाय सहित योग को कहते हैं और सम्भव है कि किसी मिथ्यादृष्टि के शुक्ल लेश्या हो जाये और सम्यग्दृष्टि के कृष्ण लेश्या हो जाये। लेश्या का सम्बन्ध आन्तरिक अनन्तानुबंधी के सद्भाव और अभाव पर नहीं है, किन्तु उसका बाहरी योग प्रवृत्ति जैसा संक्लश विशुद्ध बर्ताव वाला होगा, उसके अनुरूप लेश्यायें होती हैं। अविरत सम्यग्दृष्टि जीव भव्य ही हैं। इस गुणस्थान में सम्यक्त्व तीन सम्भव हैं। औपशमिक सम्यक्त्व के साथ भी असंयम रहता, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व के साथ भी असंयम रहता और क्षायिक सम्यक्त्व के साथ भी असंयम रहता ये तीनों ही सम्भव हैं। यह जीव संज्ञी ही होता है। अविरत सम्यक्त्व में आहारक जीव भी होता है और अनाहारक जीव भी होता है। अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान में मरण हुआ और नया शरीर धारण करने के लिये चला तो विग्रह गति की अवस्था में जहाँ कि एक दो मोड़े लिये जाते हैं वहाँ यह जीव अनाहारक रहता है। तो अनाहारक इसके होते हुये भी यह जीव अविरत सम्यग्दृष्टि है।

अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान के भाव आदि का विवरण—अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान किस निमित्त से होता है, इस पर विचार जब करें तब दर्शन मोह का निमित्त जोड़कर करना चाहिये, क्योंकि आदि के चार गुणस्थान दर्शनमोह के निमित्त से बने हुये कहलाते हैं। तो इस गुणस्थान में दर्शनमोह का किसी के उपशम है तो उसका औपशमिक भाव कहलायेगा। किसी के दर्शन मोह का क्षयोपशम है तो उसका क्षायोपशमिक भाव कहलायेगा। किसी के दर्शन मोह का क्षय है तो उसका क्षायिक भाव कहलायेगा। जिस जीव के औपशमिक सम्यक्त्व है उसके १४८ प्रकृतियों की सत्ता सम्भव है। परन्तु क्षायोपशमिक सम्यक्त्व उत्पन्न करने के बाद जब यह जीव श्रेणी के सम्मुख होता है तो द्वितीयोपशम सम्यक्त्व उत्पन्न करता है। उस समय अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार प्रकृतियों की विसंयोजना हो जाती है, अर्थात् अनन्तानुबंधी प्रकृति नहीं रहती, वह अप्रत्याख्यानावरण आदि हो जाती है। तो वहाँ इन चार प्रकृतियों की सत्ता नहीं है। वही जीव श्रेणी के गुणस्थान गिरकर ७वें से भी गिरकर, छठे में से भी गिरकर चौथे गुणस्थान में आये तो वह अविरत सम्यग्दृष्टि है और साथ ही १४४ प्रकृतियों की सत्ता वाला है। कोई क्षायिक सम्यग्दृष्टि अविरत होने पर भी १४१ प्रकृतियों की सत्ता वाला होता है, क्योंकि सम्यक्त्व घातक ७ प्रकृतियों के क्षय होने पर क्षायिक सम्य-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

क्त्व उत्पन्न होता है। क्षायिक सम्यक्त्व को क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि ही करता है, मिथ्यादृष्टि व उपशम सम्यग्दृष्टि क्षायिक सम्यक्त्व को उत्पन्न नहीं करता। सो उस जीव को अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृति इन ७ की सत्ता है। यह जीव सर्वप्रथम ३ करण करके अनन्तानुबंधी की विसंयोजना रूप से क्षय कर देता है, तत्पश्चात् मिथ्यात्व को सम्यग्मिथ्यात्व रूप करके, सम्यग्मिथ्यात्व को सम्यक्त्व रूप करके क्षय कर देता है। तथा सम्यक् प्रकृति का क्षपकी विधि के अनुसार स्थिति अनुभाग घात करके क्षय कर देता है। जिस समय सम्यक्त्व प्रकृति का क्षय प्रारम्भ होता है उस समय से यह जीव कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि कहलाता है। अर्थात् यह जीव नियम से क्षायिक सम्यग्दृष्टि बनेगा, इसका अब सम्यक्त्व मिट नहीं सकता, तो जो सम्यक् प्रकृति के क्षय होने का काल है उसके चार भाग होते हैं, यदि यह जीव पहले भाग में मरण करे तो नरक गति में जन्म लेता है और वहाँ बराबर क्षायोपशमिक सम्यक्त्व रहता है और जन्म के अन्तर्मुहूर्त काल में अन्त में क्षायक सम्यक्त्व उत्पन्न करता है। यदि यह सम्यक्त्व प्रकृति के क्षय वाले काल के द्वितीय भाग में मरण करेगा तो तिर्यंक गति में जन्म लेता है और वहाँ क्षायिक सम्यक्त्व को पूर्ण करता है इसी प्रकार तृतीय और चतुर्थ भाग में मरण करे तो मनुष्य गति व देवगति में जन्म लेगा व वहाँ क्षायिक सम्यक्त्व को पूर्ण कर लेगा इस गुणस्थान में जिसके वेदक सम्यक्त्व होता है उसके सम्यक्त्व प्रकृति का उदय है और इस उदय के कारण चल मलिन अगाढ़ दोष उत्पन्न होता है, किन्तु यह दोष इतना सूक्ष्म है कि यह सम्यक्त्व का घात करने में समर्थ नहीं है।

वेदक सम्यक्त्व व क्षायोपशमिक सम्यक्त्व में विशेषता—वेदक सम्यक्त्व का दूसरा नाम क्षायोपशमिक सम्यक्त्व भी है, किन्तु इन दोनों नामों में सूक्ष्म लाक्षणिक भाव है। वेदक सम्यक्त्व तो तब कहलाता है जब सम्यक्त्व प्रकृति का उदय है, जिसमें चल मलिन अगाढ़ दोष उत्पन्न होता है, किन्तु इस वेदक सम्यक्त्व के बाद जब द्वितीयोपशम सम्यक्त्व अथवा क्षायिक सम्यक्त्व होना शुरु होता है तब क्षायोपशमिक की कुछ विशेषता होती है। जैसे किसी के अनन्तानुबंधी चार का क्षय है और ३ का उपशम है, कभी ५ का क्षय है और २ का उपशम है। कभी ६ का क्षय है, १ का उपशम है अथवा साथ ही साथ यथासम्भव सम्यक् प्रकृति का प्रारम्भ में उदय है, तो जहाँ सम्यक् प्रकृति का उदय तो नहीं है, किन्तु क्षय और उपशम है उसे क्षायोपशम सम्यक्त्व कहते हैं, अर्थात् यह ऐसा सातिशय क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि है कि थोड़े ही काल में द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि अथवा क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो जायेगा। अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान में भी प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि का मरण नहीं और द्वितीयोपशम को प्रारम्भ करने वाले ज्ञानी का भी मरण नहीं।

सम्यक्त्व की अनर्घ्यता—जीव का सर्वप्रथम उद्धार इस सम्यक्त्व भाव से ही होता है। यह सम्यक्त्व अमूल्य वैभव है, इस सम्यक्त्व की भावना, सम्यक्त्व के विषय की धारणा यह जीव के कल्याण का एक मंगलमय आचरण है। इस सम्यक्त्व की प्राप्ति के पुरुषार्थ में सर्वप्रथम पुरुषार्थ तत्त्वाभ्यास है। वस्तु का स्वरूप क्या है उस स्वरूप का ज्ञान करें और उस स्वरूप की भावना आये, उस ही स्वरूप में पदार्थ को देखें, प्रत्येक पदार्थ स्वतन्त्र है, उनका स्वातन्त्र्य देखेंगे तो परस्पर कर्तृ कर्म भाव का अज्ञान न रहेगा और मोह नष्ट होगा। तो इस तत्त्वाभ्यास के प्रसाद से स्वपर का भेद विज्ञान होता है। जिस जीव को स्वपरका भेद विज्ञान होता उसके परसे तो निवृत्ति और स्व में रुचि होती है। जिस जीव को स्वभाव की रुचि होती है वह समस्त अध्रुव भावों को छोड़ देता है और ध्रुव

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

निज अभेद सहज चैतन्य स्वरूप में ही धुन बनाता है तो इस सहज स्वभाव की धुन के प्रयोग से इस आत्मा में सहज अनाकुलता का अनुभव होता है। इस अनुभव के साथ ही सम्यक्त्व सूर्य का उदय हो जाता है।

सम्यक्त्व की उत्पत्ति में अमोघ साधनभूत अधःप्रवृत्तकरण—सम्यक्त्व की उत्पत्ति में तीन करण का होना आवश्यक है, जिसको करणलब्धि शब्द से कहते हैं। उस करणलब्धि में कैसा परिणाम होता है और कैसी कर्म की दशा होती है, इसका जानना चूँकि आत्म-सम्बन्धित है, अतः आवश्यक है सो उसमें किस क्रम से क्या बात बनती है उसका विवरण समझना चाहिये। यह जीव जब प्रायोग्यलब्धि कर लेता है तब इसके अधःकरण, अपूर्वकरण और अनवृत्तिकरण ये तीन प्रकार की विशुद्धियाँ होती हैं, अधः प्रवृत्तिकरण में जितना समय लगता है उसके प्रत्येक समय में कुछ खण्ड होते हैं। जिसमें नाना प्रकार के विशुद्ध परिमाम जीव के होते हैं। यह जीव अपनी विशुद्धि से बढ़ता जाता है और अधः प्रवृत्तिकरण में इन प्रकारों के समयों में विषम विशुद्धि चलती है कि ऊपर के समयों में होने वाली विशुद्धि नीचे के समयों में साधक के मिल सकती है। इसी कारण इसका अधःप्रवृत्तिकरण नाम है। अधःप्रवृत्तिकरण में जो शब्द का अर्थ है उसका यह भाव है कि इस करण के अन्दर कुछ ऊपर के समय के साधक का नीचे के साधकों से भाव मिलता है। इसी प्रकार अधःप्रवृतिकरण से पहले के जीवों में भी इस प्रकार के नीचे के समयों में मिलने वाले भाव होते हैं, फिर भी चूँकि अधःप्रवृत्तिकरण का समय सीमित कर दिया गया है, इसलिये यहाँ इस पद्धति को बताना आवश्यक था। यहाँ इतनी विषमता हो जाती कि पहले समय के साधक के जो जघन्य विशुद्धि है उससे अनन्तगुणी विशुद्धि दूसरे जीव के दूसरे समय में जघन्य विशुद्धि है। उससे अनन्तगुणी विशुद्धि तीसरे समय के साधक की जघन्य विशुद्धि में है। उससे अनन्तगुणा विशुद्धि चौथे समय के साधक की जघन्य विशुद्धि में है। इस तरह जितना पहले समय में निर्वर्गणा तांडक होते हैं उसके अन्तिम समय में जो जघन्य विशुद्धि है उससे अनन्तगुणी विशुद्धि पहले समय के साधक की उत्कृष्ट विशुद्धि में पायी जाती है। इस ही विषमता के कारण इसका नाम अधः प्रवृत्तिकरण रखा है। अधः प्रवृत्तिकरण में गुणश्रेणी, गुण निर्जरा आदिक कार्य तो नहीं होते, परन्तु अनन्तगुणी विशुद्धि बढ़ती जाती है, और पाप कर्म का अनुभाग तीव्र स्थान से घटकर मंद स्थान रूप हो जाता है। इतनी बड़ी विशुद्धि इस अधःप्रवृत्तिकरण परिणाम में होती है।

सम्यक्त्वोत्पत्ति के साधनभूत अपूर्वकरण परिणाम में होने वाले कार्य—अधः प्रकृत्तिकरण परिणाम हो चुकने पर अपूर्वकरण का प्रारम्भ होता है। अपूर्व करण में विशुद्धि और स्थिति बंध की न्यूनता अधःप्रवृत्तिकरण के अन्तिम समय से बहुत है अर्थात् अधःप्रवृत्तिकरण के अन्तिम समय में जो स्थिति बंध था उससे पल्य के असंख्यातवें भाग कम होता है अपूर्वकरण के प्रथम समय में इस ही समय गुण श्रेणी का प्रारम्भ होता है। गुण श्रेणी का अर्थ यह है कि इतने विशुद्ध परिणाम होते हैं कि जिसके कारण प्रति समय अनन्तगुणे प्रदेशों को छिन्न किया जाता है। उनका अनुभाग स्थिति कम कर दिया जाता है अर्थात् निम्न स्थिति व अनुभागों में निक्षिप्त कर प्रकृतियों के स्थिति व अनुभाग के खण्ड का घात गुणित रूप से होता है, इसका उदाहरण इस प्रकार है कि अपूर्वकरण परिणाम में जो उदयावली चल रही है उस उदयावली के बाहर याने अगली आवली के प्रथम समय का बहुत सा प्रकृतियों का खण्ड उठकर उदयावली के प्रायः प्रथम त्रिभाग में मिल जाता है और इस प्रकार अगले अगले समय के निषेक उठकर उदयावली के प्रथम

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

त्रिभाग में मिलता है। यहाँ जिनमें निषेक नहीं मिलता उन्हें कहते हैं अतिस्थापना तो अतिस्थापना तो बढ़ती जाती है और अभी निक्षेप इतने ही रहते हैं, जिनमें कर्म प्रकृतियाँ डाल दी जायें नीचे के स्थानों में उन्हें निक्षेप कहते हैं। तो जब यह अतिस्थापना एक आवली प्रमाण हो जाती है तब यहाँ निक्षेप भी बढ़ता है, इस प्रकार बहुत ही अल्प समय में सारी कर्म स्थितियों के कर्म के खण्ड कटकर नीचे की स्थिति और अनुभाग में आते हैं। इन क्रियाओं को गुण श्रेणी कहते हैं। इस विधान से कर्म अतीव शिथिल हो जाते हैं। इस अपूर्वकरण परिणाम में गुण श्रेणी निर्जरा, स्थिति बंध अतीव कम, अनुभाग घात, स्थिति घात और पाप प्रकृतियों का पुण्य प्रकृतियों में संक्रमण होना व पुण्य रस का बढ़ जाना और विशुद्धि में वृद्धि होना ये सब मंगलमय कार्य होने लगते हैं।

सम्यक्त्वोत्पत्ति के साधनभूत अनिवृत्तिकरण परिणाम में व उसके फलस्वरूप होने वाले कार्य - जब अपूर्वकरण का काल समाप्त हो जाता है तो अनिवृत्तिकरण नाम का तीसरा करण प्रारम्भ होता है। इस करण परिणाम में उससे भी असंख्यातगुणे प्रदेशों का अपकर्षण होता है और कर्मों को शिथिल कर दिया जाता है। इस प्रकार जब तीसरे करण का काल संख्यात भात व्यतीत हो जाता है तब वहाँ अन्तरकरण होने लगता है। इस अन्तरकरण में यह जीव मिथ्यात्व कर्म का अन्तर करता है। अन्तरकरण का अर्थ यह है कि जिस अन्तर्मुहूर्त में भविष्य में प्रथमोपशम सम्यक्त्व होगा उस समय की स्थिति वाली जो मिथ्यात्व कर्मप्रकृति है उसको पहली स्थितियों में डाल देवें और कुछ को अगली स्थितियों में डाल देवें याने आगाल प्रत्यागाल करें। जब इस तरह उस समय का समस्त मिथ्यात्व पहली और अगली स्थितियों में पहुँच जाता है तो उसका थोड़े ही क्षण बाद वह समय आता है जब प्रथमोपशम सम्यक्त्व होता है। उस समय में उस स्थिति का कोई मिथ्यात्व कर्म शेष नहीं है, यही है प्रशस्त उपशम। जैसे कोई वकील चाहता है कि दश लक्षण के दिनों में हमको अदालत में न जाना पड़े ऐसा उसका भाव जेठ आषाढ़ में हुआ, तो वह ऐसा प्रयत्न करता है कि जो तारीखें दशलक्षण के दिनों में लगी हुई हों उन तारीखों में से कुछ मुकदमों को दशलक्षण से पहले की तारीखों में डाल देता है और कुछ को असौज, कार्तिक आदिक में डाल देता है। तो जिस समय दशलक्षण के दिनों की कोई तारीख नहीं रहती तो अपने आप ही वह वकील अदालत जाने से बचता है और धर्मसाधना में समय गुजराता है। उस समय की कोई जैसे तारीख नहीं है इसी तरह प्रथमोपशम सम्यक्त्व में इस समय की कोई स्थिति मिथ्यात्व कर्म में नहीं है। हलांकि मिथ्यात्व कर्म प्रकृति की सत्ता है जीव के साथ बन्धन है मगर उन सत् प्रकृतियों में उस स्थिति वाली प्रकृति नहीं है मिथ्यात्व सम्बन्धी। तो इस प्रशस्त उपशम के कारण जीव को उस समय निर्मल सम्यक्त्व उत्पन्न होता है। जैसे ही इस जीव को प्रथमोपशम सम्यक्त्व का लाभ होता है उसी समय अन्य स्थितियों में पड़े हुये मिथ्यात्वकर्णों के भी तीन भाग कर दिये जाते हैं, अर्थात् मिथ्यात्व को ऐसा चूरित किया जाता है कि कुछ तो सम्यग्मिथ्यात्व बन गये कुछ सम्यक्प्रकृति बन गई और कुछ मिथ्यात्व ही रह गया। जैसे दरेती से उड़द या मूंग की दाल दली जाय तो उसमें बहुत से दानों के तो दो दालें हो जाती हैं, बहुत अंश चूर्ण हो जाता है और कुछ कुछ मूंग के दाने साबित भी रह जाते हैं। तो जैसे वहाँ तीन प्रकार हो गये, ऐसे ही प्रथमोपशम सम्यक्त्व के यन्त्र से मिथ्यात्व के तीन प्रकार हो जाते हैं यहाँ मिथ्यात्व कर्म के अनुभाग से सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति का अनुभाग अनन्तगुणहीन है और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति के अनुभाग से सम्यक्प्रकृति का अनु-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भाग अनन्त गुण हीन है। इस प्रकार प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि जीव के सम्यक्त्व घात ७ प्रकृतियाँ हो जाती हैं और सभी का वहाँ उपशम है।

सम्यक्त्व के स्वामी और साधनादि का संक्षिप्त दिग्दर्शन—यह उपशम चारों गतियों में किया जा सकता है। किन्तु पञ्चेन्द्रिय जीव ही उपशम कर सकते हैं। पञ्चेन्द्रिय में संज्ञी जीव ही कर सकते हैं, और संज्ञी जीवों में गर्भज जीव ही कर सकते हैं। एक बार प्रथमोपशम सम्यक्त्व का लाभ हो और फिर मिट जाए तो आगे सम्मूर्छन जीवों में भी सम्यक्त्व हो सकता है। लेकिन प्रथम ही प्रथम ऐसा अनर्घ प्रथमोपशम सम्यक्त्व को उत्पन्न करने वाला जीव गर्भज जीव ही होता है। गर्भजों में भी जो पर्याप्तक है वह ही उपशम कर सकता, अपर्याप्त नहीं कर सकता और पर्याप्तकों में भी संख्यात वर्ष की आयु वाले जीव अथवा असंख्यात वर्ष की आयु वाले जीव भी उपशम सम्यक्त्व को करते हैं। इस प्रथमोपशम सम्यक्त्व के होने के बाद पहले अर्थात् पूर्व काल में मिथ्यात्व ही था लेकिन भविष्य के लिए यह कोई नियम नहीं बनता कि मिथ्यात्व ही हो। वहाँ सम्यक् प्रकृति का भी उदय हो सकता, अन्य प्रकृति का भी हो सकता। इस प्रकार अनादि मिथ्यादृष्टि जीव के सम्यक्त्व का पहली बार लाभ है। सर्वोपशम से होता है अथवा प्रशस्त उपशम से होता है। इसके बाद वह मिथ्यात्व को प्राप्त हो जाए और सम्यक्त्व पाये तब क्षयोपशम से भी सम्यक्त्व हो सकता है। यह उपशम सम्यक्त्व किन्हीं भी क्षेत्रों में हो सकता है, किसी के पास में भी हो सकता है वहाँ क्षायिक सम्यक्त्व की तरह नियम नहीं है। क्षायिक सम्यक्त्व केवली, श्रुतकेवली जिस काल में होते हैं उस ही काल में होता है। यदि कोई स्वयं श्रुतकेवली है तो उसके स्वयं क्षायिक सम्यक्त्व हो सकता है और अन्य जीवों के केवली, श्रुतकेवली के पादमूल में ही क्षायिक सम्यक्त्व होता है। क्षायिक सम्यक्त्व का प्रारम्भ मनुष्य ही कर सकते हैं किन्तु उसकी पूर्ति अर्थात् सम्यक् प्रकृति का क्षय प्रारम्भ होने के बाद यदि मरण हो तो चारों गतियों में हो सकती है।

देश संयत गुणस्थान का निर्देश—अब सत् प्ररूपणा में देश संयत गुणस्थान का वर्णन करते हैं। सम्यक्त्व के साथ जहाँ संयमासंयम पाया जाता है उसे देश संयत गुणस्थान कहते हैं। संयमासंयम में कुछ संयम और कुछ असंयम होता है। ६ काय के जीवों की हिंसा न करना सो यह प्राणसंयम व ५ इन्द्रिय व मन के विषय से विरत रहना इन्द्रिय संयम कहलाता है। तो देश संयत गुणस्थानवर्ती जीव त्रसकाय की हिंसा का तो त्यागी होता है, किन्तु स्थावर जीवों की हिंसा से विरत नहीं हो पाता, क्योंकि उसका पद ही ऐसा है। उसे घर गृहस्थी में रहने का जो काम है उसमें स्थावर हिंसा का त्याग नहीं निभ सकता। तो जिसने त्रसकाय की हिंसा का त्याग किया है और स्थावर हिंसा से विरत नहीं है, ऐसे सम्यक्त्व सहित जीव देश विरत गुणस्थानवर्ती कहलाते हैं। देश चारित्र को प्राप्त होने वाला जीव मिथ्यादृष्टि भी होता है और सम्यग्दृष्टि भी होता है, अर्थात् जो मिथ्यादृष्टि जीव सम्यक्त्व और देश संयम इन दोनों को एक साथ उत्पन्न करता है वह तो मिथ्यात्व से आया हुआ देश संयत गुणस्थान वाला है और जो जीव सम्यक्त्व से विभूषित है और फिर देश संयम को प्राप्त होता है वह पहले से ही सम्यग्दृष्टि था और अब उसने संयमासंयम गुणस्थान प्राप्त किया। तो गुणस्थान में प्राण संयम में एक संयम है, शेष ५ असंयम हैं और इन्द्रिय संयम में कोई संयम नहीं है। विरति के १२ प्रकार हैं। ५ प्रकार के इन्द्रिय का संयम होना और मन का संयम होना ये ६ इन्द्रिय संयम कहलाते हैं। और ६ काय के जीवों की हिंसा का त्याग करना ये ६ प्राण संयम कहलाते, जिनमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

त्रस अविरति का तो त्याग है, शेष ११ अविरति ये कहलाते हैं। इस गुणस्थान का प्रादुर्भाव अप्रत्याख्यानावरण चारित्र मोहनीय के क्षयोपशम से होता है। यह क्षयोपशम इस प्रकार का है कि अप्रत्याख्यानावरण कषाय का तो उदयाभावी क्षय है तथा उन्हीं का सद्‌अवस्थारूप उपशम है और प्रत्याख्यानावरण का हुआ उदय तो ऐसे क्षयोपशम का निमित्त पाकर यह पंचम गुणस्थान होता है' इस कारण इसे क्षायोपशमिक भाव कहते हैं।

दार्शनिक देशसंयत– क्षायोपशमिक देश चारित्र वाले जीव अनेक प्रकार के होते हैं उन सब भावों का कुछ संक्षेप में संग्रह किया जाये तो उनको ही ११ प्रतिमा कहते हैं । प्रतिमा नाम प्रतिज्ञा का है। १२ प्रकार की अविरति का त्याग करने को यहाँ प्रतिमा कहते हैं। अविरत असंख्यात प्रकार के होते हैं, उन सब अविरतों को संक्षेप करके यहाँ ११ बातें कही गई हैं। पहली प्रतिमा का नाम है दर्शन प्रतिमा। जहाँ सम्यक्त्व उत्पन्न हुआ है और सम्यक्त्व के साथ आवश्यक आचरण है उसे दर्शन प्रतिमा कहते हैं। दर्शन प्रतिमा तिर्यञ्च और मनुष्यों में हो सकती है। अपने-अपने पद के अनुसार यहाँ आचरण होता है। अष्टमूल गुण का धारण सप्त व्यसन का त्याग यह दर्शन प्रतिमा का आवश्यक आचरण है। मद्य मांस मधु इन तीन मकारों का त्याग और ५ उदम्बर फलों का त्याग। इन ८ मूल गुणों के त्याग हुये बिना दर्शन प्रतिमा नहीं होती। जो सम्यग्दृष्टि है और मोक्षमार्ग में प्रगति करने का उद्यमी है उसके ७ व्यसन नहीं होते। जैसे हार जीत की दृष्टि लगाकर धन का आय करना, चाहे आये अथवा जाये, तत्सम्बन्धी विकल्प करना यह द्यूतव्यसन है। इसका त्याग अतीव आवश्यक है। क्योंकि भविष्य की सन्देह की तुला पर सम्यग्दृष्टि जीव नहीं होता। त्रस जीव के शरीर के घात से मांस उत्पन्न होता है। मांस भक्षण का व्यसन अर्थात् हिंसा का समर्थन और प्रोत्साहन है। जिस जीव ने अपने ही समान जगत के जीवों को निरखा, उनको सर्व जीवों में मैत्री भाव होता है, उनके प्राणघात का काम कैसे ज्ञानी पुरुष कर सकता है। जो अपने को बेसुध बनाये ऐसे मदिरापान का कार्य ज्ञानी पुरुष नहीं करता, चोरी, परस्त्री सेवन वेश्यागमन झूठ बोलना आदिक व्यसन भी सम्यग्दृष्टि ज्ञानी पुरुष से नहीं होते। जिसे अपने आत्मा की सुध नहीं है और एक आत्म दर्शन में ही कल्याण समझा है उसकी व्यसनों में प्रवृत्ति नहीं होती। निरतिचार अष्ट मूलगुण पालन करने में सूक्ष्म भी अभक्ष्य पदार्थों का त्याग हो जाता है। जिस भोजन के खाने में त्रस जीव का घात हो, अथवा अनन्त स्थावर जीवों का घात हो ऐसे अभक्ष्य पदार्थों का सेवन न करना और इसी कारण जिस पदार्थ में जीवोत्पत्ति का संदेह हो गया हो ऐसे पदार्थ का भी भक्षण न करना इस प्रतिभा में सहज वर्तन है।

व्रतिक देश संयत—दूसरी प्रतिमा का नाम है व्रत प्रतिमा। पाँच अणु व्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इस प्रकार १२ व्रतों का पालन इस प्रतिमा में होता है। अहिंसाणुव्रत, त्रस जीव संकल्पी हिंसा न करना सो अहिंसाणुव्रत हैं। हिंसा चार प्रकार की होती है– (१) संकल्पी हिंसा (२) उद्यमी हिंसा, (३) आरम्भी हिंसा और, (४) विरोधी हिंसा। संकल्पपूर्वक किसी जीव के मारने का भाव करना संकल्पी हिंसा है। घर के काम काज रसोई आदिक के काम काज में सावधानी करते हुये भी किसी जीवका घात हो जाये तो वह आरम्भी हिंसा है। व्यापार करते हुये में सावधानी रखने पर भी जो हिंसा हो जाती है वह उद्यमी हिंसा हैं। कोई संज्ञी पञ्चेन्द्रिय मनुष्य अथवा तिर्यञ्च अपनी जान लेने आया हो और उस समय अपने प्राण रक्षा के लिये उसका मुकाबला करने में उसकी हिंसा हो जाये तो वह विरोधी हिंसा है। देश संयत गुणस्थानवर्ती जीव इस पद में संकल्पी हिंसा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

का त्यागी होता है। सत्याणुव्रत दूसरों का हित करने वाले प्रिय हित वचन बोलना, ऐसे वचन न बोलना जिसमें दूसरों का प्राणघात होता हो, सो सत्याणुव्रत है। किसी की चीज न चुराना सो अचौर्याणुव्रत है। और समस्त परस्त्रियों के प्रति खोटा भाव न करना ब्रह्मचर्याणुव्रत है' और परिग्रह का लालच न करना, परिग्रह का परिमाण करना सो परिग्रह परिमाण अणुव्रत है। ज्ञानी पुरुष चाहता तो यही है कि समस्त पापों से विरक्त होकर केवल एक निज परम ब्रह्म की उपासना में ही जीवन जाय, किंतु कर्मोदयवश परिस्थियाँ ऐसी होती हैं कि ऐसे सर्वदेश त्याग को नहीं निभा सकता इसलिये उसे एक देश त्यागमय श्रावक अवस्था में रहना पड़ता है। तो वहाँ जो आवश्यक है वह करना तो होता है लेकिन उसमें बहुत विवेक रखना है। परिग्रह परिणाम करने में बहुत भाव हिंसा बच जाती है। जैसे दूसरे धनिकों को देखकर धन की तृष्णा न होना। मैं भी ऐसा हो जाऊँ, ऐसी भावना का प्रादुर्भाव नहीं होता। वह जानता है कि तीन लोक का समस्त वैभव भी जीर्ण तृणसम असार है। गृहस्थावस्था में आवश्यकता के कारण यहाँ रहता है मगर अधिक द्रव्य से प्रयोजन कुछ नहीं है। और जो जीव इस धन वैभव के लिए अपना सारा उपयोग जुटाये हुए हैं वह महान अंधकार में है। ज्ञानी जीव को दूसरे का वैभव देखकर तृष्णा नहीं होती, और जितना परिग्रह का परिमाण किया है उससे अधिक संचय की भावना नहीं होती। तीन गुणाणुव्रत में प्रथम है दिग्व्रत, जन्मपर्यन्त जाने आने की एक अवधि बना लेना कि मैं इतने क्षेत्र से आगे न जाऊंगा, इसको दिग्व्रत कहते हैं। दिग्व्रत आरम्भ और परिग्रह के त्याग के भावों से होता है ताकि वह इससे बाहर पत्र व्यवहार तक भी न करे, व्यापार सम्बन्ध न बनाये, आना जाना न बनाये, थोड़े ही क्षेत्र से अपनी आजीविका सम्बन्धी कार्य करे, जिससे कि व्याकुलता न हो। देशव्रत में समय-समयपर कुछकाल की मर्यादा लेकर और क्षेत्र संकुचित कर लेना सो देशव्रत है। जैसे मैं दसलक्षण के दिनों में अपने मुहल्ले से बाहर न जाऊँगा या इन ६ घण्टों में मैं मन्दिर से बाहर न जाऊँगा आदिक कुछ कालकी मर्यादा लेकर और भी क्षेत्र संकुचित कर देना देशविरत है। इसका भी भाव यह है कि परिणाम में विकल्प न फैलें। उस विकल्प जाल से बचे रहें, इसके लिए यह मर्यादा की है। तीसरा गुणव्रत है अनर्थदण्डव्रत। बिना प्रयोजन ही जो पाप किये जाते हैं उनका यहाँ त्याग हो जाता है। जैसे पापरूपी बातों का उपदेश करना, यहाँ अमुक सस्ते मिलते हैं, वहाँ तेज बिकते हैं। जैसे यहाँ से पशु ले जाकर अमुक देश में बेचना आदिक प्रकार के जिनमें दूसरों को कष्ट हो, दूसरों को उपदेश करें, यह अनर्थ दण्ड है। हिंसा की चीजें दूसरों को दें। जैसे कोई क्रोध में भरा हुआ पुरुष है और वह लाठी मांगे, तलवार मांगे तो ज्ञानी पुरुष जानता है कि इसको अगर हिंसा का साधन देंगे तो यह हिंसा करेगा, तो हिंसा की चीज को यह श्रावक नहीं देता। दूसरों का बुरा ध्यान नहीं करता। अमुक का बुरा हुआ आदिक किसी भी प्रकार से अपध्यान नहीं करता। या बैठे ही बैठे नाना प्रकार के विषय भोगों की कल्पनाएँ करना, बिना प्रयोजन जिन कामों में पाप का प्रारम्भ होता है उनका त्याग इस अनर्थ दण्डव्रत में होता है। खोटी कथायें न सुनना, राग बढ़ाने वाली बातें सुनना, प्रमाद चर्या न करना। जैसे चलते-चलते कोई पत्ते ही तोड़ लिया, फूल ही तोड़ते जाते या पृथ्वी कूटते जाते तो ऐसे अप्रयोजनभूत बातों का त्याग करना अनर्थ दण्ड व्रत है। ४ शिक्षाव्रत। सामायिक शिक्षाव्रत। सुबह दोपहर और संध्याकाल में जैसी विधि बताया है उस प्रकार सामायिक करना, आत्मचिंतन, प्रभुगुण स्मरण अथवा प्रत्याख्यान आदिक ये सब सामायिक व्रत हैं। प्रोषधोपवास—अष्टमी चतुर्दशी को उत्तम मध्यम अथवा जघन्य अपनी शक्ति माफिक प्रोषध करना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रोषधोपवास कहलाता है। तीसरा भोगोपभोग परिणाम व्रत—भोग और उपभोग के साधनों का परिमाण करना सो भोगोपभोग परिमाण व्रत है। जैसे खाने की कुछ हरी गिनती में रखना, बाकी का त्याग करना उपभोग्य साधन, शैया, आसन, वाहन आदिक का परिमाण करना सो उपभोग परिमाण है। चौथा शिक्षाव्रत है अतिथिसम्विभाग व्रत। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र के पात्र सम्यग्दृष्टि श्रावक और साधुजनों का विधिपूर्वक आहार देकर भोजन करना अतिथिसम्विभाग व्रत है। जिसको धर्म से प्रीति हुई है उसको धर्मात्माओं में वात्सल्य अवश्य होता है। इन १२ व्रतों में प्रथम अहिंसाणुव्रत और १२ अतिथिसम्विभाग व्रत ये दो व्रत श्रावक के जीवन के मुख्य अंग होते हैं।

सामायिक, प्रोषध, सचित्तत्याग व रात्रिभुक्तिविरत देशसंयत—तीसरी प्रतिमा का नाम है सामायिक प्रतिमा। मन, वचन, काय को सरल बनाना, आत्मचिन्तन करना, प्रभुगुण का स्मरण करना, और समता को प्रकट करने वाली पर्याय माना यह सब सामायिक प्रतिमा है। चौथी प्रतिमा का नाम है प्रोषधप्रतिमा अष्टमी चतुर्दशी को प्रोषध व्रत करना प्रोषध प्रतिमा है। १२ व्रतों में जो तीन गुणव्रत शिक्षाव्रत बताये गये हैं उन ७ शीलों का विकास उस अगली प्रतिमा में है। दूसरी प्रतिमा में वही साधना होती थी जो चौथे में की जा रही है, लेकिन वहाँ अतिचार था। प्रौषधप्रतिमा में अतिचार नहीं रहता। जैसे देखभाल कर सोना, उठना, शैया का प्रमार्जन करना आदिक सावधानी चौथी प्रतिमा में रहती है। इसमें दोष नहीं लग पाता। ५वीं प्रतिमा का नाम है सचित्त त्याग प्रतिमा। जो फल हरी हैं उनका त्याग करना सचित्त त्याग है। यद्यपि यह गृहस्थ है, रसोई बनाता है, सचित्त फलों का, सब्जी आदिक का भी भोजन बनाता है, लेकिन इसके चित्त में इतनी दया है कि उसका भाव नहीं होता कि मैं सचित्त चीज को खाऊँ। पानी फल आदिक का भक्षण नहीं करना सचित्त त्याग प्रतिमा कहलाती है। छठी प्रतिमा का नाम है रात्रि भोजन त्याग प्रतिमा। यद्यपि रात्रि भोजन त्याग पहली ही प्रतिमा में हो गया, क्योंकि रात्रिभोजन हिंसा से सम्बन्ध रखता है तो बाह्य में तो जीवों की हिंसा का साधन है और अन्तरंग में भावों की हिंसा का साधन है। रात्रि भोजन करने ने तीव्र राग और गृद्धता होती है। जहाँ जीवों का संचार होता ऐसी निशा में भोजन गृद्धता बिना नहीं किया जा सकता। तो रात्रिभोजन में द्रव्य हिंसा भी है, भावहिंसा भी है। इसका त्याग पहली प्रतिमा में हो गया था, किंतु यह गृहस्थ अभी तक दूसरों को रात में खिला देता था अथवा रात्रि में खिलाने की आज्ञा कर देता था। लेकिन यहाँ छठी प्रतिमा में कृतकारित अनुमोदना, मन, वचन, काय ऐसी नवकोटियों से रात्रिभोजन त्याग हो जाता है।

सप्तम, अष्टम, नवम, दशम व ग्यारहवीं प्रतिमा का धारक देशसंयत—७वीं प्रतिमा का नाम है ब्रह्मचर्य प्रतिमा। छठी प्रतिमा तक यह श्रावक पत्नी सहित था और पत्नी से ब्रह्मचर्य का त्याग बिना जीवन चलाता था। लेकिन अब खुद की पत्नी से भी ब्रह्मचर्य का नियम हो जाता है। आठवीं प्रतिमा का नाम है आरम्भ त्याग प्रतिमा। इस प्रतिमा में यह व्यापार नहीं करता, नई कमाई नहीं करता, किंतु जो पहले उपार्जित किया हो उस धन का ही उपयोग करता है और जब कभी मानो उपार्जित किया हुआ धन न रहे तो वह आगे की प्रतिमा में बढ़ता है, पर आरम्भ को आवश्यक नहीं समझता। नवीं प्रतिमा का नाम परिग्रहत्याग प्रतिमा है। कुछ वस्त्र, कुछ पात्र के सिवाय शेष सब परिग्रहों का त्याग उस प्रतिमा में हो जाता है। धन, पैसा, सोना, चाँदी अथवा घर, मकान, खेत, इन सब परिग्रहों का त्याग हो जाता है। १०वीं प्रतिमा में अनुमति का भी त्याग होता है। यह श्रावक १०वीं प्रतिमा तक घर में भी रह सकता और घर छोड़कर रहना तो ठीक ही है, पर घर में रहते हुए घर

http://sahjanandvarnishastra.org/

पर अपना अधिकार नहीं समझता है, क्योंकि गृह का त्याग ६वीं प्रतिमा में कर दिया गया। फिर भी पुत्रादिक के अनुरोध से उनके निवेदन पर कुछ दिन घर में रहे लेकिन गृहकाज में किसी को अनुमति न देवे, चाहे वे विवाह आदिक कार्य हों या दुकान सम्बन्धी कार्य हों, किसी भी प्रकार के आरम्भ और उद्यम के कार्यों में अनुमति न देना सो अनुमति त्याग प्रतिमा है। ११वीं प्रतिमा का नाम है उद्दिष्ट आहार त्याग। केवल उस साधु के ही लिये कोई भोजन बनाये तो ऐसे उद्दिष्ट आहार का त्याग इस प्रतिमा में होता है। उद्दिष्ट त्यागी मनसे, वचनसे, कायसे, कृतकारित अनुमोदना से आहार का सम्बन्ध नहीं रखता। श्रावक भोजन निर्माण करता और श्रावक का यह कर्तव्य है कि अतिथिसम्विभाग करे, तो यह ११वीं प्रतिमा वाला चर्या करता है और यथावत् शुद्ध भोजन करके अपना समय धर्मध्यान में व्यतीत करता है।

देशचारित्रकी उत्पत्ति के साधनभूत अकरण परिणाम—देशचारित्र जिस जीव के उत्पन्न होता है उसके दो करण परिणाम होते हैं—(१) अधःकरण और (२) अपूर्वकरण। जो परिणाम विषम होना है अर्थात् नाना जीवों की अपेक्षा जिसमें समता नहीं है, विभिन्न स्थान बनता है उन विकासों की उत्पत्ति करने के लिये अनिवृत्तिकरण नहीं हो पाता। जिस कार्य के लिये तीन करण होते हैं वे कार्य जब सम्पन्न हो जाते हैं तो सबकी एक सी स्थिति होती है। जैसे प्रथमोपशम सम्यक्त्व उत्पन्न हुआ तो सभी जीवों का प्रथमोपशम सम्यक्त्व समान है। क्षायिक सम्यक्त्व हो अनन्तानुबन्ध की विसयोजना हो, चारित्र मोह का उपशम हो, चारित्रमोहका क्षय हो आदिक जो जो कार्य तीन करण परिणाम पूर्वक होते हैं वे सब अनिवृत्ति होते हैं अर्थात् समान होते हैं, और जैसे संयम, सकल संयम ये परिणाम समान नहीं पाये जाते। सकल चारित्र वाले जीव विभिन्न प्रकार के परिणाम वाले होते हैं। देशसंयम में भी ११ प्रतिमा के भेद हैं और प्रत्येक प्रतिमा में परिणामों के भेद से अनेक भेद हैं तो ऐसी विषम स्थिति वाली परिणति अधःकरण और अपूर्वकरण इन दो परिणामपूर्वक होने से होती है। अनिवृत्तिकरण परिणाम देशसंयम को उत्पन्न करने में नहीं होता। हाँ कोई जीव उपशम सम्यक्त्व के साथ देशसंयम उत्पन्न करता है तो तीनों करण होने आवश्यक हो जाते हैं, किंतु वेदक सम्यक्त्व के साथ इस गुणस्थान को उत्पन्न करने के लिये दो ही करण आवश्यक होते हैं। जहाँ इस करण परिणामों का काल समाप्त होता है वहाँ यह जीव संयमासंयमी हो जाता है।

मनुष्योंमें ही संयमासंयम के सर्वजघन्यस्थान व सर्वोत्कृष्ट स्थान की संभवता—संयमासंयम लब्धि के स्थान अनगिनते हैं। अर्थात् जैसे यह विदित होता है कि इसमें संयमासंयम थोड़ा है, इससे अधिक है, ऐसे संयमासंयम लब्धि के स्थान अनगिनते हैं, जिन्हें ११ प्रतिमाओं में बांधा गया है। तो प्रतिमा में उसके भेद प्रभेद अनगिनते हैं। तो उन संयमासंयम लब्धि के स्थानों में से सर्वजघन्यलब्धि स्थान किसी के भी नहीं होता। जैसे बुखार का थर्मामीटर से माप होता है, तो ९६ अंश से शुरू होता है। ९६ अंश से कम किसी किसी मनुष्य के बुखार नहीं होता, लेकिन अंश तो एक-दो, दस अधिक सब हैं ही। तो जैसे बुखार के १-२ आदि अंश ९० आदि अंश किसी जीव के नहीं मिलते, मगर ये अंश न हों बुखार के तो ९६-९७ डिग्री का नम्बर कैसे आये? तो इसी तरह संयमासंयमलब्धि के स्थान अनेक हैं। उनमें से जघन्य स्थान किसी के भी नहीं होता और उससे असंख्यातगुणी विशुद्धि जघन्य संयमासंयम स्थान में है वह होता है उस मनुष्य के जो मनुष्य संयमासंयम से गिरकर मिथ्यात्व में जाने वाला हो और उसके संयमासंयम का अन्तिम जो समय है उस समय में अत्यन्त संक्लेश परिणाम करने वाला जीव

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इस जघन्य लब्धिस्थान का स्वामी है, याने संयमासंयम में सबसे जघन्य स्थान किसके होता है ? तो कहना चाहिये कि मनुष्य के होगा, और उस मनुष्य के होगा जो ५वें गुणस्थान से गिरकर सीधा मिथ्यात्व में जाने वाला हो, अत्यन्त संक्लेश परिणाम करने वाला हो, ऐसा गिरते के पंचम गुणस्थान के अन्तिम समय में यह जघन्य संयमासंयम होता है। यदि अत्यन्त संक्लेश नहीं है तो गिरने के अन्तिम समय में भी यह जघन्य लब्धि स्थान नहीं है और तिर्यञ्च संयमासंयम से गिर रहा हो, मिथ्यात्व में जा रहा हो उसके संयमासंयम के अन्तिम समय में यह जघन्य संयमासंयम लब्धि स्थान नहीं होता। मोटे रूप में ऐसा चिन्तन करना चाहिये कि कम से कम संयमासंयम मनुष्य के ही हो सकता है और अधिक से अधिक संयमासंयम मनुष्य के ही हो सकता है, तिर्यञ्चों के न तो जघन्य संयमासंयम स्थान है और न उत्कृष्ट संयमासंयम स्थान है। तो सर्व जघन्य संयमासंयम लब्धिस्थान पंचम गुणस्थान से मिथ्यात्व में गिरने के अभिमुख अत्यन्त संक्लेश परिणाम वाले मनुष्य के है। यह भी जघन्यस्थातअनन्त गुणा विशुद्ध है उस सर्वजघन्य स्थान से जिसका कोई स्वामी ही नहीं होता। इस मनुष्य के जघन्य लब्धिस्थान से अनन्त गुणा विशुद्ध संयमासंयम स्थान उस तिर्यञ्च के होगा जो संयमासंयमी है और मिथ्यात्व में गिरने वाला है, अत्यन्त संक्लेश परिणाम से गिर रहा है। उसके संयमासंयम के अन्तिम समय में यह स्थान होता है। इस विवरण से यह पता चलेगा किस जीव के किस कारण से कितना विशुद्ध परिणाम हुआ।

मनुष्य व तिर्यञ्चों के जघन्यसंयमासंयम स्थानों से अनन्तगुणे विशुद्ध संयमासंयमस्थानों का संक्षिप्त अवलोकन—तिर्यंच के जघन्य संयमासंयम स्थान से अनन्त गुणा संयमासंयम स्थान उस तिर्यंच के होगा जो पंचम गुणस्थान से गिरकर चौथे गुणस्थान में जायेगा उससे अनन्त गुणा विशुद्ध संयमासंयम लब्धिस्थान उस मनुष्य के होगा जो पञ्चम गुणस्थान से गिरकर चौथे गुणस्थान में जायगा। चूँकि वे पहले तो मिथ्यात्व में जा रहे थे। तो बहुत नीचे गुणस्थान में जो जा रहा हो उसके पहले संयमासंयमी के भी संक्लेश परिणाम होते हैं। और, उसके संयमासंयम कम होता है पर जो पंचम गुणस्थान से गिरकर चौथे गुणस्थान में पहुँचेगा उसके इतना संक्लेश परिणाम नहीं सम्भव है। इस कारण इसका विशुद्धिस्थान विशेष अधिक है। इससे अनन्त गुणा विशुद्ध संयमासंयमस्थान उस मनुष्य के होता है जो पहले गुणस्थान से उठकर संयमासंयम नाम के पंचम गुणस्थान में आ रहा हो उस पंचम गुणस्थान के पहले समय में यह विशुद्ध स्थान होता है। इससे अनन्तगुणा विशुद्ध स्थान उस तिर्यंच के होगा जो मिथ्यात्व गुणस्थान से उठकर संयमासंयमा गुणसाथन में आ रहा। ऐसे संयमासंयमी के प्रथम समय में विशुद्ध परिणाम वाले तिर्यंच के यह संयमासंयम स्थान है। अब यहाँ यह अन्दाज किया जा सकता है कि नीचे गुणस्थान से उठकर ऊँचे गुणस्थान में पहुँचे तो उसका प्रथम समय में विशुद्ध परिणाम होगा अपेक्षा उसके कि जो ऊँचे गुणस्थान से गिरकर नीचे गुणस्थान में आयगा, उसके अन्तिम समय में जो परिणाम हुये। अब इससे अनन्तगुणा विशुद्ध तिर्यंच के संयमसंयम स्थान होगा जो वेदक सम्यक्त्व सहित चतुर्थ गुणस्थान को छोड़कर पंचम गुणस्थान में आ रहा हो उसके प्रथम समय में यह विशुद्ध स्थान है। उससे अनन्तगुणा विशुद्ध संयमासंयम स्थान उस मनुष्य के होगा जो चतुर्थ गुणस्थान से चढ़कर संयतासंयत हो रहा है, उसके प्रथम समय में है। उससे अनन्तगुणा संयमासंयम स्थान उस मनुष्य के होगा जो मिथ्यात्व से चढ़कर संयमासंयम में आया है उसके द्वितीय समय में। उससे अनन्त गुणा संयमासंयमस्थान उस तिर्यंच के होगा जो मिथ्यात्व से चढ़कर विशुद्ध परिणाम से संयमासंयम में आया है उसके द्वितीय समय में। उससे अनन्तगुणा संयमासंयमस्थान उस तिर्यंच में होगा जो विशुद्ध

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

परिणाम से चढ़कर संयमासंयम में आया है, उसका जो उत्कृष्ट संयमासंयम है वह है। उससे अनन्त-गुणा विशुद्ध संयमासंयम स्थान उस मनुष्य के होगा जो सर्वशुद्ध परिणाम से चढ़ा हुआ हो, ऐसा संयमा-संयम में आया, उसका यह उत्कृष्ट संयमासंयम लब्धिस्थान है। उक्त विवरण से यह आसानी से विदित हो सकता है कि संयमासंयम में सबसे अधिक गिरा हुआ स्थान मनुष्य के हो सकता, तिर्यंच के नहीं, और इसीतरह संयमासंयम में सबसे ऊँचा स्थान मनुष्य के हो सकता है तिर्यंच के नहीं। साथ ही यह भी इससे झलक मिलती है कि नीचे गुणस्थान से ऊपर गुणस्थान में पहुँचे तो ऊपर गुणस्थान के पहले समय में अधिक विशुद्ध परिणाम होगा और जो ऊँचे गुणस्थान से गिरकर नीचे आये तो उसके ऊँचे गुणस्थान के गिरते के अन्तिम समय में विशुद्ध परिणाम न होगा। जो गिरकर नीचे जाता है, तो उसे गिरने का जो अन्तिम समय है उसे प्रतिपातस्थान कहते हैं, याने गिरते हुए के अन्तिम स्थान का नाम प्रतिपातस्थान है, और जो नीचे से ऊपर चढ़ रहा है उस चढ़ते हुए का ऊँचे गुणस्थान का जो प्रथम समय है उसमें प्रतिपाद्यमान स्थान होता है, और इन दो स्थानों के अतिरिक्त जितने भी स्थान हैं उनका नाम अनुभयस्थान है। इसमें समझने की बात यह है कि प्रतिपातस्थान तो सर्वजघन्य विशुद्ध है और उससे अनन्तगुणा विशुद्ध है प्रतिपद्यमान स्थान, फिर उससे अधिक बढ़ते हुए अनेक अनुभय स्थान होते हैं।

संयमासंयमी जीवों का मार्गण—इस संयमासंयम गुणस्थान में दो गतियाँ हो सकती हैं—(१) मनुष्य और (२) तिर्यंच। इन्द्रिय जाति मार्गणा में पञ्चेन्द्रिय जाति होती है ६ कायों में से इस संयमासंयमी जीव के त्रस काय ही है। संयमासंयम गुणस्थान में चूँकि मरण नहीं है इस कारण से अपर्याप्त सम्बन्धी योग यहाँ न होंगे तब इसके चार मनोयोग, चार वचन योग और एक औदारिककाय-योग होगा। वैक्रियक काय योग इस कारण नहीं होता कि यह देव नारकी नहीं है। आहारक काय-योगद्विक इस कारण नहीं होता कि आहारक काय योगद्विक छठे गुणस्थान में ही हो सकते हैं। संयमा-संयमी जीव के पुरुष स्त्री नपुंसक ये तीन वेद सम्भव हैं। इसके अनन्तानुबन्धी और अप्रत्याख्यानावरण सम्बन्धी ८ कषायें नहीं होती। इस कारण १७ ही सम्भव हैं। ज्ञानसम्यक् तीन ही होते हैं। संयमा-संयमी जीव के संयम मार्गणा में संयमासंयम है। दर्शनमार्गणामें चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधि दर्शन ये तीन दर्शन हैं। लेश्यायें तीन शुभ ही होती हैं। ये जीव भव्य ही होते हैं। इनके सम्यक्त्व तीनों पाये जाते हैं—(१) औपशमिक सम्यक्त्व (२) क्षायोपशमिक सम्यक्त्व और (३) क्षायिक सम्यक्त्व। संयमासंयमी जीव संज्ञी ही होते है तथा आहारक ही होते हैं। ऐसी यह पर्याप्त जागृत अवस्था अर्थात् अपनी सुध रखने वाला है, किंतु प्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय होने से इसके सकल संयम प्रकट नहीं हो पाता। संयमासंयम नरकगति व देवगति में नहीं होता। मनुष्य और तिर्यंच गति में ही होता है। सो मनुष्यों में जो भोगभूमिया मनुष्य हैं और भोगभूमिया तिर्यंच हैं उनमें गुणस्थान नहीं होता।

संयमासंयमी जीवों का काल अन्तर भाव प्ररूपणा द्वारा परिचय—विदेह क्षेत्र में यह गुणस्थान सदा रहता है, किन्तु भरत क्षेत्र व ऐरावत क्षेत्र में पंचमकाल में और चतुर्थ काल में तथा लवण समुद्र, कालोदधि समुद्र और अगले का आधा स्वयं भूरमण समुद्र स्वयं भूरमण समुद्र में उत्पन्न हुये संज्ञी पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चों के भी गुणस्थान होता है। संयमासंयम तिर्यञ्चों में तो उनके जन्म लेने के बाद अर्थात् शरीर बनने के बाद तीन अन्तर्मुहूर्त के बाद भी हो सकता है, परन्तु मनुष्य के ८ वर्ष पश्चात् ही यह गुणस्थान होता है। यह संयमासंयमी जीव लोक के असंख्याते भाग में रहता है। इसका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आवास लोक के असंख्याते भाग में है। और इसका स्पर्शन ६/१४ राजू लोक में है। अर्थात् ६ राजू प्रमाण में है। संयमासंयमी जीव हमेशा कहीं न कहीं रहते हैं, इनका कभी अन्तर नहीं पड़ता, पर एक जीव की अपेक्षा अन्तर विचारा जाये तो कम से कम एक अन्तर्मुहूर्त और अधिक स अधिक कुछ कम एक कोटपूर्व तक अन्तर पड़ सकता है। जैसे किसी जीव का संयमासंयम छूटा और एक कोट पूर्व तक छूटा रहा और अन्त में संयमासंयम हुआ तो चूंकि ऐसा यदि मनुष्य है तो उसके तो ८ वर्ष कम एक कोट पूर्व अन्तर रहेगा, क्योंकि ८ वर्ष से पहले संयमासंयम हो ही न सका था। संयमासंयम होते ही अन्तर्मुहूर्त रहने पर फिर संयमासंयम न रहें वहाँ यह अन्तर देखना है। कर्मभूमिज मनुष्य तिर्यञ्च तो जीव की आयु अधिक से अधिक एक कोटपूर्व की होती है। उसके अन्तिम समय में हो जाये तो मनुष्य का ८ वर्ष कम एक कोट पूर्व तक अन्तर रहता है। यह जीव के एक भव की अपेक्षा यह बात है। वैसे अनेक भवों की अपेक्षा देखें तो संयमासंयम छूटने पर मिथ्यात्व हो जाये और कुछ कम अर्द्ध पुद्गल परिवर्तन तक मिथ्यात्व रहता तो उसका उत्कृष्ट अन्तर बहुत होगा। तिर्यञ्च यदि संयमासंयमी है और उसका संयमासंयम छूट गया और उसी भव में पुनः संयमासंयम हुआ तो उसका अन्तर तीन अन्तर्मुहूर्त कम एक कोटि पूर्व तक का हो सकता है, इसका काल यदि तिर्यञ्च है तो तीन अन्तर्मुहूर्त कम एक कोटि पूर्व तक संयमासंयम रह सकता है, क्योंकि किसी भी तिर्यञ्च का जन्म लेने के बाद तीन अन्तर्मुहूर्त तक संयमासंयम नहीं होता। मनुष्य संयमासंयमी बना रहे निरन्तर तो वह काल ८ वर्ष कम एक कोटि पूर्व तक रह सकता है। कोई एक जीव संयमासंयम गुणस्थान से छूटकर अन्य गुणस्थान में रहे और फिर जल्दी संयमासंयम में आये तो ऐसा अन्तर केवल एक अन्तर्मुहूर्त होता है, पर अधिक से अधिक अन्तर ११ अन्तमुहूर्त कम अर्द्ध पुद्गल परिवर्तन काल होता है। संयमासंयम हुआ, छूट गया, मिथ्यात्व आया और अर्द्ध पुद्गल परिवर्तन तक भ्रमण किया, जिसमें कि ११ अन्तर्मुहूर्त कम करना है, क्योंकि आखिरी ११ अन्तर्मुहूर्त में संयमासंयम पाकर यह निर्वाण पायेगा। तो वह ११ अन्तर्मुहूर्त कम हो जाता है। संयमासंयम गुणस्थान में क्षायोपशमिक भाव है। यहाँ अप्रत्याख्यानावरण कषाय का उदयाभावी क्षय अथवा सदवस्था रूप उपशम तथा प्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय है इस प्रकार क्षायोपशमिक भाव होता है। क्षायोपशमिक भाव की यही पद्धति है, क्योंकि संयमासंयम के लिए प्रत्याख्यानावरण कषाय घातक नहीं है, इस कारण इस प्रसंग में उसका देशघाती स्पर्धकों की तरह व्यवहार रहता है। और अप्रत्याख्यानावरण संयमासंयम का घातक है सो उसका उदयाभावी क्षय और सद् अवस्था रूप उपशम होता है।

संयमासंयमी जीवों की संख्या विषयक संक्षिप्त निर्देश—संयमासंयमी जीव मनुष्य की अपेक्षा तिर्यंचों में अधिक पाये जाते हैं, क्योंकि मनुष्य तो केवल ढाई द्वीप में ही रहते हैं और संयमासंयम के पात्र तिर्यंच ढाई द्वीप में भी हैं और अन्तिम द्वीप के आधे उत्तर भाग में हैं और स्वयं भूरमण समुद्र में है। स्वयं भूरमण समुद्र का इतना विस्तार है कि जितने कि सारे द्वीप समुद्र का मिलकर भी नहीं है। तो संयमासंयम के पात्र तिर्यंच अधिक हैं, क्योंकि उनकी संख्या ज्यादह है, तिर्यंचों में संयमासंयम अधिक से अधिक व्रत प्रतिमा तक ही हो सकता है, क्योंकि उनमें जो संयमासंयम है वह प्राकृतिक विधि से है। क्रिया करना, अन्य विशेष प्रवृत्तियाँ बनाना यह उनमें सम्भव नहीं है, उन तिर्यंचों के परिणाम ही प्रकृत्या ज्ञान और वैराग्य के होते हैं। जैसे पुराणों में आया है कि रावण के हाथी त्रिलोक मण्डन ने अपनी आयु के अन्तिम दो तीन दिन से आहार पानी का परित्याग कर दिया

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

था और निरन्तर वह तत्त्व चिन्तन में रहता था। यद्यपि वह शब्द परिभाषा नहीं जानता, किन्तु है तो ज्ञानमय। तो उनका उपयोग ज्ञानस्वरूप में आता है ओर वह इससे शान्त होता है। महावीर स्वामी के पूर्व भव में जबकि एक सिंह के भव में थे, मुनि महाराज ने जब उपदेश फिया और उसे प्रतिबोध हुआ तो उसने मांस आदिक अभक्ष्य का परित्याग कर दिया था। ऐसे अनेक तिर्यंचों में और सम्मूर्छन तिर्यंचों में भी जैसे मच्छ आदिक हैं उनमें संयमासंयम का परिणाम हो जाता है। संयमासंयम की वृत्ति चतुर्थ गुणस्थान से ऊपर विशुद्ध वाली वृत्ति है, अथवा एक ओर से यों समझिये कि चतुर्थ गुण-स्थान में तो मार्गदर्शन होता था, मार्ग पर चल नहीं सक रहा था, किन्तु इस संयमासंयमी जीव ने उस मोक्ष मार्ग पर अपनी धीमी चाल से प्रगति बनाया है। तो जिसे कहेंगे मोक्ष मार्ग पर चलना, तो ऐसी प्रायोगिक विधि इस पंचम गुणस्थान में प्रारम्भ हो जाती है।

मोक्षमार्ग दर्शन—मार्गदर्शन में सब कुछ एक साथ दृष्टि में आ जाता है। कहाँ तक जाना और किस उत्सर्ग मार्ग से चलकर जाना और उत्सर्ग मार्ग को पाने के लिये हमें छोटे मार्ग को भी अप-नाना, एक साथ ही सब कुछ दृष्टि में आ जाता है। पर उसका चलना अपने समय पर होता है। जैसे कि कोई पुरुष संध्याके समय अपने गाँवको जाते हुये कहीं जंगलमें भटक गया रात्रि अंधेरी थी। उसे यह विवेक जगा कि अब हमको यों चलने की प्रवृत्ति न करना चाहिये, पता नहीं वह भटकना कितना बढ़ जायेगा। तो वह वहीं रुक गया। अचानक कहीं अन्धेरी रात में बिजली चमकी और एक क्षण भर के लिये उजेला हुआ, उस उजेला में ही उसने सर्वदर्शन कर लिया। वह गांव है, यह गाँव को जाने वाली सड़क है और उस सड़क से मिलने वाली ये पगडंडियाँ हैं, सब कुछ मार्गदर्शन हो गया, बाद में उजेला समाप्त। तो अब जो मार्ग दर्शन हो गया था वह तो ज्ञान में बना हुआ है। जब प्रभात काल होता है, कुछ उजेला हुआ, अपनी पगडण्डियों से चलकर वह सड़क पर पहुँच जाता और बड़े आराम से सड़क पर गमन करके अपने लक्ष्य पर पहुँच जाता है। तो ऐसे ही अविरत सम्यक्त्व में मार्ग दर्शन हो गया। मोक्ष कहाँ है, शान्ति का धाम क्या है, उस धाम पर पहुँचने की विधि क्या है ? सब कुछ ज्ञान हो जाने पर भी अभी कषायों का अन्धकार इतना है कि उस मार्ग पर चल नहीं पा रहा। और सर्व कुछ उसका उसके निर्णय में पड़ा हुआ है। और इसी निर्णय के बल पर वह अन्तरंग में आकुलित नहीं रहता।

मोक्षमार्ग का प्रारम्भिक पथिक—मोक्षमार्ग द्रष्टा के समय आता है, अप्रत्याख्यानावरण कषाय का क्षयोपशम होता है, अपना निज में पौरुष बढ़ाता है और अपने पौरुष के उपाय से वह देश व्रत का पालन करता है। संयमासंयमी पुरुष के ऐलक तक व्रत होता है ११वीं प्रतिमा तक और स्त्रीजनों के भी ११वीं प्रतिमा तक संयमासंयम चलता है। पुरुष तो आगे संयम के भी पात्र होते हैं, पर द्रव्य स्त्री आगे संयम की पात्र नहीं कही गई है। ऐसे नाना प्रकार के संयमासंयमी जीव अपनी अपनी योग्यता-नुसार संयमासंयम का पालन करते हैं। उनमें विशेष विभिन्नता इस कारण से होती है कि इस संयमा-संयम में कोई तो चतुर्थ गुणस्थान से आया हुआ संयमासंयमी है, कुछ मिथ्यात्व से सम्यक्त्व और संयमासंयम एक साथ उत्पन्न करके संयमासंयमी हुये हैं। कुछ सम्यक्त्वी अथवा संयमासंयमी थे और वहाँ से चिगकर तीसरे गुणस्थान में आए, फिर वहाँ से संयमासंयमी हुये, इस प्रकार पूर्व अवस्था और धारा के अनुसार संयमासंयम में भी विभिन्नता हो जाती है। संयमासंयम को उत्पन्न करने में अधःकरण और अपूर्वकरण ये दो ही करण समर्थ हैं और यही वजह है कि संयमासंयमी में विभिन्नता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बहुत है। अनिवृत्तिकरण परिणाम होने पर जिस तत्त्व की सिद्धि होती है वह तत्त्व अनिवृत्ति अर्थात् समान होता है। कोई संयमासंयमी जीव संयमासंयम से चिगकर अन्तर्मुहूर्त को ही दूसरे गुणस्थान में पहुँचे और अन्तर्मुहूर्त रहकर ही संयमासंयम को पाये और उसका सत्त्व तदवस्थ रहे तो उसका पुनः अधःकरण और अपूर्वकरण होने की आवश्यकता नहीं है।

सत्प्ररूपणा द्वारा प्रमत्तविरत गुणस्थान का निर्देश—अब सत् प्ररूपणा में प्रमत्त विरत गुणस्थान की चर्चा की जायेगी। जहाँ सम्यक्त्व भी प्रकट है और सकल महाव्रत हुआ हो, साथ ही प्रमाद भी बर्तता हो उसे प्रमत्तविरत गुणस्थान कहते हैं। यहाँ प्रमाद से मतलब आलस्य का नहीं, किन्तु मोक्षमार्ग का आलस्य। परिणाम विशुद्धि न बढ़े और कुछ परिणाम कथा वगैरह में लगें उसे कहते हैं प्रमाद। आहार करना, विहार करना, दीक्षा, शिक्षा देना, प्रायश्चित देना, इन सब विकल्पों का नाम प्रमाद है। तो सकल व्रत धारण कर लेने पर भी जब जब प्रमाद होता है तब तब प्रमत्त विरत गुणस्थान कहलाता है। यह प्रमत्तविरत गुणस्थान अन्तर्मुहूर्त से ज्यादह नहीं रहता, किन्तु प्रमत्त विरत से अप्रमत विरत, अप्रमत्त से प्रमत्त विरत इस तरह ये दोनों गुणस्थान अदल बदल करके हो रहे तो ऐसी धारा कुछ कम कोटि पूर्व तक चल सकती है। कोई शंका रख सकता है कि जब छठे गुणस्थान में जीव प्रमत्त है तो फिर उन्हें संयत न कहना चाहिए। जो प्रमत हो वह संयत कैसे हो सकता, क्योंकि इसका परस्पर में विरोध है, प्रमादका, परिहार हो तब ही संयम भाव हो सकता है, किन्तु ऐसी शंका करना यहाँ यों उचित नहीं है कि यहाँ प्रमाद का अर्थ अविरति भाव नहीं, किन्तु किन्तु मोक्षमार्ग की प्रगति में शिथिलता है। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह, इन ५ प्रकार के पापों से विरक्त होने का नाम संयम है। जो संयम, जो पाप विरति तीन गुप्ति और ५ समिति से सुरक्षित रहता है, ऐसा वह संयम जिस प्रमाद से नष्ट नहीं हो सकता उस प्रमाद की बात चल रही है। प्रमाद से संयम में मल तो हो सकता, कोई दोष तो आ सकता है, पर संयम का घात इस प्रमाद से नहीं होता। तब प्रमाद दो प्रकार के हो गये (१) संयम का नाश करने वाला और (२) संयम में दोष लगाने वाला। तो यह संयम में दोष लगाने वाला ही प्रमाद विवक्षित है। यह कैसे समझें? इस गुणस्थान के नाम से ही समझ लें, प्रमत्त संयत याने जो संयत होकर की प्रमत्त हैं सो संयम के साथ जिस प्रमाद का विरोध न हो अर्थात् जो संयम का घात न कर सके वही प्रमाद विवक्षित है। छठे गुणस्थान का समय स्वल्प काल है, छोटा अन्तर्मुहूर्त है, उसमें जो संयम होता है उस संयम का यह मंदतम प्रमाद नाश करने में समर्थ नहीं है, क्योंकि सकल संयम का घात करने वाला तो प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ है। उसका यहाँ क्षयोपशम है, इस कारण सम्यक्त्व का घात तो सम्भव है ही नहीं, किन्तु कथा, अनुराग, स्नेह जो उस पद में हो सकता है, उनके कारण संयम में दोष होता है। इस गुणस्थान का नाम है प्रमत्त विरत। प्रमत्त शब्द यह अन्त दीपक है अर्थात् इस गुणस्थान से पहले के गुणस्थान भी प्रमत्त है, वे संयम बिना प्रमत्त है, और छठे गुणस्थान में जो प्रमत्त है वह संयम के साथ प्रमत्त है।

प्रमत्त विरत में सम्भव होने वाले प्रमाद इस गुणस्थान में जो प्रमाद होते हैं वे १५ प्रकार के कहे गए हैं। चार विकथा, चार कषाय, ५ इन्द्रिय के विषय, एक निद्रा एक स्नेह और इनका संयोगी भेद देखें जायें तो वे ८० हो जाते हैं। एक कथा के साथ भिन्न-भिन्न कषाय लगाकर बोलें, तो इस तरह की रचना से प्रमाद के ८० भेद हो जाते हैं। जिनको यों भी देख सकते हैं संक्षेप में कि इस प्रमाद की मूल संख्या लिखकर उनके परस्पर में गुण कर दिये जायें, जैसे ४ विकथा, ४ कषायें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

परस्पर गुण करने से १६ हो गए, और इस १६ में ५ इन्द्रिय विषय का गुण किया तो ८० हो गए। चूंकि निद्रा एक है, स्नेह एक है, इस कारण इनके गुणा से वृद्धि नहीं होती, इतनी ही संख्या रहती है। इन ८० भेदों में उदाहरण के रूप में एक दो भेद देखिये जैसे कहा कि स्त्री कथा लायी कोधी स्पर्शन इन्द्रिय, वशंगत, निद्रालु, स्नेहवान् यह एक प्रकार का प्रमाद है, जिस प्रमाद में इस तरह का भाव है कि कोई साधु स्त्री सम्बन्धी कथा कह रहा है, और क्रोध भाव के उदय में है स्पर्शन इन्द्रिय के वश में है ऐसा साधु इस प्रथम प्रकार के प्रमाद में है। अब कथा बदल दें, भोजन कथा कहे, बाकी भेद वही रखे तो इसका भाव यह हुआ कि जो साधु भोजन कथा में लगा है, क्रोध करता है, स्पर्शन इन्द्रिय के वश है, निदा, स्नेहवान है वह दूसरे प्रकार के प्रमाद में है। विकलायें चार होती हैं स्त्री कथा, राज-कथा, भोजन कथा, और देश कथा। कषायें चार हैं क्रोध, मान, माया, लोभ। इन्द्रिय विषय ५ हैं, स्पर्शन इन्द्रिय का विषय स्पर्श, रसना इन्द्रिय का विषय रस, घ्राणेन्द्रिय का विषय गंध, चक्षु इन्द्रिय का विषय रूप और कर्णेन्द्रियका विषय शब्द।

प्रमत्तविरत की क्षायोपशमिकता और संयम भाव का स्पष्टीकरण यह गुणस्थान प्रत्याख्यानावरण नाम के चारित्र मोह के क्षयोपशम से होता है, और, क्षयोपशम इस प्रकार है कि प्रत्याख्यानावरण का तो उदयाभावी क्षय है और इसी का सदवस्थारूप उपशम तथा संज्वलन कषाय का उदय, इस स्थिति को कहते हैं प्रत्याख्यानावरण कर्म का क्षयोपशम। इस गुणस्थान में तीन प्रकार के संयम होते हैं –(१) सामायिक, (२) छेदोपस्थापना, (३) परिहार विशुद्धि। सामायिक और छेदोपस्थापना तो प्रत्येक के होते हैं, किन्तु जिस साधु के परिहार विशुद्धि नाम की ऋद्धि प्रकट हुई है उसके ही परिहार विशुद्धि संयम होता है। सामायिक संयम का अर्थ है रागद्वेष न होकर समता परिणाम होना। और, छेदोपस्थापना का अर्थ है कि कदाचित् रागद्वेष हो तो उस राग का परिहार करके समता भाव में फिर आना। सामायिक संयम और छेदोपस्थापना संयम का मौलिक अर्थ है यह। इसी अर्थ के अनुसार अनेक दृष्टियों से इस संयमी को परख सकते हैं। जैसे हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह इन समस्त पापों का अभेद रूप से परिहार हो उसे सामायिक संयम कहते हैं। जब सामायिक संयम का यह अर्थ है तब छेदोपस्थापना संयम का यह अर्थ होगा कि हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह इन ५ पापों का विश्लेषण सहित परिहार करना, छेदोपस्थापना संयम है। सामायिक संयम का यह भी अर्थ है कि विकल्प न करना और एक संयत भाव में रहना। तब छेदोपस्थापना संयम का अर्थ यह है कि उस विरक्ति में कोई छेद हो, भंग हो, धारण किये हुये व्रतों में कोई भंग हो जाये तो उस दोष को टालकर फिर अपने को अभेद संयम में लगाना छेदोपस्थापना संयम है। पर सभी प्रकार के इन लक्षणों में मौलिक लक्षण वही एक है। रागद्वेष का परिहार होना सामायिक संयम है, और कदाचित् रागद्वेष हों तो उनका परित्याग करना, पुनः समता में आना छेदोपस्थापना संयम है। इस प्रमत्त विरत गुणस्थान में संज्वलन कषाय का उदय है और प्रत्याख्यानावरण का उदयाभाव है। तो कोई यह सन्देह न करें कि संज्वलन कषाय का उदय है और तब हो यह संयम तो इस कारण इसको औदयिक भाव कहना चाहिये। क्षायोपशमिक भाव न कहना चाहिये। तो ऐसी शंकायें नहीं की जा सकतीं क्योंकि संज्वलन कषाय का उदय तो है, पर उस उदय के कारण संयम की उत्पत्ति नहीं है। संयम की उत्पत्ति तो प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदयाभावी क्षय और सदवस्थारूप उपशम से हुई है और संज्वलन कषाय के उदय से उनके संयम में मल उत्पन्न हुआ है। संयम का अर्थ है सम्यक्त्व सहित यावत् जीव यम अर्थात्

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

समस्त पापों का त्याग होना, इसके मायने यह नहीं है कि किसी का संयम सम्यक्त्व बिना भी हो जाता होगा, क्योंकि संयम की उत्पत्ति सम्यक्त्व के साथ होती है अर्थात् सम्यक्त्व के बिना संयम नहीं कहलाता। यदि कोई इस प्रकार के भेद करे और सम्यक्त्व न हो तो वह शुभ भाव अथवा पुण्य भाव में शामिल होगा। यह क्षायोपशमिक चारित्र का विवरण चल रहा है। चारित्र तो तीन प्रकार के होते हैं (१) क्षायोपशमिक, (२) औपशमिक और, (३) क्षायिक। क्षायोपशमिक चारित्र तो छठे, ७वें गुणस्थान में होता है। औपशमिक चारित्र का प्रारम्भ उपशम श्रेणी के ८वें गुणस्थान से अथवा उसके लिए उद्यम अधः प्रवृत्तिकरण वाले उपशामक सातिशय अप्रमत्त विरत शुरू होता है और ११वें गुणस्थान तक रहता है। क्षायिक चारित्र क्षय के लिए उद्यमी अधः प्रवृत्तिकरण परिणाम वाले सातिशय अप्रमत्त विरत से प्रारम्भ होता है और ८वें, ९वें, १०वें व १२वें, १३वें, १४वें गुणस्थान में है और सिद्धों में भी होता है पर सिद्धों में चारित्र का अन्तर्भाव सम्यक्त्व में ही कर लिया है, क्योंकि वहाँ कुछ भी प्रवृत्ति योग, सद्भाव योग, क्षय आदिक बातें नहीं पायी जाती हैं। सिद्ध अवस्था तो एक शुद्ध अवस्था है। सकल संयमी को प्राप्त करने वाले जीव नाना प्रकार के होते हैं, उनके अनुसार उनमें विशुद्धि के स्थान तारतम्य होता है।

संयमासंयम की उत्पत्ति के लिये आवश्यक करण परिणामों का दिग्दर्शन—कोई जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व और सकल संयम को एक साथ उत्पन्न करता है ऐसा जीव तीनों करणों को करके संयम को प्राप्त होता है। वहाँ संयम उत्पन्न करने के लिये पृथक् से करण की आवश्यकता नहीं रहती, उस एक ही बार के तीन करणों से प्रथमोपशम सम्यक्त्व और संयम उत्पन्न हो जाता है। यदि कोई जीव पहले से सम्यग्दृष्टि है और वह संयम को प्राप्त करता है तो उसे दो करण ही आवश्यक होते हैं। वहाँ अनिवृत्तिकरण नहीं होता और यदि २८ प्रकृति की सत्ता वाले मिथ्यादृष्टि जीव संयम को प्राप्त होते हैं याने वेदक सम्यक्त्व सहित सकल संयम को प्राप्त करते हैं। तो भी उसके दो करण होते हैं कोई पंचम गुणस्थानवर्ती जीव सकल संयम को उत्पन्न करता है तो उसके भी दो करण ही होते हैं। जब जीव सकल संयम में आने को होता है उससे कुछ पहले से ही विशुद्धि अनन्तगुणा बढ़ती हुई ही रहती है, इसे एकान्तानुवृद्धि कहते हैं। एकान्तानुवृद्धि से सकल संयम उत्पन्न हो जाये उसके बाद परिणाम बढ़ता हुआ भी हो सकता है, घटता हुआ भी हो सकता है और ज्यों का त्यों भी हो सकता है। कोई जीव सकल संयम से गिरकर असंयम में आकर अन्तर्मुहूर्त में ही स्थित सत्त्व के साथ रहे और पुनः संयम को प्राप्त हो तो संयम को प्राप्त करने के लिए अपूर्वकरण परिणाम की आवश्यकता नहीं होती और इसी कारण वहाँ स्थिति घात और अनुभाग घात भी नहीं होते। होने की आवश्यकता भी नहीं, क्योंकि अवस्थित सत्त्व ही तो था। जो पहिले संयमासंयमी में था।

संयमस्थानों का व तत्सम्बन्धित ज्ञेय तत्त्वों का संक्षिप्त प्रतिपादन—संयमासंयम जीवों में परस्पर में संयम स्थान का तारतम्य विविध पाया जाता है। उन स्थानों को मूल में तीन प्रकार से समझें—(१) प्रतिपातस्थान, (२) प्रतिपद्यमान स्थान और (३) अनुभयस्थान। प्रतिपातस्थान का अर्थ है कि कोई जीव सकल संयम से गिर रहा है और नीचे ये गुणस्थान में पहुँचने को है तो सकल संयम का जो अन्तिम समय है याने प्रमत्त विरत गुणस्थान का जो अन्तिम समय है, जिसके बाद वह गिरकर नीचे के गुणस्थान में जायेगा, उस अन्तिम समय में होने वाले संयम स्थान को प्रतिपात संयम स्थान कहते हैं। चूँकि संयम से गिरकर कोई ५वें में पहुँचता है, कोई चौथे में, कोई सीधा पहले में भी पहुँच

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सकता है। तो ऐसे उन विभिन्न जीवों की दृष्टि से प्रतिपात स्थान भी अनगिनते हो जाते हैं। प्रतिपद्यमान स्थान उन्हें कहते हैं कि नीचे के गुणस्थान वाले जीव जब सकल संयम को प्राप्त करते हैं तो उसकी प्राप्ति का जो प्रथम समय है, उसमें जो संयमस्थान होता है उसे प्रतिपद्यमानसंयमस्थान कहते हैं। संयमके उत्पन्न करने वाले जीव भी नाना प्रकार के होते हैं। कोई मिथ्यात्व से सीधा सकल संयम प्रकट करता है कोई चौथे गुणस्थान से सकल संयम प्रकट करता है, कोई पञ्चम गुणस्थान से सकल संयम प्रकट करता है तो इन स्वामियों के परिणामसे, भेद से प्रतिपद्यमान स्थान भी नाना हो जाते हैं, इन दो प्रकार के संयमस्थानों को छोड़कर शेष जितने संयमस्थान हैं वे सब अनुभयस्थान कहलाते हैं। इन सब स्थानों में जो प्रतिपातस्थान होता है उनमें जघन्य प्रतिपातस्थान जो होगा वह होगा संक्लेश परिणाम से। जो सकल संयम को छोड़ता है और मिथ्यात्व में पहुँचता है उसके जघन्य प्रतिपद्यमान स्थान भी नीचे के गुणस्थान से जो सकल संयम प्राप्त करते हैं उनके होता है। और, अनुभय स्थान गिरने के अन्तिम समय और चढ़ने के आदि समय को छोड़कर शेष समयों में जो स्थान होता है वह सब अनुभय स्थान कहलाता है। इन सबमें प्रतिपातस्थान सबसे कम है। प्रतिपातस्थान से असंख्यात गुणित प्रतिपद्यमान स्थान हैं और उन सभी स्थानों से असंख्यात गुण अनुभयस्थान हैं। अब विभिन्न जीवों की अपेक्षा यह परखना है कि किसका कितना विशुद्ध और संक्लेश परिणाम है और वह किस प्रकार के संयमस्थान में है। संयम को उत्पन्न करने वाले जीवों में प्रतिपद्यमान स्थान होता है। उनमें जघन्य प्रतिपद्यमान स्थान उन संयमियों के होगा जो भरतक्षेत्र के रहने वाले म्लेच्छ मनुष्य हैं, मिथ्यात्व गुणस्थान में हैं, वहाँ से चढ़कर जो संयम को ग्रहण करते हों उनके प्रथम समय में यह जघन्य प्रतिपद्यमान संयमस्थान होता है। और, ऐसा यह म्लेच्छ मनुष्य यदि संयमासंयम गुणस्थान से चढ़कर संयम को ग्रहण करे तो उसके प्रथम समय में उत्कृष्ट प्रतिपद्यमानस्थान होता है जो पहले कहे गये जघन्य संयमस्थान से अनन्तगुणित है। इससे अनन्तगुणा संयमस्थान उन संयमियों के प्रथम समय में होता है जो भरतक्षेत्र के आर्य मनुष्य हैं और पञ्चमगुणस्थान से चढ़कर सकल संयम में आये हुए हैं। इन विधियों से यह जाना जाता है कि संयम से पहले जिनके भाव छोटे स्थान के हैं उनके चढ़ते समय में भी छोटे स्थान पाये जाते हैं। सामायिक संयम और छेदोपस्थापनासंयम के जो कुछ मध्यम स्थान हैं। परिहार विशुद्धिसंयम के स्थान उनस अनन्तगुणे विशुद्ध हैं और सर्वाधिक अनन्तगुणे तथा विशुद्ध सामायिक छेदोपस्थापना संयम के स्थान हैं। प्रमत्तविरत जीव अप्रमत्तविरत में बराबर पहुँचकर प्रमत्तविरत गुणस्थान में आता है और वहाँ मन्द प्रमाद में रहकर भी सहज शुद्ध अन्तस्तत्त्व की सुध नहीं भूलता है। कर्मों का ऐसा ही विपाकहै और ऐसा ही कुछसंस्कार है कि जिसके कारणप्रमाद तो आ जाता है किंतु अन्तस्तत्त्व की सुध नहीं भूलता और न संयम का घात होता है। यह शिक्षा प्रायश्चित्त आदिक देकर साधना का उपयोग करता है, पर ऐसा उपयोग व्यवहार करने पर भी इतना प्रबल भेद विज्ञान है और इतनी प्रबल साधना है कि वह अपनी सुध से च्युत नहीं होता। मोक्षमार्ग में गमन का सम्बन्ध करके आगे की प्रगति इस गुणस्थान से होती है।

प्रमत्तविरत जीवों का कुछ स्थानों में मार्गण–प्रमत्तविरत गुणस्थान केवल मनुष्यगति में ही होता है, क्योंकि सकलसंयम को धारण करने की योग्यता केवल मनुष्यगति में है, इसी प्रकार जीव समास भी केवल संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त होता है। यदि आहारक पुतला बन रहा हो तो उस स्थिति में वह अपर्याप्त भी रहता है। पञ्चेन्द्रिय जाति में यह केवल पञ्चेन्द्रिय ही है। काय में त्रस काय है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रमत्तविरत गुणस्थान में चार मनोयोग, चार वचनयोग, एक औदारिककाययोग — ये ९ योग होते हैं यदि आहारक पुतला—जिसके बनना हो तो उसके दो योग और हो जाते हैं—(१) आहारककाययोग (२) आहारकमिश्रकाययोग। मगर किसी भी समय एक जीव में एक योग होता है। प्रमत्तविरत गुण स्थान भावों से पुरुष स्त्री नपुंसक तीनों वेदों में होता है, किंतु यदि आहारक पुतला वाला हो या मनः पर्ययज्ञान वाला हो या परिहारविशुद्धि ऋद्धि वाला हो तो इन जीवों में केवल पुरुष वेद ही होता है। यहाँ कषायें केवल १३ ही अधिक से अधिक हो सकती हैं, ४ संज्वलन, ९ नोकषायें। ज्ञानमार्गणा में मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनः पर्यय ज्ञान ही सम्भव हैं। संयम मार्गणा में सामायिक, छेदोपस्थापना और परिहार विशुद्धि ये तीन होते हैं। प्रमत्तविरत में चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन तीन दर्शन हो सकते हैं, क्योंकि केवलदर्शन १३वें गुणस्थान ही शुरू होता है। यहाँ लेश्यायें ३ शुभ ही होंगी। यहाँ कृष्ण, नील, कापोत किसी भी प्रकार सम्भव नहीं। इनका औपशमिक सम्यक्त्व हो, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व हो, क्षायिक सम्यक्त्व हो, इनमें कुछ भी सम्भव है। प्रमत्तविरत गुणस्थानवर्ती जीव संज्ञी ही होता है और आहारक ही होता है। यद्यपि आहारक पुतला निकलने के कारण अपर्याप्त तो होता है। किंतु अनाहारक नहीं होता। अनाहारक विग्रह गति में होता है अथवा केवली समुद्घात में। यह जीव मनुष्य ही होता है, जिसकी अवगाहना कम से कम साढ़े तीन हाथ और अधिक से अधिक ५२५ धनुष की होती है। यदि आहारक शरीर को देखा जाव तो उसको अवगाहना एक हाथ ही होती है।

प्रमत्तविरत अन्तरात्माओं का संख्या क्षेत्र स्पर्शन आदि में प्ररूपण—प्रमत्तविरत गुणस्थान वाले जीव सारे विश्व में किसी भी समय अधिक से अधिक मिलेंगे तो कोटि पृथक्त्व मिलेंगे अर्थात् ५,९३,९८,२०६ (पांच करोड़, तिरानबे लाख, अट्ठानबे हजार, दो सौ छः) इससे अधिक मुनि किसी भी समय नहीं हो सकते। पांचों विदेह सभी भरत ऐरावत ढाई द्वीप के अन्दर मुनियों की संख्या अधिक से अधिक इतनी ही हो सकती है। इसका क्षेत्र ढाई द्वीप है जो कि लोक का असंख्यातवाँ भाग है, और स्पर्शन भी लोक का असंख्यातवाँ भाग है। ऐसा कभी समय न आयेगा कि जिस समय विश्व में कोई प्रमत्तविरत गुणस्थान वाला न हो। इसका अन्तर नहीं पड़ता। किसी क्षेत्र में है, किसी में नहीं है। तो चाहे कुछ क्षेत्रों में हो, पर समस्त क्षेत्रों की दृष्टि से कहीं न कहीं हमेशा ही रहेंगे। विदेह क्षेत्र में तो सदा मुनि रहा करते हैं, किंतु कोई एक जीव ज्यादह से ज्यादह छठे गुणस्थान में रहता है तो अन्तर्मुहूर्त में रहता है। यद्यपि लाखों करोड़ों तक मुनि रहता है, किंतु उनका छठा गुणस्थान बदलकर ७वाँ होगा, ७वें से छठा होगा, इस तरह अन्तर्मुहूर्त में यह छठा सातवाँ गुणस्थान होता रहता है। तो लगातार छठवाँ गुणस्थान अन्तर्मुहूर्त तक ही रहा। इसका अन्तर कभी हो ही नहीं सकता, क्योंकि ये मुनि महाराज सदा काल रहते हैं। एक जीव प्रमत्तविरत गुणस्थान में आया और उसका प्रमत्तविरत गुणस्थान छूट जाय और फिर से छठा गुणस्थान हो तो कम से कम अन्तर अन्तर्मुहूर्त काल तो है ही। लेकिन अधिक से अधिक अन्तर पड़े तो कुछ अन्तर्मुहूर्त कम अर्द्धपुद्गल परिवर्तन काल तक का ही अन्तर हो सकता है। एक जीव प्रारम्भ में ही सम्यग्दृष्टि होकर प्रमत्तविरत गुणस्थान में आया ७वां गुणस्थान पाकर छठे में आया और उसके बाद यह गुणस्थान छूट जाय और मिथ्यात्व गुणस्थान आ जाय और वह संसार में रुलता रहे, अधिकसे अधिक रुले तो अर्द्ध पुद्गल परिवर्तन काल में कुछ ही अन्तर्मुहूर्त कम रहेंगे। जितना कम रहता है उसका अर्थ यह है कि जब पूरा घूम चुका संसार में जन्म मरण भ्रमण कर चुका। जब आखिरी भव का आखिरी अन्तर्मुहूर्त समय रहेगा तो उस ही अन्तर्मुहूर्त में कुछ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अन्तर्मुहूर्त लघु पड़े हुए हैं तो सम्यक्त्व होगा, संयम होगा। क्षायिक सम्यक्त्व होगा, फिर गुणस्थान में चढ़ेंगे तो इन प्रवृत्तियों में उसके १०-११ अन्तर्मुहूर्त लग जाते हैं ।

प्रमत्तविरत संतों का परिचय—प्रमत्तविरत गुणस्थान वाले जीव (मुनि) ५ प्रकार के बताये गये हैं (१) पुलाक (२) बकुश (३) कुशील (४) निर्ग्रन्थ (५) स्नातक। इनमें से छठे गुणस्थान वाले अन्तरात्म केवल तीन प्रकार के ही होते हैं। पुलाक, बकुश और कुशील। निर्ग्रंथ मुनि ११ व १२वें गुणस्थान में कहलाते हैं। जहाँ अन्तरंग कषाय का परिग्रह भी न रहे, ऐसे ११वें और १२वें गुणस्थान वाले मुनि निर्ग्रंथ कहलाते हैं, और जब केवल ज्ञान हो गया तो उन्हें स्नातक मुनि कहते हैं। स्नातक का अर्थ है - नहाया धोया हो, स्वच्छ स्नान किया हो, कहते हैं ना किसी पुरुष के बारे में कि यह तो दूध का नहाया है। तो भगवान किसमें नहाये धोये हैं ? एक अपने ज्ञानप्रकाश में। भगवान नाम है ज्ञानपुंज का जहाँ राग द्वेष जरा भी न रहे, शुद्ध स्वच्छ ज्ञानप्रकाश ही है, उस ज्ञानप्रकाश में नहाये हुये हैं, स्वच्छ हुए हैं, ऐसे स्नातक भगवान कहलाते हैं। तो प्रमत्तविरत गुणस्थान वाले जीव पुलाक, वकुश, कुशील, ये तीन प्रकार के होते हैं। इस गुणस्थान में आचार्य उपाध्याय और साधु ये तीन परमेष्ठी कहलाते हैं। ५ महाव्रत, ५ समिति, ३ गुप्ति यह १३ प्रकार का चारित्र होता है। इनका जीवन दशधर्मरूप होता है। धर्म दस नहीं होते । धर्म तो एक ही प्रकार का है, पर उसके लक्षण दस हैं। धर्म के स्वरूप दस नहीं, किंतु धर्म के लक्षण दस हैं। लक्षण और स्वरूप में अन्तर है। लक्षण तो कितने ही हो सकते हैं, पर स्वरूप एक ही होगा। तो जो एक शान्त साम्यरस पूर्ण धर्म है, उस धर्म के लक्षण १० प्रकार के हैं क्षमा से धर्म पहचानें कि उस आत्मा में धर्म प्रकट हुआ है। कितने ही कषाय वातावरण मिलें फिर भी क्षमाशील रहें। जहाँ गर्व न आये, मानही रहे, मायाचार न रहे, लोभ न रहे, ऐसी स्थिति देखकर धर्म का अनुमान होता है कि इस आत्मा में धर्म प्रकट हुआ है, प्रमत्तविरत गुणस्थानवर्ती जीव क्या करता है ? वह ध्यान तपश्चरण में लीन रहता है। ज्ञान का अर्थ है ज्ञाताद्रष्टा रहना। केवल एक जानन मात्र रहना यह सबसे ऊँची चीज है। कोई इस ज्ञान में न रह सके तो ध्यान में रहता है। ध्यान कहते हैं चित्त को एक तरफ लगाये और शुद्ध तत्त्व का चिन्तन करे वह ध्यान है। जब एक शुद्ध ज्ञान की स्थिति नहीं बनती तब वह ध्यान में रहता है और यह ध्यान भी यदि न बने तो यह तपश्चरण में रत रहता है। इस प्रमत्तविरत गुणस्थानवर्ती जीव के विषयों की कोई आशा नहीं, ये आवश्यक कार्य में रहते हैं। आवश्यक का अर्थ क्या है कि अवश के द्वारा किये जाने वाले जो काम हैं उनको कहते हैं आवश्यक। अवश का अर्थ है जो दूसरों के वश न हो, विषयों के वश न हो, ऐसे पुरुष को कहते हैं अवश और अवश के द्वारा किया जाने वाला जो कार्य है उसे आवश्यक कहते हैं। यदि कोई कहे कि यह आवश्यक कार्य है तो उसका अर्थ यह ही होता है असल में कि योगी साधु संत पुरुषों के द्वारा किये जाने वाले कार्य। उन्हें तो भूल गये दुनिया के लोग, और उन्होंने जो बात जरूरी समझा उसी को ही आवश्यक कहने लगे हैं।

विविध प्रमत्तविरतों में संयम की सावधानी—ये प्रमत्तविरत २२ परीषहों को समता से जीतते हैं, पर जब जब ये प्रमादयुक्त होते हैं, चार कथाओं में से कोई कथा करने लगता है, अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ कीझलक आ जाये, कभी इन्द्रिय विषयों के प्रति कुछ थोड़ा स्वाद लेना हो, जब ऐसी स्थितियाँ आती हैं तो वह प्रमत्त कहलाता है। मुनि आहार करते हैं तो ऐसा नहीं है कि उन्हें स्वाद नहीं आता और स्वाद के साथ उन्हें साता न होती हो। यह सब होते हुये भी चूंकि उनमें आसक्ति

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नहीं है, प्रतीति और ध्यान आत्मस्वरूप की ओर ही है इसलिये वे अनासक्त कहलाते हैं तो इसी प्रकार जब ये प्रमाद सहित होते हैं तो ये प्रमत्तविरत कहलाते हैं। यद्यपि प्रमाद के ८० भेद बताये गये हैं, पर उनके यदि और विस्तार किये जाएँ तो ३७५०० भेद प्रमाद के होते हैं। जैसे कथा और बढ़ा दी जाये अर्थ कथा, बैर कथा, भाषा कथा आदिक निष्ठुर वाणी, दूसरे की चुगली, मन्दकथा, मूर्खकथा, इसी प्रकार कषायों के भेद बढ़ा दिये जायें कषायें आदि बढ़ा दिये जावें तो इस तरह उनका परस्पर गुणा करने से ३७५०० भेद हो जाते हैं। इस प्रकार प्रमत्त विरत का अर्थ है—जो प्रमादयुक्त रहकर भी संयमी है वह प्रमत्तविरत भी संयत रहता है। और, इससे नीचे के गुण स्थान वाले जीव प्रमत्त कहलाते हैं, पर संयमी नहीं और इससे ऊपर के जीव सब प्रमत्त कहलाते हैं। इस प्रकार प्रमत्तविरत सत, संख्या क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव की अपेक्षा यह परखा जाता है। इससे अल्प बहुत्व जानना हो तो क्षेत्र आदिक की अपेक्षा वहाँ तारतम्य भी जाना जा सकता है। इस तरह इन ८ प्ररूपणाओं के द्वारा प्रमत्त-विरत गुणस्थान का वर्णन हुआ।

सद्‌ प्ररूपण द्वारा अप्रमत्तविरत गुणस्थानवर्ती जीव का निर्देश अब सत् प्ररूपण द्वारा अप्रमत्तविरत अन्तरात्मा का निर्देश करते हैं। जो जीण सम्यक्त्व और महाव्रत से सहित है और जिसके संज्वलन कषाय का मन्द उदय होने के कारण प्रमाद भी नहीं रहा है उसको अप्रमत्तविरत गुणस्थान कहते हैं। सातवें गुणस्थान में अप्रमत्त विरत है और ऊपर ये जितने भी गुणस्थान हैं वे सब भी अप्रमत्त-विरत गुणस्थान हैं। लेकिन जिस श्रेणी में ७वें गुणस्थान में अप्रमत्तविरत है जीव उससे और अधिक उज्ज्वल उज्ज्वल परिणाम होने के कारण अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण आतिक गुणस्थानों में विशेषता होती जाती है। अप्रमत्तविरत दो प्रकार के होते हैं - एक स्वस्थानअप्रमत्तविरत, दूसरा सातिशयअप्र-मत्तविरत। जो सातवें गुणस्थान के बाद छठा गुणस्थान पायेगा वह स्वस्थानअप्रमत्तविरत कहलाता है। और जिस सातवें में जो अधःकरण परिणाम करे, जिसके बल से यह आगे आठवें गुणस्थान में बढ़ेगा तो ऐसे सातिशय परिणाम वाले अप्रमत्तविरत को सातिशयअप्रमत्तविरत कहते हैं। कोई भी जीव छठे गुण-स्थान को अन्य गुणस्थान से नहीं पाता, किंतु सप्तम गुणस्थान के बाद ही छठा गुणस्थान होता है। इससे यह सिद्ध है कि मिथ्यादृष्टि यदि महाव्रत उत्पन्न करे सम्यक्त्व के साथ-साथ तो वह एकदम पहले से ७वें गुणस्थान में आता है, पश्चात् छठे गुणस्थान में पहुँचता है। इसी प्रकार चौथे ५वें गुणस्थान-वर्ती जीव भी महाव्रत उत्पन्न करे तो ७वें गुणस्थान में आता है। वहाँ अन्तर्मुहूर्त रहकर छठे गुण-स्थान में पहुँचता है। सप्तम गुणस्थानवर्ती जीव के ३ ही दिशायें हैं, अर्थात् ऊपर चढ़े तो ८वें गुण-स्थान में पहुँचेगा, नीचे आये तो छठे गुणस्थान में आयेगा और कदाचित् सप्तम गुणस्थान में मरण हो जाये तो चतुर्थ गुणस्थान पायेगा। अप्रमत्तविरत साधु जब अधःकरण परिणाम करता है तो उस समय उसकी विधि यदि उपशमन की बनती है तो वह उपशम श्रेणी के ८वें गुणस्थान में पहुँचेगा, और यदि उसकी विधि क्षपण की बनती है तो वह क्षपक श्रेणी के ८वें गुणस्थान में पहुँचेगा। उपशम विधि वाले विशुद्ध परिणाम से क्षयक विधि वाले विशुद्ध परिणाम अनन्तगुणा विशुद्ध होते हैं। किंतु व्यक्तरूप में कार्य समान होने के कारण उपशम श्रेणी और क्षपक श्रेणी में समान नाम वाले गुणस्थान कहलाते हैं। सप्तम गुणस्थान में होने वाले चारित्र का नाम सकल चारित्र है, क्योंकि यहाँ सर्वप्रकार के पापों का त्याग हो गया है। इसे सर्वदेश चारित्र भी कहते हैं, किन्तु साथ में रागभाव अभी चल रहा है, इस कारण से सराग चारित्र नाम है और यह क्षयोपशम से उत्पन्न हुआ है इस कारण इसको क्षायोपशमिक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

चारित्र कहते हैं। इस गुणस्थान में प्रत्याख्यानावरण कषाय का उदयाभावी क्षय और उन्हीं का सद्‍वस्था रूप उपशम तथा संज्वलन कषाय का मन्द उदय है इस कारण यह क्षायोपशमिक चारित्र कहलाता है।

सकल संयम की उत्पत्ति के साधनभूतकरण परिणाम की चर्चा—मिथ्यादृष्टि जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व और संयम को एक साथ उत्पन्न करता है। तो उसके प्रथम गुणस्थान के बाद ही सप्तम गुणस्थान आता है। इसी प्रकार कोई सादि मिथ्यादृष्टि जीव वेदक सम्यक्त्व और संयम को एक साथ उत्पन्न करता है, तो वह भी प्रथम गुणस्थान से एकदम ७वें गुणस्थान में आता है। जिस जीव ने प्रथमोपशम सम्यक्त्व और सकल चारित्र इनको एक साथ प्रारम्भ किया है, उनके तीनों करण होते हैं। जो जीव वेदक सम्यक्त्व और सकल संयम को एक साथ उत्पन्न करता है उसके अधःकरण और अपूर्वकरण ये दो परिणाम होते हैं। अनिवृत्तिकरण परिणाम नहीं होता। कहाँ दो करण होते हैं, इसको पहचानने का बाह्य लक्षण यह है कि जिस भाव में विविध विषमतायें होती हैं वह सम्यक् भाव दो करणपूर्वक होता है और जहाँ स्थूल विषमतायें नहीं होतीं, एक से परिणाम होते हैं वहाँ तीन करण से कार्य होना समझना चाहिये। प्रथमोपशम सम्यक्त्व सभी जीवों का एक समान होता है। तो प्रथमोपशम सम्यक्त्व उत्पन्न करने के लिये ३ करण हुआ करते हैं, और चूँकि उसी के ही साथ जिसने सकल संयम उत्पन्न किया है तो उन्हीं परिणामों से सकल संयम हो जाता है। तीन करण हुये तो सही, पर सकल संयम के लिये अनिवृत्तिकरण नहीं है। और, चूँकि वेदक सम्यक्त्व में भी बहुत विषमतायें होती हैं, क्योंकि सम्यक् प्रकृति के उदय से वहाँ चल मलिन अगाढ़ दोष होता है तो वेदक सम्यक्त्व दो करण द्वारा साध्य है और चूँकि उसी के साथ सकल संयम होता है तो उस एक बार में ही अधःकरण, अपूर्वकरण परिणामों द्वारा दोनों की सिद्धि हो जाती है। जो भी जीव अप्रमत्त विरत गुणस्थान में आता है तो पहली बार अप्रमत्त विरत गुणस्थान में आकर वहीं से अपूर्वकरण गुणस्थान में नहीं पहुँचता है। प्रथमागत अप्रमत्त विरत में इतना सामर्थ्य नहीं होता कि वह वहीं से अधःकरण परिणाम करके श्रेणी के गुणस्थान में पहुँचे, किन्तु सर्वप्रथम अप्रमत्त संयत होने के पश्चात् वह प्रमत्त विरत में आएगा और इस तरह संख्यात हजार बार छठे, ७वें गुणस्थान में परिवर्तन करेगा, पश्चात् उसके अधःकरण परिणाम होता है। यह संख्यात हजारों बार परिवर्तन प्रमत्त अप्रमत्त विरत में हो जाये तो प्रत्येक परिवर्तन में भी अन्तर्मुहूर्त है और इन सब परिवर्तनों का काल भी अन्तर्मुहूर्त है।

उपशम श्रेणी में चढ़ने के लिये सातिशय अप्रमत्तविरत होने की विधि—प्रमत्तविरत गुणस्थान में तीन प्रकार के सम्यक्त्वों में से कोई भी सम्यक्त्व हो सकता है। सम्यक्त्व घातक ७ प्रकृतियों का उपशम हो तो औपशमिक सम्यक्त्व, क्षयोपशम हो तो क्षायोपशमिक सम्यक्त्व और क्षय हो तो क्षायिक सम्यक्त्व होता है, किन्तु प्रथमोपशम सम्यक्त्व के साथ अप्रमत्तविरत गुणस्थान हो तो वह भी श्रेणी पर नहीं चढ़ता। क्षायोपशमिक सम्यक्त्व के साथ सकल संयम हो तो वह भी श्रेणी में नहीं चढ़ता। तब इन दो प्रकार के सम्यग्दृष्टियों को क्या विधि करना होता है कि जिससे शीघ्र ही वे श्रेणी के गुणस्थान में चढ़ सकें। प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि मुनि प्रथमोपशम सम्यक्त्व को त्यागकर वेदक सम्यक्त्व ग्रहण करता है, अर्थात् प्रथमोपशम सम्यक्त्व में तो ७ प्रकृतियों का उपशम था। अब उनमें से सम्यक् प्रकृति का उदय आयेगा, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व बनेगा, उसके पश्चात् करण परिणामों द्वारा यदि उपशम सम्यक्त्व करेगा, तो उसका नाम है द्वितीयोपशम सम्यक्त्व। तो द्वितीयोपशम सम्य-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

क्त्व की निष्ठापना अप्रमत्त विरत गुणस्थान में होती है। विधि क्या है? चतुर्थ गुणस्थान से लेकर सप्तम गुणस्थान तक का कोई भी वेदक सम्यग्दृष्टि जीव अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, इन तीन करणों के द्वारा सर्वप्रथम अनन्तानुबंधी का विसंयोजन करता है। यहाँ अनन्तानुबंधी के विसंयोजन का अर्थ है कि अनन्तानुबंधी की सर्व प्रकृतियाँ बदल कर अप्रत्याख्यानावरणादिक हो जाती हैं अर्थात् अब वहाँ अनन्तानुबंधी कोई भी प्रकृति नहीं रहती। यहाँ क्षय और विसंयोजना में यह अन्तर है कि क्षय में तो समूल क्षय हो जाता है और विसंयोजना में वह प्रकृति बदलकर अप्रत्याख्यानावरणादिक रूप होकर उसका क्षय होता है। सो यद्यपि वर्तमान में अनन्तानुबंधी प्रकृति रही नहीं, पर चूंकि जो अप्रत्याख्यानावरणादिक रूप हुये हैं वे कभी संयोजना होकर अनन्तानुबंधी रूप हो सकते हैं। अब अनन्तानुबंधी की विसंयोजना के बाद अप्रमत्त संयत होकर फिर प्रमत्त संयत अप्रमत्त सयत में अनेक परिवर्तन करके अप्रमत्त संयत होकर तीन करणों के द्वारा दर्शनमोह का अन्तर करके उपशम कर देता है। यह उपशम अन्तरकरण करके ही होता है, अर्थात् जितने समय के लिये अन्तर किया उन समयों में यह जीव उपशम सम्यग्दृष्टि होता है, और उस समय में चूँकि उस स्थिति का कोई भी सम्यक्त्व घातक प्रकृति नहीं है, इसलिये निःशंक द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि कहलाता है। तो यों अन्तर करके उपशम किया, फिर अनेक बार छठे, ७वें गुणस्थान में परिवर्तन करके चारित्र मोहनीय का उपशम करने के लिये अधःकरण करता है। इस स्थिति में यह जीव सातिशय अप्रमत्त विरत कहलाता है। अब यह जब यह अपूर्वकरण परिणाम करेगा तब यह श्रेणी का ८वें गुणस्थानवर्ती जीव कहलायेगा।

क्षपक श्रेणी में चढ़ने के लिये सातिशय अप्रमत्तविरत होने की विधि—अब क्षपक विधि की बात देखिये जो प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि अप्रमत्त विरत है वह क्षपक श्रेणी में नहीं जा सकता। जो वेदक सम्यग्दृष्टि अप्रमत्त विरत है वह भी क्षपक श्रेणी में न ठहरेगा। क्षायिक सम्यग्दृष्टि ही क्षपक श्रेणी में चढ़ सकता। यद्यपि क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव उपशम श्रेणी में भी चढ़ता है, पर उपशम श्रेणी में ११ गुणस्थान तक पहुँचकर वह गिरता है, लेकिन सम्यक्त्व न छूट सकने के कारण किसी भी स्थिति में चौथे गुणस्थान से नीचे नहीं आ सकता। तो क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव क्षपक श्रेणी पर चढ़ सकेगा, पर अन्य सम्यग्दृष्टि जीव क्षपक श्रेणी पर किस तरह चढ़ सकेगा, उनको क्या विधि करनी होती है उस विधि पर ध्यान दीजिये। जो प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि अप्रमत्तविरत है वह प्रथमोपशम सम्यक्त्व को त्याग कर वेदक सम्यक्त्व ग्रहण करता है। तो सम्यक् प्रकृति का उदय होने पर उसके वेदक सम्यक्त्व होता है। पश्चात् अनन्तानुबंधी का विसंयोजन करता है। इसके बाद छठे, ७वें गुणस्थान में आकर छठे, ७वें में संख्यात हजार बार परिवर्तन करता है, पश्चात् क्षापक सम्यक्त्व उत्पन्न करने के लिये दर्शनमोह का क्षय करता है, और क्षायिक सम्यक्त्व उत्पन्न होने के बाद चारित्र मोह का क्षय करने के लिये अधःकरण परिणाम करता है। इस जीव को सातिशय अप्रमत्त विरत कहते हैं। यही जीव चारित्र मोह के क्षय करने के काम में बढ़ता हुआ अपूर्वकरण परिणाम जब करता है तब इस क्षपक श्रेणी का ८वाँ गुणस्थानवर्ती जीव कहा जाता है।

विविध स्थानों में अ मत्त संयत का मार्गण—अप्रमत्तविरत गुणस्थान केवल मुनि के ही होता है, क्योंकि संयम की पात्रता नारकी तिर्यञ्च और देवों में नहीं है, और मनुष्यों में भी जो पर्याप्त हैं, गुरु चरण प्रसाद सम्पन्न और ज्ञान व वैराग्य से सम्पन्न हैं उनके होता है। इन्द्रिय जाति मार्गणा में अप्रमत्त विरत पञ्चेन्द्रिय जीव के ही होता है, काय मार्गणा में त्रस जीव के ही होता है, अप्रमत्त

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विरत में आहारक पुतला नहीं निकलता, इस कारण यहाँ अपर्याप्त अवस्था नहीं होती, इस कारण यहाँ ९ योग ही सम्भव हैं। चार मनोयोग, चार वचन योग, एक औदारिक काययोग। अप्रमत्त विरत में ३ वेदों में से कोई भी वेद सम्भव है, किन्तु जो मनः पर्यय ज्ञानी हैं, परिहार विशुद्धि संयमी हैं उस जीव के केवल पुरुष वेद ही होता है। अप्रमत्त विरत में अनन्तानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण इन १२ कषायों का अभाव है। शेष १३ कषायें ही सम्भव हैं ज्ञान चार ही इस गुणस्थान में होते हैं मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञान, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहार विशुद्धि ये तीन संयम हो सकते हैं। परिहार विशुद्धि संयम विहार करते समय होता है, सो विहार करते हुये में सप्तम गुणस्थान हो सकता है। उसका इतना सूक्ष्म काल है कि चलते हुये में ध्यान अप्रमत्त हो जाता है और पूर्व प्रयोगवश काय की क्रिया चलती रहती है, किन्तु विहार के समय में जो सप्तम गुणस्थान होता है वह बहुत सूक्ष्म काल के लिये होता है। ऐसे ही आहार करते समय भी बीच में सप्तम गुणस्थान होता है। वहाँ पर भी यह दूसरों को विदित न हो सकेगा कि इसका अब सप्तम गुणस्थान चल रहा, कारण कि पूर्व-प्रयोगवश जो क्रिया चलती है वह चलती रहती है, बाह्य क्रिया में एक साधारण ही अन्तर आ पाता है क्रिया प्रयोग में। तो यों तीन संयम होते हैं। चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन ये तीन दर्शन अप्रमत्त विरत गुणस्थान में हैं। केवल दर्शन १३वें गुणस्थान से होता है। लेश्या अप्रमत्त विरत में पीत, पद्म, शुक्ल हैं। यह जीव भव्य ही होता है, इसमें तीन प्रकार के सम्यक्त्व हो सकते हैं। यदि सम्यक्त्व घातक ७ प्रकृतियों का उपशम है तो औपशमिक सम्यक्त्व है, क्षयोपशम है तो क्षायोपशमिक सम्यक्त्व और क्षय है तो क्षायिक सम्यक्त्व होता है। ये जीव संज्ञी ही होते हैं। अप्रमत्त विरत गुणस्थान में मरण नहीं है, इसलिये वे आहारक ही होते हैं। यद्यपि शास्त्रों में बताया है कि सप्तम गुणस्थान से मरण होता है। एक तृतीय गुणस्थान को छोड़कर पहले से लेकर ११ गुणस्थान तक सभी गुणस्थानों से मरण बताया है, लेकिन उसका अर्थ यह है कि पहले दूसरे और चौथे गुणस्थान में तो साक्षात् मरण है और बाकी के गुणस्थान में मरण है, उसका अर्थ यह है कि मरण समय-में उसके बाद ही चतुर्थ गुणस्थान में मरण हो जाता है, ऐसा तीसरे गुणस्थान में नहीं है कि तीसरे गुणस्थान के बाद ही पहले समय में मरण हो। वहाँ या तो चौथा गुणस्थान होगा या पहला गुणस्थान होगा और कुछ समय बाद मरण होगा। तो एकदम सप्तम गुणस्थान के बाद ही मरण हो जाता है, इस कारण मरण कहा है, किन्तु जो मरण का समय है उसमें ७वाँ गुणस्थान नहीं है, किन्तु चौथा गुणस्थान है, इसी कारण इस गुणस्थान में अनाहारक नहीं होता। यह जीव चूंकि मनुष्य ही है सो ऐसे कर्मभूमिज मनुष्य की अवगाहना कम से कम ३॥ हाथ और अधिक से अधिक ५२५ धनुष तक की होती है।

संख्यादि प्ररूपणाओं से अप्रमत्त संयत का परिचय—संख्या प्ररूपणा की अपेक्षा अप्रमत्त विरत संयमी जीवों की संख्या २,९६,९९,१०३ (दो करोड़ छियानवे लाख, निन्यानवे हजार एक सौ तीन) है। यह संख्या छठे गुणस्थान के जीवों से आधी है, इसका कारण यह है कि यद्यपि मुनि उतने ही हैं जितने कि अप्रमत्त विरत में होते और प्रमत्त विरत में होते, क्योंकि वहाँ छठ से ७वें, ७वें से छठे में आना होता है, लेकिन ७वें गुणस्थान का समय छठे गुणस्थान से आधा है। तो छठे गुणस्थान से आधे समय में जितने मुनियों का संकलन होगा उससे आधा ही होगा, इससे छठे गुणस्थान से ७वें गुणस्थान में मुनियों की संख्या आधी है। क्षेत्र प्ररूपणा की अपेक्षा ये अप्रमत्त विरत गुणस्थानवर्ती

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जीव लोक के असंख्याते भाग में रहते हैं। याने मनुष्य लोक में ही तो रहते हैं और वह मनुष्य लोक का असंख्यातवाँ भाग है। स्पर्शन भी लोक का असंख्यातवाँ भाग है। मनुष्य लोक के अन्दर सभी जगह चाहे पर्वत हो, समुद्र हो, सभी जगह मुनियों का सद्भाव हो सकता है। जैसे किसी ने उपसर्ग किया और समुद्र में पटक दिया तो समुद्र में भी सद्भाव हो गया। कोई ऋद्धिधारी मुनि ऋद्धिबल से सूक्ष्म शरीर रखकर विहार कर रहे हों तो मेरु पर्वत, कुलाचल पर्वत, बड़े बड़े पर्वतों के बीच में भी निकल जाता है उनका शरीर, तो इस तरह ऋद्धिधारी साधुओं की अपेक्षा पर्वतों के अन्दर भी मुनियों का सद्भाव हो जाता है। अप्रमत्तविरत गुणस्थान वाले जीव सभी काल में रहते हैं, ऐसा कोई समय नहीं हुआ, न होगा जिस समय में अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती जीव कोई न हो। परन्तु एक जीव की अपेक्षा देखा जाए तो कम से कम अन्तर्मुहूर्त तक रह सकता और ज्यादह से ज्यादह भी अन्तर्मुहूर्त, क्योंकि अप्रमत्त विरत गुणस्थान का काल अन्तर्मुहूर्त से अधिक नहीं है यदि मरण हो जाये तो एक समय भी काल हो सकता है। यदि १, ४, ५वें गुणस्थान से अप्रमत्तविरत हुआ तो ७वें में अन्तर्मुहूर्त रहेगा फिर छठे गुणस्थान में जायेगा तो ७वें में कहलाया अन्तर्मुहूर्त और ७वें से छठे में गया तो ७वाँ अन्तर्मुहूर्त ही रहा, इस तरह छठे गुणस्थान की भाँति इसका भी काल अन्तर्मुहूर्त है परन्तु छठे गुणस्थान का जितना अन्तर्मुहूर्त है उससे आधा है यह। अप्रमत्त विरत जीवों के काल का अन्तराल कभी नहीं पड़ता, क्योंकि यह सदा काल रहता है, पर एक जीव की अपेक्षा अन्तर पड़े तो कम से कम अन्तर्मुहूर्त कोई जीव सप्तम गुणस्थान में आया और सप्तम गुणस्थान में गया, छठे में पहुँचा, फिर ७वें में गया तो अन्तर्मुहूर्त अन्तर पड़ा एक जीव की अपेक्षा और अधिक से अधिक अन्तर पड़ा तो कुछ कम अर्द्धपुद्गल परिवर्तन काल तक अन्तर होता है। कुछ कम से मतलब यह है कि किसी जीव ने जब कभी ७वाँ गुणस्थान पाया, सम्यक्त्व पाया तो सम्यक्त्व के प्रताप से उसका अनन्त संसार छिद जाता है। केवल अर्द्धपुद्गल परिवर्तन काल रह जाता है। अब उसका ७वाँ गुणस्थान मिट जाये, मिथ्यात्व आ जाये और अर्द्धपुद्गल परिवर्तन काल तक वही एकमेक रहे, और अन्त में चरम भव पाकर जल्दी से जल्दी ७वाँ गुणस्थान पाकर मोक्ष जाये उसमें जितना समय लगता है उतना समय काट लेना चाहिए। जो कि १०-११ अन्तर्मुहूर्त होता है, जो एक अन्तर्मुहूर्त बराबर है तो इतना कम अर्द्धपुद्गल परिवर्तन काल तक एक जीव ७वें गुणस्थान में न रहे ऐसा अन्तर पड़ सकता है।

मोक्षमार्ग प्रगति में अधःकरण परिणामों के वारों का विवरण—मिथ्यादृष्टि जीव अथवा अविरत सम्यग्दृष्टि या संयमासंयमी जो कोई भी सप्तम गुणस्थान में आता है तो संयम वहीं से प्रारम्भ होता है नीचे के गुणस्थान से छठा गुणस्थान नहीं होता। उस संयम को पाने के लिये दो करण होते हैं - (१) अधःकरण और, (२) अपूर्वकरण। प्रथम करण का अधः प्रवृत्तिकरण नाम इस कारण है कि एक साथ जैसे दो मुनियों ने अधःकरण में प्रवेश किया तो एक जघन्य विशुद्धि से चढ़ा, एक उत्कृष्ट विशुद्धि से चढ़ा तो इस पहले समय के साधक की उत्कृष्ट विशुद्धि इतनी है कि कहो चौथे समय के प्रथम खण्ड में इतनी उत्कृष्ट विशुद्धि हो तो ऊपर के परिणाम नीचे के समय में मिल जाते हैं इस कारण इसका नाम अधःकरण परिणाम कहलाता है। ये तीन करण कई बार होते हैं और किन्हीं किन्हीं कामों के लिये दो करण होते हैं—पर अधःकरण के प्रसंग में यह जानना चाहिये कि यह कितनी जगह कितनी बार में अधःकरण परिणाम होता है। जब कोई जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व पैदा करता है तो उससे पहले दर्शनमोहनीय का अन्तरकरण करने के लिये अधःकरण परिणाम होता है और शेष दो करण भी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

होते हैं। वेदक सम्यक्त्व पाने के लिये दो करण होते हैं। तो जिसमें अधःकरण आ ही गया, तीसरा स्थान है अधःकरण का संयमासंयम पाने के लिये। श्रावक का व्रत जब उत्पन्न होता है तो वहाँ अधः-करण होता है, चौथा स्थान अधःकरण का द्वितीयोपशम सम्यक्त्व को उत्पन्न करने में होता है तो उससे पहले अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ की विसंयोजना होती है। इस विसंयोजना के लिये अधःकरण परिणाम होता है। शेष २ करण भी होते हैं। ५वाँ स्थान है, यही द्वितीयोपशम सम्यक्त्व को उत्पन्न करने वाले जीव के अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना के बाद दर्शनमोह का अन्तर करण होता है। इसमें भी शेष दो करण भी होते हैं। छठा स्थान है क्षायोपशमिक चारित्र पाने के लिये। जब मुनि व्रत होने को हो तो उसकी उत्पत्ति के लिये भी अधःकरण होता है। इसमें अपूर्वकरण भी होगा पर अधःकरण कहाँ कहाँ होता है, इस प्रसंग में वार्ता चल रही है। ७वाँ स्थान है क्षायिक। सम्यक्त्व में कोई जीव पैदा करने को हो तो क्षायिक सम्यक्त्व से पहले अर्थात् दर्शनमोहनीय का क्षय करने से पहले अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना होती है। विसंयोजना का अर्थ है कि अनन्तानुबन्धी प्रकृति पूरी हटकर अप्रत्याख्यानावरणादिक रूप हो जाये। अनन्तानुबन्धी का नाम शेष न रहे, ऐसी विसंयोजना के लिये अधःकरण होता है। बाकी के २ करण भी होते हैं। क्षायिक सम्यक्त्व उत्पन्न करने वाले जीव के जब अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना होती है उसके बाद दर्शनमोह का क्षय करने के लिये भी ३ करण होते हैं वहाँ अधःकरण है। इसे ८वाँ स्थान समझिये। इस क्रम में कि उसके दर्शनमोह का क्षय करने के लिये अधःकरण होता है। इसके बाद ९वीं बात यह है कि जब जीव उपशम श्रेणी में चढ़ता है तो चारित्र मोहनीय का उपशम करता है तो उस उपशम के लिये अधःकरण परिणाम होता है, शेष दो करण भी होते हैं, जिन दो करणों को ८वाँ, ९वाँ गुणस्थान के नाम से कहा है। इसी प्रकार चारित्र मोह का क्षय करने के लिये अधःकरण परिणाम होता है। इस गुणस्थान में किसी भी आयु का बन्ध नहीं है, किन्तु यदि छठे गुणस्थान में देव आयु का बन्ध प्रारंभ किया हो और उस बन्ध की धारा में अप्रमत्त विरत गुणस्थान आ जाये तो वहाँ भी देव आयु का बन्ध होता है। इस प्रकार अप्रमत्त विरत गुणस्थान में विकथा, इन्द्रिय, विषय, कषाय ये कोई भी प्रमाद नहीं होते और सतत आत्मा के ध्यान में ये जागरूक रहते हैं।

सत् प्ररूपणा द्वारा अपूर्वकरण प्रविष्ट शुद्धि संयत आत्मा का परिचय—अब सत् प्ररूपणा में अपूर्वकरण गुणस्थान का निर्देश करते हैं। अपूर्वकरण का अर्थ है अ मायने नहीं, पूर्व मायने पहले और करण मायने परिणाम। इसका यह तात्पर्य है कि अपूर्वकरण परिणाम वाले नीचे के गुणस्थानसे तो बढ़ा हुआ विशुद्ध है ही, पर जितने समय अपूर्वकरण परिणाम रहेंगे, उतने समयोंमें भी अगले अगले समय में ऊँचे-ऊँचे याने अपूर्व अपूर्व परिणाम होते जायेंगे। पर एक ही समय में रहने वाले अनेक साधकों का परस्पर में परिणाम मिल भी जाये, कुछ हीन भी रहे, किसी से कुछ अधिक रहे, ऐसी विषमता एक ही समय में हो सकती है, पर अगले समय में पहले समय से अपूर्व ही परिणाम होंगे। यह विशेषता अधःकरण परिणाम में न थी। वहाँ कुछ ऊपर के समयों में और नीचे के समयों के परिणाम मिल जाते थे, जिसे निर्वर्गणा कहते हैं। निर्वर्गणा कांडक में यह सम्भव है कि ऊपर के समय वाले परि-णाम नीचे के समय वाले से मिल जाते हैं, लेकिन अपूर्वकरण में यह भिन्न समय वाली समानता न रही और इस कारण इसको अपूर्वकरण परिणाम कहते हैं। अपूर्वकरण गुणस्थान यद्यपि प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदयाभावी क्षय तथा उन्हीं के सदभावरूप उपशम एवं संज्वलन कषाय का मन्द उदय होने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

से हुआ और इसी कारण इस उत्पत्ति विधि से इस गुणस्थान में क्षायोपशमिक भाव है। किंतु यहाँ संज्वलन कषाय की मन्दता अधिक है तथा चारित्र मोह के उपशम या क्षय के लिये यह परिणाम बना है और इसकी उपशम या क्षय की दिशा में प्रगति चल रही है। इस कारण यह उपशामक व क्षायिक कहलाता है और इसी कारण मुख्यता से इसके औपशमिक या क्षायिकभाव कहा है।

अपूर्वकरण परिणाम में होने वाले छह महत्त्वपूर्ण कार्य अपूर्वकरण परिणाम में प्रति समय ६ विशेष कार्य होते रहते हैं, पहिला कार्य है प्रति समय अनन्तगुणी विशुद्धता, जो विशुद्धता पहले समय में है उससे अनन्तगुणी विशुद्धि अगले समय में होगी, यह विशेषता अधःकरण परिणाम में भी थी। लेकिन इस परिणाम में उसकी और विशेषता हो जाती है। दूसरा कार्य होता है पहले बंधे हुए कर्म की असंख्यातगुणी स्थिति का घात। याने जो कर्म बाँधे हुए हैं, जिनकी सत्ता है उनमें जो स्थिति बंध पड़ा है उनकी अनेक स्थितियों का घात हो जाता। यह है इस गुणस्थान की दूसरी विशेषता। तीसरी विशेषता है कि जो नवीन कर्म बंधते हैं वे असंख्यातगुण कम स्थिति के हो होकर बँधते हैं अर्थात् जो पहले समय की स्थिति हो तो अगले समय में उससे असंख्यातगुणी कम स्थिति वाला कर्मबंध होगा। चौथी विशेषता है कि जो पहले बाँधे हुए कर्म हैं उनमें जो अनुभाग पड़ा है उस अनुभाग का असंख्यात-गुणा घात होता चला जाता। इस गुणस्थान में प्रकृति का क्षय नहीं हो रहा, किंतु प्रकृति के क्षय के लिये जो एक महान उद्यम है वह यहाँ चल रहा है। प्रकृतियों का क्षय आगे ६वें गुणस्थान में होने लगेगा, मगर क्षय किसी का एकदम नहीं हो जाता। पहले उसकी स्थिति का घात होता अनुभाग घात होता। तो यह क्षय हो जाने से भी एक विशिष्ट कार्य है, जिसके बल पर क्षय सुगमतया हो जाता है।- तो पहले बाँधे हुए कर्म में जो अनुभाग पड़ा था अर्थात् फलदान शक्ति, उस अनुभाग का असंख्यात गुणा घात हो जाता है। पांचवीं विशेषता है कि असंख्यातगुणी कर्मवर्गणाओं की निर्जरा यद्यपि यहाँ मूलतः क्षय नहीं है फिर भी कुछ कुछ कर्मवर्गणाओं की यहाँ निर्जरा चलती है। क्षय कहते हैं उस प्रकृति का बिल्कुल न रहना और निर्जरा कहते हैं उस प्रकृति के प्रदेश, स्थिति, अनुभाग इन सबका घात करना कुछ-कुछ घात होना। ऐसी यहाँ निर्जरा होती है। छठी विशेषता है कि पाप प्रकृतियाँ पुण्य प्रकृतियों में बदल जाती हैं। इतना यहाँ विशुद्ध परिणाम होता है कि स्वयं ही पापरस मिटकर पुण्यरस हो जाता है। तो इस तरह अपूर्वकरण परिणाम में इन ६ विशेषताओं से बढ़ता हुआ यह साधक मुनि अपनी विशुद्धि में बढ़ता चला जा रहा है। अपूर्वकरण परिणाम उपशम श्रेणी में व क्षपक श्रेणी में होते हैं। उपशम श्रेणी में होने वाला अपूर्वकरण परिणाम चारित्र मोह के उपशम के लिये है और क्षपक श्रेणी में होने वाला अपूर्वकरण परिणाम चारित्रमोह के क्षय के लिये है।

अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती जीवों का प्रोग्राम —अपूर्वकरण गुणस्थान में चढ़ते समय में उप-शम श्रेणी में प्रथम समय में मरण नही होता। द्वितीय आदि समय में मरण हो सकता है, पर यदि न हो तो यह नियम से अगले गुणस्थान में बढ़ेगा। मरण हो तो चतुर्थ गुणस्थान में पहुँचता है। नवमे से गिरकर अपूर्वकरण में आये हुये के सभी समयों में मरण सम्भव है। पर क्षपक श्रेणी के गुण-स्थान में मरण नहीं है। उसका निर्वाण ही निश्चित है जो उसी भव से निर्वाण पावेगा उसकी अकाल मृत्यु नहीं होती, इस कारण क्षपक श्रेणी की ही बात क्या, वह तो जन्मतः ही अकालमृत्यु से रहित है। जो उपशम श्रेणी में चढ़े हुए अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती अन्तर्मुहूर्त के अन्तर्गत २-३ अन्तर्मुहूर्त में ही

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उपशांत मोह हो सकेगा, यदि मरण न हो तो नियम से अन्तर्मुहूर्त में उपशांत मोह होगा। यद्यपि प्रत्येक गुणस्थान का अपूर्वकरण, अनवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय, उपशांतमोह इनका काल अन्तर्मुहूर्त अन्तर्मुहूर्त ही है तिस पर भी ये सभी अन्तर्मुहूर्त मिलकर एक अन्तर्मुहूर्त होता है। क्षपक श्रेणी में चढ़े हुये अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती जीव नियम से अन्तर्मुहूर्त में क्षायिक चारित्र उत्पन्न कर लेगा। यहाँ भी यद्यपि १२वें गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थान का अन्तर अन्तर्मुहूर्त ही काल है, फिर भी वे समस्त अन्तर्मुहूर्त मिलकर एक अन्तर्मुहूर्त रहता है। जो क्षपक श्रेणी में रहने वाला अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती आत्मा है। उसका तो क्षायिक सम्यक्त्व ही है, किंतु उपशम श्रेणी में अपूर्वकरण गुणस्थान वाला क्षायिक सम्यग्दृष्टि भी हो सकता है और द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि भी हो सकता है। ये सभी गुणस्थान पंचम गुणस्थान से लेकर १२वें गुणस्थान तक मोह के निमित्त से कहे गये हैं तो इसमें मोह का क्षयोपशम है, किंतु उपशम श्रेणी में उपशमन का उद्यमहै क्षपक में क्षयका उद्यम है, इस कारण इसे और क्षायोपशमिक भावरूप से कहा गया है।

बंध उदय सत्त्व की विशेषता से अपूर्वकरण गुणस्थान के विभाग - अपूर्वकरण गुणस्थान में ७ विभाग है, और वे ७ विभाग विशुद्धि के बल पर हैं और इसके साथ वे विभाग कर्मों के उस उस प्रकार के सत्त्व की स्थितियों के कारण हैं, बंध के कारण हैं। इस गुणस्थान में सामान्यरूप से ५८ प्रकृतियों का बन्ध होता है याने ७वें गुणस्थान तक जितनी प्रकृतियों का बन्ध विछिन्न हो गया उन प्रकृतियों को कम करने से ५८ प्रकृतियाँ शेष रहती हैं और फिर इनके जो ७ भाग हैं उन ७ भागों में प्रथम भागों ५८ प्रकृतियों का बन्ध होता है। दूसरे, तीसरे, चौथे, पांचवें, छठे भाग में ५६ प्रकृतियों का बन्ध होता है, इनमें निद्रा और प्रचला ये दो प्रकृतियों का बन्ध नहीं बनता और ७वें भाग में २६ प्रकृतियों का बन्ध होता है। यहाँ ३० प्रकृतियाँ और बन्ध से रुक जाती हैं। इन बन्ध विछिन्न प्रकृतियों पर ध्यान देने से उनकी विशुद्धि का अनुमान हो जाता है। इस गुणस्थान में रहने वाले जीव कर्म सत्त्व की अपेक्षा विभिन्न प्रकार के हैं। किसी जीव के १४२ प्रकृतियों का सत्त्व है, इनमें ६ प्रकृतियाँ जो कम हो जाती हैं उसका भाव यह है कि जो कोई उपशम श्रेणी में अपूर्वकरण गुणस्थान में है तो उसके अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ का सत्त्व तो है हो नहीं, क्योंकि द्वितीयोपशम सम्यक्त्व प्रकट करते समय इन चार की विसंयोजना हो चुकी थी। और इस प्रकार १४४ प्रकृतियाँ रह जाती हैं लेकिन इस जीव के मनुष्य आयु तो है ही और कदचित् देव आयु का बन्ध कर लिया हो तो देव आयु का सत्त्व है, किन्तु नरक और तिर्यंच आयु का यहाँ सत्त्व नहीं है, इस कारण यहाँ दो प्रकृतियाँ भी कम हो जाती हैं, तो १४२ प्रकृतियों की सत्तावाला यह उपशम श्रेणी में रहने वाला जीव है। किसी जीव के १३९ प्रकृतियों का सत्त्व है, इसका अर्थ यह है कि जो क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव है और उपशम श्रेणी में रह रहा उस जीव के सम्यक्त्व घातक ७ प्रकृतियाँ तो हैं ही नहीं। तो १४८ प्रकृतियों में से ७ प्रकृतियाँ न होने से १४१ प्रकृतियाँ रह गईं। और आयु में से नरक आयु और तिर्यंक आयु का तो सत्त्व नहीं है, क्योंकि यह जीव मरकर नरक और तिर्यंच में नहीं जाता और न इसका बन्ध होता है। जिस जीव के नरक आयु व तिर्यंक आयु का कभी पहले बन्ध हो गया हो वे श्रेणि में तो आयेंगे ही क्या वे तो पांचवां, छठवां, सातवां गुणस्थान भी नहीं पा सकते। वे चौथे गुणस्थान से ऊपर नहीं पहुँचते इस तरह ९ प्रकृतियाँ न होने से १३९ प्रकृतियों का सत्त्व इसके है। अपूर्वकरण गुणस्थान में कोई जीव १३८ प्रकृतियों के सत्त्व वाला है। जिन जीवों ने क्षायिक सम्यक्त्व किया और चारित्र मोहनीय

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

क्षय कर रहे हैं उन जीवों के १३८ प्रकृतियों का ही सत्त्व है। यहाँ ७ सम्यक्त्व घातक प्रकृतियों का क्षय हो गया और इसके तीन आयु का सत्त्व नहीं है, क्योंकि यह जीव नियम नियम से मोक्ष जायेगा। तो जो भुज्यमान आयु है मनुष्य आयु उसका ही मात्र सत्त्व है। तीन प्रकृतियों का बन्ध ही नहीं होता इस कारण उस आयु का सत्त्व नहीं है। यों ७ और ३ इन १० प्रकृतियों का यहाँ सत्त्व नहीं। यों १३८ प्रकार की प्रकृतियों की सत्ता वाले अपूर्वकरण गुणस्थान वाले हैं।

अपूर्वकरण परिणाम के विशुद्धस्थान – अपूर्वकरण गुणस्थान का समय अधःकरण गुणस्थान से आधा है, है वह असंख्यात समय का, फिर भी यदि उसे दृष्टांत में माने कि अधःकरण का समय १६ समय है तो अपूर्वकरण का समय ८ समय है। यहाँ अनुवृष्टि रचना नहीं है याने समयों के और खण्ड नहीं। जैसे कि अधःकरण के खण्ड थे, खण्ड न होने के कारण यह है कि अपूर्वकरण परिणाम में पूर्वोत्तर समयवर्तियों में समता नहीं होती। अगले अगले समय वाले जीव ऊँचे ऊँचे परिणाम में ही हुआ करते हैं। जैसे दृष्टांत के लिये समझें कि अपूर्वकरण के ८ समय हैं तो प्रथम समय में मानों ४५६ डिग्री तक की विशुद्धि है और दूसरे समय में ४५६ से ४७२ अंश तक विशुद्धि है और उनके स्थान हैं और तीसरे समय में ४७३ से ४८८ तक है। इस तरह १६, १६ जो उनके प्रतिभाग का दृष्टांत है। बढ़ते चले जायेंगे। तो यहाँ विदित होगा कि अगले समय में जो परिणाम हुए हैं वे पहले समय में सबसे उत्कृष्ट हैं अर्थात् पहले समय वाले से मिलता नहीं है। यहाँ अपूर्वकरण परिणाम में जो प्रथम समय में जघन्य विशुद्धि है उससे अनन्तगुणी विशुद्धि प्रथम समय की उत्कृष्ट विशुद्धि है। क्योंकि उस ही एक समय में १६ तरह के परिणाम जैसे दृष्टांत में बताया है ऐसे ही वास्तव में कुछ हद तक के परिणाम रहते हैं। तो विवक्षित समय वाले साधक में परिणामों की समानता हो सकती है और वह भी समान हो पर अगले समय वाले के परिणाम इससे अपूर्व ही होते हैं। समान न मिलेंगे। तो पहले समय में जघन्य विशुद्धि है। उससे उत्कृष्ट विशुद्धि उसी समय में है और उससे अनन्तगुणी विशुद्धि द्वितीय समय की जघन्य विशुद्धि है और उससे अनन्तगुणा विशुद्धि द्वितीय समय की उत्कृष्ट विशुद्धि है। इस प्रकार उत्तरोत्तर आगे आगे के समयों में विशुद्धि बढ़ती चली जाती है।

अपूर्वकरण संयत का विविध स्थानों में मार्गण इस गुणस्थान में जीव समास में संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त ही होता है। यह अपर्याप्त नहीं है। इसके छहों पर्याप्तियाँ हैं, प्राण दसों हैं और संज्ञा भी ३ हैं, क्योंकि आहार संज्ञा केवल छठे गुणस्थान तक होती है। गतिमार्गणा में यह जीव मनुष्यगति का ही होता है। छठे गुणस्थान में और उसके ऊपर १४ गुणस्थान तक सभी मनुष्यगति के होते हैं। पञ्चेन्द्रिय जाति है, त्रस काय है, चूँकि अपूर्वकरण बहुत जागृत अवस्था का परिणाम है। वहाँ अपर्याप्त अवस्था नहीं है अतएव योग ९ ही सम्भव हैं—४ मनोयोग, ४ वचनयोग, और १ औदारिक काय योग। यहाँ वेद तीनों ही हो सकते हैं। वेद का प्रयोजन भाव वेद से है। पुरुष होकर भी किसी के भाव स्त्रीवेद में हो सकता। किसी के नपुंसक वेद हो सकता और किसी के पुरुष वेद हो सकता है। कषायें – संज्वलन चार और हास्यादिक ९, इस प्रकार १३ सम्भव है। अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती जीव के मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान। ये चार ज्ञान हो सकते हैं। संयम सामायिक संयम और छेदोपस्थापना संयम है। यहाँ कोई प्रवृत्ति रूप संयम नहीं है, ध्यान अवस्था है। पर इस ध्यान अवस्था में भी अन्तरंग में कभी समता परिणाम होता है तो कभी अबुद्धिपूर्वक ही कर्मविपाकवश जैसा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उदय है तो उपयोग में अबुद्धिपूर्वक ही और कुछ राग अवस्था होने के कारण अव्यक्त विकार होता है। तो उस विकार को भी टालने के लिये जो ज्ञानमयी पौरुष चलता है तो वहाँ छेदोपस्थापना संयम होता है। तो समता परिणाम वर्तता ही है, सो सामायिक व छेदोपस्थापना संयम है। अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती जीव के दर्शन मार्गणा, चक्षु, अचक्षु और अवधि दर्शन ये तीन हो सकते हैं। लेश्यायें केवल शुक्ल लेश्या होती है। यहाँ पृथक्त्ववितर्कवीचार नाम का शुक्ल ध्यान होता है। उस शुक्ल ध्यान में शुभ लेश्याएँ होना है, अन्य लेश्याएँ नहीं हैं। यह अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती जीव भव्य ही होता है। इसके सम्यक्त्व दो पाये जाते हैं। यदि उपशम श्रेणी में है तो तो द्वितीयोपशम सम्यक्त्व हो सकता है और क्षायिक सम्यक्त्व भी हो सकता है। तो क्षपक श्रेणी में है तो उसके केवल क्षायिक सम्यक्त्व ही होगा। यह जीव आहारक ही होता है। इस गुणस्थान में उपशम श्रेणी वाले का मरण भी हो तो मरण काल में चतुर्थ गुणस्थान आता है। जब तक मनुष्य आयु का उदय है तब तक तो यह उपशम श्रेणी में है और जिस काल में देव आयु का उदय है उस काल में असंयत सम्यक्त्व है सो उपशम श्रेणी में अनाहारक होने की स्थिति आती ही नहीं। ऐसा यह अपूर्वकरण गुणस्थान वाला जीव मनुष्य ही है। तो जो मनुष्य का देह सम्भव है कर्मभूमिज में वही अवगाहना इसकी होती है, अर्थात् साढ़े तीन हाथ से लेकर ५२५ धनुष तक की अवगाहना।

क्षेत्र स्पर्शन काल प्ररूपणा से अपूर्वकरण संयत का परिचय इसका वर्तमान निवास ढाई द्वीप के भीतर ही है याने लोक का असंख्यातवाँ भाग है और क्षेत्र भी लोक का असंख्यातवां भाग है। स्पर्शन लोक का असंख्यातवाँ भाव। इन जीवों का इस गुणस्थान में रहने का काल जघन्य एक समय अथवा क्षपक श्रेणी की अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। जघन्य काल एक समय व अन्तर्मुहूर्त होने का अर्थ है कि जगत में सभी समय ८वें गुणस्थान वाल मिल ही नहीं सकते। अगर सभी समय मिलें तो जो यह बताया है कि ६ माह ८ समय में ६०८ जीव सिद्ध होते हैं, इसका विघात हो जायेगा। फिर तो यों समझिये कि प्रतिदिनअनगिनते जीव मोक्ष जाते रहेंगे। इस गुणस्थान का काल उपशम श्रेणी में जाने की अपेक्षा जघन्य एक समय है तो एक समय में ८वां गुणस्थान होता, और फिर नहीं होता। कोई भी जीव ८वें गुणस्थान में नहीं है। ऐसा समय महीनों गुजरता है। अपूर्वकरण गुणस्थान वाले का उत्कृष्ट काल याने विश्व में निरन्तर बना रहे ऐसा समय होगा तो वह अन्तर्मुहूर्त ही होगा। यह काल उपशम श्रेणी की अपेक्षा भी है और क्षपक श्रेणी की अपेक्षा भी। कोई जीव नवमें गुणस्थान से अपूर्वकरण गुणस्थान में उपशम श्रेणी में आया, एक ही समय रह सका और उसका मरण हो गया तो वह चोथे गुणस्थान में पहुँचा, और फिर कोई जीव अपूर्वकरण गुणस्थान में आये नहीं तो नाना जीव अपेक्षा भी जघन्य एक समय हो गया और एक जीव की अपेक्षा भी जघन्य एक समय है। चढ़ते समय अपूर्वकरण के प्रथम समय में मरण नहीं, शेष समयों में है। उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, उपशमक का किंतु क्षपक श्रेणी में चढ़ने वाले अपूर्वकरण गुणस्थान वाले का जघन्य काल भी अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल भी अन्तर्मुहूर्त है, और यही नाना जीवों की अपेक्षा हैं। यह ही एक जीव की अपेक्षा है। अन्तर्मुहूर्त में थोड़ा परस्पर अन्तर तो है पर वह वह तभी लघुअन्तर्मुहूर्त है। क्षपक श्रेणी वाला जीव मरण नहीं करता है। वह तो उत्तरोत्तर ९वें, १०, १२वें गुणस्थान में चढ़कर १३वें गुणस्थान में पहुँचता है और प्रभु अरहन्त हो जाता है और यह अरहन्त अपने समय पर सिद्ध हो जाते हैं। जब चार अघातिया कर्मों का भी क्षय हो जाता है। चूँकि क्षपक श्रेणी में मरण

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नहीं है अतः क्षपक श्रेणी में ८वें, ९वें, १०वें १२वें गुणस्थान का काल अन्तर्मुहूर्त है। १३वें गुणस्थान में जितनी आयु शेष है उतने समय रहता है और १४वें का भी अन्तर्मुहूर्त है।

अन्तर प्ररूपणा द्वारा अपूर्वकरण संयत का परिचय—क्षपक जीव में एक जीव में अन्तर काल नहीं बनता, याने कोई एक जीव क्षपक श्रेणी में ८वें गुणस्थान में हो और वह गुणस्थान छूट जाय, अन्य गुणस्थान में आये और फिर ८वें गुणस्थान में पहुँचे, ऐसी स्थिति नहीं बनती, क्योंकि यह जीव तो उत्तरोत्तर चढ़ता ही जाता है। अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती जीवों का सर्व जीवों की अपेक्षा अन्तर आ सकता है, याने कोई समय ऐसा आता है कि जब विश्व में कोई भी अष्टम गुणस्थानवर्ती नहीं है और यह समय महीनों आ सकता है, कारण कि ६ महीने ८ समय में ६०८ जीव ही इस गुणस्थान में आते हैं और वे अन्तर्मुहूर्त ही रह पाते हैं, फिर ९वें गुणस्थान में पहुँचते हैं। जो सर्व जीवों की अपेक्षा अगर ८वें गुणस्थान में अन्तर आया तो यह अन्तर कम से कम एक समय का होगा और अधिक से अधिक ६ माह का होगा। यदि विश्व में कोई भी जीव अष्टम गुणस्थान में नहीं आया तो लगातार ऐसा समय छः महीने तक चल सकता है। उसके बाद ८ समयों में ६०८ जीवों की पूर्ति हो जायेगी। अष्टम गुणस्थानवर्ती उपशम श्रेणी का जीव एक जीव अष्टम गुणस्थान को छोड़कर अन्य गुणस्थान में रहे और पीछे ८वें गुणस्थान में आये तो इसका अन्तर हो सकता है। तो ऐसे एक जीव का अन्तर कम से कम अन्तर्मुहूर्त है और अधिक से अधिक २८ अन्तर्मुहूर्त कम अर्द्धपुद्गल परिवर्तन काल है। इसका अर्थ यह है कि कोई जीव अष्टम गुणस्थान में पहुँच गया अनादि मिथ्यादृष्टि जीव विधिवत् तो वहाँ इसके पहुँचने में १२ अन्तर्मुहुर्त लगते हैं, और सम्यक्त्व होने के बाद जीव का अधिक से अधिक संसार कहलाता है तो अर्द्धपुद्गल का परिवर्तन कहलाता है। जिसमें १२ अन्तर्मुहूर्त तो ८वें गुणस्थान तक पहुँच कर और गिरकर मिथ्यात्व तक पहुँचने में लगे। अब मिथ्यात्ववश होकर संसार परिभ्रमण करके जब अपूर्वकरण गुणस्थान वाला होगा तब तक यह अन्तर कहलाया। फिर उपशम श्रेणी का अपूर्वकरण गुणस्थान वाला होकर निर्वाण पायेगा तो उमें १६ अन्तर्मुहूर्त लगेंगे। ८वें गुणस्थान से ऊपर ११वें तक जाये। वहाँ से गिर गिरकर कम से कम ६, ७ गुणस्थान आया, वहाँ क्षयोपशम सम्यक्त्व करे। क्षायिक सम्यक्त्व करे, फिर क्षपक श्रेणी माड़कर ८, ९, १०, १२, १३, १४ गुणस्थान में पहुँच कर निर्वाण पाये तो यहाँ १६ अन्तर्मुहूर्त लगेंगे। तो इस प्रकार २८ अन्तर्मुहूर्त कम अर्द्धपुद्गल परिवर्तन काल एक जीव का अन्तर होता हैं, और नाना जीवों की अपेक्षा अपूर्वकरण उपशमक का अन्तर कम से कम एक समय और अधिक से अधिक वर्ष पृथक्त्व काल रहेगा, अर्थात् ३ से लेकर ९ वर्षों तक का अन्तर पड़ सकता है। इस आठवें गुणस्थान में उपशामक जीव सातवें गुणस्थान से आता है और ११वें तक चढ़ने के बाद फिर जब गिरता है तब क्रम से गिरता है ना, तो ९वें गुणस्थान से ८वें गुणस्थान में आता है, किन्तु यदि मरण हो जाये तो इस गुणस्थान के ही अनन्तर चौथे गुणस्थान में पहुँचता है और वह निश्चय से देवगति में ही जन्म लेता है। यहाँ इतनी बात समझना कि ८वें गुणस्थान के सब समयों में मरण सम्भव है, किन्तु चढ़ते हुये में जो प्रथम समय आता है इसमें मरण नहीं है। क्षपक श्रेणी में तो सातवें गुणस्थान से आठवें में आता है और इसका न मरण है, न नीचे गिरता है, किंतु निरन्तर विशुद्धि बढ़ती रहती है। सो चारित्रमोह का क्षय कर और घातिया कर्म का क्षय कर अरहन्त होता। फिर अघातिया कर्म के क्षय से सिद्ध होता है। इस प्रकार अपूर्वकरण गुणस्थान का वर्णन हुआ।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सत् प्ररूपणा द्वारा अनिवृत्तिकरण प्रविष्ट विशुद्धि संयत आत्मा का परिचय अब सत् प्ररूपणा द्वारा अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती जीव का परिचय किया जा रहा है। अनवृत्तिकरण में तीन शब्द हैं—अ, निवृत्ति और करण। अ मायने नहीं, निवृत्ति मायने भेद। जहाँ भेद न हो ऐसे करण को अनिवृत्तिकरण कहते हैं। जैसे अपूर्वकरण में समान समयवर्ती जीवों में भेद रहता था। अब अनिवृत्तिकरण परिणाम में समान समयवर्ती जीवों में रंच भी भेद नहीं है। एक ही प्रकार का समान समयवर्ती साधकों का परिणाम है। जहाँ पूर्व उत्तार समयवर्ती साधनों के परिणाम तो विलक्षण हों, उनमें तो भेद हो, परन्तु समान समयवर्ती साधुओं के परिणाम में भेद न हो, सब समान हों, ऐसे परिणामों को अनिवृत्तिकरण कहते हैं। किसी भी कार्य की पूरी तैयारी के लिये तीन उद्यम होते हैं। जैसे व्यायाम आदिक के प्रसंग में १, २, ३ कहकर दौड़ वगैरह शुरू करा दी जाती है तो ऐसे ही यहाँ चारित्र मोह का उपशम या क्षय के लिये जो १, २, ३ नम्बर की तैयारी है जो वही है अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण। इसमें उत्तरोत्तार विशिष्टता आती है। अधःकरण में तो बहुत अगले समय के साथ भेद था और कुछ निकट समय वाले के साथ समानता भी रहती थी और भेद भी रहता था। अब अपूर्वकरण में पूर्वोत्तार समयवर्तियों में तो विलक्षणता रही अर्थात् अगले अगले समय वाले के परिणाम अपूर्व रहे, किन्तु समान समय वाले साधक में भेद भी रहा, समानता भी रही, अब अनिवृत्तिकरण एक समान हैं। परिणाममें पूर्वोत्तर समय वाले साधुओंके परिणाममें भेद है, अगले समयमें ऊँची विशुद्धि है, किंतु समान समयवर्ती साधुओंके परिणाम इस अनिवृत्तिकरण परिणाम में कि बहुत सी चारित्र मोहनीय प्रकृतियोंकाउपशमऔर क्षयहो जाता है। यहाँ प्रत्याख्यानावरणके उदयावलीमें आये हुए स्पर्धकों का उदयाभावी क्षय रहता है तथा आगामी उदय में आने योग्य प्रत्याख्यानावरण के स्पर्धकों का सदवस्था रूप उपशम रहता है और संज्वलन कषाय का अतिमन्द उदय रहता है और इस प्रकार ऐसा क्षयोपशम होने पर यह अनिवृत्तिकरण गुणस्थान होता है। सो यद्यपि ऐसी क्षायोपशमिकता की बात है इस गुणस्थान में फिर भी उपशम श्रेणी में आये हुए साधुओं का उपशम के लिए विशिष्ट पुरुषार्थ है इसलिए उनके औपशमिक भाव कहा गया है, और क्षपक श्रेणी में आए हुए साधुओं के चारित्र मोह का यहाँ क्षय होता है, इस कारण उनके क्षायिक भाव कहा गया है। उपशम श्रेणी गुणस्थान वाले अन्तरात्मा अनिवृत्तिकरण परिणाम द्वारा २० कषायों का इस गुणस्थान में उपशम कर देते हैं, और यदि यहाँ मरण न हो तो नियम से पूर्ण औपशमिक चारित्र प्रकट करेगा। तो अर्थात् १०वें गुणस्थान में जाकर ११वें गुणस्थान में पहुँचेगा, इसी कारण इस गुणस्थान में औपशमिक भाव कहा गया है। इसी प्रकार क्षपक श्रेणी वाले साधुओं के अनिवृत्तिकरण परिणाम के बल से २० कषायों का क्षय हो जाता है, इस कारण इसको क्षायिक भाव कहा गया है। इसमें चारित्र मोह का निमित्त है नामकरण में, अर्थात् चारित्र मोह के क्षयोपशम से यह गुणस्थान प्रकट हुआ है और विशेषता से चारित्र मोह के उपशम या क्षय से यह गुणस्थान प्रकट हुआ है।

अनिवृत्तिकरण में समय की न्यूनता और विशुद्धि की अधिकता—अनिवृत्तिकरण गुणस्थान का काल अपूर्वकरण से आधा है। जैसे दृष्टान्त में अधःकरण का काल १६ समय, अपूर्वकरण का काल ८ समय और अनिवृत्तिकरण का काल ४ समय कल्पना में लिया है। वैसे तो सबका अन्तर अन्तर्मुहूर्त काल है, सो दृष्टान्त के मुताबिक अनिवृत्तिकरण के पहले समय में जितने साधुजन हैं सबका परिणाम एक समान ही विशुद्ध होगा। दूसरे समय में इससे अनन्तगुना अर्थात् सबका एक समान

http://www.jainkosh.org

होगा। इस तरह अनन्तगुणा, अनन्तगुणा विशुद्धि से बढ़ते हुए परिणान समान समयवर्तियों में एक समान होते हैं। इस गुणस्थान का नाम बादरसम्परायप्रविष्ट शुद्धिसंयत भी है। यहाँ जो कषायें रहती हैं वे १०वें गुणस्थान में रहने वाले सूक्ष्म लोभ की अपेक्षा बादर हैं। ९वें गुणस्थान में बादर सम्पराय कहा गया है। अर्थात् स्थूल कषाय तो यह अन्तदीपक शब्द है अर्थात् ९वें गुणस्थान के नीचे के सभी गुणस्थान बादर सम्पराय कहलाते हैं, पर यहाँ ९वें गुणस्थान में एक विशिष्ट शुद्धि है और संयमी जीव है। यह जीव अनिवृत्तिकरण परिणाम के बल से अन्त तक सभी बादर सम्पराय का उपशम या क्षय कर देते हैं। केवल एक सूक्ष्म सम्पराय रहता है जिसका १०वें गुणस्थान में उपशम या क्षय होगा।

अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती जीवों में विशुद्धि की समानता होने पर भी उपाधि के बन्ध, उदय व सत्त्व की अपेक्षा विभिन्नता—अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती जीव यद्यपि विशुद्धि से सब समान हैं, फिर भी उनमें जो प्रकृति सत्त्व उदय अथवा बन्ध से भेद पड़ता है उससे उनमें विभिन्नता है, ९वें गुणस्थानवर्ती जीव के बंध २२ प्रकृतियों का होता उदय ६६ प्रकृतियों का होता है। पहले गुणस्थान से लेकर ८वें गुणस्थान तक जो बन्ध विच्छिन्न प्रकृतियाँ हैं वे सब ९८ हैं। उनका यहाँ बन्ध है नहीं। तो शेष बची २२ प्रकृतियों का बंध होता है। पर इस बंध के प्रकरण में भी अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के ५ भेद हो जाते हैं और उन भागों में से पहले भाग में २२ का बंध, दूसरे में २१ का बंध है, पुरुष वेद का बंध नहीं, तीसरे में २० का बंध है संज्वलन क्रोध का बंध नहीं, चौथे भाग में १९ का बंध है यहाँ संज्वलन मान का बन्ध नहीं और ५वें भाग में १८ का बंध होता है यहाँ संज्वलन माया का बंध नहीं। इस बन्ध की भिन्नताओं से परिणामों की विशुद्धि का अनुमान सहसा हो ही जाता है प्रथम भाग में २२ प्रकृतियों का बंध है जिसमें चारित्र मोहनीय की प्रकृतियाँ यहाँ बंध में ५ हैं। संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ और पुरुषवेद, शेष चारित्र मोह की प्रकृतियों का बंध नहीं है, तो यह जीव दूसरे भाग में पुरुष वेद का बंध नहीं कर सकता। इसके इतनी विशुद्धि बढ़ गई है इसी कारण यहाँ २१ का बंध है। तीसरे भाग में संज्वलन क्रोध का बंध नहीं होता अतएव २० का बंध है। चौथे भाग में संज्वलन मान कषाय का बंध नहीं है अतः १९ का बंध है। और ५वें भाग में सज्वलन माया का भी बंध नहीं है। अतः १८ प्रकृतियों का बंध है। इसके अन्त में केवल संज्वलन लोभ का ही बंध रहता है। यों इस ९वें गुणस्थान की बंध की अपेक्षा ये ५ स्थितियाँ होती हैं। उदय की अपेक्षा भी इस गुणस्थान की ५ स्थितियाँ हैं। अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में उदय ६६ प्रकृतियों का है। पहले गुणस्थान से लेकर लेकर ८वें गुणस्थान तक जिन प्रकृतियों का उदय विच्छिन्न हो जाता है वे सब प्रकृतियाँ ५६ हैं। तो उदय योग्य १२२ प्रकृतियों में से ५६ प्रकृतियाँ कम कर देने से ६६ प्रकृतियाँ रह जाती हैं। तो अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में उदय प्रसंग के मुताबिक ५ भाग होते हैं, जिनमें प्रथम भाग में ६६ प्रकृतियों का उदय है। और द्वितीय भाग में एक जीव की अपेक्षा ६४ का उदय है। इसमें जा जिस वेद को लेकर चढ़ा है उसके उस ही वेद का उदय है, शेष दो वेद का उदय नहीं है। यहाँ नाना जीव की अपेक्षा तो तीन वेदों का उदय कहा जा सकता है, किसी के कोई, किसी के कोई। पर एक जीव की अपेक्षा उदय एक ही रहेगा। अर्थात् जिस वेद के उदय से चढ़ा है उस ही वेद का उदय है। तो यों दो वेद न होने से ६४ प्रकृतियों का उदय रहता है। तृतीय भाग में उदय ६३ प्रकृतियों का है। इसमें अविशिष्ट वेद का भी उदय नहीं है। चतुर्थ भाग में ६१ प्रकृतियों का उदय है। यहाँ संज्वलन क्रोध

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

का उदय नहीं रहता, और पंचम भाग में उदय ६१ प्रकृतियों का है। यहाँ संज्वलन मान का उदय नहीं रहता। लोभ का उदय चल रहा है पर अन्तिम समय में बादर लोभ की उदय व्युच्छित्ति हो जाती है।

अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में सत्त्व प्रकृतियों की अपेक्षा से विभिन्नता—अनिवृत्तिकरण में तीन प्रकार के साधु होते हैं, पहले वे जो द्वितीयोपशम सम्यक्त्व पाकर उपशम श्रेणी में चढ़े हैं, दूसरे वे जो क्षायिक सम्यग्दृष्टि हैं और उपशम श्रेणी पर चढ़े हैं, तीसरे हैं वे जो क्षायिक सम्यग्दृष्टि हैं और क्षपक श्रेणी में चढ़े हैं। इनमें तथा इनके भावों में कई प्रकार से प्रकृतियों का सत्त्व पाया जाता है। जो द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि जीव हैं और उपशमक हैं उनके १४२ प्रकृतियों का सत्त्व है। अनन्तानुबंधी ४ का विसंयोजन हो और नरक आयु, तिर्यक् आयु इन दो का यहाँ सत्त्व है नहीं। यदि इन जीवों ने देव आयु का बंध किया है तब तब देवायु और भुज्यमान मनुष्य आयु इन दो का सत्त्व है और यदि देवायु का बंध नहीं किया तो इसके १४१ प्रकृतियों का सत्त्व है। जो जीव अनन्तानुबंधी का उपशम करके चढ़े हैं उनके १४६ या १४५ का सत्त्व है। जो जीव क्षायिक सम्यग्दृष्टि उपशमक हैं उनकी १३९ प्रकृतियों का सत्त्व है। सम्यक्त्व घातक ७ प्रकृतियाँ तो हैं नहीं, साथ ही तिर्यक् आयु और नरक आयु का भी सत्त्व नहीं है। सत्त्व की दृष्टि से क्षायिक सम्यग्दृष्टि क्षपक जीव के ९ भाग करें अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में। इसमें चूँकि प्रकृतियों का क्षय होना है तो इन भागों में बहुत सी प्रकृतियाँ कम होती जायेंगी। यहाँ प्रथम भाग में इस क्षपक श्रेणी वाले जीव के १३८ प्रकृतियों का सत्त्व है। सम्यक्त्व घातक ७ प्रकृतियाँ और नरक, तिर्यञ्च देव, ये तीन आयु, यों १० का सत्त्व नहीं है। यह जीव निर्वाण पाएगा इसलिये किसी भी आयु का यहाँ बंध नहीं है। द्वितीय भाग में १२२ प्रकृतियों का सत्त्व है। यहाँ अनिवृत्तिकरण परिणाम की विशुद्धि के कारण १६ प्रकृतियों का क्षय हो जाता है। १६ प्रकृतियाँ हैं नरक गति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यक्गति, तिर्यक्गत्यानुपूर्वी, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, उद्योत, आताप, एकेन्द्रिय, स्थावर, साधारण, सूक्ष्म, स्त्यानगृद्धि, निद्रा निद्रा, पचला, प्रचला। इन प्रकृतियों के क्षय से यह अनुमान होता है कि यह जीव इतनी विशुद्धि से बढ़ता चला जा रहा है कि जो प्रकृतियाँ तिर्यक् गति, नरक गति से सम्बन्ध रखने वाली और दर्शनावरण के विशेष मोहन करने वाली हैं उन प्रकृतियों का विच्छेद हो जाता है। इसके तीसरे भाग में ११४ प्रकृतियों का सत्त्व है। यहाँ ८ प्रकृतियाँ और नहीं रहती। इनका विच्छेद द्वितीय भाग में हो जाता है। वे ८ प्रकृतियाँ हैं अप्रत्याख्यानावरण व प्रत्याख्यानावरण सम्बन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ सम्बन्धी। चतुर्थ भाग में ११३ प्रकृतियों का सत्त्व है। यहाँ नपुंसक वेद भी सत्त्व में नहीं रहता। पंचम भाग में ११२ प्रकृतियों का सत्त्व है, क्योंकि स्त्री वेद प्रकृति का चतुर्थ भाग में सत्त्व व्युच्छित्ति हो जाती है। छठे भाग में १०६ प्रकृतियों का सत्त्व है, क्योंकि पंचम भाग में हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा इन ६ प्रकृतियों का सत्त्व विच्छेद हो जाता है। ७वें भाग में १०५ प्रकृतियों का सत्त्व है, क्योंकि छठे भाग में पुरुष वेद की भी सत्त्व व्युच्छित्ति हो जाती है। इस भाग में संज्वलन क्रोध की भी सत्त्व व्युच्छित्ति हो जाने से अष्टम भाग में १०४ प्रकृतियों का सत्त्व रहता है। नवम भाग १०३ प्रकृतियों का सत्त्व है। यहाँ संज्वलन मान कषाय का भी सत्त्व नहीं रहता। इसी के नवम भाग में संज्वलन माया कषाय की सत्त्व व्युच्छित्ति हो जाती है। इस सत्त्व विवरण से यह विदित हो जाता है कि नवम गुणस्थान में परिणाम की विशुद्धि का कितना महान् पुरुषार्थ है कि चारित्र मोहनीय की प्रकृतियों का यहाँ सत्त्व

Report any errors at vikasnd@gmail.com

ही नहीं रहता। केवल संज्वलन लोभ शेष रह जाता है। जैसे जैसे यहाँ परिणामों की विशुद्धि बढ़ती है तैसे ही तैसे कर्मों का सत्त्व व स्थिति कम होती जाती है। जहाँ क्षपक श्रेणी में क्षय का क्रम है वही उपशम श्रेणी में उन प्रकृतियों के उपशान्त होने का क्रम है। केवल थोड़ा ही अन्तर होता है। इस अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में स्थितिघात अनुभागघात प्रकृति विच्छेद, प्रदेश विच्छेद सभी के कर्मों के ध्वंस के कार्य होते हैं।

अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती जीवों का मार्गण—यह जीव संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त होता है। यहाँ अपर्याप्त दशा नहीं है। हाँ उपशम श्रेणी में मरण सम्भव है, लेकिन मरण समय में चतुर्थ गुणस्थान होता है। यह जीव मनुष्यगति में ही पाया जाता, पञ्चेन्द्रिय होता, त्रसकाय ही है, इसके योग ९ पाए जाते हैं—चार मनोयोग, चार वचनयोग, एक औदारिककाय योग, इस गुणस्थान में तीन प्रकार के वेद हैं और वेद से रहित अवस्था है। जहाँ तक सवेद भाव है वहाँ तक वेद पाये जाते हैं और तीन वेदों का सत्त्व विच्छिन्न हो जाता है। तो अपगत वेद हो जाता है। यह वेद मोहनीय कषाय का भेद है। शरीर तो पुरुष रहता है और वह १४वें गुणस्थान तक रहता, लेकिन भाव में पुरुष वेद भी समाप्त हो जाता है। अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में कषाय के ७ ही रहते हैं। चार संज्वलन, क्रोध, मान, माया, लोभ, पुरुषवेद, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद। सो भागों के अनुसार कहीं ६ कषाय हैं, कहीं ५, कहीं ४, कहीं ३, और कहीं २ कषाय हैं, अन्त में केवल १ ही कषाय रहती है। इस गुणस्थान में ज्ञान चार हैं मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान. मन, पर्ययज्ञान, संयम दो होते हैं—(१) सामायिक और, (२) छेदोपस्थापना इस गुणस्थान में पृथक्त्व वितर्कवीचार नाम का शुक्ल ध्यान है और प्रकर्षता से यहाँ शुक्लध्यान हो रहा है तो प्रवृत्ति तो कुछ है ही नहीं, लेकिन परिणामों में उपा[illegible] ऐसी तरतमता होती है कि कभी समता से चिगे तो फिर अपने [illegible] समता में लगे। जब [illegible] समता है तब तक सामायिक संयम है और जब समता से चिगे और चिग[illegible]फिर समता में लगने का पौरुष होता है तो वह छेदोपस्थाप[illegible] संयम है। इस गुणस्थान में दर्शन मार्[illegible]णा ३ चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधि दर्शन, लेश्या [illegible] लेश्या होती है। यह जीव भव्य ही होता है। सम्यक्त्व यहाँ दो प्रकार से है—(१) [illegible] (२) द्वितीयोपशम सम्यक्त्व। यह जीव आहारक ही होता है। इसकी अव[illegible] मनुष्य ही है। यह, [illegible] कम से कम साढ़े तीन हाथ के होते हैं। अधिक से अ[illegible] हैं।

अनिवृत्तिकरण गुणस्था[illegible]वर्ती जीवों के क्षेत्र स्पर्शन काल आदि का विवरण—ढाई द्वीप के भीतर ही अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती जीवों का आवास है। क्षेत्र व स्पर्शन इनका लोक का असंख्यातवाँ भाग है। अनिवृत्तिकरण गुणस्थान का अपूर्वकरण से आधा समय है फिर भी इस अल्प समय में विशुद्धि बल से कितनी ही कर्म प्रकृतियों का उपशम व क्षय कर देता है। उसमें उपशमक जीव का जघन्य एक समय है अर्थात् विश्व में एक ही समय को अनिवृत्तिकरण गुणस्थान वाला हो और फिर न रहे, यह उपशम श्रेणी में ही सम्भव है। कोई जीव अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में एक समय को आया और वहाँ ही मरण हो जाए तो उसका चतुर्थ गुणस्थान हो जाता है। इस स्थिति में ही एक समय सम्भव है। यदि मरण वाली स्थिति न हो तो इसका कम से कम अन्तर्मुहूर्त काल रहता है। उपशामक जीव का उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अन्तर्मुहूर्त से अधिक समय तक ९वें गुणस्थान वाले जीव नहीं रह सकते। क्षपक श्रेणी में ९वें गुणस्थान वाले का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। यही काल

http://sahjanandvarnishastra.org/

नाना जीवों का है यही काल एक जीव का है। क्षपक श्रेणी का नाना जीवों की अपेक्षा तो अन्तर पड़ सकता है कि अब क्षपक श्रेणी में कोई जीव नहीं है। और बाद में आ जाए। क्षपक श्रेणी से मतलब १२वें गुणस्थान तक है, १३वें गुणस्थानवर्ती जीव यद्यपि क्षपक श्रेणी से बढ़कर हुआ है और क्षपक है, परन्तु वह क्षपक श्रेणी में नहीं समझा जाता। क्योंकि नाना जीव की अपेक्षा क्षपक श्रेणी में अन्तर है सयोग केवली प्रभु का अन्तर नहीं है। क्षपक श्रेणी में एक जीव का अन्तर नहीं होता सो यहाँ भी क्षपक का अन्तर नहीं याने यह स्थिति नहीं होती कि ६वाँ गुणस्थान छोड़कर जीव अन्य गुणस्थान में जाकर फिर कभी ६वें गुणस्थान में आये। क्षपक जीव तो ऊपर-ऊपर चढ़कर सिद्ध दशा में पहुँचता है उसका कहीं भी गिरने का काम नहीं है। अब नाना जीवों की अपेक्षा क्षपक श्रेणी का अन्तर देखा जाये तो कम से कम एक समय व अधिक से अधिक ६ माह तक होता है। बीच में एक समय को कोई क्षपक न रहे और फिर क्षपक हो जाये तो यहाँ अन्तर एक समय को रहा। और, विश्व में कहीं भी कोई क्षपक श्रेणी में न रहे, ऐसा अन्तर अधिक से अधिक ६ माह तक होता है। जहाँ ६ माह का अन्तर हो तो उसके बाद ८ समय में ही ६०८ जीव क्षपक श्रेणी में आते हैं और वे ऊपर चढ़कर मुक्त होते हैं। उपशम श्रेणी में रहने वाले नाना जीवों का जघन्य अन्तर एक समय का है और उत्कृष्ट अन्तर पृथक्त्व वर्ष का है अर्थात् ३ से लेकर ६ वर्ष तक का अन्तर है और एक जीव के उपशमक का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है व उत्कृष्ट अन्तर २, ३ अन्तर्मुहूर्त कम अर्द्धपुद्गल परिवर्तन काल है, उपशमक का। जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त तो यों है कि नवां गुणस्थान वाला जीव ऊपर के गुणस्थान में पहुँचा, ११वें गुणस्थान से गिरकर ६वें गुणस्थान में आया तो इस बीच १०वाँ, ११वाँ, १०वाँ ये तीन अन[illegible]न्तर के होते हैं फिर भी ये मिलकर भी एक अन्तर्मुहूर्त हैं। और, उपशमकों का उत्कृष्ट अन्तर २६ अन्तर्मुहूर्त कम अर्द्धपुद्गल परिवर्तन काल है, वह इस प्रकार है कि इस जीव ने जब प्रथमोपशम सम्यक्त्व उत्प[illegible]या तो तब ही इसका अनन्त संसार मिट गया। और और अर्द्ध पुद्गल परिवर्तन काल शेष रह गया। अब यह जीव ६वें गुणस्थान तक [illegible]रा। तो इसमें उसे ११ अन्तर्मुहूर्त हो जाते हैं। और, अब ६वें गुणस्थान से गिरा, मि[illegible] अर्द्धपुद्गल परिवर्तन काल घूमा, जितना शेष था और अ[illegible]त में फिर सम्यक्त्व [illegible]६वें गुणस्थान में आया। अन्तर तो पूरा हो गया, [illegible]र इससे बाद निर्वाण [illegible]लगते हैं। यों २६ अन्तर्मुहूर्त कम अर्द्धपुद्गल परिवर्तन काल [illegible] अन्तर पड़[illegible]

अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती अन्तरात्मा का कर्मक्षपक पौरुष—अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में क्षपक श्रेणी में कर्मक्षय का बहुत बड़ा पौरुष है। मोहनीय कर्म का विध्वंस करने का महान कार्य ६वें गुणस्थान में ही होता है। यहाँ अप्रत्याख्यानावरण व प्रत्याख्यानावरण का द्वितीय भाग में क्षय हो गया था। और, संज्वलन कषाय का क्षय करने में जो महान पौरुष होता है वह कृष्टिकरण के परिचय से जान लिया जायेगा। संज्वलन की ४ प्रकृतियों का कृष्टिकरण करके क्षय होता है याने उनको कृष्टिकरण करके विनष्ट किया जाता है। सो अन्त में लोभ कषाय की अनेक कृष्टियाँ बनती हैं, जिनने पहले वादर सम्वरण कृष्टियाँ हैं जो अन्त में नष्ट हो जाती हैं अनेकों वादर कृष्टियाँ सूक्ष्म सम्पराय कृष्टियों में पूरे रूप से संक्रमण कर जाती हैं। यह स्थिति ६वें गुणस्थान के अन्तिम समय की है। जहाँ वादर लोभ की कृष्टियों का संक्रमण सूक्ष्म लोभ कृष्टियों में हो जायेगा। वहाँ १०वाँ गुणस्थान प्रकट हो जाता है। यहाँ एक विशेषता यह समझना चाहिये कि स्थितिबन्ध क्रमशः कम होता चला जा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रहा था वह ९वें गुणस्थान में अन्तिम समय में कितना कम हो जाता है ? संज्वलन लोभ का स्थिति बंध अब अन्तर्मुहुर्त रहता है। इससे अधिक स्थिति नहीं बंधती और ३ घातिया कर्मों का स्थितिबंध कुछ कम एक दिन का ही रह जाता है। कहां तो कोड़ा कोड़ी सागरों की स्थिति बंधती थी, अब वहाँ कषायों का ध्वंस होने से अल्प स्थितिबंध रह गया। वेदनीय कर्म का नाम कर्म का गोत्र कर्म का स्थितिबंध कुछ कम एक वर्ष ही रह जाता है। इसके अतिरिक्त सत्त्व की भी विशेषता देखिये कि इस समय तक जो कर्म बंधे हुये थे अब उनकी स्थिति इस प्रकार रह जाती है कि मोहनीय के अन्तर्मुहूर्त और शेष तीन घातिया कर्मों का संख्यात हजार वर्ष और नाम कर्म, गोत्र कर्म व वेदनीय कर्म इनका संख्यात हजार वर्ष स्थिति सत्त्व रहता है। इस स्थिति के बाद वादर सम्पराय गुणस्थान का विलय हो जाता है और सूक्ष्मसम्पराय गुणस्थान की उत्पत्ति हो जाती है। इस तरह इस जीव के चारित्र मोहनीय का क्षय पूर्णतया हो गया। केवल संज्वलन लोभ शेष रह गया। उसके विलय के लिये सूक्ष्मसम्पराय गुणस्थान का अभ्युदय हुआ है।

सत् प्ररूपणा द्वारा सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्ती जीव का निर्देशन—अब सत् प्ररूपणा द्वारा सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानका वर्णन करते हैं। जहाँ केवल संज्वलन लोभ सूक्ष्म रह जाता है तब वह सूक्ष्मसाम्पराय कहलाता है। उस सूक्ष्म लोभ के नाश के लिये जो चारित्र प्रकट होता है उसे सूक्ष्मसाम्पराय चारित्र कहते हैं। सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान का अर्थ है कि सूक्ष्मसाम्पराय के विनाश के लिए जहाँ सूक्ष्मसाम्पराय चारित्र होता है उसे सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान कहते हैं। यह गुणस्थान चारित्र के विकास का है। यह गुणस्थान उपशम श्रेणी में चढ़े हुये जीवों के भी होता है और क्षपक श्रेणी में चढ़े हुये जीवों के भी होता है। यह गुणस्थान प्रत्याख्यानावरण कषाय के क्षयोपशम के निमित्त से होता है फिर भी यहाँ उपशम और क्षय की बड़ी विशेषता है। इस कारण इस गुणस्थान में औपशमिक भाव और क्षायिक भाव कहा है। यहाँ तक सरागचारित्र माना जाता है, परन्तु बचे हुये मोह के भी उपशम व क्षय का यहाँ पौरुष है और अन्त में बचे हुये सूक्ष्म संज्वलन लोभ का भी उपशम या नाश कर दिया जाता है, इस कारण यहाँ औपशमिक भाव व क्षायिक भाव कहने की बहुत विशेषता हो जाती है। जो जो जीव उपशम श्रेणी में चढ़कर १०वें गुणस्थान में पहुँचता है उस अन्तरात्मा के भी उपशम का यत्न चलता है और इस गुणस्थान के अन्त में संज्वलन सूक्ष्म लोभ का भी उपशम हो जाता है। इस कारण से वह जीव उपशामक कहलाता है। इस गुणस्थान में प्रति समय नये नये परिणाम होते हैं और साथ ही अनिवृत्तपरिणाम भी होते हैं। समस्त समयवर्ती सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्ती जीवों के समान परिणाम होते हैं।

सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में कर्मप्रकृतियों के बंध व उदय का दिग्दर्शन—इस गुणस्थान में केवल १७ प्रकृतियों का बंध होता है। ज्ञानावरण की ५, अन्तराय की ५, दर्शनावरण की ४ - चक्षुर्दर्शनावरण, अचक्षुर्दर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण और केवलदर्शनावरण। नामकर्म की एक, यशकीर्ति गोत्रकर्म की एक उच्च गोत्र, और वेदनीय की एक - सातावेदनीय। इस प्रकार इन १७ प्रकृतियों का बंध होता है। यहाँ मोहनीय प्रकृति का बंध नहीं है और नामकर्म में से केवल यशकीर्ति का बंध है, गोत्र में उच्च गोत्र का बन्ध और वेदनीय में साता वेदनीय का बन्ध। इन बन्ध प्रकृतियों के नाम जानकर सहसा अनुमान हो सकता है कि इस गुणस्थान का कितना विशुद्ध परिणाम है। सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्ती जीवों के कर्मप्रकृति भी केवल ७० उदय में आ सकती हैं। जिन प्रकृतियों का ९वें गुणस्थान

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तक उदय विछिन्न हो गया है उन प्रकृतियों को घटाकर शेष ६० प्रकृतियों का उदय है। जिनका उदय नहीं है वे ६२ प्रकृतियाँ हैं। इसमें जिन ६० प्रकृतियों का उदय है उनमें सब घातिया कर्मों को छोड़कर बाकी सभी अघातिया प्रकृतियाँ हैं, और कदाचित नामकर्म सम्बन्धित किसी अशुभ प्रकृतिका भी उदय हो तो उसका उस जीव में उस प्रकार विपाक नहीं होता।

सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में कर्मप्रकृतियों के सत्त्व का विवरण — सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान वर्ती जीव के कर्मप्रकृतियों का सत्त्व ४ प्रकार से होता है। जो जीव द्वितीयोपशम सम्यक्त्व पाकर उपशम श्रेणी में है और अनन्तानुबन्धी का उपशम करके चढ़ा हुआ है, उनके १४६ प्रकृतियों का सत्त्व होता है। अनन्तानुबंधी का उपशम होने से उसका सत्त्व बराबर है। केवल नरक आयु और तिर्यंच आयु का सत्त्व नहीं है। जिन जीवों ने द्वितीयोपशम सम्यक्त्व में अनन्तानुबंधी का विसंयोजन किया है उन दशम गुणस्थानवर्ती उपशमकों के १४२ प्रकृतियों का सत्त्व होता है। यहाँ अनन्तानुबन्धी की विसंयो-हो जाने से इन ४ का सत्त्व नहीं है। और नरक आयु तिर्यक आयु इन दो का भी सत्त्व नहीं है। जो जीव क्षायिक सम्यग्दृष्टि है और उपशम श्रेणी में चढ़ा हुआ है ऐसे दशम गुणस्थानवर्ती जीव के १३९ प्रकृतियों का सत्त्व है। सम्यक्त्वघातक ७ प्रकृतियाँ तथा नरकायु व तिर्यक आयु, इन ९ प्रकृतियों का सत्त्व वहाँ नहीं है। जो जीव क्षायिक सम्यक्त्व पाकर क्षपक श्रेणी में चढ़ा हुआ है उन दशम गुणस्थानवर्ती जीवों के १०२ प्रकृतियों का सत्त्व है। ९वें गुणस्थान तक ४६ प्रकृतियों का क्षय हो जाता है। जिसमें ३ आयु का तो सत्त्व पहले से ही नहीं है। शेष ४३ प्रकृतियों का क्षय विशुद्ध परिणाम बल से होता है है। वादर सम्प्रदाय गुणस्थान में अर्थात नवम गुणस्थान में वादर दृष्टियाँ की थी लोभ कषाय की उन वादर दृष्टियों का सूक्ष्मकृष्टियों में पूर्ण संक्रमण व क्षय कर दिया था तभी तो आया सूक्ष्मसाम्पराय में। अब इस गुणस्थान में और सूक्ष्मतर सूक्ष्म कृष्टियाँ की जाती हैं और उनमें अनेक कृष्टियों का क्षय होते होते अन्त में समस्त सूक्ष्म लोभ का क्षय हो जाता है।

सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्ती जीवों की संख्यादि का निर्देश सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में सूक्ष्म लोभ का उदय तो है, किन्तु लोभकृत बंध नहीं होता। इस सूक्ष्म लोभ में इतनी सामर्थ्य नहीं है कि वह किसी विकार का बंध कर सके। जो बंध होता है वह ज्ञान के जघन्य परिणाम से हो रहा है। जो उपशम श्रेणी में सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्ती जीव हैं उनका मरण भी सम्भव है। उनका मरण हो तो चौथा गुणस्थान होता है और वह नियम से देवगति में जाता है। चढ़ते हुये में यदि उपशम श्रेणी का दसवाँ गुणस्थान है तो वह अपना काल पूर्ण करके ११वें गुणस्थान में प्रवेश करता है। उतरते समय में यदि दशम गुणस्थान होता हो और जीवन रहता है तो वह ९वें गुणस्थान में गिरता है, किन्तु क्षपक श्रेणी का दशम गुणस्थानवर्ती जीव नियम से १२वें गुणस्थान में पहुँचता है। ११वाँ गुणस्थान समस्त चारित्र मोहनीय के उपशम से निष्पन्न होता है और क्षपक श्रेणी का जीव चारित्र मोहनीय का क्षय करता हुआ चल रहा है। दशम गुणस्थान के अन्त में समस्त चारित्र मोहनीय का क्षय हो चुकता है तब वह क्षीणमोह हो जाता है। सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थानवर्ती उपशामक जीवों की संख्या ज्यादह से ज्यादह २९९ होती है और उपशम श्रेणी में दशम गुणस्थानवर्ती क्षपक जीवों की संख्या अधिक से अधिक ५९८ होती है। इसका वर्तमान क्षेत्र और स्पर्शन लोक का असंख्यातवाँ भाग। यह जीव केवल ढाई द्वीप के अन्दर ही होता है और वह क्षेत्र लोक का असंख्यातवाँ भाग है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान के काल व अन्तर का विवरण—सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्ती जीव का काल उपशम श्रेणी में कम से कम एक समय और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त होता है, अर्थात् विश्व में कोई ऐसा समय आता है कि जब कोई जीव ११वें गुणस्थान से गिरकर सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में आया हो और एक समय ही रहकर वह मरण को प्राप्त हो जाये तो उस समय एक समय को सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान हो और बाद में कोई भी जीव सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में नहीं आया, न ठहरे हों, न उतरते हों तो इस स्थिति में नाना जीवों की अपेक्षा भी जघन्य काल एक समय हुआ, और एक जीव की अपेक्षा भी जघन्य काल एक समय हुआ। पर चढ़ते हुए या उतरते हुये में उपशम श्रेणी में सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान अधिक से अधिक नाना जीवों की अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त और एक जीव की अपेक्षा भी अन्तर्मुहूर्त होता है, किंतु क्षपक श्रेणी में मरण नहीं है, सो नाना जीवों की अपेक्षा भी जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। और, एक जीव की अपेक्षा भी जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। यहाँ गिरकर तो कोई जीव आता ही नहीं। क्षपक श्रेणी में जीव कषायों का क्षयकर आगे बढ़ता है और इस गुणस्थान में कोई भी जीव आये तो कम से कम अन्तर्मुहूर्त तो रहता ही है, और लगातार नाना जीव सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में आते रहें और रहे आयें तो वह भी जघन्य अन्तर्मुहूर्त तो है ही और उत्कृष्ट काल एक जीव और नाना जीव दोनों की अपेक्षा से अन्तर्मुहूर्त होता है। सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्ती जीवों का उपशम श्रेणी में यदि अन्तर पड़े तो वह अन्तर कम से कम एक समय है याने १०व गुणस्थान में उपशामक जीव रह रहे थे और वे सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान को छोड़कर चले जायें और एक समय तक विश्व में कोई भी जीव इस गुणस्थान में न हो और एक समय बाद ही फिर कोई गिरकर या चढ़ते हुए इस ११वें गुणस्थान में आ जाये तो वह अन्तर एक समय का जघन्य हो गया। नाना जीवों की अपेक्षा यदि उपशम श्रेणी में १०वें गुणस्थान का अन्तर अधिक से अधिक पड़े तो वह पृथक्त्व वर्ष पड़ता है अर्थात् ३ से लेकर ९ वर्ष तक अन्तर पड़ सकता है, उसके बाद अवश्य ही उपशम श्रेणी में जीव आएँगे। इसी प्रकार नाना जीवों की अपेक्षा १०वें गुणस्थान का अन्तर कम से कम एक समय है अर्थात् १० गुणस्थान में जीव थे और वे ११वें गुणस्थान में पहुँच गये। एक समय को कोई १०वें गुणस्थान में न रहा, फिर १०वें गुणस्थान में आना प्रारम्भ हो तो विश्व में सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान का अन्तर एक समय का हो गया। क्षपक सूक्ष्मसाम्पराय जीवों का अधिक से अधिक अन्तर होगा को ६ माह का। ६ माह तक कोई भी जीव १०वें गुणस्थान में न आये तो बाद लगातार ८ समय में ही ६०८ जीव दशम गुणस्थान में आते हैं और उनका अन्तर यों मिट जाता है। एक जीव की दृष्टि से दशम गुणस्थानवर्ती जीव उपशम श्रेणी वाला अधिक से अधिक उसका अन्तर आये तो कुछ कम अर्द्धपुद्गल परिवर्तन काल तक अन्तर आ सकता है। कुछ कम से मतलब सम्यक्त्व पाने के बाद उपशम श्रेणी के १०वें गुणस्थान तक जो जल्दी से जल्दी अन्तर्मुहूर्त ले वह कम हो जाता है। और १०वें गुणस्थान से गिरने के बाद चिरकाल तक संसार परिभ्रमण करके जिस अन्तिम भव से मोक्ष जाना है उस भव के वे आखिरी अन्तर्मुहूर्त कम हो जाते हैं जो इसके बाद मुक्ति पाने में लगते हैं। पुन: १०वाँ गुणस्थान पाये और वहाँ से गिरकर फिर क्षपक श्रेणी माड़कर मोक्ष जाये इतने अन्तर्मुहूर्त से कम अर्द्धपुद्गल परिवर्तन काल नाना जीवों की अपेक्षा उपशम श्रेणी में एक जीव का अन्तर होता है।

उपशामक सूक्ष्मसाम्पराय के भावों की विलक्षणता का दिग्दर्शन—उपशम श्रेणी के १०वें गुणस्थान के प्रथम समय में जब जीव आया तब ही से उसकी कृष्टियों की उदीरणादि होने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

लगती हैं। और जब सब कृष्टियाँ उदीर्ण, संक्रांत हो जाती हैं उस समय समस्त कृष्टियों के प्रदेश को असंख्यातगुणित श्रेणी से संक्रांत कर लेता है। जब यह उपशम श्रेणी में ऐसा अन्तिम समयवर्ती सूक्ष्म-साम्पराय होता है तब वहाँ ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इनके केवल अन्तर्मुहूर्त ही स्थिति का बन्ध होता है। नामकर्म व गोत्रकर्म का स्थिति बन्ध सोलह मुहूर्त प्रमाण होता है और वेदनीय का स्थिति बन्ध २४ मुहूर्त मात्र होता है। यह सूक्ष्मसाम्पराय उपशामक के अन्तिम समय का वर्णन है। इसके बाद सारे मोहनीय कर्म उपशान्त हो जाते हैं। तब से लेकर अन्तर्मुहूर्त तक ये उपशांत कषाय गुणस्थानवर्ती हो जाते हैं। यहाँ यह परखने की बात है कि उपशम का भी कितना महत्त्व है कि एक बार यह जीव वीतराग बन गया और फिर चूँकि कर्म उपशांत थे, उनका उदय होना आवश्यक हो गया। तो वह गिर जाता है। और कहो गिरकर मिथ्यात्व में आ जायें तो कुछ कम अर्द्धपुद्गल परि-वर्तन काल तक भ्रमण कर सकता है। परिणामों की गति बड़ी विचित्र है। इस कारण प्रति समय परि-णामों की सम्हाल रखना आवश्यक है। कभी भी ऐसा भाव न करें जानकर कि अगर परिणाम इस समय कुछ खोटे होते हैं और विषय कषायों में विशेष प्रवृत्ति का अवसर सा बनता है तो बनने दो, फिर परिणाम सम्हाल लेंगे और अपने को सावधान कर लेंगे। हर कोशिश हर सम्भव प्रयत्न में ऐसे परिणामों की सम्हाल रखना चाहिये कि जगत में जितना भी समागम है वह सारा समागम भिन्न है, मेरे लिये उससे कुछ लाभ नहीं है, बल्कि जितना लगाव हो चाहे रागरूप से लगाव हो चाहे कुछ शुद्ध भाव भी रखकर प्रीति का लगाव हो तो भी वह क्लेशकारक ही है और ऐसे प्रेम व्यवहार में भी समय का खोना कहलाता है।

क्षपक सूक्ष्मसाम्यराय की शूरता—सूक्ष्मसाम्यराय गुणस्थान क्षपक श्रेणी में उत्तरोत्तर विशुद्धि को बढ़ाता हुआ क्षपक श्रेणी का सूक्ष्मसाम्पराय चारित्र वाला जीव सूक्ष्म लोभ के सूक्ष्म कृष्टियों को करके उनका क्षय करता है। और उन सूक्ष्म कृष्टियों का क्षय करते हुए जिस समय यह अन्तिम समय में आता है उस समय में इस जीव के नामकर्म व गोत्रकर्म का स्थिति बन्ध ८ मुहूर्त होता है और वेदनीय का स्थिति बन्ध १२ मुहूर्त और तीन घातिया कर्मों का स्थिति बन्ध अन्तर्मुहूर्त मात्र रह जाता है। मोहनीय का तो स्थिति सत्त्व वहाँ नष्ट ही हो जाता। अब केवल ३ घातिया कर्म रह जाते हैं, जिनका स्थिति सत्त्व अन्तर्मुहूर्त है। इससे ही यह बात स्पष्ट होती है कि अब यह जीव लघु अन्त-र्मुहूर्त १२वें गुणस्थान में रहकर इन तीन घातिया कर्मों का भी क्षय कर शीघ्र ही यह सयोग केवली अरहन्त बनेगा। हाँ घातिया कर्मों की स्थिति व सत्त्व अधिक है। नामकर्म, गोत्रकर्म व वेदनीय का स्थिति सत्त्व असंख्यात वर्ष प्रमाण है और आयुकर्म का स्थिति सत्त्व जितना भी शेष रहा सो जीवन समय में उतने ही समय का स्थितिसत्त्व रहता है। जैसे चारित्र मोहनीय कर्म का यह स्थितिसत्त्व नष्ट होता है कि यह क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती जीव हो जाता है। जिस समय यह क्षीणकषाय गुणस्थान-वर्ती जीव होता है तब से सब कर्मों की स्थिति और अनुभाग का बन्ध समाप्त हो जाता है।

सत्प्ररूपणा द्वारा उपशांत कषाय गुणस्थान का वर्णन अब सत् प्ररूपणा द्वारा उपशांत कषाय नामक ११वें गुणस्थान का विवरण देखिये - जहाँ समस्त कषायें उपशांत हो चुकी हैं ऐसी अन्त-रात्माओं को उपशांत कषाय कहते हैं। समस्य मोहनीय की प्रकृतियाँ हैं २८, जिनमें सम्यक्त्व घातक ७ प्रकृतियों का उपशम तो उपशम श्रेणी में चढ़ने से पहले ही द्वितीयोपशम सम्यक्त्व के निष्पन्न होने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

के समय हो गया था। अब ७ प्रकृतियों को छोड़कर शेष जो २१ प्रकृतियाँ चारित्र मोह की रहती हैं उनमें से एक संज्वलन लोभ को छोड़कर २० प्रकृतियों का उपशम ९वें गुणस्थान में हो गया था और संज्वलन लोभ का उपशम १०वें गुणस्थान में हो गया। अब यह ११वें गुणस्थान में समस्त मोहनीय कर्मके उदय से रहित है। सर्व मोहनीय कर्म उपशांत हैं इसी लिये यह वीतराग है। इसमें प्रायः इतनी विशुद्धता है जैसे कि क्षीण कषाय गुणस्थान में है। उपशम और क्षपक के कारण कुछ अन्तर है, क्षीण कषाय में विशेष अधिक विशुद्ध है। फिर भी प्रायः ये दोनों समान हैं और पूर्ण वीतराग हैं। लेकिन उपशांत कषाय वाला क्षीण कषाय की तरह छद्मस्थ है। छद्मस्थ का अर्थ है छद्म याने ज्ञानावरण और दर्शनावरण। इनमें जो अभी स्थिति है अर्थात् सर्वज्ञ और सर्वदर्शी नहीं हुआ वह छद्मस्थ है, किंतु यहाँ वीतराग हो गया है। ऐसे विशेषण से याने केवल छद्मस्थ शब्द से यह अर्थ लेना कि यह छद्मस्थ शब्द अन्तदीपक है। इस गुणस्थान से पहले के समस्त गुणस्थान भी छद्मस्थ हैं। उपशांत कषाय गुणस्थान में परिणाम कषायरहित हैं, निर्मल हैं। पर यहा उपशम ही तो है सो उपशम का काल समाप्त होते ही यह नीचे १०वें गुणस्थान में गिर जाता है। और, इस तरह १०वें से ९वें, ९वें से ८वें और ८वें से ७वें में गिरकर आता है। उसके बाद छठे में, इसके बाद नियम नहीं है कि गिरकर किन गुणस्थानों में पहुँचे, और यदि मरण हो तो उपशम श्रेणी में किसी भी गुणस्थान में मरण कर चौथे गुणस्थान में पहुँचता है।

उपशांत कषायों का द्वैविध्य – उपशांत कषाय गुणस्थानवर्ती जीव दो प्रकार के होते हैं। एक तो द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि उपशांत कषाय और दूसरा क्षायिक सम्यग्दृष्टि उपशांत कषाय। क्षायिक सम्यग्दृष्टि उपशांत कषाय यदि गिरता ही रहे तो चौथे गुणस्थान तक ही गिर सकता है। वह फिर क्षपक श्रेणी चढ़कर निर्वाण भी प्राप्त कर सकता और उस भव में क्षपक श्रेणी न करे और मरण करें तो वह देवगति में ही उत्पन्न होता है। किंतु चौथे गुणस्थान से नीचे कभी नहीं आता। द्वितीयोपशम सम्यक्त्व में भी यदि मरण हो तो वह भी देवगति में ही उत्पन्न होगा। द्वितीयोपशम सम्यक्त्व के बाद या तो वेदक सम्यक्त्व हो सकता है या मिथ्यादृष्टि हो सकता है तथा कुछ आचार्यों की सम्मति से उसका सासादन गुणस्थान में भी जाना माना गया है। द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि जीव ११वें गुणस्थान से गिरकर क्रम-क्रम से छठे गुणस्थान तक पहुँचता है। वहाँ यदि सम्हल गया तो क्षायोपशम सम्यक्त्व पाकर क्षायिक सम्यक्त्व करके क्षपक श्रेणी माड़कर अन्त में मोक्ष प्राप्त कर सकता है। वह सब सावधानी अपने परिणामों के सम्हाल की है। और परिणामों की सम्हाल में मुख्यता है निज सहज अन्तस्तत्त्व के आश्रय करने की।

आत्महितकारी पौरुष का स्मरण—यह जीव सदा ज्ञान तो करता ही रहता है। कुछ न कुछ जानता ही रहता है। अपने ज्ञान में किसी न किसी पदार्थ को बसाया करता है। पर यदि भवितव्य अच्छा हो, विवेक हो तो उसकी वृत्ति इतनी विशुद्ध हो जाती है कि वह अपने ज्ञान में बेकार भिन्न बातों को नही ग्रहण करता, किंतु प्रयत्न करता है अपने आप को एक सहज ज्ञान स्वभावमात्र अनुभव करने का। मैं ज्ञानमात्र हूँ। मैं मनुष्य ही नहीं हूँ। मेरा देह ही नहीं है। मैं तो शुद्ध ज्ञायक स्वरूप हूँ। ऐसी जिसकी सुध बनी वह पुरुष मनुष्य जैसे आचरण का भी राग क्यों करेगा? भले ही मनुष्य पर्याय में हैं। आचरण भी मनुष्यों जैसा प्रायः करना होगा, पर जिसकी प्रतीति शुद्ध ज्ञायक स्वभाव के परखने की हुई, वहाँ ही जिसकी मग्नता होती है वह पुरुष केवल ज्ञाता द्रष्टा रहने का पौरुष करता

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है। वह राग प्रवृत्तियों में नहीं फंसता। हम सबको यदि आत्महित चाहिये तो इतनी प्रतीति जरूर रखें कि हम मनुष्य नहीं हैं, किंतु एक ज्ञानस्वरूप आत्मा हैं। जब हम मनुष्य ही नहीं तो फिर मनुष्य का दूसरे से जो नाता लोक में माना जाता है वह नाता मेरे आत्मा का नहीं है। जगत में कोई भी पदार्थ मेरे को इष्ट नहीं होता। सबका ज्ञाता दृष्टा रहूँ। और कुछ भी पदार्थ अनिष्ट नहीं होता। मैं सबका मात्र जाननहार रहूँ, ऐसी अपने अन्तर में भावना हो और इसका ही यत्न करना हो, ऐसा करते हुए बाह्य पदार्थ कुछ छिदें, भिदें, किसी भी स्थिति को प्राप्त हों तो भी कभी व्यामोह न होना चाहिये कि मेरी तो बर्बादी हो गई। बाह्य पदार्थ किसी भी रूप परिणमे। उससे मेरे आत्मा को रंच भी हानि नहीं है। मेरे में अज्ञान बसे तो मेरी हानि है, और ज्ञान जागृत रहे तो उससे मेरा लाभ है। अज्ञान ही समस्त हानि है और ज्ञानप्रकाश ही समस्त लाभ है, क्योंकि अज्ञान में आकुलता ही रहती है और ज्ञान-प्रकाश होने पर निराकुल दशा ही बनती है। आत्मा का हित आनन्द है। आनन्द निराकुलता में है। निराकुलता अपने कैवल्य के अनुभव में है। मैं सबसे निराला केवल ज्ञानमात्र हूँ। इस अनुभव में ही परम कल्याण है। शान्तिलाभ है। कर्म का प्रक्षय है, सर्व अर्थ की सिद्धि है। अत: सर्व प्रयत्न करके अपना यह ही अनुभव बने कि मैं देह से भी निराला केवल चैतन्यमात्र अन्तस्तत्त्व हूँ।

उपशांत कषाय अन्तरात्मा का परिचय—उपशांत कषाय गुणस्थान में जीव के अवस्थित परिणाम होता है याने दर्शन व चारित्र मोहनीय कर्म जिनके उपशांत हैं उनके भी अवस्थित परिणाम हैं और जो क्षायिक सम्यग्दृष्टि उपशांत कषाय हैं उनके भी वहाँ अवस्थित परिणाम हैं। जब उपशांत कषाय का काल समाप्त होता है तब इस जीव के उपशांत प्रकृतियों की उदीरणा होना शुरू होती है। सो जैसी कृष्टिकरण में सूक्ष्म लोभ को उपशांत किया था वैसी ही कृष्टियाँ सत्ता में तो हैं हीं। अब उस ही क्रम से इसकी उदीरणा होने लगती है। तो सूक्ष्म संज्वलन लोभ की जहाँ उदीरणा हुई कि दशम गुणस्थान हो जाता है। अब इसके बाद फिर यह परिणाम नीचे की ओर गिरता है। इस गुण-स्थान में जीव संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त मनुष्य हो है। मनुष्य के सिवाय दूसरी गति नहीं होती। छठवें गुणस्थान और इससे ऊपर, और मनुष्य के अनूकूल सब मार्गणाएँ समझें, जैसे यहाँ पञ्चेन्द्रिय जाति व त्रसकाय ही है। उपशांत कषाय गुणस्थान में योग ९ ही सम्भव हैं—४ मनोयोग, ४ वचनयोग और १ औदारिक काययोग। यहाँ वेद कोई नहीं है, अपगत वेद है। ९वें गुणस्थान के उत्तरार्द्ध में अपगत वेद हो गया था। कषाय यहाँ सब शांत हैं इसलिये अकषाय भाव है। यहाँ ज्ञान मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधि-ज्ञान तो है ही और द्वितीयोपशम सम्यक्त्व में मनःपर्ययज्ञान भी सम्भव है और क्षायिक सम्यग्दृष्टि उपशांत कषाय में भी मनः पर्यय ज्ञान सम्भव है। संयम यथाख्यात चारित्र है। आत्मा का जैसा स्वरूप है वैसा ही यहाँ प्रसिद्ध हुआ है। पर उपशांत होने के कारण यह विशुद्ध परिणति थोड़े समय ही होती है दर्शन यहाँ तीन हैं—(१) चक्षुदर्शन, (२) अचक्षुदर्शन, (३) अवधिदर्शन, लेश्या केवल शुक्ल लेश्या है। यह जीव भव्य है और सम्यक्त्व में या तो द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि है या क्षायिक सम्यग्दृष्टि है। उपशांत कषाय सम्यग्दृष्टि जीव आहारक ही होता है इसमें मरण नहीं है और मरण हो तो तुरन्त ही चतुर्थ गुण-स्थान हो जाता है, इसका औपशमिक भाव ही है। यहाँ किसी एक दृष्टि से क्षायोपशमिकता सम्भव नहीं है। इस गुणस्थान में पृथक्त्ववितर्कवीचार नाम का शुक्ल ध्यान है। यह वीतराग फिर भी इस उपशांत कषाय में इतनी अस्थिरता है कि द्रव्य से द्रव्यान्तर अथवा गुणपर्याय आदिक का ध्यान विषय परि-वर्तित होता है और योग का भी परिवर्तन होता है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उपशांत कषाय अन्तरात्माओं का अवगाहना, संख्या, क्षेत्र आदि की अपेक्षा परिचय— उपशांत कषाय अन्तरात्मा कर्मभूमिज मनुष्य ही है इस कारण इसकी जघन्य अवगाहना साढ़े तीन हाथ व अधिक से अधिक ५२५ धनुष की होती है। ये जीव मनुष्य लोक के ही अन्दर हैं अतएव क्षेत्र और स्पर्शन लोक का असंख्यातवां भाग है। उपशांत कषाय गुणस्थानवर्ती जीवों की संख्या अधिक से अधिक २९९ है। अधिक से अधिक २९९ जीव ही उपशम श्रेणी में प्रवेश करते हैं और यह ही संख्या ११वें गुणस्थान तक है। क्योंकि ये ही जीव तो ११वें गुणस्थान में आते हैं। उपशांत कषाय का समय अवधि कम से कम एक समय और अधिक से अधिक अन्तर्मुहूर्त होती है। नाना जीवों की अपेक्षा जैसे कि उपशम श्रेणी में सभी गुणस्थानों में है। यहाँ भी समझना। कोई जीव उपशांत कषाय गुणस्थान में प्रविष्ट हुआ और एक ही समय रह पाया और मरण हो गया तो उसके उपशांत कषाय गुणस्थान न रहेगा। चतुर्थ गुणस्थान हो जायेगा। यों एक समय रहा एक जीव की अपेक्षा। इसी भाँति नाना जीवों की भी अपेक्षा से एक समय जघन्य काल है। नाना जीवों का उत्कृष्ट काल है अन्तर्मुहूर्त। इस गुणस्थान में लगातार जीव रहेंगे, मिलेंगे तो अन्तर्मुहूर्त तक ही मिलेंगे। इसके बाद नियम से अन्तर हो जायेगा। उपशांत कषाय गुणस्थानवर्ती जीव का अन्तर कम से कम एक समय याने कोई जीव उपशांत कषाय गुणस्थान में था और अब न मिले। वे सब दसवें गुणस्थान में पहुँच गये, और नया कोई उपशांत गुणस्थान में नहीं आ रहा तो ऐसा अन्तर कम से कम एक समय सम्भव है। दूसरे समय में जीव उपशांत गुणस्थान में आ जाये। अधिक से अधिक अन्तर है उपशांत कषाय का नाना जीवों की अपेक्षा तो पृथक्त्व वर्ष। ३ वर्ष से लेकर ९ वर्ष तक को पृथक्त्व वर्ष कहते हैं। एक जीव की अपेक्षा उपशांत गुणस्थानवर्ती जीवों का अन्तर जघन्य तो एक समय है और उत्कृष्ट से उत्कृष्ट कुछ कम अर्द्धपुद्गल परिवर्तन काल होता है। इसका कारण यह है कि अनादि मिथ्यादृष्टि जीव को जब प्रथम बार सम्यक्त्व का लाभ होता है तो अनन्त संसार छिन्न हो जाता है और अधिक से अधिक अर्द्धपुद्गल परिवर्तन काल रहता है। अब कोई जीव उपशांत कषाय में पहुँचा तो इसमें भी अनेक अन्तर्मुहूर्त लग जाते हैं। फिर भी जीव उपशांत कषाय में न रहा, गिर गया और गिरकर मिथ्यादृष्टि हो गया और वह इस अर्द्धपुद्गल परिवर्तन काल में भ्रमण कर रहा तो जब उसका अन्तिम भव आयगा जिस भव में मोक्ष जायगा वहाँ आखिरी अन्तर्मुहूर्तों में इसका उपशांत कषाय गुणस्थान आये तो ऐसा अन्तरकाल समाप्त हो गया। अब इसके बाद कुछ ही अन्तर्मुहूर्त रहे इसके जीवन में शेष कि ११वें गुणस्थान से गिरकर क्रमशः ७वें तक आये और क्षयोपशम सम्यक्त्व प्रकट करे या क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो, तो सीधे क्षपक श्रेणी माड़कर निर्वाण को प्राप्त करे तो उसका कुछ अन्तर्मुहूर्त यह लग जाता है। यह कितने अन्तर्मुहूर्त होता है? तो ९ अन्तर्मुहूर्त तो उसको पहले लगे थे सम्यक्त्व से लेकर उपशांत कषाय गुणस्थान तक पहुँचने में और अब चिरकाल भ्रमण करे अन्तिम मनुष्य भव के अन्तिम समय में जब उपशांत कषाय पाया, उसके बाद गिरकर फिर चढ़कर मोक्ष जायेगा तो वहाँ १३ अन्तर्मुहूर्त हो जाते हैं। इस प्रकार २२ अन्तर्मुहूर्त से कम अर्द्धपुद्गल परिवर्तन काल उपशांत कषाय एक जीव का उत्कृष्ट अन्तर होता है। इस गुणस्थान में बंध केवल साता वेदनीय का होता है। तो यह बंध नहीं, किंतु ईर्यापथाश्रव है क्योंकि कषाय न होने के कारण इसका स्थिति बंध और अनुभाग बंध नहीं होता। इस प्रकार यह परिणामों से विशुद्ध होकर उपशांत कषाय वीतराग छद्मस्थ हो जाता है, किंतु उपशम काल समाप्त होते ही इसे गिरना पड़ता है। इस प्रकार सत् संख्यादि प्ररूपणाओं द्वारा उपशांत कषाय

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

गुणस्थान का संक्षिप्त वर्णन हुआ।

मुक्ति मार्ग के उपाय के प्रकरण में वस्तुस्वरूप के अधिगम के साधनों की चर्चा - मुक्ति का मार्ग है सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र की एकता। सम्यग्दर्शन नाम है प्रयोजनभूत जीवादिक ७ तत्त्वों का यथार्थ श्रद्धान करना। यह लक्षण व्यवहारनय से है, अभूतार्थ पद्धति से है। और यही जब भूतार्थ पद्धति से जाना जाता है तो इसे कहते है निश्चय सम्यग्दर्शन का कारण। अच्छा तो अब जीवादिक ७ तत्त्वों का सही ज्ञान होना चाहिये। सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र का सही परिचय होना चाहिये। तो वह सब परिचय होता किस प्रकार है उसका वर्णन तत्त्वार्थ सूत्र के पहले अध्याय में है। जीवादिक ७ तत्त्वों के बारे में वर्णन तो दूसरे अध्याय में है, मगर उनको जानना किस तरह चाहिये ? किन उपायों से वह परखा जाता है उन उपायों का वर्णन है पहले अध्याय में। तो सबसे पहली बात कही गई निक्षेप की क्योंकि लोक व्यवहार बिना कुछ जानने समझने का उद्यम नहीं बन सकता। तो पहले ४ निक्षेपों के द्वारा उन सब ज्ञेय तत्त्वों का व्यवहार बन गया। फिर बताया कि प्रमाण और नयों में उन सबका अधिगम होता है। तो अभी केवल करणात्मक उपाय बताया यहाँ, याने सर्वदेश ज्ञान से और नय ज्ञान से पदार्थ का परिचय होता है, पर किस तरह के पदार्थों का परिचय होता है, उन पदार्थों में क्या-क्या विशेषतायें जानी जाती हैं, तब पदार्थ का परिचय कहलाता है, इसके लिये कहा है निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और विधान इन ६ अनुयोगों द्वारा पदार्थ का परिचय होता है। इतना कहने के बाद जिसको और विस्तार से समझना हो उनके लिये यह सूत्र चल रहा है - सत, संख्या, क्षेत्र स्पर्शनकालान्तरभावाल्पबहुत्वैश्च। पदार्थों का परिचय सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्प बहुत्व इन ८ प्ररूपणाओं से अनुयोगों से होता है। तो जब परिचय करने चलें, मानो जीव का ही परिचय कर रहे हैं तो जीव का परिचय होता है गुणस्थान और मार्गणाओं के द्वारा। अब भले ही आजकल की विद्वता और ढंग की चल गई। गुणस्थान मार्गणाओं का तो नाम तक भी नहीं जानते, और अध्यात्म के आधुनिक शिविर में १५ दिन दो बातें सीखकर नेता बन जाते हैं, लेकिन जैन सिद्धांत के इन गुणस्थान मार्गणाओं के परिचय बिना अध्यात्म तत्त्व का स्पष्ट बोध नहीं हो सकता। पहले यह तो जानें कि जीव आखिर होता है कि-किन हालतों में। उन हालतों का तो परिचय करे नहीं कोई और एकदम अनादि अनन्त सहज वस्तु स्वरूप का परिचय कपने लग जाये तो उसे ठीक मार्ग नहीं मिलता। परिचय करना चाहिये प्रत्येक प्रकार से। तो जब व्यावहारिक परिचय बन जाता है तब उन सब तत्त्वों के अन्तर्गत जो सहज एकत्व स्वरूप है उसका परिचय बड़ी ठोस विधि से बनता है।

क्षीणमोह गुणस्थान तक की सामान्य चर्चा — यहाँ व्यावहारिक परिचय कराया जा रहा है मोक्ष शास्त्र में कि जीव १४ प्रकार के गुणस्थानरूप भावों में पाये जाते हैं। कोई जीव मिथ्यादृष्टि है, कोई जीव सम्यक्त्व पाकर सम्यक्त्व अ च्युत होकर मिथ्यात्व में न आ पाने तक बीच के खोटे परिणाम में है। कोई जीव मिथ्यात्व और सम्यक्त्व मिले हुये परिणाम में है तो किसी जीव को सम्यक्त्व हो गया, किंतु व्रत नहीं है, कोई जीव अब श्रावक व्रत में आ गया, कोई मुनि व्रत में आया, महाव्रत में आया प्रमत्त में रहा, फिर अप्रमत्त फिर प्रमत्त यों परिवर्तन हुआ, फिर अप्रमत्त बनकर श्रेणी में चढ़े तो ७वें गुणस्थान के बाद श्रेणि में गया। श्रेणि दो प्रकार की है —(१) उपशम, (२) क्षपक। उपशम

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

श्रेणी में चढ़ने वाला साधक ११वें गुणस्थान तक चढ़ता है, फिर गिरता है ओर क्षपक श्रेणी में चढ़ने वाला साधक मोक्ष ही पायेगा। क्रम से चढ़ते-चढ़ते १४ गुणस्थान को पार करके मुक्ति पायगा। उसके पतन की सम्भावना जरा भी नहीं। तो इस जीव ने शुक्लध्यान द्वारा बढ़-बढ़कर जब समस्त मोहनीय कर्म का क्षय कर डाला, तब क्षीणमोह होता है। मोहनीय कर्मका क्षय होता है तीन स्थानों में। प्रथम तो अनन्तानुबंधी ४ क्रोध, मान, माया, लोभ, तथा मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति इन ७ का क्षय कहीं कर ले चौथे से ७वें गुणस्थान के बीच किसी भी जगह कर ले। अब शेष रही २१ प्रकृतियाँ, उनमें २० का क्षय ९वें गुणस्थान में होता है। रही एक प्रकृति संज्वलन लोभ, उसका क्षय १०वें गुणस्थान में होता है। जहाँ समस्त मोहनीय का क्षय हो चुका वह क्षोण कषाय गुणस्थानवर्ती होता है। इसको बारहवाँ गुणस्थान कहा है यद्यपि बताते तो ऐसा हैं ना कि दसवें गुणस्थान से ११ लांघकर १२वें में आया। किन्तु बात यह है कि जो क्षपक श्रेणी के गुणस्थान में है उसका सिलसिला क्षपक श्रेणी के ही अनुसार है, उसमें उल्लंघन का कोई काम नहीं सूक्ष्मसाम्पराय से क्षीण कषाय आता है लेकिन उपशम श्रेणी में गुणस्थान को पहले बताया तो ८, ९, १० गुणस्थान के बराबर है, और उपशम श्रेणी का ११वाँ गुणस्थान चूँकि उसमें क्षपक श्रेणी वाला होता ही नहीं उपशम श्रेणी में तो वह क्षपक श्रेणी में गुणस्थान नहीं बताया, पर इसके मायने यह नहीं है कि क्षपक श्रेणी गुणस्थान में १०वें के बाद ११वाँ छोड़कर १२वाँ आये। ११वें का भाव आता ही नहीं। मोहनीय का क्षय होते ही वह क्षीण कषाय वीतराग छद्मस्थ हो जाता है। जहाँ समस्त कषायें नष्ट हो गईं वह क्षीण कषाय है।

जिनकल्प क्षीणकषाय गुणस्थान की चर्चा यह किसकी चर्चा कर रहे हैं? उस गुणस्थान की बात कर रहे हैं जिसमें २-४ चुटकी बराबर काल में रहकर भगवान अरहन्त बन जाते हैं। क्षीण कषाय अर्थात् जहाँ समस्त कषायें नष्ट हो गईं वह क्षीण कषाय है। वीतराग छद्मस्थ जहाँ समस्त राग दूर हो गया है वह वीतराग है। और जो ज्ञानावरण दर्शनावरण में अभी भी है उसे छद्मस्थ कहते हैं। छद्मस्थ नाम है उसका जो आवरण में रहे। इस गुणस्थान से पहले के समस्त गुणस्थान छद्मस्थ कहलाते हैं, और छद्मस्थ होते हुये भी यह वीतराग है। दसवाँ गुणस्थान छद्मस्थ तो है, पर यह वीतराग नहीं। कोई ऐसा सोच सकता कि जब क्षीणकषाय कह दिया तो वीतराग तो अपने आप सिद्ध हो गया। जहाँ कषायें न रहीं वह वीतराग। फिर वीतराग अलग से क्यों कह दिया? तो यहाँ वीतराग शब्द अलग से बोलने का यह अर्थ है कि कोई यह न समझे कि नाम का ही वीतराग है या स्थापना का ही यह वीतराग है या द्रव्य निक्षेप से याने वीतराग होने के सम्मुख है इसलिये वीतराग है ऐसा कोई न समझे किंतु यह भाव निक्षेप से वीतराग है, एवंभूत से वीतराग है अर्थात् निरन्तर रागद्वेष रहित शुद्ध परिणति इसकी चल रही है ऐसा क्षीण कषाय, वीतस्थान छद्मस्थ का सत् प्ररूपणा द्वारा वर्णन सुन रहे हैं। कषाय भाव क्या चीज है? कषाय जीव की चीज नहीं, जीव में कषाय करने का गुण नही। इसमें तो उपयोग गुण है, उपयोग लगायेगा, ज्ञेय बनेगा हर एक कुछ, पर जहाँ क्रोध, मान, माया, लोभ कर्म प्रकृति का विपाक हो उस कर्म विपाक के समय में ही कोई उस प्रकार के अनुभाग का विस्तार हुआ कि उस अंधकार से आछन्न होकर उपयोग ने उसको स्वीकार किया, उसके विषयभूत में उपयोग जोड़ा, बस ज्ञान विकल्प के माध्यम से यह जीव कषायवान कहलाया। कषाय करने का जीव में स्वरूप नहीं है। उस ज्ञान विकल्प में आने वारी कषायों की बात भी जहाँ न रही, न उसका संस्कार

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रहा, न कभी कषाय उपयोग में आ सकती है, ऐसे पवित्र अन्तरात्मा को कहते हैं क्षीण कषाय। आचार्य सन्तों का इस प्रसंग में यह प्रतिपादन है कि ये गुणस्थान बनते हैं श्रद्धा, चारित्र और योग के निमित्त से, याने इसका नामकरण हुआ है इन तीन बातों से। कहीं श्रद्धा खराब, कहीं श्रद्धा से च्युत हुआ, कहीं श्रद्धा में मिलावट, तो कहीं श्रद्धा है चारित्र नहीं। इस तरह श्रद्धा के निमित्त से अथवा दर्शनमोह के उदय उपशम आदि के निमित्त से, तो चौथा गुणस्थान तक बना प्रारम्भ में। अब पांचवें से लेकर १२वें गुणस्थान तक जीवों का नामकरण हुआ है चारित्रमोह के सम्बन्ध से। कहीं चारित्रमोह का क्षय है, कहीं उपशम है कहीं क्षयोपशम। ऐसा ५वें से १२वें तक जीव के चारित्रगुण के प्रसंग में नाम पड़ा हुआ है। तो यहाँ चारित्रमोह का अत्यन्त क्षय हो चुका, इस कारण यह चारित्र मोह के निमित्त से यह नाम पड़ा है। क्षीणकषाय बारहवाँ गुणस्थान। अब आजकल लोग जो जैन धर्म के ग्रंथों को तो पढ़ते नहीं, तो यों झूठ बोल जाते हैं जरा अपनी आध्यात्मिकता को भावना में कि इसे तो बारहवाँ गुणस्थान है। अगर कोई पढ़ने वाला सुने तो वह तो भीतर ही भीतर हँसे। तो यह जीव के सम्यक्त्व की बहुत बड़ी महिमा है। पहले यह चौथा गुणस्थान ही तो ठीक ठीक बन जाय। बारहवाँ गुणस्थान तो वह है जिसमें २-३ चुटकी बजाने में जितना समय लगता है उसके बाद भगवान बन जायेगा।

क्षीणकषाय गुणस्थान की वीतराग छद्मस्थता – क्षीणकषाय गुणस्थान में देखिये, कषायें क्षीण हो गईं, पर अभी योग क्षीण नहीं हुआ। जीव के साथ दो आपत्तियाँ हैं—(१) कषाय और (२) योग। ३ कह लोजिये — (१) मोह (२) कषाय (३) योग। मोह से श्रद्धा बिगड़ती है। कषाय से यह जीव आपे से बाहर अपनी प्रवृत्ति करता है। और योग से जीव के प्रदेश में परिस्पंद होता है तो चूँकि यहाँ कषाय कुछ न रही; इस कारण कर्म का बन्ध तो नहीं है मगर आश्रव चल रहा है। इसे कहते हैं ईर्यापथाश्रव। मात्र साता वेदनीय का आश्रव है। चूंकि बन्ध के ४ भेद किये हैं (१) प्रकृति बन्ध (२) प्रदेश बन्ध (३) स्थिति बन्ध और (४) अनुभाग बन्ध। तो प्रकृति और प्रदेश तो एक आश्रव के ढंग से हैं। वे योग से होते हैं और स्थिति अनुभाग कषाय से होते हैं। तो यहाँ प्रकृति प्रदेश की अपेक्षा बंध नाम से भी कह दो कि यहाँ केवल साता वेदनीय का बन्ध होता है। देखो यह गुणस्थान किसके हैं? पवित्र मुनिराज के। जो ध्यानस्थ हैं, जिन्होंने आत्मोपयोग को आत्मा में मग्न कर रखा है, जिनके अब विकल्प नहीं चल रहे हैं, किसी भी प्रकार का अबुद्धिपूर्वक भी विकल्प नहीं है। किसी प्रकार का परिवर्तन और हलन चलन भी नहीं है उपयोग में ऐसा निश्चल ध्यान वाला यह कहलाता है क्षीणकषाय वीतराग छद्मस्थ।

आर्तध्यान की विपत्तिरूपता—ध्यान १६ प्रकार के होते हैं ४ आर्तध्यान, ४ रौद्रध्यान ४ धर्मध्यान और ४ शुक्ल ध्यान। इष्ट का वियोग होने पर इष्ट की याद करना उसके मिलाप की मन में बात रखना यह सब इष्ट वियोगज आर्तध्यान कहलाता है। आर्तध्यान का फल संसार भ्रमण है। संक्लेश है, जन्म मरण है। किसी अनिष्ट पदार्थ का संयोग हो गया तो वहाँ उस अनिष्ट का निवारण कब दूर हो, कब हटे, क्यों मिला, इस तरह की भोतर में शल्य होना सो अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान है। आर्तध्यान रौद्रध्यान संसार के करण हैं। कोई शरीर में वेदना हो तो उस वेदना पर बड़ा दिल रखना हाय यह हो गया, मैं तो बरबाद हो गया, कोई काम का न रहा, मेरी दुनिया लुट गई, मैं नष्ट हो रहा, शरीर की वेदना का इतना अधिक महसूस करना यह वेदना प्रभव आर्तध्यान है। शरीर निराला मैं निराला। जब इससे मेरा सम्बन्ध नहीं, फिर शरीर में कोई रोग हो, वेदना हो तो उसका क्यों क्लेश

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

महसूस होता है ? तो स्पष्ट उत्तर है कि कुछ लोग तो ऐसे हैं कि भेदज्ञान की बात मुख से बोलते हैं, पर होता नहीं है। कुछ लोग ऐसे हैं कि भेदविज्ञान हो तो गया किंतु पूर्व संस्कार सताता है सो कुछ लगाव और प्रेम चल रहा है, पर जिसका भेदविज्ञान दृढ़ है और भेद विज्ञान से पृथक् करके निज अन्तस्तत्त्व का आश्रय लिया है उनके सिर पर सिगड़ी जले, उनको शेर खाये, स्यार खाये, कुष्ट से अंग-अंग गल जाये, कैसा ही उपसर्ग हो उनके उपयोग में क्षोभ नहीं होता। तो देखिये कितनी बढ़िया दवा निकली। लोग तो रोग से परेशान होकर बहुत से डाक्टर बुलाते और उसमें ही दिल दर्द, उसका ही प्रसार, कितना क्षुब्ध वातावरण में रहते हैं और कुछ लोग तो खुद को रोग न हो और अपने कुटुम्ब के किसी को रोग हो तो उसमें भी ऐसा अनुभव करने लगते हैं जैसे मानलो मुझको ही रोग हो रहा। मगर जिनके मोह गला उनके अन्तरंग में स्पष्ट चेतना रहती है। तो जिन जीवों के अज्ञान छाया है उनके वेदनाप्रभव आर्तध्यान होता है। देखिये वेदनाप्रभव आर्तध्यान इसकी विजय अन्य आर्तध्यान से कुछ कठिन है। निदान नाम का आर्तध्यान तो पूरी बेवकूफी है, और इष्ट वियोगज अनिष्ट सयोगज आर्तध्यान की मध्यम बेवकूफी है और वेदनाप्रभव आर्तध्यान की हल्की बेवकूफी है। जीव का देह के साथ घनिष्ट सम्बन्ध है जो मुनिजनों को भी कभी-कभी इस वेदना से कोई उपयोग में बात आ जाती है, लेकिन उनकी श्रद्धा और सकल संयम में बाधा नहीं आती और फिर जिनमें मिथ्यात्व ही चल रहा है उनके तो वेदनाप्रभव की बहुत ही अधिक स्थिति हो जाती है। निदान आर्तध्यान अपने लिये ध्यान में किसी चीज की वाञ्छा रखना, मेरे को स्वर्ग मिले, मैं धनी बनूँ आगे के लिये और कल के लिये भी कुछ भी चाह रखना, मेरे को इतना नफा हो, अमुक हो, किसी भी प्रकार की आशा बनाना वह सब निदान है। अब उसमें भेद कर दिया गया कि जो संसार निमित्तक विषयनिमित्तक निदान है वह तो है अप्रशस्त निदान और जो धर्म से सम्बन्ध रखता हो, मेरे को धर्म का समागम मिले। भविष्य में यह धर्ममत छूटे, धर्मरहित क्षेत्र में मेरा जन्म न हो और धर्म का प्रसंग मिले, ऐसी बात सोचे वह प्रशस्त निदान कहलाता है, पर प्रशस्त हो चाहे अप्रशस्त, निदान नाम का आर्तध्यान उन तीनों से विकट चीज है, क्योंकि उपयोग बाहर खिंचकर ऐसा लगा रहता है कि वहाँ आत्मा की सुध में भी फर्क पड़ जाता है। आर्तध्यान छूटे, रौद्रध्यान छूटे तो कोई अपनी प्रगति करता है।

रौद्रध्यान की बिडम्बना आर्तध्यान में तो संक्लेश होता है और रौद्रध्यान में सुख होता है। कौन सा सुख ? मूर्खता का सुख, वैषयिक सुख, असार सुख, माना हुआ सुख। जैसे किसी जीव की हिंसा करके आनन्द मानना। साँप मार दिया, वाह, वाह कितना लम्बा साँप, कैसा काला, कैसा मार दिया, यों समर्थन करना, मारना, मराना, इसमें आनन्द मानना सो हिंसानन्दी ध्यान है। कभी बात ही बात कर रहे हैं और दूसरे को सताने के भाव से कोई मजाक कर रहे हैं वह भी एक हिंसानन्द है। अब आप सोचिये – ऐसे छोटे-छोटे प्रसंग कितने आते हैं। जब-जब यह जीव मौज मानता है तब-तब रौद्रध्यानी बन रहा है। इस पर विपत्ति आये तो यह भयंकर रौद्रध्यान दूर हो, या ज्ञान आये तो दूर हो, लेकिन इसे कुछ आराम अगर मिले तो बस चार रौद्रध्यान में बढ़ जाता है। रौद्रध्यान में दूसरे की कुछ फिक्र ही नहीं रहती है कि इनको क्लेश होगा, दुःख होगा, ये भी जीव हैं। बस अपने मौज को पुष्ट करते हैं। मृषानन्द रौद्रध्यान में झूठ बोलकर आनन्द मानते हैं। चुगली करना, निन्दा करना, झूठ बोलना यह मृषानन्द रौद्रध्यान है। आर्तध्यान से तो जीव की उतनी दुर्गति नहीं होती जितनी कि रौद्र-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ध्यान से। रौद्रध्यान को मुख्यतया नरकगति बतलाया है। जब रौद्रध्यान की बड़ी सूक्ष्मता देखिये। पास बैठे हैं, मजाक हो रहा है, निन्दा हो रही, मान रहे, लग रहा कि हम बड़े अच्छे चल रहे, अच्छा बोल रहे, मगर कितना पापबन्ध हो रहा, इसकी उसे सुध नहीं। रौद्रध्यान की सारी कलई जान जाये तब तो यह निर्णय होता है कि हमें तो देवता सा बना चुप बैठना चाहिये नहीं तो पद-पद पर पाप है। चौर्यानन्द–चोरी करने में आनन्द मानना, चोरी कराने में आनन्द मानना, चोरी की चीज लेने में आनन्द मानना। कितना हर्ष मानते, अजी कितना अच्छा टेपरिकार्डर है, टैक्स चुराकर लाये गये को भला मानना या बस मौका लगाया मार ले गये। बड़ा मौज मानते, और और ऐसी चीजें हैं, और फिर घर में झूठा लेख, खोटे लेख, अनेक बातें, क्या कही जायें? निरन्तर चौर्य में चित्त रहता है। विषय संरक्षणानन्द क्या है? पञ्चेन्द्रिय के विषयों की, साधनों की रक्षा करते हुए आनन्द मानना ये सारी बातें हैं। यह नहीं जानते कि रौद्रध्यान का फल कितना भयंकर है, जब विवाह होता है, बारात चढ़ती है तो शायद वह दूल्हा अपने को राष्ट्रपति से कम नहीं मानता होगा। यह भी क्या चीज है? एक गर्व। लेकिन और कुछ वर्ष व्यतीत होने के बाद झगड़ा झांसा जिनमें शुरू हुआ उनकी तो कहानी ही क्या है? और जहाँ अच्छी तरह रह रहे वहाँ भी पद-पद पर दुःख हैं। विषयसंरक्षणानन्द में महान कालुष्य है। धन वैभव का परिमाण नहीं रख सकते, परसंग में लालसा लगी है, और छुपाकर भी धन रखते हैं, जब तक किसी को पता नहीं तब तक भी क्लेश और पता पड़ गया, वहाँ भी क्लेश। जिस उदय से हम मनुष्य हुये हैं यह निश्चित बात है कि उसमें इतना पुण्य गर्भित है कि हम जीवन में भूखे प्यासे नहीं रह सकते। और कभी हो भी जाये ऐसा तीव्र पाप का उदय तो वह विरला है, साम्यवाद आ गया, आने दो, सब पर आयेगा, सब जिन्दा रहेंगे। डरना क्या? मगर जिनके धन में तृष्णा है उनको भय लगा है। तो जितना भय है वह सब विषयसंरक्षण से है और उसमें आनन्द मानना सो विषय-संरक्षणानन्द रौद्रध्यान है। तो ये ४ आर्तध्यान, ४ रौद्रध्यान, ये तो संसार के हेतु हैं और धर्मध्यान और शुक्लध्यान ये मोक्ष के हेतु हैं।

धर्मध्यानी के शुद्ध अन्तस्तत्त्व की रुचि की महिमा—देखो रुचि की बात है। धर्मध्यान एक शुभोपयोग का ही वातावरण है और उस धर्मध्यान में दो कलाएँ पाई जा रही हैं। उसके साथ राग लगा है और उसके साथ शुद्ध तत्त्व की दृष्टि भी लगी है। ऐसा एक मिश्र स्थिति में धर्मध्यान होता है। तो जिसको शुद्ध तत्त्व की रुचि है और धर्मध्यान से गुजर रहा है उसका धर्मध्यान छूटेगा तो जरूर मगर हेय मानकर नहीं छूटता। और, जिसको शुद्ध तत्त्व में रुचि नहीं है उसके तो पहले से ही छूटा हुआ है। उसमें चढ़कर तो नहीं छूट रहा। तो एक उस उपादेयत्व के अंश पर दृष्टि न रह कर हेय के अंश पर दृष्टि रहती है। अरे भाई शुभोपयोग करने वाले को उपदेश है कि यह हेय है। इसमें लीन मत हो, पर शुभोपयोग से अलग रहने वाले को उपदेश नहीं है कि यह हेय है। सीढ़ी पर पैर रखने वाले को उपदेश है कि यह सीढ़ी हेय है, छोड़ो आगे बढ़ो, पर सीढ़ी से नीचे रहने वाले को यह उपदेश नहीं है कि सीढ़ी हेय है। अगर हेय है तो नीचे पड़े रहो। चढ़ने वाले को उपदेश है कि हेय है, ऐसे ही शुभोपयोग में जो क्रम में आता है शुद्ध तत्त्व की रुचि में उस शुभोपयोग में सराग चारित्र जोकि आना ही पड़ता है। आता ही है और उसमें से गुजर रहे हैं उनके लिये यह शिक्षा है कि यह हेय है। हेय है के मायने नीचे गिरने के लिये नहीं, किंतु ऊपर चढ़ने के लिये हेय है। तो धर्मध्यान को इसी कारण मोक्ष का हेतु बताया। मोक्ष शास्त्र ग्रंथ में स्पष्ट बता दिया ना, पूरे मोक्ष हेतु अन्त के दो ध्यान मोक्ष के

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कारण हैं। तो उनमें यह विभाग तो बनावें कि यह साक्षात् मोक्ष हेतु है। यह परम्परा मोक्ष हेतु है। यह इतनी परम्परा से मोक्ष हेतु है। ऐसा विवेक बनना तो सुगम है मगर परम्पर्या मोक्ष हेतु है। इसको न सह सकने के कारण यह साक्षात् संसार का हेतु है। इतना अनुमान है कि उसका मोक्ष मार्ग में अनुराग का अंश नहीं है। आप को अगर किसी मित्र से राग है, आप अगर उसके पास बैठे हैं और उसकी कमीज में खटमल चढ़ रहा है तो आप बड़े आराम में उसका खटमल भी अलग कर देते हैं। इतना आपको उस मित्र से लगाव है, अनुराग है। तो इसी प्रकार जिसे शुद्ध तत्त्व में गहरा अनुराग है वह शुद्ध तत्त्व के प्रसंग में जिसको उस शुद्ध तत्त्व की प्रकट पर्याय में, उस शुद्ध तत्त्व की चर्चा में, शब्द में, उस शुद्ध तत्त्व की सिद्धि में जो प्रवृत्तियाँ हैं उनमें भी अनुराग है। ये सब शुद्ध तत्त्व के अनुराग के द्योतक हैं न कि उन पर्यायों के अनुराग के द्योतक हैं। जैसे आज्ञाविचय धर्मध्यान भगवान की आज्ञा की आज्ञा मानकर वस्तुश्रद्धा होना, यहाँ पर भी कोई आज्ञा से ही नहीं है ध्यान, किंतु वास्तविक तत्त्व की श्रद्धा है, पर उसकी विधि आज्ञा प्रमुखता के ढंग से चलती है। अपायविचय संसार के हेतुभूत रागादिक का विनाश हो इस ओर ध्यान है। संस्थानविचय लोक और काल की रचना का बुद्धि में चित्रण बना रहना, उससे वैराग्य पुष्ट होता है। इतना बड़ा लोक, उसके सामने यह आप का छोटा सा नगर या छोटा सा परिचित क्षेत्र कितना है? समुद्र में बूंद बराबर भी नहीं। इतने में मोह बनाकर क्यों जिन्दगी व्यर्थ में गुजारी जाय? यह प्ररणा मिलती है इतना बड़ा अनन्तकाल जिसके सामने १०-२०-५० वर्ष क्या गिनती रखते। इतने समय के लिये मोह करके क्यों बेवकूफ बनते? यह प्रेरणा मिलती है। विपाकविचय कर्म फल का चिन्तन करना कैसा होता है? क्या करता है कर्म? और किस तरह जुटते हैं तो फल मिलता है। धर्मध्यान से परे होकर पहले शुक्लध्यान में आये जहाँ योग संक्रमण है, विषय परिवर्तन है, योग परिवर्तन है, लेकिन जब यह जीव १२वें गुणस्थान में प्रवेश करता है तो प्रथम प्रथम तो पृथक्त्व वितर्कवीचार शुक्लध्यान होता है, पर झट एकत्ववितर्क अविचार शुक्लध्यान होता है। अब यह अन्तरात्मा जिस योग में, जिस लक्ष्य में यह ध्यानस्थ हुए वह पलटेगा नहीं, उसके साथ ही साथ अब सारे जगत का भी ज्ञान हो जायेगा।

क्षीणमोह गुणस्थान में कर्मप्रकृतियों की दशा का संक्षिप्त चित्रण—क्षीणमोह गुणस्थान केवल साता वेदनीय का आश्रव कर पाता है और उदय यहाँ अब ५७ प्रकृतियों का है। जो प्रकृतियाँ इससे पहले उदयव्युच्छिन्न हो गईं उनका अभाव और उपान्त्य समय में निद्रा प्रचला भी दूर हो जाती है तब केवल ५५ प्रकृतियों का उदय अन्त में है। इस गुणस्थान में सत्त्व १०१ प्रकृतियों का है। इससे पहले ९वें गुणस्थान में १०वें गुणस्थान में और क्षायिक सम्यक्त्व के प्रसंग में ७ प्रकृतियाँ सब मिलकर ये सारी प्रकृतियाँ ४७ हैं, इनका सत्त्व नहीं है। देखो चर्चा चल रही है पर्यायरूप से कारण परमात्मा की। परमात्मस्वरूप कारण परमात्मक्त्व, जिसे कहो कारण समयसार। कारण समयसार एक द्रव्य-दृष्टि से निरखा जाता है, एक पर्याय दृष्टि से निरखा जाता है। तो द्रव्यदृष्टि का कारण समयसार तो अनादि, अनन्त हैं। प्रत्येक जीव में अपने ही सत्त्व के कारण अपने ही सहज भाव में वह कारण समयसार है, किन्तु पर्यायरूपकारण समयसार होता है १२वें गुणस्थान में अर्थात् जिसके बाद फिर वीतराग सर्वज्ञ अरहन्तदेव हो जाता है। यह १२वें गुणस्थान की चर्चा चल रही है। यह जीव अब अन्तिम समय में ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इन तीन प्रकृतियों का क्षय करके अरहन्त बनेगा। मोहनीय का क्षय तो श्रेणि से पहिले हो चुका था, बची तीन घातियां उनका यहाँ क्षय करेंगे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो ४ कर्मों का अभाव होने से यह सयोग केवली अरहन्त होगा। तो इस गुणस्थान में इन तीन कर्मों की स्थिति कितनी रह जाती है? अन्तर्मुहूर्त। अभी जो शेष अघातिया कर्म हैं उनमें आयु की स्थिति तो जितनी है सो है पर शेष तीन अघातिया कर्मों की स्थिति हजारों वर्ष रहती है। उसका उपाय बनेगा केवली समुद्घात में कि कैसे उन तीन अघातिया कर्मों की स्थिति कम हो?

क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती जीवों का व्यावहारिक परिचय—क्षीण कषाय गुणस्थान संज्ञी-पञ्चेन्द्रिय पर्याय जीव के ही होता है। यह गुणस्थान क्षपक श्रेणी में है, जिस गुणस्थान के बाद अरहंत भगवान होते हैं। वह गुणस्थान एक विशिष्ट होनहार जागृत मनुष्य के ही होता है। यहां पर्याप्तियाँ छहों परिपूर्ण हैं। प्राण दस हैं। संज्ञा यहाँ एक भी नहीं है। आहार, भय, मैथुन, परिग्रह इन संज्ञाओं का कुछ भी संस्कार नहीं रहा। केवल मनुष्यगति में ही यह गुणस्थान होता है। पञ्चेन्द्रिय जाति में ही यह गुणस्थान होता। इस गुणस्थानवर्ती जीव के त्रसकाय ही है। योग ६ सम्भव हैं—(१) सत्यमनोयोग (२) असत्य मनोयोग (३) उभय मनोयोग (४) अनुभय मनोयोग। ये चार मनोयोग इसी प्रकार चार वचन होते हो तो और एक औदारिक काययोग ये ६ ही सम्भव हैं। यहाँ उभयमनोयोग, उभयवचनयोग केवलज्ञान न होने की अपेक्षा से है। वीतराग हो गया। अब वहाँ असत्य संस्कार का किसी प्रकार भी सम्भवपना नहीं, लेकिन केवलज्ञान नहीं है, समस्त विश्व का ज्ञान नहीं है इस अपेक्षा से उभय मनोयोग, उभय वचनयोग की कल्पना है। वेद यहाँ कोई नहीं रहता। वेदों का क्षय ९वें गुणस्थान में हो जाता है। कषाय भी कोई न रही। कषाय का भी विध्वंस ९वें और १०वें गुणस्थान में होता है यह पूज्य पुरुष क्षीण कषाय है। ज्ञान ४ सम्भव हैं—१- मतिज्ञान, २- श्रुतज्ञान, ३- अवधिज्ञान ४- मनःपर्ययज्ञान। कोई जीव केवल दो ज्ञानों का ही धारी है। न हो अवधिज्ञान, न हो मनःपर्ययज्ञान तो ऐसे जीव को भी केवलज्ञान की प्राप्ति सम्भव हैं। कोई जीव मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान इस प्रकार तीन ज्ञान का धारी होता है जिसमें ये तीन ज्ञान सम्भव हैं। किसी जीव के इस प्रकार तीन ज्ञान सम्भव हैं कि मतिज्ञान, श्रुतज्ञान अथवा मनःपर्यय और कोई मुनि मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान इन चार ज्ञानों का पात्र है। उपयोग की अपेक्षा से एक समय में एक ही ज्ञान है, किंतु योग्यता की अपेक्षा से यहाँ चारों ज्ञान सम्भव हैं। क्षीणकषाय गुणस्थान में यथाख्यात चारित्र संयम प्रकट होता है। जैसा जीव का स्वरूप है निर्दोष रागादिक भावरहित वैसा उपयोग बन गया है। यहाँ उपयोग में राग का लेश भी नहीं हैं विशुद्ध उपयोग है। इस गुणस्थान में ३ दर्शन संभव हैं। चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन। जो जीव अवधि ज्ञानी है उसके अवधिदर्शन है, जिसको अवधिज्ञान नहीं है उसके चक्षु और अचक्षु ये दो ही दर्शन हैं। लेश्या यहाँ शुक्ल लेश्या ही है। कषाय का अभाव हो गया अतएव कषाय की अपेक्षा यहाँ कुछ नही तक सकते, योग है जिसके कारण यहाँ लेश्या मानी गई है। चूँकि परिणाम अत्यन्त विशुद्ध है इसलिये शुक्ल लेश्या कही गई है। यह जीव भव्य है। थोड़े ही समय में केवलज्ञानी होने वाला है। इसके क्षायिक सम्यक्त्व ही है। अन्य सम्यक्त्व से १२वाँ गुणस्थान प्राप्त होता। क्षपक श्रेणी का प्रारम्भ ही क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव के होता है। क्योंकि क्षपक श्रेणी में आया हुआ जीव नियम से अरहन्त बनता है और सिद्ध बनता है। यह जीव संज्ञी है। और अभी यहाँ मन का कार्य चल रहा है जो अत्यन्त विशुद्ध रूप से है। यह जीव आहारक ही है। इस तरह यहाँ पूज्य उत्कृष्ट अन्तरात्मा सर्वयोग्यताओं से सम्पन्न है। और तब ही यह अल्प अन्तर्मुहूर्त बाद ही केवलज्ञान उत्पन्न करेगा। इस गुणस्थान में कुछ समय तक तो पृथक्त्व वितर्कवीचार नाम का प्रथम शुक्ल ध्यान होता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है। अल्प समय ही होता है। पश्चात् एकत्व वितर्क अवीचार शुक्लध्यान होता है। और अन्तिम समय तक अर्थात् गुणस्थान के अन्तिम समय तक यह ही द्वितीय शुक्लध्यान रहता है। इस शुक्लध्यान में परिवर्तन जरा भी नहीं है। जिस योग से, जिस लक्ष्य से, जिस जल्प से ज्ञान होता है वही ज्ञान रहता है। जब यह शुक्लध्यान समाप्त होता है तो तुरन्त केवलज्ञान उत्पन्न होता है। वहाँ भावमन भी नहीं रहता।

क्षीणकषाय गुणस्थान के क्षेत्र स्पर्शन काल अन्तर का विवरण—यह क्षीणकषाय उत्कृष्ट अन्तरात्मा ढाई द्वीप के अन्दर रहता है। जोकि लोक का असंख्यातवां भाग क्षेत्र है। और इतना ही उनका स्पर्शनस्थान है। क्षीणकषाय गुणस्थान का काल अन्तर्मुहूर्त है एक जीव व नाना जीवों की अपेक्षा। क्षीणकषाय गुणस्थान का नाना जीवों की अपेक्षा अन्तर है, एक जीव की अपेक्षा अन्तर नहीं, क्योंकि कोई भी क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती जीव क्षीणकषाय गुणस्थान में न रहकर फिर क्षीणकषाय बने यह सम्भव नहीं। वह तो नियम से निर्वाण पायेगा, जहाँ से लौटना असम्भव है। हाँ नाना जीवों की अपेक्षा अन्तर है। तो कम से कम एक समय न रहे, कोई एक समय को १२वाँ गुणस्थान वाला जीव कोई न रहे और अगले समय में हो जाये तो यह जघन्य अन्तर एक समय का रहा अथवा अधिक से अधिक अन्तर ६ माह तक रहता है। ६ माह के बाद याने यदि उत्कृष्ट अन्तर ६ माह का पड़े तो अगले ८ समय में ६०८ जीव मुक्त हो जाते हैं याने ६ माह ८ समय में ६०८ जीव का मुक्ति में जाना और निगोद से निकलना यह एक नियमित परम्परा बताई गई है यद्यपि सम्यग्दृष्टि जीव सम्यक्त्व के प्रसाद से कृतकृत्य कहलाता है, किंतु वास्तविक कृतकृत्य इस क्षीणकषाय गुणस्थान के अन्तिम समय में होता है। जब यह कृतकरणीय हो जाता है तब ज्ञानावरण की ५ प्रकृतियाँ और दर्शनावरण की शेष ४ प्रकृतियाँ और अन्तराय की ५ प्रकृतियाँ इन सबके उदय का भी और सत्त्व का भी एक साथ वियोग हो जाता है। इन घातिया कर्मों के नष्ट होते ही यह जीव सयोग केवली बन जाता है। जिस जीव ने सम्यक्त्व दशा में कषायरहित अन्तस्तत्त्व की आराधना की है, ज्ञानमात्र सहज ज्ञानस्वरूप केवल ज्ञान-रूप आत्मा की आराधना की है। उनको कषायरहित अवस्था यह प्रकट हुई है। इसको पर्यायदृष्टि से कारण समयसार कहा है।

कारणसमयसार का संक्षिप्त निर्देश—द्रव्यदृष्टि से कारण समयसार सभी जीव हैं, क्योंकि जीव ही केवल बनता है, सिद्ध होता है। सर्व जीवों में ही यह स्वभाव है कि वह कर्म से मुक्त होकर त्रिलोक त्रिकालवर्ती समस्त सत् का ज्ञाता बन जाये तो चूँकि ऐसा स्वरूप सब जीवों में है। अतः सभी कारणसमयसार कहलाते हैं। भव्य ही नहीं किंतु अभव्य जीव भी कारणसमयसार है। यद्यपि अभव्य जीवों को कभी भी कार्य समयसारपना प्रकट न हो सकेगा। लेकिन हैं तो वे चेतन। चैतन्यस्वरूप हैं, उसे चैतन्यस्वरूप के नाते पात्रता, स्वरूप, स्वभाव वही माना जायेगा जो समस्त जीवों का है। जैसे मिट्टी में योग्यता घट बनने की कही जाती है। अब चाहे किसी मिट्टी में घट बनना सम्भव न हो तो भी चूंकि मिट्टी ही है और मिट्टी में घड़ा बन सकता है अतः योग्यता की अपेक्षा सब में घट-पात्रता कही जा सकती है। मेरुपर्वत के जड़ में रहने वाली मिट्टी क्या उस स्कन्ध से किसी प्रकार यहाँ घड़ा बन सकता ? न बने घड़ा तो भी मिट्टी है। योग्यता तो उसके अन्दर है, इसी प्रकार कारण-समयसारपना समस्त जीवों में है। ओघ की अपेक्षा द्रव्यदृष्टि से, लेकिन ऐसी द्रव्यदृष्टि से जो कारण

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

समयसार की बात कही गई है उसकी दृष्टि बने तो उसका प्रयोगात्मक रूप आता है। उसकी दृष्टि नहीं बनती तो प्रयोगात्मक रूप नहीं आ सकता। तो इस तरह यह जीव ओघशक्ति की अपेक्षा जो कारणसमयसार है उस स्वरूप को अनुभव में लेकर इन्द्रिय को जीतता है। कषायों पर विजय करता है, कषायों को नष्ट करता है, और क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती हो जाता है। इन्द्रिय विषयों का जीतना भी कषाय का विजय है। फिर भी जीवों में चूँकि विषय व्यामोह की विशेषता पायी जाती है, अतएव कषाय में गर्भित होने पर भी विषयों को आचार्य संत अलग से निर्दिष्ट करते हैं। विषय जीतो, कषाय जीतो। आत्मा का अहित करने वाले विषय और कषाय हैं। विषय हैं ५। इन्द्रिय के विषय जोकि लोभ कषाय की ही पर्याय है उनको यह जीव जीतता है। द्रव्येन्द्रिय से अपने को पृथक समझकर भावेन्द्रिय से निज ज्ञानतत्त्व को पृथक लखकर और समस्त संग विडम्बनाओं को अपने से पृथक लखकर जब इन्द्रिय विजयी बनता है तो इसकी कषाय पर विजय होती है। कषायों को जीता इसने भावक कर्म विपाक से भिन्न निज उपयोगस्वरूप को निरखकर कषाय विजय के बाद इस ही पद्धति से निरन्तर अभ्यास चलते रहने के कारण कषायें क्षीण हो जाती हैं। फिर उनका संस्कार भी नहीं रहता है। जब ऐसी पवित्र स्थिति बनती है तब उन्हें क्षीणकषाय गुणष्थानवर्ती जीव कहा जाता है।

मोक्षशास्त्र के प्रथम अध्याय में प्रस्तावित तत्त्व के अधिगम के उपाय का वर्णन—मोक्ष शास्त्र सर्व प्रकार से द्रव्यों का परिचय कराने वाला एक अद्भुत ग्रंथ है। जैसे अन्य लोग अपने अपने मजहब का कोई मुख्य ग्रंथ बताते हैं, इस तरह यदि कोई पूछे कि जैन धर्म का कौन सा मुख्य ग्रंथ है तो इसका उत्तर देना कठिन है। उत्तर न बन सकेगा कारण यह है कि वस्तुस्वरूप का विस्तार और लोक काल की घटना यह सब इतने विस्तार में है कि किसी एक ग्रंथ में इनका संकलन नहीं हो सकता। अनेक ग्रंथ बताने पड़ेंगे फिर भी यदि कोई बताने की कोशिश ही करे तो यह कह सकेंगे कि दो ग्रंथ हैं जिनके पढ़ने से जैन शासन के हृदय का परिचय मिलेगा (१) मोक्षशास्त्र (२) समयसार। मोक्षशास्त्र में ८वें सूत्र का यह सब वर्णन चल रहा है। देखिये किसी बड़े काम की प्रस्तावना हो तो वह बड़ी होती है। जैसे किसी बड़े व्यापार और फर्म का काम करे तो उसकी प्रस्तावना में कई वर्ष लग जाते हैं। काम शुरू होता है कुछ वर्ष बाद। तो यहाँ जीवादिक ७ तत्त्वों का परिचय बताने के बात कही गई। उन तत्त्वों का परिचय कराने के लिये पहला अध्याय केवल प्रस्तावना मात्र है। जीव तत्त्व का वर्णन दूसरे अध्याय से शुरू है। अजीव तत्त्व का वर्णन पंचम अध्याय में है। आश्रव का वर्णन छठे और ७वें अध्याय में है। बंध का वर्णन ८वें अध्याय में है। सम्वर निर्जरा का वर्णन ९वें अध्याय में है और मोक्षतत्त्व का वर्णन १०वें अध्याय में है। तो पहले अध्याय में क्या चीज है? सर्व बातों के समझने के उपाय का वर्णन है पहले अध्याय में। कैसे देखो—मूलबात तो सबसे पहले कहनी ही पड़ेगी। तो कहा है सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र का एकत्व मोक्ष का मार्ग है। तो सम्यग्दर्शन क्या, और सम्यग्यदर्शन में बताया प्रयोजनभूत तत्त्वार्थ का श्रद्धान करना। वह तत्त्व क्या? जीवादिक ७ तत्त्व कहा। इतनी बात कहना तो सर्वप्रथम अत्यन्त आवश्यक था। अब इसके बाद जो कुछ कहा जा रहा है वह सब यह कहा जा रहा है पहले अध्याय में कि उन सबको जानने का, समझने का उपाय क्या है? तो सबसे पहले व्यवहार की बात कही कि चार निक्षेपों द्वारा इसका व्यवहार होता है। फिर जानने के उपायों की बात कही कि प्रमाण और नयों के द्वारा इन सबका अधिगम होता है, रत्नत्रय का, जीवादिक ७ तत्त्वों का। जो जो कुछ भी जानने में आया उसका यथार्थ परिचय प्रमाण और नय से होता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है। तो इस सूत्र में तो ज्ञानात्मक उपाय बताया। प्रमाण है, सो ज्ञान है, नय है सो ज्ञान है। जिसका संक्षिप्त अर्थ यह होता है कि ज्ञान द्वारा सबका परिचय होता है। मगर जिनका परिचय करना है उन वस्तुओं की विशेषता भी तो बतानी चाहिये। यह तो ज्ञान के द्वारा परिचय है, परन्तु वस्तुत्त्व की ओर से परिचय में किस किस तरह से वस्तु का परिचय होता है। उसके लिये सूत्र कहा - निदेश स्वामित्व साधनाधिकरणस्थितिविधानतः। इन ६ अनुयोगों द्वारा इन ६ ढंगों से वस्तु का परिचय होता है। अमुक वस्तु है, इसका यह स्वामी है। इसका यह साधन है, यहाँ रहता है, इसकी इतनी म्याद है, इसके इतने प्रकार हैं। तो इन सूत्रों में भी ज्ञानात्मक उपाय और कर्मात्मक विशेषता दो का समन्वय पड़ा हुआ है। अर्थात् कर्म हैं, ज्ञान का जो ज्ञेय है वह जो जानने में आ रहा है। वह किन किन से विशेषित वस्तु है इसका भी परिचय दिया है। तो ऐसा सामान्य का वर्णन करने के बाद जो विस्तार के रुचिया शिष्य हैं उनके लिये इस ८वें सूत्र का अवतार हुआ है। यह आठवाँ सूत्र इतने विस्तार का परिचय कराता है कि इस पर षट्खण्डागम जैसा महान शास्त्र व धवल जैसी महती टीका लिखी गई है। उसमें सत् प्ररूपणा द्वारा सयोग केवली गुणस्थान का वर्णन कर रहे हैं।

सयोग केवली गुणस्थान के स्वरूप का सयोग केवली शब्द ही निर्देश कर देता है। जो योग सहित है और केवलज्ञानी हैं उसे कहते हैं सयोग केवली। देखिये एक की उपलब्धि के लिये कैवल्य का परिचय सबसे पहिले करना होता है, और कैवल्य के परिचय का ही नाम सम्यक्त्व है। आत्मा में स्वयं सहज निरपेक्षतया अपने ही अस्तित्त्व के कारण अपने आप में जो सहज भाव है। जिसका परिणाम हो, मगर जो स्वयं ध्रुव है ऐसा जो पारिणामिक भावस्वरूप ध्रुव अनादि अनन्त अहेतुक तत्त्व क्या है, उस तत्त्व की दृष्टि में आया कि मैं यह हूँ। बस उसको अनुभूति, उसकी प्रतीति, उसकी रुचि ये सब सम्यक्त्व के विलास हैं। तो जिस कैवल्य को इस ज्ञानी जीव ने समझा था और उस ही कैवल्य की धुन में इस ज्ञानी जीव ने उपाय बनाया था वह उपाय क्या है? वह उपाय व्यवहार साधन और निश्चय आराधन दोनों को साथ लेकर बढ़ते चलेंगे। यहाँ इस ज्ञायक स्वभाव की दृष्टि का आनन्द पाया, बड़ा संतोष, बड़ी तृप्ति और बड़ी निर्मलता। तो अब यह जीव उसकी धुन में रहने लगा। लेकिन यह जीव अनादि से, विषयवासना से गिरा हुआ चला आया था और उस कमजोरी के कारण इनमें अभी इतना बल प्रकट नहीं हो सका कि सर्व की उपेक्षा करता, प्रवृत्ति से भी उपेक्षा करता, और अपने इस परमब्रह्म में लीन होता। नहीं कर पाया यह सकल संन्यास। गृहस्थी में रह रहा है तो गृहस्थी में रहकर बाधायें बहुत होती हैं लेकिन ज्ञानी जीव अपनी शुद्ध प्रतीति के कारण उन सब बाधाओं को बाधा नहीं मानता। लेकिन गृहस्थी के नाते वे सारे कार्य करने पड़ते। घर में रह रहा है, बच्चे हैं, कमाई करता है, पालन करता है, धर्म, अर्थ, काम इन तीन वर्गों से उसका सम्बन्ध बनाता है। सब कुछ करता है पर उसकी श्रद्धा कैवल्य के लिये ही है। जिसे कहो उत्कृष्ट गृहस्थ की प्रवृत्ति बनती है कि मूल में श्रद्धा तो है एक कैवल्यस्वरूप की ओर और परिस्थिति ऐसी है कि ये सब प्रवृत्तियाँ करनी पड़ती हैं।

ज्ञानी के रागपरिहरण स्वभाव का दिग्दर्शन—गृहस्थ की प्रवृत्तियाँ दो प्रकार की होती हैं– (१) कामविषयक (२) धर्म विषयक। तो काम के लिये अर्थ की भी आवश्यकता है। तो तीन तरह की प्रवृत्तियाँ इस गृहस्थ की हो गईं। लेकिन यदि एक मुनि पिछी कमण्डल रखता हुआ उससे उपेक्षाभाव रखता है तो एक गृहस्थ बड़े वैभव के बीच बैठा हुआ उस सारे वैभव से उपेक्षा रखता है। लेकिन

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कषाय विशेष है, अप्रत्याख्यानावरण कषाय का वेग इतना प्रबल होता है कि भगवान श्रीराम जैसे मर्यादा पुरुषोत्तम को भी संन्यास से पहले ऐसी प्रवृत्ति में आना पड़ा जिसे देखकर लोग पागल जैसा कहसकते हैं। सीता को रावण हर ले गया तो श्रीराम इतना बेसुध हो गये कि वन में ढूँढ़ते फिरे, वृक्षों से सीता जी को पूछते फिरे। लक्ष्मण की मृत्यु हो गई तो लक्ष्मण के मृतक शरीर को ६ माह तक लिये फिरे। विषय कषायों का आवेग बहुत दुःसह होता है, लेकिन किसी भी प्रकार अन्दर में प्रतीति पड़ी हुई हो तो वह थोड़े ही समय में उन सब बाधाओं को दूर करा देता है। ६ माह से अधिक परेशान नहीं रहे, सकल संन्यासी होकर आखिर भगवान ही बने। तो यह जीव गृहस्थी में रहकर काम अर्थ की भी प्रवृत्ति कर रहा और पूजा पाठ, धर्म, विधान, सत्संग, त्याग, दान आदिक ६ प्रकार के कार्यों में भी लगता रहा, पर सब सब उद्देश्य उसका यही रहा कि सहज ज्ञानस्वरूप ही मैं हूँ। और यह अकेला ही रह जाये, केवल रह जाये तब मेरे को शान्ति हो, तो मेरा उद्धार हो। मेरी आखिरी मंजिल बने। सयोग केवली गुणस्थान की चर्चा कर रहे हैं। उसी प्रसंग को बतला रहे हैं कि जहाँ इस ज्ञानस्वरूप की धुन तीव्र होती है वहाँ सर्व से उपेक्षा हो जाती है और मुनिव्रत धारण करके प्रयोजन न रहा घर से, प्रयोजन न रहा परिजन से, और वस्त्र भी कौन सम्हाले ? प्रयोजन ही न रा, उसका भी विकल्प न सह सका यह आत्मस्वभाव का धुनिया इतना भी विकल्प अब न सह सका, उसे बांधा जानी तो निर्ग्रंथ अवस्था हुई, निरामय निष्परिग्रह अवस्था हुई और एक आत्मध्यान का रुचिया बने। ऐसा जीव छठे, ७वें गुणस्थान में असंख्याते बार आता जाता है।

निर्ग्रंथ साधक के स्वरूप विकास का विलास—निर्ग्रंथ साधक के उस दृढ़ धुन में इसका एक ऐसा विशेष परिणाम बनता है ७वें गुणस्थान में कि वह श्रेणी माड़ता है। ८वाँ, ६वाँ, १०वाँ, १२वाँ गुणस्थान पार करके १३वें गुणस्थान में आता है। हम आप जो मूर्ति मन्दिर में रखे हैं वह सयोगकेवली की मूर्ति है, अरहंत की मूर्ति है। देखते हैं ना, एक दिव्य ध्वनि उससे नहीं खिरती, बाकी समवशरण में जाकर जो वहाँ देखा जा सकता वह यहाँ देख लें। कैसी मुद्रा कि पैर में पैर बांध कर आसन मारे हुए, जिससे लोगों को यह सूचना मिलती है कि कोई जगह जाने के काबिल नहीं है। कहाँ जाना ! इसलिये वह एक जह बैठ गये ? इन हाथों में कोई काम करने लायक नहीं। क्या काम करना ? समग्र वस्तु हैं, उनमें किसी अन्य की परिणति की नहीं जा सकती, और उनमें जो परिणति होती, उनके सम्बन्ध में जो विकल्प बने तो उनसे पूरा पड़ता नहीं, ऐसा जानकर मानो हाथ पर हाथ धरकर बैठे हैं। किसे देखना ? यहाँ कुछ भी वस्तु देखने योग्य नहीं है, इसीलिये यह नासाग्र दृष्टि से स्थिर आसन से बैठे हुये हैं। जिनकी हमने ऐसी मूर्ति बनाया उनकी चर्चा चल रही है कि वे सयोग-केवली भगवान कैसे हैं ? उनका क्या स्वरूप है ? देखो प्रभुस्वरूप जान लेने पर आप के दर्शन करने में अतिशय होगा, पूजन में अतिशय होगा। प्रभु क्या हैं ? प्रभु का अगर संक्षिप्त परिचय पाना है तो इन शब्दों से पा लीजिये कि जिसमें गुण तो पूर्ण प्रकट हैं और दोष रंच नहीं हैं। लोक में भी तो पुरुषों का महत्त्व इसी आधार पर किया जाता ना कि जिसमें गुण अधिक हों और दोष न हों। उसे ही लोग मुख्य करके मानते हैं। सरपंच किसे बनाते जो पक्षपात न करता हो। जिसके लिये घर के लोग और पड़ोस के लोग सब बराबर लग रहे हों ऐसे व्यक्ति को लोग सरपंच चुनते हैं उसकी बात पर गाँव भर के लोगों को विश्वास रहता है और लोग सौंप देते हैं कि यह जो करे हो मंजूर। तो लोक में भी महत्त्वशाली पुरुष की छांट इन दो आधारों पर है जिसमें गुण विशेष हों और दोष न हों। मगर ऐसा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पूर्णतया गुणवान और पूर्णतया निर्दोष कौन पुरुष है कि गुण तो पूर्ण प्रकट हो गये अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त शक्ति। और रागादि दोष लेशमात्र भी नहीं वह है यह प्रभु।

सर्वज्ञता और सहज पूर्ण आनन्द के विकास की पद्धति – ज्ञान अनन्त कैसे बने उसकी एक साधारण पद्धति बतला रहे, बाहर में पदार्थ की जानकारी बना बनाकर कोई पूर्ण ज्ञानी नहीं बन सकता। बाहर में समस्त पदार्थों के ख्यालात छोड़कर केवलज्ञान के स्रोतभूत निज अन्तस्तत्त्व का आश्रय ले, कोई मोटे रूप से सबकी जानकारी छोड़ दे तो उसमें अनन्तज्ञान प्रकट होगा। अब बाहर में पदार्थों की जानकारी करते जाओ, जिन्दगी भर यह जाना, वह जाना। चलो उसे देखा उसे जाना तो जहाँ बाहर में उपयोग रखकर जानने का उद्यम करे वहाँ सर्वज्ञता प्रकट नहीं होती। मीमांसकजनों ने यह ही तो आपत्ति दी एक बार और कहा कि अगर तुम जानने जानने योग करके संग्रह बनाकर किसी को सर्वज्ञ कहो तो वह तो कह लो मगर ऐसा कोई सर्वज्ञ नहीं है जो सारे विश्व को जानता हो। कैसे जान सकता? प्रत्येक चीज को जान जानकर सर्वज्ञ नहीं बनता और इसी तरह से बाहर के इन पदार्थों में इसका आनन्द लें, इसका आनन्द लें, इसका सुख लें, ऐसा सुख जोड़ जोड़कर कोई सुखी भी नहीं बन सकता। अच्छा अब तक इस जीवन में बहुत बहुत तरह से सुख तो भोगा, बताओ उस सुख का संग्रह बन सका क्या? संग्रह तो दूर जाने दो, जितना जितना सुख भोगा उतना रीते बनते गये और कष्ट में आते गये। आज अगर पूछें कि आप को कितना सुख मिला? तो उत्तर यही मिलेगा कि कुछ नहीं। तो सुख का भी संचय भोग विषय इन्द्रिय आदिक में पड़ पड़कर कोई नहीं प्राप्त कर सकता। अनन्त आनन्द भी तब ही प्राप्त होता है कि जब इस बाह्य आनन्द को, औपाधिक सुख को एकदम छोड़ दें तो अनन्त आनन्द का विकास हो सकता है।

प्रभुता की ओर प्रगति का उद्यम —प्रभु ने क्या किया? जब मुनि अवस्था थी तब भी जब श्रेणी में चढ़े तब भी एक इस अन्तस्तत्त्व का आश्रय किया था। परिस्थितियाँ थीं। छठे गुणस्थान में तो आहार करना पड़ता था। धुन चूंकि ज्ञानमात्र अन्तस्तत्त्व की थी तो प्रवृत्ति भी उसके अनुकूल थी, जैसे दोष टालकर आहार करना, दोष टालकर भ्रमण करना, दोष टालकर बोलना, दोष टालकर उठना बैठना, जिससे हिंसा न हो, निर्दोष भूमि पर मलक्षेपण करना, गुप्ति की बात, महाव्रत की बात, सब कुछ करना पड़ता, बीच में आती हैं। जैसे कोई सीढ़ी से चढ़कर सीढ़ी से चढ़ता हुआ आगे की सीढ़ी पर चढ़कर सीढ़ी को छोड़ता हुआ महल में पहुँचता है ऐसे ही यह बात थी कि व्यवहार साधन शुभोपयोग करते हुये शुभोपयोग को छोड़कर और ऊपर विशुद्धि में आकर उसे छोड़कर ऐसा छोड़ते हुए छूटता ही जाता है, क्योंकि धुन है उसकी जिसकी धुन है उसकी विजय है। उसका अन्त में विकास है। वही मात्र रह जाता है। इस तरह इस आत्मध्यान, शुक्लध्यान के प्रसाद से इस सयोगकेवली होने की क्या स्थिति है। आत्मा आत्मा में मग्न है। कैसा हो रहा? तो प्रभु अरहन्त का विहार भी हो रहा। कितनी विलक्षणता है कि विहार हो रहा, पर कदम रखने में विकल्प नहीं। हो कैसे गया? कितनी अलौकिक बात है? कैसा भव्यजनों का भाग्य है कि उनकी दिव्यध्वनि खिरती है। मगर कोई सोचता हो कि जैसे यहाँ वक्ता लोग उपदेश देते हैं। श्रोताजन प्रश्न करते हैं, वक्ता उत्तर देता है ऐसे भगवान उत्तर देते हों, इस तरह का उपदेश वहाँ नहीं है, विकल्प ही नहीं है। भव्यजनों का भाग्य, उनका वचनयोग और पूर्व की भावना का अद्भुत फल कि सर्वांग दिव्यध्वनि खिरती है और लोग उस ध्वनि को सुनकर अपनी बुद्धि माफिक अपनी भाषा में उसकी बात समझ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

लेते हैं वह भी अलौकिक दृश्य होता है। समवशरण में कितनी ही बातें होती हैं। देखते जाओ। निमित्तनैमित्तिकभाव को और वस्तु स्वातन्त्र्य को। ये सयोगकेवली अनादि से, भगवान पहले क्या थे? सबसे पहले निगोद में थे। निगोद से निकले। कुछ भी हो होकर मनुष्य हुये। वहाँ ज्ञान और वैराग्य जगा। मुनि हुए श्रेणि चढ़े अरहन्त हुये।

परिग्रह सम्पर्क की विडम्बना—मोटी सी बात है कि इतनी बात तो सब समझते हैं कि जो मिला है वह रहना नहीं है। इतनी बात का बोध है कि नहीं? जो मिला है वह रहेगा नहीं। शायद इस पर भी विश्वास न हो ऐसे भी लोग हैं। हाँ अपनी चीज के बारे में विश्वास न करें, दूसरे के बारे में तो वे एकदम विश्वास कर लेंगे कि जो है वह रहेगा नहीं। जैसे जो जन्मा है सो मरेगा, इस इस बात का विश्वास लोगों को दूसरों के प्रति तो हो जाता, अपने प्रति नहीं होता है। जो जन्मे हैं वे मरेंगे, पर अपने बारे में ख्याल मुश्किल से बना पाते कि हम भी मरेंगे। दुनिया का तो भेदविज्ञान हो जायेगा क्योंकि ऊपरी ऊपरी है वह सब। पर अपने बारे में यह ख्याल नहीं होता। तो जो मिला है वह सब मिट ही जायेगा तो मिट जाने वाली वस्तु में अधिक श्रम करके, अधिक उपयोग लगाकर अपने जीवन को क्यों निष्फल गंवाया जा रहा है? ज्ञान संस्कार बनाओ देखो जो मिला है आपको वह आपके हाथ पैर की कमाई नहीं है। आप के दिमाग ने नहीं कमाया। आप के पुण्य विपाक है इसलिये अनायास मिल गया। आप देखो जो मिला है वह सब मुफ्त ही मिला है। उसमें आपने कुछगुण भरा है क्या? मुफ्त ही मिला है और मुफ्त ही जायेगा। एक दृष्टांत सुनो! एक चोर था तो उसने सोचा कि हम बड़ी तकलीफ में हैं। कहीं चोरी कर लायें। तो सोचा कि क्या छोटे गरीब लोगों के यहाँ चोरी करना राजा के यहाँ चोरी करें। तो राजा की अश्वशाला में वह पहुँच गया। वहाँ से एक छोटा ठिगना पहाड़ी घोड़ा चुरा लाया और उसे बेचने के लिये किसी बाजार में खड़ा कर दिया। तो वहाँ से कुछ ग्राहक लोग निकले। पूछा—घोड़ा बेचोगे?………हाँ बेचने के लिये तो लाये ही हैं। कितने में दोगे?……९०० रुपये में। सो था तो कोई ३००) की कीमत का पर बताया ९००)। सो ९००) में कौन खरीदे। इस तरह से अनेक ग्राहक लौट गये। एक बार कोई ऐसा ग्राहक आया जो बड़ा पुराना अभ्यस्त था। वह भी पूछ बैठा भाई घोड़ा बेचोगे? ·· हाँ बेचने के लिये तो लाये ही हैं।…कितने में दोगे?…९००) में। उसकी आवाज से ही वह पहचान गया कि यह घोड़ा चोरी का है। सो पूछा—इसमें ऐसी क्या खास बात है जो इसकी इतनी अधिक कीमत है?…अजी इसकी चाल सुन्दर है। इसकी पीठ पर बैठ जाइये तो चाहे सिर पर कंकड़ रखकर बैठो तो भी कंकड़ न हिले।…अच्छा जरा मेरा यह हुक्का पकड़ना, मैं उस पर बैठकर इसकी चाल देखूँगा। यदि चाल पसंद आ गई तो ९००) ही दूंगा। अच्छी बात अब वह हुक्का पकड़ा कर बैठा ही था कि उसे उड़ा ले गया। वह घोड़ा वाला वहीं खड़ा रह गया। वहाँ से फिर वही ग्राहक लोग निकले। पूछा—भाई घोड़ा बिक गया क्या? बिक गया।…कितने में बिक गया?… जितने में लाये थे उतने में बिक गया।…मुनाफा कुछ नहीं मिला?… हाँ, हाँ मुनाफे में मिला यह चवन्नी का मिट्टी का हुक्का। तो ऐसे ही समझिये कि जिसे जो समागम मिला है वह सब यों ही मुफ्त ही तो मिल गया, और मुफ्त ही चला जायेगा। अब उससे कोई पूछे कि बताओ जिन्दगी भर तो खूब धन, वैभव जोड़ा, विकल्प किये, बड़े-बड़े पापकार्य किये। सब कुछ किया पर उससे मुनाफा क्या मिला? तो यही कहेंगे कि मुनाफा में मिला यह पाप का हुक्का।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

निर्विकल्प की कृतिश्रेष्ठता - देखो बताया है गृहस्थ जीवन में कि यह तो पंक है, और इसमें जो पाप बंधता है उसमें तत्काल प्रायश्चित होता है, उसका त्याग, दान, पूजा आदि द्वारा। ये जो धार्मिक कार्य हैं वह उनका एक तरह का प्रायश्चित है और कुछ कुछ आगे चलें, अपना रास्ता खोजने की बात है कि मेरे से पापकार्य न हों। देखो जैसे बताया गया है ना सत्यवचन। महाव्रत में भी कहा है सत्य बोलो। गुप्ति में भी कहा है वचनगुप्ति धर्म में भी कहा है उत्तम सत्य, और समिति में भी कहा है भाषा समिति। तो बस ऐसे सत्य वचन से सम्बन्ध रखने वाली ४ बातें हैं तो इसमें अन्तर क्या है? अन्तर देखो मोटा सत्य है महाव्रत का सत्य। सत्य बोलो, कितना ही बालते जाओ। अपनी बात बोलो, पर की बात बोलो, किसी की बात बोलो, सत्य बोलो। जब उससे और अच्छे की ओर चलें तो आता है मानो भाषा समिति —हित् मित् प्रिय बोलो। इसने उससे और अधिक नियन्त्रण कर दिया। सत्य महाव्रत में मितका नियम न था। थोड़ा बोले। और देखो भाई अपने जीवन में यदि कोई आदत बना ले कम बोलना, समझ कर बोलना, प्रिय बोलना। कोई अपने जीवन में एक यही व्रत लेकर चले तो वह खुद सुखी रहेगा और उसके परिजन भी सुखी रहेंगे। उसका हृदय स्वच्छ रहेगा। जिनकी अधिक बोलने की आदत है उनके वचनों से कोई न कोई ऐसी एक हल्की बात निकल आयगी कि वह खुद पछतायेगा। अतः बोलो परिमित वचन, प्रिय वचन, हितकारी वचन। चलो इसके आगे उत्तम सत्य आया, तो केवल एक आत्मा के अर्थ बोलना जिसमें केवल आत्मा की ही खोज हो। वचन गुप्ति में बोलना भी छोड़िये। तो ऐसी आप समझिये अर्जन की बात। कोई अन्याय करके धन कमाये तो वह बुरा है और विशुद्ध में देखो कोई न्याय से धन कमाता हो तो वह भी बुरा है और चलें तो कोई अगर आदरपूर्वक जैसे कि मुनिजन आहार ग्रहण करते वह भी बुरा प्रमाद है सो तो चाहिये क्या? कुछ न करना। मगर एक अपेक्षाकृत तो बताना पड़ता इसी आधार पर गृहस्थ को बताया है कि वह न्याय नीति से धनार्जन करे। इसकी व्याख्या में हम अधिक न बोलेंगे। आप कहेंगे कि आजकल अनेक प्रकार के कानून चल रहे हैं सो फिर कैसे क्या करें? तो मूल में यह बात रहनी चाहिये कि कम से कम पड़ोसी के प्रति पब्लिक के प्रति इसमें हमारा कोई छल न हो। इतनी बात एक आदर्श गृहस्थ में नहीं है तो वह सुखपूर्वक नहीं रह सकता। तो आरम्भ की बात कह रहे हैं कि हम न्यायनीति से कमायें तो भी उसमें यह बुद्धि रखना कि कमाते हैं तो उसमें तृष्णा तो पाप है, विकल्प होता है। मन तो चलता है, मेरे को वह स्थिति मिले कि मैं केवल एक आत्मतत्त्व में मग्न रहूँ। वह स्थिति चाहिये, वह व्यापार, वह रोजगार, वह व्यवसाय चाहिये। अन्यथा आप बतलाओ मुनिजन अकेले, कोई साथी नहीं, एकांत स्थान में जंगल में रहते हैं फिर भी उन्हें वहाँ रात दिन ऊब नहीं आई। यहाँ गृहस्थजनों को तो देखो कि यदि वे अकेले रह जाएँ तो उनका एक एक दिन काटा नहीं कटता। उन मुनिजनों के दिन कैसे कट जाते हैं? यों कट जाते हैं कि उनसे बात करने के लिये उन्हें एक ऐसे बड़े साहब मिल गये कि उससे बात कर करके ही उनके रात दिन ऐसे कटते जाते कि जाने नहीं जाते। वे बड़े साहब कौन मिल गये? अपने ही देवालय में विराजमान, अपने ही आत्म प्रदेश में अन्तः प्रकाशमान स्वभाव सहज परमात्मतत्त्व उनकी दृष्टि में आया। वे बातें तो चाहे परिस्थितिवश कुछ करेंगे मगर दृष्टि देंगे उसकी। कदाचित् दूसरे से भी बोलें तो भी दृष्टि रहेगी वहाँ। ऐसा कोई एक बड़ा प्रभु मिल गया साधक को कि जिसकी छाया में रह कर उसका समय बहुत आराम से बीतेगा।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आत्माश्रय के ठाठ—यह सयोगकेवली भगवान जिन्होंने बहुत महापौरुष किया आत्माश्रय का। वे ४ घातिया कर्मों का विनाश कर अरहन्त होते हैं। ४ घातिया कर्म अपने आप से अपने में नष्ट होते हैं। और यह जाने शुक्लध्यान के वेग प्रताप याने एक विशुद्ध सहज अन्तस्तत्त्व की मग्नता का इतना महान् तेज है कि कर्म में से कर्मत्व खिर जाता है। और जब ४ घातिया कर्म दूर हुए तो यह सयोगकेवली भगवान बनता है। अनन्त चतुष्टय कैसे प्रकट हुआ ? ज्ञानावरण का विनाश हुआ, समस्त ज्ञानावरण निमित्त उपाधि नहीं और यहाँ अनन्तज्ञान प्रकट हुआ। केवल दर्शनावरण के क्षय से केवलदर्शन प्रकट हुआ। मोहनीय के क्षय से अनन्त आनन्द प्रकट हुआ और अन्तराय के क्षय से अनन्तशक्ति प्रकट हुई। अब वहाँ स्वरूप क्या है प्रभु का ? देह तो है किंतु देह का लगाव तो बहुत पहले ही न रहा। यहाँ बताया ही क्या जाय ? फिर भी निमित्त नैमित्तिकता देखिये। तो उस प्रभु का माहात्म्य है कि उनका शरीर परमौदारिक शरीर हो जाता है, उसमें निगोद नहीं रहता। शुद्ध स्फटिक सम हो जाता है। यह सब प्रताप किसका ? एक इस शुद्ध अन्तस्तत्त्व के आश्रय का है। जैसे कहते हैं ना कि ५, ६, ७, ८ जैन धर्म के देखो ठाठ। आप बोलते हैं ना ? तो यहाँ देखो आत्माश्रय सयोगकेवली अवस्था प्रकट हुई है। वह सब किसका फल है ? बाह्य की उपेक्षा और अन्तस्तत्त्व की दृष्टि। देखो, देखो आत्माश्रय के ठाठ।

नमस्कार मन्त्र में शुद्ध व शुद्ध होने के प्रयास वालों को नमस्कार—पंचपरमेष्ठियों में दो प्रकार के आत्मा हैं एक वह जो शुद्ध हो चुके हैं, दूसरे वह जो शुद्ध होने के प्रयत्न में रहते। जो शुद्ध हैं उनका नाम है अरहन्त और सिद्ध और जो शुद्ध होने के प्रयत्न में लग रहे हैं वे हैं आचार्य, उपाध्याय और साधु। जो जो भी हुये हैं ये ये परमेष्ठी वे यहीं या घर में ही तो उत्पन्न हुये थे। घर में ही तो रहते थे। कोई जन्म से ही तो साधु न था, घर में ही पले पुसे, घर में ही रहे। घर में ही शिक्षा पाया। जिसकी जैसी पात्रता, भले ही कोई ८ वर्ष की उम्र में ही घर छोड़ दे, मुनि बन जाये और वह अपनी अद्भुत साधना द्वारा अरहन्त भगवान हो जाय तो यह समझो कि सवा आठ वर्ष बाद साढ़े आठ वर्ष के ये अरहन्त भगवान हैं ८ अन्तर्मुहूर्त और गर्भ के दिन और आठ वर्ष इतने समय बाद याने मनुष्य आयु के इतने समय बाद अरहन्त अवस्था हो सकती है। मगर केवलज्ञान का ऐसा अद्भुत प्रभाव है कि जिसके सानिध्य से यह शरीर भी परमौदारिक, पुष्ट, स्वच्छ हो जाता है। कोई मुनि बड़ाबूढ़ा हो, गाल पिचके हों, आँखें धसी हों, हड्डियाँ निकली हों और हो गया हो अरहन्त भगवान। साधना हो तो है, तो क्या ऐसा कमर झुकाकर चलने वाला, गाल पिचके, आँखें धसी अरहन्त भगवान होंगे क्या ? माहात्म्य है ऐसा कि वह शरीर परमौदारिक मनोज्ञ दिव्य बन जाता है इसका नाम है सयोगकेवली। सयोग मायने योग सहित। इस गुणस्थान से पहले के जितने गुणस्थान हैं वे सब सयोग हैं। केवली, केवल ज्ञानी इस स्थान में और इस गुणस्थान के बाद के जो स्थान हैं वे सब केवली हैं। कैसा सुन्दर शब्द है सयोगकेवली। सयोग पहले है तो वह सब पहिले के गुणस्थानों में जा रहा है। केवली शब्द बाद में है। तो बाद की सब स्थितियों में वह केवली शब्द जा रहा है। १३वें गुणस्थान से पहले सभी छद्मस्थ कहलाते हैं। छद्म मायने है आवरण का। वैसे लोग कह देते हैं कि तुम छद्मी न बनो याने कपटी न बनो, पर छद्म मायने है आवरण। जो आवरण में है वह छद्मस्थ कहलाता है।

तीर्थंकर प्रभु का दिव्य स्थल, विहार व उपदेश—ये प्रभु पृथ्वी से ५ हजार धनुष ऊपर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विराजमान रहते हैं। वैसा एक नियोग है और जितनी स्थितियाँ एक पूर्व से अपूर्व होती है वहाँ निमित्त नैमित्तिक भाव का भी अन्दाज करते जाइये। ५ हजार धनुष ऊपर विराजमान रहते हैं इतने ही ऊपर उससे कुछ कम नीचे से समवशरण की रचना होती है। भगवान का समवशरण जमीन पर कहाँ बनाया जाय? कोई होगी जगह ऐसी जो १२ कोस का प्लाट हो? कहीं पर्वत अड़ेगा कहीं नदी आयगी, मकान हैं, शहर हैं। कहीं मिलेगा क्या ऐसा स्थान? तो ऊपर ही मिलेगा। अहमदाबाद में लोग बोले महाराज यहाँ जमीन बहुत तेज है और आसमान बड़ा सस्ता है। उसका मतलब यह है कि जमीन तो ढाई तीन सौ रुपये गज मिलती है और ऊँचा महल कितना ही बनावें, कोई रोक नहीं। आसमान इतना सस्ता है और जमीन मंहगी है। भगवान का समवशरण ऐसी सस्ते स्थान में बनता है। तो सब देवता इन्द्र उसके नियोगी अपनी विक्रिया से, अपने कलाकौशल से यहाँ के स्कंधों का कलाबल से जल्दी बना करके उस प्रकार की रचना कर देते हैं। देखते जाओ, प्रत्येक द्रव्य अपने आप में अपनी परिणति करता है। मगर परनिमित्त पाकर क्या क्या हालत पर में होती जाती है यहाँ हमारे जीवन में भी चौबीसो घटों में भी सब बातें आप सोच सकते हैं। मन्त्रवादी तो अकेले हृदय में अपने ज्ञान में एक मन्त्र की आराधना रखते हैं और वहाँ सप का विष दूर हो जाता है। बताया ही है अमृतचन्द्रजी सूरि ने, यहाँ यद्यपि बन्धन में बंधन खुला, शरीर का ऐसा निर्विष परिणमन हुआ। विष में उस ही अन्य धातु खूब रूप परिणमन हो गया, पर वहाँ देखते तो हैं ना कि मन्त्रवादी न मन्त्राराधन किया और उसका निमित्त पाकर वहाँ निर्विष हो गया। निमित्त नैमित्तिक भाव और वस्तु स्वातन्त्र्य दोनों अविरोध से रहते हैं। अगर वस्तु स्वातन्त्र्य नहीं है तो वह निमित्त नैमित्तिक भाव न रहेगा और निमित्त नैमित्तिक भाव नहीं है, तो वहाँ वस्तु में परिणति की अस्थिरता न रहेगी, किंतु स्वभाव बन जायेगा। भगवान का समवशरण लगा, वहाँ उनकी दिव्य ध्वनि खिरती है। सर्वांग दिव्यध्वनि खिरती है। वह दिव्यध्वनि निरक्षरी है। निरक्षरी मायने—नि मायने निषेध, जिसमें अक्षर नहीं है, अ इ उ वगैरह इस तरह नहीं बोलते उसे कहते हैं निरक्षरी अथवा नि मायने निःशेष, समस्त अक्षर एक साथ बोल जाएँ तो वह क्या अक्षरों के रूप से समझ में आयगा? उनकी दिव्यध्वनि निरक्षरी है। उस उपदेश को सुन कर जिसकी जैसी योग्यता होती है उतना वह अपने में समाधान पाता है। तो यह समझ लो, जैसे कभी रेल में सफर करते हों और रेल के इंजन की आवाज आती है तो उससे कुछ लोग वाक्य बना लेते हैं। वह झक झक झक······करता हुआ है ना तो लोग उसके अनेक अर्थ निकाल लेते हैं, जैसे कभी यह धुन बना लेते जब्बलपुर के छह छह पैसा तो वह आवाज है। उससे कुछ भी बात बना लें। यहाँ तो एक भी कुछ भी अक्षर नहीं है। आवाज तो ज्ञानशून्य है। उस आवाज को सुनकर अपने आप में कुछ बात बन गई लेकिन यहाँ तो विराट कोरी एक काल्पनिक बात नहीं है। है तो उसकी कल्पना की चीज। जोकि श्रोता ने अपने में समाधान पाया। सो वहाँ केवलज्ञानी एक परम आत्मा के दिव्य देह से दिव्यध्वनि निकलती है वह अटपट नहीं। जो है वैसी नियत चलती है। जब भगवान का विहार होता है तो जहाँ के भव्य जीवों का भाग्य है वहाँ विहार होता है। जैसे जब मेघ बरसते हैं तो वहाँ लोग समझते ही हैं। कि जहाँ की जनता का भाग्य है वहाँ मेघ पहुँचते हैं। कहीं बादल जानकर नहीं पहुँचते कि वहाँ जाकर बरसें। यह एक ऐसा नियोग है कि जहाँ के भव्य जीवों का भाग्य है वहाँ जाकर बरसते हैं, ऐसे ही अरहन्त भगवान का विहार वहाँ होता है जहाँ के भव्य

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

लोगों का भाग्य है। और विहार के समय इन्द्र नीचे स्वर्ण कमल रचता है। यह संसार बहुत विचित्र गहन है। जो चाहे उसे कुछ मिले नहीं और जो न चाहे उसके ठाठ।

तीर्थंकर बनने का कारण अरहन्त भगवान के प्रकार संक्षेप में करें तो दो प्रकार का बनते हैं—(१) सामान्य केवली (२) तीर्थंकर केवली। तीर्थंकर केवली एक समान हैं। सामान्य केवली के कई भेद हैं, क्यों कैसे कोई पुरुष तीर्थंकर बनते हैं ? जिन्होंने पूर्व काल में भव्य जीवों के कल्याण की भावना की उनके तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध होता है कोई सुनकर सोचे कि मैं भी कोई बात कह लूँ जोकि भावना में हो तो तीर्थंकर प्रकृति बंध जायगी। कोई सोचे कि मैं १०-१५ साल षोडश कारण भावना व्रत कर लूंगा तो तीर्थंकर बन जाऊँगा तो यों तीर्थंकर कोई नहीं बनता। हाँ वह साधक है। उस साधन में आजकल तो असम्भव है मगर उन भावनाओं का एक सही प्रयोग में वह आशय बन जाय तो तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध हो सकता है। उसमें मुख्य है दर्शनविशुद्धि। शेष की १५ भावनाओं में कुछ कम भी रह जाये तो भी तीर्थंकर प्रकृति बंधेगी। अन्य भावनाय कितनी ही हों, दर्शन विशुद्धि न हो तो तीर्थंकर प्रकृति न बंधेगी। देखो तीर्थंकर प्रकृति उनके बंधती है जो यश, कीर्ति चाहते नहीं हैं, उनके विश्व के समस्त प्राणियों के कल्याण की भावना स्वतः उत्पन्न होती है बनाकर नहीं। दर्शनविशुद्धि का अर्थ क्या ? सम्यग्दर्शन के होने पर जो विशुद्ध परिणाम होते हैं उसका नाम है दर्शनविशुद्धि। उस प्रकार के विशुद्ध परिणाम। 'सम्यक्त्व की विशुद्धि' का यह अर्थ नहीं है दर्शन विशुद्धि का, क्योंकि सम्यक्त्व की विशुद्धि से यदि तीर्थंकर प्रकृति बंधे तो पहली आपत्ति यह है कि इसका अर्थ यह हो गया कि सम्यक्त्व प्रकृति बंध का कारण है। दूसरी आपत्ति यह है कि जिन जिन जीवों के सम्यक्त्व की विशुद्धि है उनके सबके तीर्थंकर प्रकृति बंध जाना चाहिये। सम्यग्दर्शन के होने पर एक कल्याणमयी विशुद्धि हो, विश्वकल्याण की भावना हो तो वह तीर्थंकर प्रकृति के बंध का कारण है। मैं इस जगत के जीवों का उद्धार कर दूं ऐसी भावना नहीं, किंतु जगत के जीव स्वयं ज्ञानानन्द स्वरूप हैं, ये अपनी दृष्टि नहीं कर पा रहे हैं। अतः संसार में रुलते हैं। उनको यह दृष्टि प्राप्त हो। अपने इस ज्ञानानन्दस्वभावी अन्तस्तत्त्व का ये दर्शन करें और ये संसार संकटों से मुक्त हों, इस प्रकार की भावना जगती है। तो तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध होता है। बतलाते हैं ना जन्म के अतिशय में कि तीर्थंकर भगवान का खून सफेद होता है। तो यह तो वैद्य और वैज्ञानिक पद्धति है ऐसी कि हर एक के शरीर में लाल और सफेद खून होता है। जब सफेद खून कम हो जाता है तो वहाँ बहुत भयंकर बीमारी बनती है, यह तो उनकी बात है। मगर एक अलंकार में यह कही जा सकती है कि एक माता को एक बच्चे के प्रति हित की भावना होती है तो उसके स्तन से सफेद दूध निकलता है और फिर जो सारे विश्व का हित रखता हो उसके सारे शरीर में अगर दूध हो जाय याने दुग्ध समान श्वेत रुधिर हो जाय तो क्या आश्चर्य ? एक विश्व हित की भावना की बात है। सम्यग्दर्शन होने पर विश्वहित की भावना में प्रबल विशुद्धि जगती है तो दर्शनविशुद्धि भावना होती है, तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है।

तीर्थंकर प्रकृति बन्ध वाले जीव की बात—जिसके तीर्थंकर प्रकृति का बंध हो वह या तो स्वर्गादि में जाता याने ऊर्द्ध लोक में जाता या अधोलोक में जाता। वह बीच में न जायगा। नरक से आकर तीर्थंकर होने वालों से करोड़ों गुने वे जीव है जो ऊर्ध्व लोक से आकर तीर्थंकर होते हैं। बड़े की बड़ी कला है। जो क्षायिक सम्यग्दृष्टि है और जिसने तीर्थंकर प्रकृति का बंध किया और उससे पहले

Report any errors at vikasnd@gmail.com

नरक आयु से बंधी हो तो वह प्रथम नरक में जावेगा, जैसे राजा श्रेणिक का उदाहरण है कि रानी चेलना से होड़ करते समय धर्म प्रसंग में राजा श्रेणिक ने एक जंगल में एक मुनिराज के गले में मरा हुआ सांप डाल दिया। और ३ दिन बाद श्रेणिक महाराज चेलना रानी के पास आकर बोले कि मैंने ऐसा काम कर डाला है। तो रानी चेलना बोली —अरे यह तो बड़ा बुरा काम कर डाला। तो वहाँ राजा श्रेणिक ने यही कहा कि अरे वह तो सांप को फेक फांक कर पहले ही कहीं न कहीं चले गये होंगे। तो वहाँ रानी चेलना बोली — नहीं नहीं, अगर वे निरारम्भ निष्परिग्रह वास्तविक मुनिराज हैं तो वहीं बैठे मिलेंगे। तो राजा श्रेणिक को कौतूहल हो गया कि ऐसा कैसे हो सकता ? एक आदमी ३ दिन तक ऐसा बैठा रहेगा, ऐसा कैसे हो सकता ? आखिर वहाँ वे दोनों पहुँचे, देखा कि सचमुच मुनिराज वहाँ बैठे हुये थे और उनके गले में मरा हुआ सांप पड़ा हुआ था। सांप की वजह से उनके शरीर पर चीटियों का चढ़ना उतरना जारी था। वहाँ रानी चेलना ने पास में कुछ शक्कर डाल कर सारी चीटियों को उतार दिया, सर्प को गले से हटा दिया मुनिराज का उपसर्ग दूर हुआ। इन सब घटनाओं को राजा श्रेणिक देख रहा था और अपने आप से अपने आप में बड़ी घृणा उत्पन्न कर रहा था ओह मैंने मुनिराज पर बड़ा उपसर्ग किया, मरा हुआ सांप उनके गले में डाला। वहाँ जब मुनिराज की आँखें खुलीं और दोनों को सामने देखा तो बोले —उभयोर्धर्मवृद्धिरस्तु अर्थात तुम दोनों को धर्मवृद्धि हो। वहाँ शत्रु और मित्र की कुछ बात नहीं। उनके इस समता परिणाम को देखकर, उनकी ऐसी अलौकिक वृत्ति को निरखकर राजा श्रेणिक नतमस्तक हो गये। और अपने मन में अपने आप पर घृणा करने लगे और सोचने लगे– मेरा जीवन बेकार है, क्यों न मैं अपनी इस तलवार में अपनी गर्दन उतार दूँ ? वहाँ मुनिराज बोले हे राजन् ! तुम क्यों इस तरह से आत्मघात का विचार कर रहे हो ? लो मन की बात भी मुनिराज जान गये, अब तो और भी प्रभाव राजा श्रेणिक पर पड़ा। उस समय उनके परिणामों में बड़ी विशुद्धि जगी। बताया है कि उपसर्ग करते समय उनके क्रूर परिणाम के कारण ऐसी स्थिति बंधी थी कि जिससे ७वें नरक में जाना होता है। और अब यहाँ इतनी विशुद्धि हुई, कि पहले नरक की ८४ हजार वर्ष की आयु रह गई। राजा श्रेणिक मरकर नरक गये और वहाँ से तीर्थंकर होंगे और यदि क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव नहीं है, उपशम सम्यग्दृष्टि है या वेदक सम्यग्दृष्टि है, और तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर लेगा और क्षायक सम्यक्त्व हुआ नहीं और नरक आयु का बंध किया तो मरते समय उसका सम्यक्त्व छूट जायगा, तीसरे नरक तक भी वह जा सकता है। और, वहाँ दो अन्तर्मुहूर्त बाद वेदक सम्यक्त्व प्रकट हो जायगा। देखो तीर्थंकर प्रकृति का बंध वाला २-३ अन्तर्मुहूर्त के लिए जो एक अन्तर्मुहूर्त में गर्भित है मिथ्यादृष्टि बन गया। परिस्थितियाँ देखिये कैसी हैं ? तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध वाला नरक तक पहुंचे और अपनी उम्र तक सब कुछ करते भी होंगे। मगर सम्यक्त्व के प्रताप से उनका सहज ज्ञान वैराग्य वहाँ भी बना रहता है।

तीर्थंकर प्रकृति बन्ध वाले के चरम भव में गर्भ जन्म कल्याणक की आभा—तीर्थंकर प्रकृति बंध वाले नारकी के जब ६ महीने आयु के शेष रहते हैं तब वहाँ देवगण जाकर उनकी रक्षा करते हैं, देव एक कोट जैसा बनाते है। उसके अन्दर कोई नारकी जा नहीं सकता, सता नहीं सकता। ऐसा क्यों ? बताया है कि तीर्थंकर प्रकृति का बंध वाले जीव जब मनुष्य की गर्भ अवस्था में आता तो गर्भ से ६ महीना पहले से रत्न वर्षा होती है और ९ महीने तक (१५ माह)। भला कुछ ऐसा सही सा जचेगा क्या कि यह तो ६ महीना पहले नरक में हो और नरक में पिटा पिटी होती है। मायने

http://sahjanandvarnishastra.org/

यहाँ रत्न वर्षा हो और उनकी नरक में पिटा पिटी चले। तो सुनने में कुछ अटपटा सा लगता। यहाँ रत्न वर्षा, वहाँ भी सुरक्षा। ऊर्ध्वलोक में उत्पन्न तीर्थंकर प्रकृतिबंध वालों का तो सब पहले से ही है। बस गर्भ में आया तब से वही व्यवहार जो ऊर्ध्वलोक से गर्भ में आया हो कोई तीर्थंकर बंध वाला, जैसा उनका काम वैसा इनका काम। तो तीर्थंकर केवली जिसके पंच कल्याणक होते। गर्भ समय में कितनी देवियाँ आकर कैसी माता की सेवा करती हैं। जन्म समय में मेरुपर्वत पर बड़े ठाठ-बाठ से ले जाकर वहाँ अभिषेक करती हैं। देखो एक रिवाज यहाँ तो कम है, सुनते हैं कि विदेशों में अधिक है, बच्चा उत्पन्न होता तो उसे नहलवा देते हैं। यहाँ अपने देश का पता नहीं। जिसके महापुण्य का उदय, तीर्थंकर प्रकृति का उदय तो नहीं चल रहा, उसका उदय तो होगा १३वें गुणस्थान में अगर तीर्थंकर प्रकृति के साथ जो अन्य महापुण्य प्रकृतियां हैं, उनका उदय देखो कि जन्म समय मे उनके नहलाने वाली नर्स न होंगी, इन्द्र देव होंगे। देखो ये सब घटनायें देखकर बार-बार उस अविकार ज्ञान-स्वभाव पर दृष्टि देने का काम है कि धन्य है वह सम्यक्त्व धन्य है वह अविकार ज्ञानस्वभाव का आश्रय जिसके प्रताप से ऐसे संसार में रुलने के काल तक बातें होती हैं। देखो सम्यक्त्व के रहते संते जो रागभाव रहता है उसका ठाठ चल रहा है। सम्यक्त्व के न होने पर राग के बिना ठाठ नहीं होता और सम्यक्त्व का ठाठ इससे अलौकिक है। अपने आप के अन्तस्तत्त्व में एक अलौकिक शान्ति का उद्भव है।

तीर्थंकर प्रभु के तपकल्याणक समारोह की आभा—जन्मकल्याणक के बाद तपकल्याणक। भगवान को, तीर्थंकर महाराज को किसी समय तभी तीर्थंकर नहीं हुये, भगवान नहीं हुए। मगर द्रव्यनिक्षेप में ऐसा ही पुकारा जाता है, किसी घटना को पाकर उनके वैराग्य जगता है। जैसे आदिनाथ भगवान को देखिये—नीलांजना के नृत्य के समय में उसकी आयु विलीन होने से जीवन की अस्थिरता के चिंतन में वैराग्य जगा। बहुत से ऐसे लोग हुए। सिर में सफेद बाल देखा तो वैराग्य जगा। और यहाँ सफेद सफेद बाल है, कहाँ वैराग्य जगता ? कोई कह बैठे कि अरे भाई एक बाल सफेद देखा तो वैराग्य जगा कि सारी खोपड़ी सफेद दिखने से वैराग्य जगा ? (हंसी) किन्हीं के कोई घटना से वैराग्य जगा। वहाँ लौकांतिक देव आते हैं। आप इन विभूतियों को भी देखें। लौकांतिक देव ५वें स्वर्ग की अन्तिम दिशा में रहते हैं। वे मध्य में नहीं रहते। वे एक भवावतारी होते हैं, इसलिए उनका नाम लौकांतिक है और तत्त्वज्ञानी सर्वार्थ सिद्धि के देवों की तरह ज्ञानचर्चा में रहते हैं उन्हें देवर्षि कहते हैं। वे आते हैं और भगवान के वैराग्य की प्रशंसा करते हैं और उनका वैराग्य दृढ़ होता है। वे अपने निवास धाम में चले जाते हैं। भगवान वैरागी होते। वन में जाने की तैयारी होती है। इन्द्र पालकी रख देते हैं। मानों भगवान उसमें विराजमान हों उसी समय मनुष्यों में और देवों में बड़ा झगड़ा खड़ा हो जाता है। झगड़ा किस बात का ? इस बात का नहीं कि मनुष्य कहें कि हम नहीं ले जायेंगे और देव कहें हम नहीं ले जायेंगे। ले जाने की प्राथमिकता पर झगड़ा। मनुष्य कहने लगे कि पहले पालकी हम उठायेंगे। देव कहें कि हम उठायेंगे। तो वहाँ देव बोले—अरे मनुष्यों ! तुम्हारी क्या ताकत ? हमने जन्म कल्याणक ऐसा मनाया। हमारी इतनी सामर्थ्य है, तुम क्यों हठ करते हो ? बैठ जावो, पालकी न उठाना। उस मनुष्यों में और देवों में बड़ी वचनों की लड़ाई हो गई। तो वहाँ उस झगड़े को निपटाने के लिये मानों कुछ बुजुर्ग लोग नियुक्त हुऐ। और वहाँ फैसला यह दिया गया कि जो भगवान के साथ भगवान जैसी दीक्षा ले सकता हो वह भगवान की पालकी उठाये। यह निर्णय

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सुनकर देवलोग सब खेद खिन्न हो गये। इन्द्र माथा धुनने लगे। वे अपनी झोली पसार कर मनुष्यों से भीख मांगने लगे कि ऐ मनुष्यो देखो हमारे पास चक्रवर्ती से भी अधिक विभूति है, वह सारी विभूति ले लो मगर अपनी यह इंसानियत, अपना यह मनुष्यत्व मुझे दे दो। परन्तु मांगने से भी होता क्या ? तो जिस मनुष्यभव के पाने के लिए बड़ेबड़े देवेन्द्र भी तरसते उस मनुष्य भव को पाकर यदि उसकी कुछ भी कीमत न आंका तो समझो क्या गति होगी ? आत्महित की विशुद्ध वाञ्छा रखो, और झगड़ा विवाद या अन्य प्रकार के रागद्वेष कषाय, दूसरों को विरोधी समझना, दूसरों को तुच्छ मानना, अपने को महान मानना यह सब एक ऐसी आड़ है कि जिससे भगवान के दर्शन नहीं होते। आखिर मनुष्यों ने पालकी उठायी, थोड़ी दूर ले गये। बाद में देव ले गये, देव लोगों ने व मनुष्यों ने तप कल्याणक मनाया। केशलोच हुआ, ज्ञान हुआ। बस दीक्षा लेने के बाद तीर्थंकर के मौन हो जाता है। देखो बड़े की एक बात तो यह विचित्र मिली कि या तो नरक जायेंगे या फिर ऊपर। जिसके तीर्थंकर प्रकृति का बंध हो और एक यह दृश्य देख लें कि या तो चौथा गुणस्थान है या सकल संयमी बने, हठ नहीं है, उनकी नैसर्गिक महिमा है और एक यह दृश्य देख लो कि अब बोलेंगे ही नहीं। बोलेंगे तब जब पूर्णज्ञान हो जायेगा। वह बोलना भी क्या, एक दिव्य ध्वनि। हठ नहीं, एक धर्मभावना, अध्यात्म साधन।

तीर्थंकर के ज्ञानकल्याणक समारोह की आभा—भगवान के केवलज्ञान होता है तो ज्ञान कल्याणक मनाना होता है। भला देखो समवशरण की रचना, भगवान का चारों ओर से मुख दीखता है। अगर यह अतिशय वहाँ न होता, देवरचित अतिशय न होता तो वहाँ बड़ा कोलाहल मच जाता। अरे आगे भी बैठे होंगे, पीछे भी बैठे होंगे, दायें बायें ओर भी बैठे होंगे। वहाँ बड़ा होहल्ला सा मच जाता भाई पीछे वाले भी संतोष करें, अगल बगल वाले भी देखें, आगे वाले भी देखें, चारों ओर १२ सभाएं लगी होती हैं। वहां पशु पक्षी भी पहुँचते हैं। किसी का किसी से विरोध नहीं होता, ऐसा एक सुन्दर वातावरण होता। जिन प्रभु की क्या महिमा कही जाय। जहाँ भी विराजे हों, चारों तरफ १०० योजन तक दुष्काल नहीं रहता। आकाश में उनका गमन है। यहाँ नीचे न मिलेंगे कुछ बात करते हुये। चारों ओर मुख दिखता है। यह सब अतिशय प्रतिहार के द्वारा रचा गया भी है और इनके किसी प्रकार का अदयाका भाव नहीं, क्या उनके अदया सम्भव है ? तो उत्तर दिया कि न दया है न अदया है। बताया यह यों गया कि कल्पना में लोग कहते हैं कि भगवान वह जो त्रिशूल लिये हों, भगवान वह जो फरसा लिये हों, धनुष वाण लिये हों, हथियार लिये हों, और चरित्र भी वैसा ही बतलाते हैं। उससे लड़ाई हुई, फिर उसे मारा। अरे भगवान होने के बाद अदया का काम नहीं रहता। उन पर उपसर्ग नहीं, उनके कवलाहार नहीं चलता। समस्त विद्याओं का ऐश्वर्य चलता है। केवलज्ञान से पहले ज्ञान से देखें यहाँ कोई चीज गर्व के लायक नहीं। केवलज्ञान के सामने ज्ञान क्या ? तीर्थंकर के वैभव के सामने वैभव क्या ? शरीर को जुदा किया, अकेला किया। किसका मद करना ? तीर्थंकर का ऐसा अलौकिक वैभव, तीर्थंकर को कुछ लगाव नहीं, कुछ विकल्प ही नहीं, विकार ही नहीं, इच्छा ही नहीं। लोग तो भक्ति में आकर अपने भाव पुष्ट करते हैं। तो इन्द्र की बड़ी शक्ति, जो उनके प्रबन्ध में इतना बड़ा वैभव होता है इतने पर भी भगवान उस वैभव से अछूते रहते हैं। लक्ष्मी ने सोचा कि मैं सिंहासन में बंधकर इनका स्पर्श कर लूँ तो जैसे ही वह फमकी तीन छत्र बनकर ऊपर से भगवान के सिर को छूने के लिये तो वह लक्ष्मी (तीन छत्र) ऊपर ही टंगी रह गई। ऐसे निर्विकार भगवान का इस सत् प्ररूपणाओं में यह निर्देश चल रहा है।

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रभु का शिवपथ नेतृत्व—जो आत्मा अनादि अनन्त अहेतुक निज चैतन्यस्वभाव की आराधना करके उस ही स्वभाव में मग्न होकर निर्विकल्प हुए हैं। होते तो हैं निर्ग्रंथ अवस्था में ही सो साधन तो चलता है वह निर्ग्रंथ साधुओं के, किंतु निश्चय साधना निज सहज कारण परमात्मतत्त्व की आराधना है। सो नित्य अन्तः प्रकाशमान सहज परमात्मतत्त्व की आराधना के बल से क्रमशः गुणों का विकास होता होता १२वें गुणस्थान के अन्त में पूर्ण विकास होता है और वे भगवन्त अरहन्त हो जाते हैं। देखो प्रभु की बात समझने से क्या लाभ है? सो सुनिये कम से कम इतना तो सतोष होगा ही कि आखिर हमारा उत्तम धाम यह है जहाँ पहुँचना है। बाकी बीच के ये कोई और मेरे नहीं हैं। उसकी उपलब्धि होती कैसे है? जो प्रभु ने किया बस वही मात्र उपाय है। प्रभु ने किया व बताया इसीलिये वे नायक (नेता) कहलाते है। नायक कहते हैं ले जाने वाले को। ले जाना कब होता है? खुद चलें और उसके साथ चले तो ले जाना बनता है। वह नायक है। खुद पार हो गये। जो नदी से पार हो गया, दूसरे तट पर पहुँच गया, उसे अधिकार है कि दूसरे तट पर खड़े हुए लोगों से बताये कि इस रास्ते से आओ। इसी प्रकार जो खुद आप्त हो गये। खुद पहुँच चुके हैं उनको अधिकार है स्वतः सहज नैसर्गिक बिना विकल्प के लोगों को उपदेश देना। दिव्यध्वनि खिरती है, लोग समझते हैं और गणधर देव जो ४ ज्ञान के धारी हैं, जिनका स्वयं ही ज्ञान एक प्रमाणभूत है। फिर दिव्यध्वनि का आश्रय लेकर द्वादशांग की रचना करते हैं तो सर्व आगम प्रमाणभूत है।

प्रभु के समवशरण में अशोक वृक्ष, सिंहासन, छत्र, भामंडल, दिव्यध्वनि व पुष्पवृष्टि का प्रातिहार्यत्व—भगवान जहाँ विराजे होते, समवशरण में देखा होगा नक्शे में अशोक वृक्ष के नीचे याने जहाँ प्रभु विराजे हैं वह वृक्ष अशोक नाम को पाता है, जिसे देखकर लोगों का शोक दूर हो जाता है। भगवान गंधकुटी में विराजे हैं। सिंहासन नाम किसका लोग किया करते हैं? लोग सिंह नाम सुनकर सिंह पशु का अर्थ लगा सिंह के ४ पंजे बना डालते हैं। तो बन गया सिंहासन। सिंहासन का यह अर्थ नहीं है कि सिंह का पंजा जैसा आकार बनावें। सिंहासन का अर्थ है श्रेष्ठ आसन। सिंह का अर्थ यह पशु से नहीं, किंतु सिंह नाम श्रेष्ठ का है। तो श्रेष्ठ आसन के निर्माण में जिनके भक्त इन्द्र हैं वे अपना सारा वैभव लगाते हैं, वे अपनी ऋद्धि सिद्धि लगाकर अपने को कृतार्थ (धन्य) समझ लेते हैं। कितना श्रेष्ठ आसन है। भगवान के तीन छत्र मानों यह लोगों को जताते कि ये तीनों लोकों के अधिपति हैं। क्यों जी, ये भगवान तीनों लोक के स्वामी हैं क्या? हाँ हैं। तीनों लोक के जीव मानते हैं क्या? मानते तो नहीं फिर तीन लोक के अधिपति कैसे? वे यों हैं कि पाताल लोक के इन्द्र, ऊर्ध्व लोक के इन्द्र और मनुष्य लोक के इन्द्र ये तो सब प्रभु को मानते हैं ना। तो जिनके इन्द्रों ने, जिनके प्रमुखों ने भगवान को माना, प्रमुख भगवान के सेवक बने तो उसका अर्थ है कि तीन लोक के सभी जीव सेवक हैं और फिर उनके अलावा बहुत से जीव भी पहुँचते हैं। समवशरण में भगवान का भामण्डल अलौकिक है। भा मायने कांति, उसका मण्डल मायने आकार वह शरीर ही इतना कांत है कि जहाँ उनकी आभा का मण्डल होता, साथ ही यह भी प्रतीहार द्वारा विशेषित होकर शृंगार बन जाता है। भगवान की दिव्यध्वनि खिरती है तो इस विषय में यद्यपि दो सम्मतियां हैं, पर उनमें कोई खास विरोध की बात नहीं है। एक सम्मति तो है आचार्य की दिव्यध्वनि में ऐसी व्याख्या होती है जैसी द्वादशांग में और एक सम्मति में निरक्षरी। सारे शब्द एक साथ बोलें तो भी निरक्षरी वैसे भी निरक्षरी। भगवान की

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

दिव्यध्वनि अलौकि है, और किसी से नहीं बनती । वे शब्द ऐसे ही हैं । दिव्यध्वनि खिरती है । सब लोग सुनते हैं । बड़े महापुरुषों के दर्शन से ही शान्ति और उपदेश मिल जाता है और फिर मिल जाय कुछ केवलिप्रज्ञप्त धर्म के शब्द श्रवण को तो उससे और भी शान्ति मिलती है और मिल जाय अलौकिक दिव्यध्वनि का श्रवण तो ऐसा श्रवण करने वाला महाभाग्यशाली है । वहाँ अलौकिक दृश्य होता है समवशरण में देव आते हैं वहाँ, पुष्पवर्षा करते हैं । समवशरण के अन्दर प्रभु के आस-पास मिलकर वे पुष्प ही दुनिया को शिक्षा दे रहे हैं । कैसे शिक्षा दे रहे ? आप लोग जानते हैं कि फूल अगर ऊपर से गिराये जाएंगे तो उसकी जो ठण्डल होती है वह ऊपर करके गिराना चाहिये या नीचे करके ? किसी पर फूल की वर्षा करना हो तो बतलाओ डण्ठल ऊपर किया जायगा ना और सुगन्धित पुष्प नीचे, जिसके निकट डाला उसके सम्मुख होना चाहिये मगर ये फूल जब गिरते तो इस तरह गिरते कि मानो भगवान के चरणों की सेवा करने के लिये गिरकर अन्त में निम्न बंधन हो जाते हैं । चूंकि डंठल का भाग वजनदार होता है तो डंठल नीचे हो जाता है और पुष्प भाग ऊँचे हो जाते हैं । तो वे फूल मानो यह शिक्षा देते हैं कि जो भगवान के चरणों में आता है उसका डंठल अर्थात् उसका बंधन नीचे हो जाता है । बन्धन समाप्त हो जाता है ।

जिनेन्द्रभक्ति में अपूर्व रस का योग – जिनेन्द्र भक्ति एक अपूर्व रस है, जहाँ समता का रस मिला हुआ है । जहाँ कोई आशा है, भय है, स्नेह है, वहाँ भक्ति नहीं होती । भक्ति होती है अनुराग में, जहाँ कोई वाञ्छा बिना भगवान के उस गुण विकास में अनुराग है भक्ति वहाँ होती है, और जहाँ गुण-विकास में जिसको अनुराग है उसको अपने स्वभाव का दर्शन है तब उसके गुण का अनुराग जगता है । देखो कोई कथा सुनते हुए या कोई सिनेमा देखते हुये, कोई चरित्र सुनते हुये जब विशिष्ट घटना जानते हैं तब आँखों से आंसू आते हैं या हर्ष होता है । जैसे भाषण दिया था मुंशोलाल बाबा जो ने और एक कथा भी कही थी सेठ की और जब उसमें बताया कि लड़के का प्राणांत हो गया तो पुरुषों की ओर से तो चिकचिक की (दुःख की) आवाज कम आयी और महिलाओं की चिकचिक की आवाज अधिक आई । देखो यहाँ पर कोई लड़का था तो नहीं, मरा तो न था, यहाँ तो एक बात ही कह रहे थे, कर रहे थे और सुन रहे थे दूसरे की कथा आप किंतु उसका सम्बन्ध बना है खुद के हृदय से तब ही तो शोक की आवाज आयी । तब हो तो दो आँसू आ जाते । तो ऐसे ही समझो कि जब वास्तव में गुणानुराग होता है तो उस समय इसको ऐसी स्थिति होती कि मुख तो हो जाता है गद्गद्, साफवचन भी नहीं निकलते, वहाँ गद्गद् वाणी बन जायगी । साथ ही भगवान के गुणों का स्मरण करें, अपने स्वभाव का स्मरण हो जाय, होता ही है अलौकिक आनन्द । सो इस ज्ञानादन्दस्वरूप का स्मरण हो जाय तो इसमें एक बड़ा आनन्द उमड़ता है और साथ ही अपनी वर्तमान दशा पर ख्याल आ जाता है । ओह ! ऐसा मेरा स्वरूप, ऐसा मेरा स्वभाव, ये प्रभु जैसे वैसा मैं, यह क्या दशा हो रही है । कैसे संकट, क्या शल्य, क्या चिंता, कितनी विडम्बना, उस समय आँसू आ जाते हैं । यो वहां भगवान की भक्ति में बाहर क्या दिखा है ? आनन्द और आँसुओं का मेल, आनन्द तो है स्वभावदर्शन का और आँसू आते हैं अपनी वर्तमान दशा पर । प्रभु में और अपने में अन्तर पड़ा उसके उसके ख्याल में ।

प्रभु के समवशरण में चमर और दुंदुभिनाद का प्रातिहार्यत्व—भगवान विराजे हैं जहाँ वहाँ यक्ष चमर ढोरते हैं । यह चमर दुनिया को यह बतला रहे कि जो भगवान के चरणों में झुकेगा

http://sahjanandvarnishastra.org/

वह नियम से ऊपर जायगा। चमर भी तो यों झुक गये —जो नीचे झुकेगा वह नियम से ऊपर जायगा। समवशरण की अनेक महिमायें हैं। सब प्रातिहार्य हैं, जहाँ इन्द्रक मुख्य हाथ होता है और विभोर होकर देवगण दुंदुभी नाद करते हैं। मानो बुला रहे, कि यहाँ आवो। भव-भव के संकट होवें, संसार के जन्म मरण के संकट से छुटकारा पाने का उपाय बनावें। प्रभु का उपदेश, प्रभु का दर्शन, प्रभु का विहार और उनका स्मरण, ये सब अनेक भव्य जीवों के आत्मलाभ का कारण बनते हैं. अरहन्त भगवान कितनी देर तक ठहरते हैं ? तो जिसकी जितनी आयु है वह शेष समग्र आयु प्रमाण अरहन्त रहते हैं। किसी को कुछ अधिक ८ वर्ष की आयु में केवलज्ञान होता है और एक कोटिपूर्व की आयु हो, उसमें यों समझो कि अनेक नील, पदम शंख वर्ष हो जाते हैं। इतने काल रहते हैं। भला बतलाओ उस समय जो लोग होंगे इन्हें प्रभु के कितने अधिक काल तक दर्शन होते हैं। और कह लो कि पीढ़ी बदल जाये सब को दर्शन हो, ऐसी एक अलौकिक बात है, क्यों आयु सबके बराबर तो नहीं होती। कई पीढ़ियां गुजर जाती हैं।

सयोगकेवली गुणस्थान के अन्तिम अन्तर्मुहूर्त में तीन अघातिया कर्मों की स्थिति का आयुकर्म स्थिति के समान हो जाने की प्रक्रिया प्रभु की तो आयु में जब अन्तर्मुहूर्त आयु शेष रहती है तब योगनिरोध होता है। और मोटे रूप से१०- ५ दिन शेष रह जायें तब तक भगवान का विहार दिव्योपदेश सब होता है। फिर वादर योगनिरोध उनके होता है। जो दिखने में आता था विहार हो रहा था उपदेश हो रहा था वह बंद हो गया बस इतना ही निरोध है। पर वास्तविक निरोध होता है अन्तिम अन्तर्मुहूर्त में। यहाँ एक बात समझने की है कि प्रायः करके अरहन्त भगवान के जो ४ अघातिया कर्म रहे उनकी स्थितियों में अन्तर रहता है। आयु तो नियमसे थोड़ी ही होती है और बाकी कर्म हजार वर्ष के भी हों, सत्त्व में। तो एक समस्या यह सामने आती है कि सिद्ध तो तब बनेगा जब चार अघातिया कर्म एक साथ नष्ट हों। भले ही एक समय का अन्तर पड़ा जिसे कहते हैं उपान्त्य और अन्त्य समय। वह प्रायः एक ही साथ है। कल्पना करो कि आयु पहले खत्म हो जाय और ३ कर्म बाद में खत्म हों ऐसा हो सकता क्या ? आयु खत्म हो गई तो रहेगा कहाँ। शरीर कहाँ, तीन कर्म कहाँ ? ऐसा भी हो नहीं सकता कि तीन कर्म पहले खत्म हो जावे और आयु पीछे खत्म हो, तब क्या करना चाहिये, प्रोग्राम बताओ कोई ऐसी विधि बने कि उनके जो तीन कर्म ज्यादह स्थिति के हैं वे आयु के बराबर हो जायें, यह ही तो निर्णय आप करेंगे। वहाँ ऐसा ही होता है जब केवली भगवान की अन्तर्मुहूर्त आयु शेष रहती है उस समय समुद्घात होता है। समुद्घात में क्या होता कि जैसे वह कायोत्सर्ग में विराजमान है। अरहन्त भगवान तो उनके आत्मा के प्रदेश बहुत नीचे और ऊपर तक फैल जाते हैं। शरीर को छोड कर नहीं। वहाँ भी रहेंगे, नीचे फैल जाते, ऊपर फैल जाते। वातवलय को छोड़कर बाकी सारी ऊँचाई रहेगी करीब १४ राजू। और मोटाई कितनी रहेगी, जितना कि उनका देह है, और यदि पद्मासन से बैठे हों तो उनके प्रदेश तिगुने मोटे होकर फैलेंगे। तिगुने कैसे ? देखो, जो प्रभु पद्मासन से बैठे हे तो तिगुना तो घेरे ही हैं आत्मप्रदेश। फिर दूसरे समय में अगल बगल में फैलेंगे कहां तक। जहाँ तक वातवलय आती है फिर आगे पीछे फैल गये वहां तक जहां वात वलय है, फिर वात बलयों में भी फैल जायेंगे। उस समय एक वर्गणा कहलाती। याने लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर आत्मा का एक-एक प्रदेश आ गया। अगर धोती निचोकर खूब बढ़िया फैल गई तो वह जल्दी सूख

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जायगी कि नहीं ? और अगर ऐसे ही निचोकर रख देंगे तो उसके सूखने में बहुत समय लग जायगा और उसकी विधि गलत हो जायगी। तो जब आत्मा के प्रदेश ऐसे ही फैल गये लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर आत्मा का एक-एक प्रदेश हो गया। उसके साथ वे कार्माण वर्गणायें भी फैल गईं। तितर बितर हो गईं। उस सम्बन्ध में प्राय: तीनं कर्म की स्थिति कुछ समान होने को लगती है। देखो इसमें क्या क्रम है ? ध्यान से सुनोगे तो बात समझ में आयगी। यह तो एक घटना सुनाने जैसी बात है। कोई गहरी बात नहीं है। भगवान अरहन्तदेव समवशरण में विराजे हैं और उनके ४ अघातिया कर्म बाकी रह गये हैं। आयु, वेदनीय, नाम व गोत्र। आयु थोड़ी रह गई और नाम, गोत्र, अन्तराय ये हजार वर्ष के धरे हैं तो वहाँ वे हजार वर्ष की स्थिति के कर्म आयु के बराबर होना चाहिये, फिर एक साथ चार कर्म दूर होंगे और सिद्ध बनेंगे। तो जब उनके दण्डसमुद्धात हुआ उस समत तीन अघातिया कर्मों का असंख्या बहुभाग नष्ट हो जाता है। जैसे हजार में १० का भाग दिया तो एक भाग १०० हुआ तो बहुभाग ९०० समझ लो। ९०० नष्ट हुए १०० बचे। दूसरे समय का जब कपाट समुद्धात होता है तो वहाँ बचे हुये अघातिया कर्म की स्थिति का असंख्यात बहुभाग नष्ट हो जाता है। जब प्रतर समुद्धात किया उस समय बचे हुए का असंख्यात बहुभाग नष्ट होता है। और लोकपूरणसमुद्धात में भी इसी तरह नष्ट होता है। और जब प्रदेश सिकुड़ते हैं तो क्रमश: प्रतर समुद्धात हो वहाँ भी स्थिति नष्ट हो, कपाट समुद्धात हो वहाँ भी स्थिति नष्ट हो और फिर दण्ड समुद्धात हो वहाँ भी स्थिति नष्ट हो। जब प्रवेश हो वहां भी स्थितिघात। इतने पर भी थोड़ा सा अन्तर रह जाता है। जब उनका योग निरोध हो गया वहाँ नष्ट हो जायगा, फिर एक समान रह जाता है।

सयोगकेवली प्रभु के योगनिरोध का दिग्दर्शन—प्रभु के मनोयोग, वचनयोग, काययोग तीनों मौजूद हैं मनोयोग में द्रव्य मनोयोग है अर्थात् अब भी जो द्रव्यमन की पर्याय है उसमें हलन चलन है, वचन में हलन चलन है। काय में हलन चलन है। लेकिन अन्तिम अन्तर्मुहूर्त में योग निरोध जब वास्तविक होता है तब सबसे पहले वादर काययोग द्वारा वादर मनोयोग का निरोध होता है, याने वादर काययोग होता व वादर मनोयोग दूर हो जाता है। फिर अन्तर्मुहूर्त बाद उसके वादर काययोग द्वारा वादर वचन योग दूर हो जाता है। वादरकाय योग से ही निरोध चल रहा, हो रहा न कोई योग, जिसके यह योग दूर हुआ फिर वादर श्वासोच्छ्वास नष्ट हो जाता है। देखिये प्रभु के भी श्वासोच्छ्वास चल रहे थे, मगर कुछ नैसर्गिक,जैसे कभी आत्मध्यान भरी वृत्ति बन जाये तो श्वास चलती है। मगर पता नहीं पड़ता कि कैसे नाक से श्वास निकलती। फिर तो वह भगवान है। भगवान यों श्वासोच्छ्वास नहीं लेते हैं. मगर श्वासोच्छ्वास है। श्वासोच्छ्वास के निरोध के बाद वादर काययोग द्वारा वादर कायकर निरोध हो जाता है। या यों कहिये सूक्ष्ममनोयोग द्वारा होता है। अब वादर काययोग न रहा, सूक्ष्म मनोयोग हो गया फिर उसके सूक्ष्मवचनयोग रहा, सूक्ष्म काययोग रहा। यह तो प्रभु की बात है। थोड़ा यहाँ अपने को देखो घटना में। कोई तालाब का पानी स्वच्छ है तो उसमें आप अपनी छाया देख लेते कि नहीं। और देखो जहाँ स्वच्छ पानी है, अपनी छाया दिखती है, मगर वहाँ हलन डुलन हो तो कुछ अन्तर आ जाता है। तो आत्मा में दोनों बातें चाहियें स्वच्छता भी चाहिए और हलन डुलन भी खत्म सो जाय। सो यह बहुत ऊँची बात है। यहाँ भी योग निरोध होने पर ही अयोग केवली बनकर सिद्ध बनेगा। इत योगनिरोधों में हो क्या रहा था, कैसा योगनिरोध होता है जैसे कि कषाय के नाश करने में नवम दशस गुणस्थान में अपूर्व स्पर्धक व वादरसूक्ष्मकृष्टि आदिक चलते हैं वैसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

योग के पूर्वस्पर्द्धक, अपूर्वस्पर्द्धक, वादरकृष्टि, सूक्ष्मकृष्टि बनती है जैसे जब किसी चीज का विनाश होता है तो एक बड़ी कान्ति सी होती है और वह अपने एक केन्द्र में आता है, नियन्त्रण में आता है, सूक्ष्म होता जाता है। सो यहाँ कृष्टि द्वारा योग निरोध हुआ। अब भगवान के योगनिरोध जब पूर्ण हो जाता है तो वह अयोगकेवली हो जाता है। १४ वाँ गुणस्थान हो जाय ऐसे सयोगकेवली अरहन्तदेव कोई तो तीर्थंकर होते, कोई सामान्य केवली होते और सामान्यकेवली के आगे और भेद करें तो कोई मूककेवली, कोई अन्तकृत्केवली, कोई समुद्घात केवली, कोई उपसर्गसिद्ध केवली। सामान्यकेवली तो वह है कि जिसकी दिव्यध्वनि खिरती है, गंधकुटी की रचना है। मूककेवली आदि अन्य केवलियों द्वारा दिव्यध्वनि नहीं होती।

सिद्धलोक के प्रतिप्रदेश पर अनन्तसिद्धों का वास देखो सिद्धलोक में कोई जगह ऐसी नहीं बची जहाँ अनन्तसिद्ध न विराजे हों। कितना बड़ा है सिद्धलोक जितना यह ढाई द्वीप और जिस जगह से मोक्ष जाते हैं भगवान उस जगह के ठीक सीध में लोक के अन्त में विराजे रहते हैं। तो आप ऐसा सोच सकते कि जहाँ समुद्र पड़ा है। बड़ा लवण समुद्र उसके ऊपर की जगह तो खाली होगी क्यों कि लोग यहीं पर्वत से अथवा पृथ्वी से मोक्ष जाते हैं। अरे नहीं किसी देव ने उपसर्ग कर साधु को समुद्र में पटक दिया, वहीं से वे मोक्ष जायें तो क्षेत्र भर गया ना जैसे मेरुपर्वत है तो उसकी जो चोटी है, उसके ऊपर इन्द्रक विमान एक बाल के अन्तर से आया है। अब बताओ उस चोटी के नीचे वहाँ मुनि कैसे पहुँचे? तो उसकी सीध की जगह भी खाली होगी? ---...अरे खाली वहाँ के ऊपर भी नहीं है। तो कैसे? अरे उपसर्ग सिद्धकेवली ने तो उन समुद्रों के ऊपर की जगह को घेर रखा, वहाँ विराजे किसी ने मुनिराज को पटक दिया समुद्र में, वहीं केवलज्ञान हो गया और वहीं से अन्तर्मुहूर्त में मुक्त हुए, ऐसा कितना काल व्यतीत हो गया? बोलो भर गया होगा कि नहीं? अब पर्वत की बात देखो। ऋद्धिधारी मुनि जिनकी ऐसी ऋद्धियाँ हैं कि सूक्ष्म शरीर बनाकर पर्वत के अन्दर से विहार कर जायें, कर रहे हैं विहार, आखिर हैं तो वे मुनि सावधान आत्मोपयोगी। पर्वत के अन्दर विहार कर रहे ऊपर नहीं और ठीक जहाँ वह सुमेरु की नोक है अन्दर, वहाँ पहुँचते हुए शुक्लध्यान हो गया, अरहन्त सिद्ध हो गये। वह तो वहीं से मोक्ष चला जायगा। देखो यहाँ सिद्ध क्षेत्र की अपने बीच भावना बन रही कि शिखर जी, गिरनार जी, कुछ सिद्ध क्षेत्र बने हैं ना १०, २०, ५० सिद्ध क्षेत्र। तो यह तो प्रसिद्धि की अपेक्षा है। वैसे तो यहाँ का रग रग सिद्ध क्षेत्र है। जहां आप लोग बैठे हैं यह भी सिद्ध क्षेत्र है। जहाँ कहीं जावो। समुद्र में जावो, पानी में जावो, ढाई द्वीप के अन्दर प्रत्येक सिद्ध क्षेत्र है। तो क्यों भाई सिद्ध क्षेत्र में पहुँचकर कोई पाप तो नहीं करता। डरते हैं, अरे सिद्ध क्षेत्र पर आये हैं, पाप न करो, बुरा न सोचो, गन्दा बात न करो। लो अब तो जान लिया, यह सब सिद्ध क्षेत्र है तो यहाँ गंदी बात न करो। फिर कहाँ हो गन्दी बात? कहीं होना ही न चाहिये।

सयोगकेवली भगवान की परमोपकारिता—यह भगवान सयोगकेवली ऐसे परम उपकारी हैं कि देखो णमोकार मन्त्र में यद्यपि सिद्ध भगवान अरहन्त से बड़े है, उनके ४ अघातिया कर्म नष्ट हो गये। शरीर भी नहीं है। उत्तम धाम, अन्तिम धाम जिसके बाद और कुछ स्थिति नहीं बनती लेकिन नमस्कार पहले किसका किया? णमोअरहन्ताणं। इसका कारण क्या है? इसका कारण यह है कि एक तो समझ लो हम सब खुदगर्ज हैं, अरहन्त भगवान की दिव्यध्वनि उपदेश से हमारा उपकार हुआ वाणी हुई, शास्त्र मिले, जिनसे समझकर हम आत्महित में लगते हैं। उस प्रकार से अनुगृहीत होकर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हम पहले अरहन्तदेव का स्मरण करते हैं। दूसरी बात– सबसे बड़े सिद्ध भगवान हैं ना ? तो सिद्ध भगवान का पता किसने दिया ? सिद्ध भगवान तो पता देते नहीं। आप कहेंगे कि हमारे गाँव के पड़ोसी भाई हैं उन्होंने पता दिया, अच्छा तो उनको किसने बताया ? अजी फलानी जगह के फलाने साधु ने बताया, फिर उसको किसने बताया ? उसको समन्तभद्र, अकलंकदेव, जयसेन आदिक आचार्यों ने बताया, फिर उनको किसने बताया ? उनको और पहले के आचार्यों ने बताया। उनको किसने बताया? उनको गणधरों ने बताया ! गणधरों को किसने बताया ? गणधरों ने भगवान की दिव्यध्वनि में साक्षात ज्ञान लाभ किया। तो सिद्ध का पता देने वाला कौन है जो सिद्ध का पता दे दे। " अरहन्त देव। इसलिए अरहन्त भगवान का पहले स्मरण किया है। ऐसा यह सयोगकेवली भगवान जो अभी भी बहुत दूर विराजमान हैं। जिनकी मूर्तियाँ स्थापित हैं, हम आत्मोलब्धि का साधन बनाते हैं वे प्रभु, वह गुण-विकास, वह गुणपुंज, वह स्वभावानुरूप, स्थिति उसका स्मरण हृदय में सदा काल रहे।

आत्मा की विकास पद्धति—संसारी प्राणी किस विधि से अज्ञान का विनाश कर, ज्ञान में मग्न होकर प्रभु बनते हैं। उसकी यह चर्चा चल रही है। यह जीव अनादि काल से पर में, परभाव में आत्मीयता करके, अज्ञानी बनकर जन्म मरण के दु:ख भोगता चला आ रहा है। इसको स्वयं कोई क्षयोपशमलब्धि प्राप्त होती है, उसका कारण कलाप तो होता है पर वह वचनागोचर है। इस अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव के कब क्षयोपशमलब्धि प्राप्त हो, कैसे हो, अपने समय पर हो, कुछ परिणाम के कारण हो, कुछ यथासम्भव विशुद्धि के कारण हो कि कर्म एक शिथिल अवस्था को प्राप्त हों, जिसे कहते हैं क्षयोपशम। जिसमें इतनी योग्यता बनी कि यह जीव मन वाला कुछ विवेक कर सकता है या यों समझिये जिनको मन मिला है उनको क्षयोपशमलब्धि मिली हुई है। तो क्षयोपशमलब्धि के प्रसाद से कुछ पौरुष में बढ़े तो कुछ विशुद्धि प्रकट होती है। परिणामों में निर्मलता बढ़ती है। और जब विशुद्धि परिणाम हो तब उपदेश हृदय में पहुँचता है। कोई मनुष्य यह सोचकर उपदेश करे कि देखें वक्ता क्या बोलता है, किस कला से बोलता है, कहाँ त्रुटि करता है, कोई बात पकड़ें, आदिक किसी अभिप्राय को लेकर बैठे तो उसके हृदय में उपदेश का असर नहीं होता। विशुद्धि आये तो उपदेश का धारण होता है। आत्मानुशासन में तब ही बताया है कि श्रोताओं में सर्वप्रथम गुण क्या है। "मेरा हित क्या है" ऐसा चिंतन करें। जो आत्महित के ध्यान से सुने तो कोई बालक भी धर्मवाक्य बोले तो उसका भी असर पड़ सकता। और यदि आशय कलुषित हो तो कोई कैसा ही उपदेष्टा हो, उसका असर नहीं होता। साक्षात तीर्थंकर क दिव्यध्वनि सुनते हुए आशय कलुषित हो तो वहाँ प्रभाव नहीं पहुँचता। इसलिये श्रोता में सर्वप्रथम गुण होना चाहिये कि मेरा हित क्या है ? ऐसा चिंतन मैं इसकी खोज कर रहा हूँ। मैं उस विधि से सुन रहा हूं, विशुद्धि बढ़े तो देशनालब्धि हो। यहाँ तक बात चली। इसके बाद प्रायोग्यलब्धि होती है। बहुत विशुद्ध परिणाम हुये। यद्यपि है अभी मिथ्यादृष्टि लेकिन इतने विशुद्ध परिणाम उसके होते कि कई प्रकृतियाँ बंध से ऐसी अपसृत हो जाती हैं कि सम्यक्त्व जगने पर बाद में उसका बंध हो सकता है, जिसका कि बंध यह रोक लेता है, इसे कहते हैं बंधापसरण। फिर इसके बाद करणलब्धि मिली। अध:करण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण याने उस काम की तैयारी के अत्यन्त निकट पहुँच गये। जैसे कोई टूर्नामेंट होने को हो तो महीनों पहले खबर देते हैं सब व्यायामशालाओं को, को, स्कूलों को कि अमुक तिथि को टूर्नामेंट होना है। इसमें सभी जगह के लोग अपने अपने नाम लिखाते हैं, तैयारी करते हैं। ये सब पहली तैयारी है और जब ऐन मौके पर एक लाइन से सभी बालक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

खड़े होते हैं और उस समय जब वे बोलते हैं — १, २, ३, तो वह एक अन्तिम तैयारी है। जहाँ ३ कहा कि दौड़ने लगते हैं। जैसे किसी काम के करने के लिये १, २, ३ होता है इसी तरह सम्यक्त्व की, चारित्र की सकलसंयम, देशसंयम आदि सब की उत्पत्ति होने के १, २, ३ का नाम है अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण। कुछ प्रगति ऐसी होती है कि जहाँ दो करण होते हैं। अनिवृत्तिकरण नहीं होता। उसकी पहिचान क्या कि जो एक काम करने वाले बहुत से लोग हों और उनमें बड़ी विभिन्नता पाई जाती हो उस काम के लिये अनिवृत्तिकरण नहीं होता। जैसे देशविरत हजारों हैं और उनमें यह भेद पड़ा है - कोई पहली प्रतिमा का है कोई ११वीं प्रतिमा का है। भावों की बात कह रहे हैं। सकलसंयम महाव्रत की बात देखो महाव्रती हजारों हैं, पर उनमें परस्पर बहुत भेद पड़े हैं। किसी का कितना ही छोटा चारित्र है। किसी का कितना ही बढ़ा हुआ है। तो जिनमें विषमतायें होती हैं उनमें अनिवृत्तिकरण नहीं होता। क्षायोपशमिक सम्यक्त्व में भी विषमता है। चलमलिन अगाढ़ दोष में विषमता जो काम ऐसे समान हैं, सब एक सरीखे हों, वहाँ अनिवृत्तिकरण होता है। जैसे प्रथमोपशम सम्यक्त्व, द्वितीयोपशम सम्यक्त्व, क्षायिक सम्यक्त्व चारित्रमोहनीय का उपशम, चारित्र मोह का क्षय अनन्तानुबंधी का विसंयोजन, ये सब कार्य ऐसे पुष्ट होते हैं कि जिनके ये हो गये उन सबके भाव समान होते हैं।

सम्यक्त्व अनन्तर आत्मा की प्रगति पद्धति—हाँ तो प्रसंग यह है कि संसारी जीव किस प्रकार प्रगति करते हैं। करणलब्धि होती सम्यक्त्व प्रकट होता। सबसे पहले प्रथमोपशम सम्यक्त्व होता है और जिसको बहुत जल्दी मोक्ष जाना है प्रथमोपशम सम्यक्त्व के बाद वेदक सम्यक्त्व होता है। वेदक सम्यक्त्व के बाद क्षयोपशम सम्यक्त्व होता है। यद्यपि वेदक और क्षयोपशम को लोग एक सा मानते है, लेकिन इनमें थोड़ा अन्तर है। जब तक सम्यक्त्व प्रकृति का उदय है तब तक उसका नाम वेदक सम्यक्त्व है और क्षायिक सम्यक्त्व पैदा करने के लिये वेदक सम्यक्त्व प्रकृति का भी क्षय करता है, जब तक क्षय नहीं हो चुकता तब तक वह क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि है, याने सम्यक्प्रकृति का उदय नहीं किंतु क्षयोपशम है, क्षय कर रहा है। खैर महाव्रती मुनि प्रमत्त अप्रमत्त गुणस्थान में हजारों बार परिवर्तन करता है। फिर सातिशय अप्रमत्तविरत होता, क्षपक श्रेणि के ८वें, ९वें, १०वें १२वें गुणस्थान में आये वहाँ समस्त मोह का विनाश हो चुका है और अन्त में तीन घातिया कर्मों का नाश होता है। अब बने सयोगकेवली। यहाँ सत् प्ररूपणा द्वारा इसी १३वें गुणस्थान का वर्णन चल रहा है। जैसे कषायों का नाश करने के लिये पौरुष होता था पूर्वस्पर्धक, अपूर्वस्पर्धक, वादरकृष्टि, सूक्ष्मकृष्टि, याने कषायों का क्षय करना यह सब उनका काम है। अब यहाँ कषायें तो नहीं हैं उसकी कृष्टि तो होने का काम नहीं, किंतु योग है उस योग को नष्ट करने के लिए ये सब कृष्टियाँ करना है। जब सूक्ष्मकृष्टि में जीव योग की सूक्ष्म दृष्टि में आता है तो उस समय सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती शुक्लध्यान प्रकट होता है और अन्त में एक साथ सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती ध्यान होता है। तीन अघातिया कर्म आयु कर्म के बराबर हो जाते हैं। और योग का पूर्ण निरोध हो जाता है। इसके बाद वह अयोगकेवली बनता है।

सयोगकेवली में कौन सा भाव है? जरा इसकी परख करो। इसके ५ प्रकार के भाव होते हैं—(१) औपशमिक भाव (२) क्षायोपशमिक भाव (३) क्षायिक भाव (४) औदयिक भाव और (५) पारिणामिक भाव। यहाँ केवलज्ञान होता और यथाख्यातचारित्र बढ़ रहा है, इन सब दृष्टियों से क्षायिक भाव है, किन्तु सयोगकेवली के बनने में निमित्त योग है, निमित्त के मायने ऐसा कि जैसे किसी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

लड़के का नाम मामचन्द रख दिया, भाई क्यों रखा ? यह मामा के घर पैदा हुआ इसलिए रखा । अरे किसी का नाम रखा नत्थूराम, भाई क्यों यह नाम रखा ? अरे इसकी नाक छेदी गई इसलिए रखा । किसी कारण को पाकर नाम रखने को कहते हैं नामकरण का योग यह १३वें गुणस्थान की बात चल रही है । जिनकी हम मूर्ति बनाकर पूजते हैं वे क्या हैं ? जैसे पिता की फोटो बनाकर घर में रखते हैं तो फोटो को देखकर पिता का ख्याल सब कोई करता है । बड़े अच्छे, बड़े गुणवान । अनेक घटनाएँ समझ में आती हैं उस फोटो को देखकर । ऐसे ही जिनेन्द्र मूर्ति को देखकर जिनेन्द्र देव के गुण, जिनेन्द्रदेव का स्मरण आदिक होते रहना चाहिये ।

प्रभु का प्रायोगिक परिचय—यहाँ अरहन्त भगवान सयोगकेवली प्रभु की चर्चा चल रही है । जरा उनका प्रायोगिक परिचय करो । उनका गुणस्थान अभी कौन सा है ? १३वाँ, याने तेरा गुणस्थान यह गुणस्थान किसका होता ? यह बात हम आप सब के ही सम्भव हो सकती । वाह्य पदार्थों में जो मोह और राग का लगाव है यह कायरता पैदा करता है आत्मा में । शूरता क्या है ? विकार को हटायें, दोषों को दूर करें, अपने पर जितना बोझ लदा है उसको फेंक दें, स्वतन्त्र हो जायें, केवल हो जायें, इसमें शूरता है । जैसे कहते हैं कि कोई शेर का बच्चा एक दो दिन का ही होगा एक गड़रिया के हाथ लग गया, तो वह शेर का बच्चा गड़रिया के घर रहने लगा । भेड़ बकरियों केबीच वह पल पुसकर जब बड़ा हुआ तो उसकी सारी क्रियाएँ उन्हीं भेड़ बकरियों की जैसी हो गईं । वह शर भी अपने को उन भेड बकरियों जैसा ही अनुभव करता था । कभी कभी तो उस पर भी बोझ लाद दिया जाता था । एक बार उसे जंगल में एक शेर दीखा, उससे अपनी तुलना की । ओह ! इसकी रचना इसका शरीर तो मेरे ही समान लगता है । बाद में उस शेर ने गर्जना की, ओह इसकी गर्जना, इसके शब्द मेरे ही शब्दों की तरह हैं । बाद में उसे उछलता हुआ देखा तो इसमें भी शूरता पैदा हुई, और उछलकर, समूह से अलग होकर वनराज (वन का राजा) बन गया । ऐसे ही अज्ञान से हम दबे हैं । मोहांधकार से आच्छन्न हैं, सब कुछ परिवार, सब कुछ इज्जत, सब कुछ धन वैभव, इस आशय में पड़े अपने को कायर बना रहे । देखो यद्यपि गृहस्थावस्था में ये सब काम करने पड़ते हैं, मगर श्रद्धा ऐसी निर्मल रहनी चाहिये कि जहाँ परका रंच भी लगाव न हो । मैं केवल ज्ञानमात्र हूँ । केवल मायने सिर्फ मैं ज्ञानमात्र हूँ । ज्ञान ज्ञान ही मेरा सर्वस्व है, और ज्ञान में जो कुछ कलंक आता है वे सब परभाव हैं, मेरी स्वाभाविक कला नहीं है । श्रद्धा में बराबर यह ही रहना है । भैया ! सयोगकेवली गुणस्थान कितना प्यारा लगता होगा कि भगवान भी हैं और लाखों वर्षों तक विहार भी कर रहे और देवेन्द्र जिनकी सेवा कर रहे, विहार में, समवशरण में । इसलिये किसी से पूछा जाय कि बतलाओ तुमको कौन सा गुणस्थान सबसे प्यारा लगता है ? यो यद्यपि गुणस्थान परभाव हैं, उनसे भी परे होकर सिद्ध होना यह अन्तिम काम है, फिर भी यदि गुणस्थान में ही कोई छटनी करे तो शायद यह कहेगा कि १३वाँ गुणस्थान अच्छा है । अच्छा तो वास्तव में सिद्ध दशा है फिर भी विवेकी रागीजन इस विधि से सोचते हैं ।

सयोगकेवली का व्यावहारिक परिचय—अब उस १३वें गुणस्थान का जरा कुछ प्ररूपणाओं द्वारा परिचय पाएँ । सयोगकेवली प्रभु जीवसमास में सैनी पञ्चेन्द्रिय हैं । प्रभु, सैनी नहीं हैं, मात्र पञ्चेन्द्रिय हैं तो भी भावतः नहीं, द्रव्यतः तो शरीर है । उनके ५ इन्द्रियाँ हैं जो देखने में आती हैं । उस दृष्टि से भगवान पञ्चेन्द्रिय हैं । लेकिन जो दिखता है वह भगवान नहीं जो भगवान है वह दिखता नहीं । जो नाम है वह भगवान नहीं, जो भगवान है उसका नाम नहीं । समवशरण में भी जाकर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भगवान के दर्शन करेंगे आप तो ज्ञान द्वारा कर सकेंगे, आँखों द्वारा नहीं कर सकते। लेकिन आँखों द्वारा जो पवित्र देह सातिशय दिख रहा है वह एकस्मरण में सहाय है। भगवान पर्याप्त हैं। शरीर उनका परिपूर्ण है। प्रभु के जब समुद्धात होता है तो यह कुछ समय के लिये अपर्याप्त होता है, फिर पर्याप्त हो जाता। इनके प्राणकितने ?५ इन्द्रियां न रहीं। शरीर की तो इन्द्रियां हैं पर प्राणकी इन्द्रियां नहीं रहीं। कायबल, वचनबल, आयु और श्वासोच्छ्वास ये ४ रहते हैं। और जब योग निरोध होने का प्रारम्भ होता, सूक्ष्म कृष्टि होती, मनोयोग, वचनयोग, श्वासोच्छ्वास इन तीन का निरोध हो जाता है। केवल सूक्ष्मकाययोग रहता। केवल वादर काययोग के बाद जब सूक्ष्म काययोग चलता। इन दोनों स्थितियों में केवल दो ही प्राण रहते हैं, कायबल और आयुबल। यह भगवान अरहन्त की ऊपरी पहिचान की जा रही है। भगवान में आहार, भय, मैथुन आदिक कोई भी दोष नहीं रहे, आहार, भय, मैथुन, परिग्रह आदिक चारों संज्ञाओं से अतीत यह केवली हैं। देखो यहाँ तक अपनी विरादरी है। अरहन्त भगवान मनुष्य ही हैं। वे पुराणपुरुषोत्तम हो गये, पर मनुष्यगति का उदय है तो आप समझें कि मनुष्यभव में कितनी श्रेष्ठ दशा होती है, और इसीलिए देवेन्द्र भी इस मनुष्यभव को तरसते हैं। दृष्टि बनाना चाहिये एक अन्तस्तत्त्व के लाभ की, दर्शन की, प्रतीति की।

आत्म परिचय व पूर्णज्ञान की महिमा देखिये अपना सारा भविष्य, "मैं क्या हूँ।" इस निर्णय पर आधारित है। यदि देह में आत्मबुद्धि है कि यह मैं हूँ तो उसकी पर्याय तो नरक तिर्यंच आदिक दुर्दशाओं में जायेगी। जिसका यह आशय है कि मैं तो ज्ञानमात्र अन्तस्तत्त्व हूँ। जो सहज होऊँ अपने अस्तित्व के कारण, पर के सम्बन्ध बिना अपने आप जो मैं होऊँ मैं तो वह हूँ ऐसा सहज ज्ञानमात्र अपनी प्रतीति रखें तो समझें मेरा भविष्यउत्तम गतिका है, और ऐसा जीव मुक्त होता है। तो "मैं क्या हूँ" यह निर्णय करना एक बहुत बड़ा पौरुष है। भगवान पञ्चेन्द्रिय में है, त्रसकाय में है, उनके योग ७ हो सकते हैं—सत्यमनोयोग, अनुभवमनोयोग, सत्यवचनयोग, अनुभववचनयोग, औदारिककाययोग, औदारिकमिश्रकाययोग व कार्माणकाययोग। भगवानकी दिव्यध्वनि खिरती है तो वह निरक्षरी है, अनुभव वचन है। उसमें शब्द नहीं, अक्षर नहीं, लेकिन जो वाणी प्रवेश करती है, कानों में तो श्रोताजनों को वह एक ध्वनि अक्षररूप बनती है। वे समझ लेते हैं और उस ध्वनि को अक्षररूप से ग्रहण करते हैं। प्रभु के औदारिक काययोग होता है, जब समुद्धात होता है तब औदारिकमिश्रकाययोग और कार्माण काययोग होता है। सयोगकेवली के एक ऊपर पहिचान की बात कह रहे हैं, उनके वेद नहीं रहा, कषाय नहीं रहीं। ज्ञान केवलज्ञान है। केवलज्ञान के द्वारा लोकालोक सब जान गये। देखो जगत में सबसे बड़ी चीज क्या है ? सबसे अधिक फैली हुई वस्तु क्या है ? केवलज्ञान। इससे अधिक फैला हुआ कुछ नहीं है। यद्यपि वह आत्मप्रदेश में ही है मगर ज्ञेय किया, विषय किया, इस दृष्टि से देखें तो सबसे अधिक फैला हुआ है ज्ञान। यह ज्ञान क्यों सबसे अधिक फैल गया कि यह सबसे पतला है, सूक्ष्म है। जो सूक्ष्म चीज होती है उसका विस्तार बहुत होता है। जो मोटी चीज है, स्थूल होता है उसका विस्तार बड़ा नहीं होता। दृष्टांत में देखो आजकल के वैज्ञानिक कहते हैं कि पृथ्वी तो थोड़ी जगह में है और पानी बहुत अधिक जगह में है। पानी चारों ओर है। जैनशासन की रचना से देखें तो तिर्यक् लोक में, मध्यलोक में जमीन की जगह कितनी है और पानी की जगह कितनी है ? बीच में जम्बूद्वीप है। उससे दूना लवण समुद्र है। उसको चारों ओर से घेर कर जो अन्त में पड़ता है स्वयंभूरमण समुद्र। तो जितनी जगह एक आखिरी समुद्र घेर रखा उतनी भी जगह नहीं है बाकी सारे समुद्र

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ओर द्वीपों को। चूंकि जमीन से पतला पानी है। इसलिये पानी का विस्तार पृथ्वी से अधिक है। पानी से पतली हवा है, तो हवा पानी से भी ज्यादह जगह घेरे है। और हवा से भी पतला आकाश है तो आकाश ने और ज्यादह जगह घेर रखा है। लोकाकाश में भी आकाश है, अलोकाकाश में भी आकाश है। और आकाश से पतला ज्ञान है। तो ज्ञान में सारा लोक आ गया, सारा अलोक आ गया। फिर भी ज्ञान ऐसा भूखा रहता है कि ऐसे-ऐसे अनगिनते लोकाकाश हों तो उन्हें भी जान लेता केवलज्ञान की कितनी महिमा है, कितना बड़ा बड़प्पन है, कितनी स्वच्छता है कि उसके पाने में अगर तन, मन, धन, वचन सब कुछ न्यौछावर हों और उसका परिचयरूप भी दर्शन मिलता है तो आपका कौन सा घाटा हो गया, बल्कि बहुत बड़ा लाभ पाया।

सयोगकेवली के अन्तर्बाह्य लक्षणों का परिचय—एक विशेष प्रयोजन और देखिये केवलज्ञान के परिचय में केवलज्ञान स्वभाव के अनुरूप दशा है। इस कारण स्वभाव और स्वाभाविक पर्याय दोनों की तुलना हो जाती है। और उसको निरख निरखकर यह जीव स्वाभावदृष्टि में सुगमतया आ जाता है। भगवान के यथाख्यात चारित्र है। जैसा आत्मस्वरूप है तैसा ख्यात प्रकट हो गया, दर्शन केवल दर्शन है, लेश्या शुक्ल लेश्या है, कषाय रंच नहीं। लेश्या का काम नहीं है, पर लेश्या केवल कषाय की वृत्ति का नाम नहीं, किंतु कषायसहित योग की वृत्ति का नाम लेश्या है। कषायें न रहीं, योग है, इस कारण उपचार से शुक्ल लेश्या है। यह जीव भव्य है। पहले भी था और अब तो भव्यत्व का विपाक होने को है। अब वह न संज्ञी रहा न असंज्ञी। न भगवान मन वाले हैं न मन रहित हैं। जब जब ज्ञान की अपूर्णता नहीं, विार तरंग नहीं तो मन वाले कैसे? औरएकेन्द्रिय आदिक की तरह अज्ञानी नहीं तो असंज्ञी कैसे? संज्ञी असंज्ञी दोनों से परे हैं प्रभु। यह जीव आहारक कहलाता है। केवलप्रतर लोकपूरण समुद्घात की स्थिति में यह जीव अनाहारक है। इसका उपयोग कितना विशुद्ध है कि ज्ञान और दर्शन दोनों एक साथ चलते हैं। देखो एक अन्दर की बात बतला रहे हैं हम। आपका ज्ञान और दर्शन एक साथ नहीं चलता। जैसे हम इस चीज को जान रहे हैं, इसका जानना छोड़कर हम दूसरी चीज को जानने चलें तो उपयोग पहले आत्मा की ओर आता है और उस वस्तु के जानने के लिये बल प्रकट करता है। इसी के मायने दर्शनोपयोग है। फिर उस वस्तु को जानते हैं तो हम लोगों का दर्शन-ज्ञान दर्शनज्ञान दर्शनज्ञान इस तरह से क्रमशः उपयोग चलता रहता है, पर प्रभु का ज्ञान और दर्शन एक साथ चलता है। प्रभु के शुक्ल ध्यान अन्त में ही होता है सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाती। वास्तव में वह ध्यान नहीं, किंतु निर्जरा विशेष है उस समय इसलिये उसे ध्यान का नाम लिया। प्रभु की अवगाहना कितनी होती है? ये अरहन्त भगवान कितने बड़े होते हैं? कम से कम साढ़े ३ हाथ के और अधिक से अधिक ५२५ धनुष के। देखो विदेह क्षेत्र में ५०० धनुष की अवगाहना है। तो फिर ५२५ धनुष कैसे हो गई? यहाँ चतुर्थ काल के आदि में और तृतीयकाल के अन्त में कुछ मोक्षगामी जीव हुके, उनमें बाहुबलि भगवान की ५२५ धनुष की अवगाहना थी। ऐसे अनेक होते रहे तो अधिक से अधिक मिलेगी तो ५२५ धनुष की अवगाहना मिलेगी। ४ हाथ का एक धनुष होता है। उस समय सभी मनुष्य इतनी बड़ी अवगाहना के होते थे। तो सारी बातें उसी के अनुरूप होती थीं। अब देखो आजकल हम आप कोई ५ सवा ५ फिट के मिलेंगे और इससे पहले के मनुष्य ६, ७ फिट के होते थे। और आगे हम आप से छोटे मनुष्य होंगे। इस तरह छोटे होते होते अन्त में १ हाथ का ऊँचा मनुष्य हो जायेगा। और जिस समय

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इतने हो गये उस समय धर्म कर्म कुछ न रहेगा। रसोई न रहेगी, पशुओं की तरह की जिन्दगी हो जायेगी।

सयोगकेवलीका संख्यादि प्ररूपणाओं द्वारा परिचय—संख्या कितनी है अरहन्त भगवान की ? ढाई द्वीप के अन्दर सब अरहन्त मिलकर कितने हो सकते हैं ? उनकी संख्या है ८,९८,५०२ (आठ लाख, अट्ठानबे हजार पांच सौ दो)। अरहन्त केवली का तीर्थंकर का नाम नहीं है। तीर्थंकर तो किसी समय अधिक से अधिक १७० हो सकते हैं। इससे अधिक नहीं हो सकते। कोई समय ऐसा होगा कि एक साथ तीर्थंकर जन्मे हों। वह कब जब भरत ऐरावत क्षेत्र से चतुर्थ काल हो तो ढाई द्वीप के अन्दर ५ भरत हैं और ५ ऐरावत और सभी में तीर्थंकर हों तो १० ये हो गये और ५ विदेहों में प्रत्येक विदेह में ३२-३२ महानगरी हैं ! जिनकी एक-एक नगरी का क्षेत्र भरत क्षेत्र से भी बड़ा है। १६० नगरियों के तीर्थंकर हो जायें तो उस समय सब मिलकर १७० तीर्थंकर हो जावेंगे। आजकल बतलाते हैं २० तीर्थंकर। उसका भाव तो यह है कि २० तीर्थंकर तो सदा रहेंगे याने प्रत्येक विदेह में ४-४ तीर्थंकर हैं मेरुपर्वत के पास की चार नगरियों में एक-एक। इस समय पता नहीं कितने तीर्थंकर हों। २० तीर्थंकर तो कमती की अपेक्षा बताया। तो अरहन्तों की संख्या सब मिलाकर ८ लाख ९८ हजार ५०२ है। सामान्य केवली, जिनका कोई नाम नहीं जानता, अरहन्त हैं। ऐसे अनेक अरहन्त मिलकर ज्यादह से ज्यादह कितने क्षेत्र में होते हैं, रहते हैं ढाई द्वीप में लोक के असंख्यात भाग में। उस समय समुद्घात हो जाय तो लोक के संख्यात भाग में, असंख्यात बहुभाग में और सर्व लोक में इनका फैलाव है, इनका निवास है। तो प्रभु सदा रहते हैं। क्या कोई समय ऐसा आयगा कि अरहन्त न रहें ? अरे जीवों की अपेक्षा प्रति समय कोई न कोई अरहन्त भगवान मिलेंगे ही। इनका अन्तर नहीं पड़ता, विच्छेद नहीं होता कि कभी अरहन्त भगवान न भी हों और एक जीव की अपेक्षा भी अन्तर नहीं, क्योंकि जो आया वह मोक्ष जायगा। फिर तो उस गुणस्थान में आना नहीं बनता। सयोगकेवली का काल नाना जीवों की अपेक्षा सभी समय है। और एक जीव की अपेक्षा जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है—१३वें गुणस्थान की। अन्तर्मुहूर्त को भगवान अरहन्त हुए और निर्वाण पा गये और अधिक से अधिक स्थिति कुछ अन्तर्मुहूर्त और ८ वर्ष और गर्भ के दिन कम करके एक कोटि पूर्व तक की स्थिति है एक अरहन्त की। कोई छोटी अवस्था में अरहन्त हो जाय तो अब आप समझो ८ वर्ष की उम्र में मनुष्य सम्यक्त्व के योग्य महाव्रत के योग्य और अरहन्त भगवान बनने के योग्य भी हो जाता है। तब हम आप तो इतनी उम्र पाये हैं, अनेक चोटें सहे, अनेक धोखे खाये फिर क्यों ऐसी प्रकृति रखी कि जिन बातों से तकलीफ हो, संक्लेश हो, उससे ही चिपके रहें ? आखिर मिटना तो सब कुछ है। जब सब कुछ मिटेगा तो फिर आप ज्ञानबल से कुछ अपने इस जीवन काल में ही उनसे अलग रहने का ध्यान बना लें। मेरा कहीं कुछ नहीं। मैं तो ज्ञानमात्र हूँ। ऐसा अपना ध्यान बनायें तो देखो इसी अन्तस्तत्त्व के ध्यान के प्रसाद से इस जीव का कल्याण होता है। आज इस १३वें गुणस्थान का वर्णन हुआ—सत्संख्या क्षेत्रस्पर्शन—कालांतर भावाल्पबहुत्वैश्च ·········। इस सूत्र की व्याख्या के प्रकरण में। अब इसके बाद अयोगकेवली होता है। जिसके बाद तुरन्त ही यह जीव मोक्ष जायेगा। अब अयोग केवली गुणस्थान का वर्णन इसके आगे कहेंगे।

सत् प्ररूपणाद्वारा अयोगकेवली का निर्देशन—जैसे पंचकल्याणक के अवसरों में देखते कहते हैं अब भगवान का विहार बन्द हो गया। अब योग निरोध हो गया। योग निरोध पूर्ण हो जाने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पर प्रभु के ४ अघातिया कर्मों की स्थिति समान हो गई। और सयोगकेवली गुणस्थान में प्रवेश हो गया। योग नष्ट होते ही ये अयोगकेवली कहलाने लगे। ये हैं शरीर सहित भगवान पर उनके आत्मा में अब प्रदेश परिस्पन्द नहीं है। यों तो कहलाया अयोग और केवलज्ञान होने से कहलाया केवली। अयोगकेवली भगवान शरीर में तो रह रहे हैं मगर अब शरीर से विदा होने वाले हैं सदा के लिये, तो विदाई के समय याने सदा के लिये अलग हो जाने के प्रकरण में शरीर में किस तरह निर्लेप अस्पृष्ट अलग-अलग से रहना होगा इसके लिये यों समझ लो कि जैसे शीशी में पारा रहता है। पारा शीशी में लगता नहीं है, वह अपने में अलग ही बना है। ऐसे ही शरीर के क्षेत्र में रहते हुये भी शरीर से वह स्पृष्ट नहीं, वह संबन्ध नहीं जो योग अवस्था में रहता है और इसका विशेष स्पष्टीकरण तब होगा जब यह जानेंगे कि अयोगकेवली भगवान के किन-किन प्रकृतियों का उदय रहेगा, भगवान के शरीर नामकर्म का और अंगोपांग नामकर्म का उदय नहीं है। अब समझ लीजिये कि शरीर तो है, ढांचा तो बना है मगर अंगोपांग नामकर्म का उदय नहीं है। योग अवस्था तक ये सब उदय चल रहे हैं। अब क्या हो? अयोगकेवली गुणस्थान में केवल १२ प्रकृतियों का उदय रह गया। बंध की समस्त प्रकृतियाँ १४८ हैं। उनमें से केवल १२ का उदय रह गया, सो भी शीघ्र छुट जाने के लिये। अयोगकेवली का समय बताया गया है कि ५ ह्रस्व अक्षरों को जल्दी बोलने में जितना समय लगे उतने समय तक १४वाँ गुणस्थान रहता है। अ इ उ ऋ लृट ये ५ ह्रस्व अक्षर जल्दी बोले। जितना समय लगे उतना समय १४वें गुणस्थान में लगता है। अब भगवान निर्वाण को प्राप्त होने वाले हैं। तो देखो अपना कोई प्रेमी, अपना सहाय, अपना इष्ट पुरुष यदि विलायत को जाय, विदेश को जाये तो यहाँ पहले से कितनी तैयारी समारोह, लोगों का मिलना बड़े स्वागत के साथ विदाई करते हैं ना लोग और जो आत्मा अनन्तकाल के इस संसार से विदा हो रहा है उसकी विदाई कैसे होती है सो देव इन्द्र सब उस समय निर्वाण कल्याणक मनाकर उनकी विदाई देते हैं।

अयोगकेवली गुणस्थान में प्रकृतियों के उदय व अनुदय के विवरण से देह व स्थिति विधि का अनुमान—अयोग केवली के किन १२ प्रकृतियों का उदय हैं? वेदनीय की एक प्रकृति, चाहे साता वेदनीय रहे चाहे असाता, भगवान को असाता से दुःख नही और साता से संसार का सुख नहीं, किंतु आत्मीय विलक्षण अलौकिक आनन्द बना हुआ है। कोई सा भी उदय में रहे, मनुष्यगति का उदय चल रहा है, मनुष्य ही है ना वह। यह उदय कहाँ जायेगा? अन्त समय में नष्ट होता है। जैसे नष्ट होगा वैसे ही निर्वाण हो जायेगा। पञ्चेन्द्रिय जाति, देखो अभी तक अपनी ही बिरादरी चल रही है। भगवान हो गये, बड़े हो गये, पर हम ही में से तो हैं वे भगवान। ध्यान दो। एक व्यर्थ का अज्ञान और मोह मिट जाय तो वही स्थिति हमारी हो जायेगी जो प्रभु की है। भला बतलाओ, मोह करके कौन सी निधि लूट ली जायेगी? इस पर विचार करो। कल्पनायें तो अनधिकृत बनती कि हम बहुत धनी बन जाएँ, करोड़पति बन जायें, अरबपति हो जाएँ, हो गये मानो कोई, तो हुए बाद इस आत्मा को क्या मिलने का है? भाई पुण्य के उदय का सदुपयोग तो यह है कि हमारी स्थिति ठीक है। सम्पदा है कि अब खाने पीने की तकलीफ नहीं है। आराम से निर्वाह हो सकता है। तो इस समय क्या करना कि ज्ञानार्जन में, धर्म अध्ययन में अधिक समय लगाना। यह है सम्पन्न होने का सदुपयोग। तो भगवान के पञ्चेन्द्रिय जाति नामकर्म का उदय है, सुभग नामकर्म का उदय है। सुभग नामकर्म के उदय में सर्व को प्रिय लगते हैं। उनका कोई विरोधी नहीं? जो दर्शन करता है वह नतमस्तक हो जाता है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आखिर निर्दोष आत्मा ही तो है। त्रस नामकर्म का उदय है। जब पञ्चेन्द्रिय है त्रस भी साथ लगा है। वादर प्रकृति का उदय है। शरीर तो यह ही है औदारिक शरीर और पर्याप्त है यह वादर शरीर। १४वें गुणस्थान में प्रत्येक शरीर नामकर्म का उदय है। प्रत्येक शरीर नामकर्म का यह कार्य है कि एक शरीर का जीव एक ही स्वामी रहे। कहीं एक शरीर के अनेक स्वामी हो जायें तो उन्हें कहते हैं निगोद। निगोद में है ऐसा कि एक है और उसमें बस रहे अनन्त जीव। उन सबका एक साथ जन्म, एक साथ मरण, एक साथ श्वासोच्छ्वास वगैरह। एक यह बात समझ लो कि यदि कोई पुरुष घर में आसक्त रह रहा, मोही है, स्त्री का मोह हो या पुत्र का मोह हो किसी का मोह हो उसके सुख में सुख माने, उसके दुःख में दुःख माने, उसके भले को भला समझे, उसकी दुर्दशा को अपनी दुर्दशा समझे। थोड़ी कसर और रह गई कि उसके श्वास में श्वास लेवे। खैर कुछ हर्ज नहीं। ऐसा जो लोग सीख रहे हैं घर में वे निगोद में अच्छी तरह से निगोद के कानून माफिक दिन कटे उसका मानो अभ्यास कर रहे हैं, क्योंकि निगोद में ऐसा ही करना पड़ता है। एक के जन्म के साथ सबका जन्म, एक के मरण के साथ सबका मरण। तो मोहीजन यह बात यहाँ खूब सीख रहे हैं कि कहीं निगोद में वहाँ के नियम में अन्तर न पड़ जाय। तो यहाँ भी सुख में सुख और दुःख में दुःख हो रहा निगोद जाने का अभ्यास चल रहा है। तो वह कहलाता है साधारण शरीर वाला निगोद। पर प्रभु वादर शरीर वाले हैं। और वादर शरीर वाले हम भी हैं। प्रत्येक हम। भगवान के आदेय प्रकृति का उदय है सबको रुचे। यशःकीर्ति का उदय है। और जो तीर्थंकर हुये उनके तीर्थंकर प्रकृति का उदय है। और जो केवली तीर्थंकर नहीं हैं उनके तीर्थंकर प्रकृति का उदय नहीं, क्योंकि उनके तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता ही नहीं है। चाहे तीर्थंकर हुये हों भगवान, चाहे एक सामान्य मुनि, जिसके बहुत विशेष ज्ञान भी न था, एक अध्यात्मबोध था वह भगवान बन जायें तो उसके ज्ञानानन्द में और तीर्थंकर भगवान के ज्ञानानन्द में कोई अन्तर नहीं है। उनके मनुष्य आयु का उदय है और उच्च गोत्र का उदय है। इन उदय प्रकृतियों में देखा होगा शरीरनामकर्म का उदय नहीं है। संस्थान का उदय नहीं है। संहनन का उदय नहीं है, अंगोपांग का उदय नहीं है, जिससे अंगोपांग बनते हैं। तो इन प्रकृतियों का उदय नहीं, इससे ही अनुमान करलो कि शरीर में कैसे रहना बन रहा है अयोगकेवली का। ये अयोगकेवली भगवान अल्प अन्तर्मुहूर्त में निर्वाण को प्राप्त होते हैं।

अयोगकेवली गुणस्थान में शेष समस्त प्रकृतियों का प्रक्षय—यह १४वे गुणस्थान की चर्चा है। कुछ लोग सोचते हैं जैसे कि कहीं एक जगह पढ़ाई कर रहे थे तो जब वहाँ गुणस्थान पढ़ा तो वहाँ एक वृद्ध महिला ने कहा कि महाराज हम तो अभी तक यह जानते थे कि गुणस्थान कोई सीढ़ी होती है तो उस पर चढ़कर मोक्ष पहुँ जाते हैं। तो गुणस्थान क्या है ? परिणाम। परिणामों में विशुद्धि बढ़ाते चले जाते हैं और अन्त में शरीर का दूर होना, कर्म का दूर होना, मुक्ति प्राप्त हो जाती है। तो उदय तो यहाँ ११ या १२ प्रकृतियों का रहता है, परन्तु सत्त्व ८५ प्रकृतियों का रहता है। बना रहे सत्त्व, चला आये, अच्छा भी है, बुरा भी है सत्त्व, जो एकदम खास बाधक थे उनका तो सत्त्व नहीं रहा। ऐसा है कि जो अधिक विघ्न डाले उसकी पहले खबर लें, जो सामान्य है वह बना रहे, उनका कुछ खयाल नही। ऐसे ही जो बाधक प्रकृतियाँ थीं उनका सत्त्व तो न रहा और जो साधारण रह गये उनका सत्त्व चल रहा है। उनमें से अयोगकेवली गुणस्थानके उपांत्यसमयमें ७२ प्रकृतियों और अंतसमयमें १३ प्रकृतियों का नाश होता है। औरप्रभु सिद्ध हो जाते हैं। अब जिन १३ प्रकृतियों का सत्त्व रहता है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अन्त तक, अन्त में नष्ट होती हैं, वे वे ही हैं जिनका कि उदय चल रहा। सिर्फ उसमें एक मनुष्यगत्यानुपूर्वी मिटने के लिये और बढ़ जाती हैं याने उसका सत्त्व है। उदय तो होने का नहीं आनपूर्वी का। इस तरह समस्त कर्मों का क्षय होने से भगवान सिद्ध हो जाते हैं।

आत्महित के लिये भाव की सम्हाल का अनुरोध—चर्चा चल रही है आत्मा की। इस आत्मा का पहला घर कौन सा है? निगोद जहाँ अनादिकाल से बस रहे। हम आपको बड़ा संतोष मानना चाहिये कि निगोद से निकल आये और अनेक स्थावरों से निकले। दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, ४ इन्द्रिय से निकले, पञ्चेन्द्रिय में भी आज हम हुए, मनुष्य हैं, विशेष मन है, ज्ञान मिला है। तो अब मुझे इन बाहरी प्रसंगों की, किसी प्रसंग की तृष्णा न रखना चाहिये। गृहस्थी में हैं तो थोड़े उद्यम से जैसा होता हो होने दो, उसके ज्ञाता द्रष्टा रहो। उसमें ऐसी वाञ्छाएँ न बढ़ाओ कि मेरे को तो इतना धन होना ही चाहिये। ऐसा बनना ही चाहिये। सोचने से होता भी नहीं। जब उदय होता तो यों ही छप्पर फाड़कर लक्ष्मी गिरती है। तो भावों की सम्हाल बनावें, यह धन कमाने का खास मूल मंत्र है। हाथ से धन नहीं कमा सकते। भाव विशुद्ध बनाएँगे तो पुण्यबंध होगा। पुण्यविपाक के काल में धन आयेगा। मगर धन में वाञ्छा ही मत करो। संसार के हेतुओं की इच्छा ही न करो। यह तो हमने यों कह दिया कि किसी के भाव में हो कि हम तो धन के पीछे ही दौड़ लगायेंगे तो उनको बताया कि धन अगर कमाना है तो उसका भी उपाय यही है भावना, पुण्य भाव, विशुद्धि। और फिर पुण्य और पाप हैं तो दोनों ही संसार के बंधन। वह तो एक ज्ञानी है जो संसार का बन्धन ही नहीं चाहता। पाप तो है ही संसार। पुण्य है तो कुछ वैभव मिला, यश मिला, मगर है वह भी संसार और कहो पाप के उदय में जीव का भला हो जाये और पुण्य के उदय में कहो जीव का बुरा हो जाय। देखो दो बातें होती हैं—पाप का उदय और पापात्मा पुण्य का उदय और पुण्यात्मा। पाप का उदय बुरा नहीं, किंतु पापात्मा होना बुरा। खोटे परिणाम हुये, पाप के परिणाम हो रहे तो वह बुरा है। पाप का उदय बुरा नहीं। उसके मुकाबले देखो। सुकौशल, सुकुमाल, गजकुमार आदिक पर जो तीव्र उपसर्ग आया तो क्या कहेंगे कि उनके तीव्र पुण्य का उदय था? क्या पुण्य के उदय में शेर मांस लोचेगा? क्या स्यालिनी खायेगी, क्या पुण्य के उदय में अग्नि जलायेगी? पाप का उदय था, इसमें कोई संदेह नहीं, मगर पाप का उदय होते संते भी उन ऋषि संतों ने अपना ज्ञान बल सम्हाला। आत्मध्यान प्रबल किया, शुक्लध्यान उत्पन्न किया। कर्म का क्षय कर निर्वाण पाया। पाप के उदय ने क्या बिगाड़ किया? पापात्मा न होना चाहिये। पाप का उदय आये तो धीर गम्भीर शूरवीर बनो। समझो कि बाहरी बातें हैं मेरे आत्मा में इनका प्रवेश भी नहीं है, ऐसा जानकर निरपेक्ष रहो। अच्छा दूसरी बात सुनो—पुण्य का उदय और पुण्यात्मा। पुण्यात्मा कहते हैं पवित्र आत्मा को, जिसके विशुद्ध भाव हो। पुण्यात्मा तो बने मगर पुण्यका उदय मत चाहें। पुण्य का उदय भी भला नहीं। पुण्य के उदय में यश सम्पदा आदिक सब आयें और इनमें आसक्ति हो गई। मोह हो गया, दूसरों पर अन्याय करने लगे, स्वच्छन्द बन गये, विषयों में लीन हो गये तो उसका फल क्या होगा? दुर्गति। इससे भाई अपने को सम्हालो।

स्वयं के अन्तस्तत्त्व की सम्हाल में धर्मलाभ—भैया! विकल्प में अन्य सब तो सब कुछ सम्हाला और अपने को न सम्हाला तो कुछ न सम्हला। आप ने देखा होगा कि बहुत सी बूढ़ी बूढ़ी डोकरियाँ मथुरा वृन्दावन वगैरह धाम घूमने आती हैं और किसी का कुछ नहीं गुमता। सब अपनी अपनी पोटली लेकर घर आ जाती हैं और यहाँ कोई २-३ घर के रईस लोग, बड़े सज्जन कहे जाने वाले

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

लोग अगर यात्रा करें दो चार कुटुम्ब के मिलकर तो वे न जाने कितनी ही चीजें गुमा आएँ। कहीं अटैची, कहीं विस्तर, कहीं कुछ। क्या फर्क पड़ गया? यह फर्क पड़ा कि इन सज्जनों ने तो दूसरों-दूसरों की फिक्र रखी सारी यात्रा में, अजी उनका सामान आ गया कि नहीं। उनका आया कि नहीं। बस दूसरों दूसरों की ओर ध्यान रखने से उनका सामान गुम जाता है। और वे डोकरियाँ सभी अपनी-अपनी गठरी की फिकर रखती हैं, दूसरे की गठरी की फिकर नहीं करतीं, यही कारण है कि उन सब डोकरियों का कुछ नहीं गुमता। यह दृष्टांत मुक्ति मार्ग की प्रेरणा की दृष्टि से देखें, लोकाचार की दृष्टि से नहीं। तो ऐसे ही हम आप सब लोग अगर अपने-अपने धर्मपालन को दृष्टि रखें तो सभी धर्मात्मा बन जायें, सबको शांति मिलेगी, सबको मुक्ति का मार्ग मिल जायगा। और जो यह कोशिश करे कि अन्य लोग समझ लें, ये ऐसा धर्म करें, ये इस तरह चलें, सबने ऐसा ही सोचा तो उनमें एक भी धर्मात्मा न बना। सबने सोचा दूसरों को। धर्म का खूब प्रभाव हो, प्रचार हो, यह भी समझे, वह भी समझे, यह जाने, वह जाने, सबने यही किया। खुद के लिये किसी ने कुछ नहीं किया। तो उनमें कह सकेंगे क्या कि किसी भी एकने धर्म का लाभ उठाया है? भाई! धर्मपालन तो एक समता शांति धीरता गम्भीरता चुपचाप गुप्त बिना दिखावट, बिना बनावट के हुआ करता है। उसमें दूसरे का दिखावा नहीं। वह तो एक अपने में गुप्त ही गुप्त रहकर भीतर में सहज ज्ञानस्वभाव का ज्ञान करते हुए निरन्तर ज्ञान में सहज ज्ञानस्वभाव ही बसे। बसो-बसो हे सहज ज्ञानघन। यह ज्ञानघन, यह आत्मतत्व यही ज्ञान में बसे, अन्य कुछ ख्याल में ही न रहे तो इसे तप का, इस आध्यात्मिक प्रतयन का इतना प्रताप जागता है, कि भव-भव के बाँधे हुए कर्म भी क्षय को प्राप्त होते हैं।

आत्महित के प्रसंग में अपना कर्तव्य—भैया! अपने को करना है क्या? अपने में अपना काम। भीतर निहारो। किसे करो? खुद को, किसका करना? खुदका, किसके लिये करना? खुद के लिए। कहाँ करना? खुद में करना। किसके द्वारा करना? खुद के द्वारा। बाहर में मेरे करने का कुछ पड़ा ही नहीं है क्योंकि सर्व वस्तु पृथक्-पृथक् हैं उनकी परिणति हम कर ही नहीं सकते। जो कुछ करना है, खुद में करना है। दो बच्चों में लड़ाई हो जाये एक पड़ोसी का एक खुद का और यदि कोई दूसरे के बच्चे को डाटने लगे, क्यों लड़ता है तो उसकी लड़ाई बढ़ेगी, न कि शांत होगी। और यदि खुद के लड़के को डाट दे, वहाँ क्यों जाता है? थप्पड़ लगा दे, घर में बैठा ले तो लड़ाई समाप्त। जितनी जो कुछ विडम्बना है वह सब कषाय की विडम्बना है। कषाय को वश करे मन को वश करे। विवेक बनावें तो शांति मिलेगी और जो कषाय बढ़ी तो वहाँ अशांति मिलेगी। क्रोध, मान, माया, लोभ इन चारों कषायों ने इस जीव को ऐसा पीस दिया कि जैसे मानो चक्की में अन्न पीस दिया जाय। दुःखी होते हैं और दुःखी होने के बाद भी सुख का उपाय कषाय को ही समझते हैं। कितनी विडम्बना है कि कषाय से ही दुःख होता और कषाय को ही दुःख मेटने का उपाय समझते। यह सब क्यों हो रही विडम्बना कि अपने आत्मा के सहज स्वरूप की सुध नहीं है कि मैं वास्तव में यह हूँ। मान रखा है बाहरी बाहरी बातों को, मैं हूँ। इसका बाप हूँ। मैं अमुक नाम का हूँ। मैं ऐसा व्यापारी हूँ। मैं सरकार में पहुँच वाला हूँ। नाना प्रकार की बातें समझ रखी। हम बोल रहे मोक्षमार्ग की बात। कहीं ऐसा न सोचना कि क्या हम सरकार में अपनी पहुँच न रखें? अरे न रखे पहुँच तो काम कैसे चलेगा? तो वह बात लोक है, करें, मगर हम मोक्षमार्ग की बात कह रहे हैं कि उत्कृष्ट शांति मिलेगी अपने को सहज स्वरूप मानने में। उसी का प्रताप है कि नाना कर्मों का विध्वंस होता है। अशांति दूर होती है। प्रभुता प्रकट होती है। यह आयोगकेवली भगवान, इनके देह की अवगाहना कम से कम साढ़े तीन हाथ और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अधिकसे अधिक ५२५ धनुष है। अब देखो जब तक निर्वाण न हो उस क्षणतक याने संसार के अन्त समय तक अयोगकेवली के अन्त समय तक। हम आप के लिये कितना गौरव की बात है कि वह भगवान अभी हमारी ही जाति के बन रहे हैं। मनुष्य ही कहलाते हैं। और मनुष्यों को ही यह सुभवितव्य मिलता है कि वे प्रभु बनते हैं।

अयोगकेवली भगवान का व्यावहारिक परिचय—ये अयोगकेवली सैनी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त कहलाते हैं। देखो सैनी रहे नहीं थे, पञ्चेन्द्रिय भी उपचार से, द्रव्येन्द्रिय 'होने से पञ्चेन्द्रिय हैं। भाव से है नहीं, किंतु शरीर में इन्द्रियाँ अब भी हैं और पर्याप्त हैं। देखो अयोगकेवली गुणस्थान ही ऐसा है कि अपने पूरे समय में अनाहार रहता है याने शरीर की वर्गणायें उनके शरीर में नहीं आतीं। आप यह देखो, जब जुदाई का फैसला होता है तो उस फैसला से कुछ समय पहले कैहा वातावरण बनता है। सयोगकेवली तक तो आहारक थे। शरीर की वर्गणायें अनेक आती थीं, पर अयोगकेवली में अब शरीर के नये परमाणु कुछ भी कहीं आ रहे। क्या है, क्या स्थिति है ? शरीर को शरीर कहा गया। खैर पाषाणवत् मूर्ति है। इसमें कहीं जाता कुछ नहीं है, निकल जायेगा वह आत्मा और यह शरीर कपूर की तरह उड़ जायगा। क्यों उड़ जायगा कपूर की तरह ? देखो कितना स्वाभाविक साधन है नहीं, तो कहते हैं चलो ले चलो भगवान को मरघट में। आत्मा देह से निकला और शरीर के स्कंध कपूरवत् उड़ जाते हैं। रहता कुछ नहीं। क्या रहता है नख और केश ? आप कहेंगे इतना भी क्यों रहने दिया यह भी साथ में उड़ जाता तो क्या करे, नख और केश वे ही रहेंगे जिनमें कि आत्मा के प्रदेश नहीं रहते। हम आप के केशों में भी आत्मा के प्रदेश नहीं हैं तब ही तो नाई से कटवा देते तो दुःख नहीं होता और जो बढ़े हुए नाखून हैं उनमें भी प्रदेश नहीं है। नख कट जाते, पर कोई कष्ट तो नहीं होता। तो जहाँ आत्मप्रदेश न थे वे ही जड़ रह गये। सो भक्तिवश इन्द्र उन नख और केशों को क्षीरसागर में ले जाता है, क्योंकि यह शरीर का अंग न रहा। वह तो जड़ पदार्थ रहा। तो अयोगकेवली भगवान के पर्याप्तियां तो सब हैं, प्राण केवल एक है आयु। श्वासोच्छ्वास भी नहीं रहा। इनके संज्ञा है ही नहीं। संज्ञा होती है १०वें गुणस्थान तक। ये मनुष्य हैं पञ्चेन्द्रिय हैं। इनके त्रसकाय है, योग रहा नहीं, वेद रहा नहीं, कषाय रही नहीं। केवलज्ञान प्रकट हुआ। इन प्रभु के यथाख्यात चारित्र है केवलदर्शन है, लेश्या रहती नहीं, लोभ भी नहीं रहा, भव्य हैं, कैसे भव्य ? भव्योत्तम। जिसके बाद भव्यत्व का भी प्रक्षय हो जायेगा। देखो जैसे कोई बच्चा दूसरी क्लास में पढ़ रहा, अथवा चौथी क्लास में पढ़ रहा तो उसे कहेंगे कि यह चौथी क्लास के योग्य है। और वही बच्चा मान लो मैट्रिक पास हो गया तो क्या उसे कहेंगे कि यह चौथी क्लास के योग्य है ? न कहेंगे। ऐसे ही भव्य उसे कहते हैं जो रत्नत्रय की पूर्णता का पात्र हो। तो रत्नत्रय की पूर्णता जहाँ हुई वहाँ सहज शुद्धत्व हो गया तो वहाँ भी यही कहेंगे क्या ? वहाँ तो भव्यत्व का विपाक हुआ, पूर्ण फल मिल चुका, यह जीव क्षायिक सम्यग्दृष्टि है। कर्मक्षय से जो सम्यक्त्व पाया, सम्यक्त्व तो सदा रहता है। यह न संज्ञी है न असंज्ञी। आहारक भी नहीं है। और एक साथ ज्ञानदर्शन का उपयोग चलता है। यह बात कह रहे किस की जो अल्प अन्तर्मुहूर्त में निर्वाण पायगा ऐसे प्रभु की बात।

प्रभुगुणस्मरण से निर्मोह, निःसंग, निर्विकल्प होने की प्रेरणा का लाभ प्रभु के गुणों की चर्चा सुनकर अपने आप में उन गुणों की भावना लाना चाहिये। ऐसा ही मैं हूँ। ऐसा ही होने में पवित्रता है। ऐसा ही होना सर्वोत्कृष्ट वैभव है। यहाँ का मोह बंधनजाल में फसना है, यह व्यामोह है,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अविवेक है। देखो भाई मोह में जिन्दगी बिताओगे तो जिन्दगी जायगी, और निर्मोह होकर बिताओगे तो जिन्दगी जायगी मगर मोह में रहने से भविष्य खराब है। यहाँ तो कोई आयगा नहीं मदद देने को। जिनके मोह में पड़े ये तो मदद देने जाएँगे नहीं अगले भवमें, और जो पहले कर्म किया या जो कुछ भी कर्म कमाया वे साथ जाएँगे। तो अपनी कुछ जिम्मेदारी समझें अपने लिए और यह तो सब भिन्न है, स्वयं स्वयं की परिणति से स्वयं स्वयं में परिणमन होता स्वयं जगत परिणाम। अरे बच्चे पुण्य उदय है सो सब कमाई हो रही है। मैं करता भी क्या ? जिन जिनके भोगने में सम्पदा आयगी उन उनके पुण्योदय है उस कमाई का कारण तो पुण्योदय है तो थोड़ा उद्यम करने से ही पर्याप्त कमाई होगी। हमारा कर्तव्य है कि हम थोड़ी ड्यूटी निभायें, सब कुछ होता है अचानक। अयोगकेवली भगवान के चौथा शुक्लध्यान होता है, व्युपरत क्रियानिवृत्ति अर्थात जहाँ योग सब नष्ट हो गये, चूँकि परिस्पंद न रहे ऐसी स्थिति है सो ध्यान नहीं है यह क्योंकि एकाग्रचिन्तानिरोध का नाम ध्यान है। मगर ध्यान का फल है निर्जरा और निर्जरा यहाँ चल रही इसलिये ध्यान उपचार से कहा। ये भगवान कहाँ रहते हैं ? ढाई द्वीप के अन्दर। इतना ही क्षेत्र है, इतना ही स्पर्शन है। अयोगकेवली का काल अन्तर्मुहूर्त है ५ अक्षरों के बोलने में जितना समय लगता उतना है। इसका अन्तर काल नहीं है। यह अयोगकेवली मोक्ष चले गये, फिर क्या १४वें गुणस्थान में आयेंगे ? नहीं, सो अन्तर न रहा, नाना जीवों का अन्तर है अर्थात् कोई समय ऐसा आ सकता कि जब कोई भी अयोगकेवली न हो, और ऐसा अन्तर अधिक से अधिक ६ महीने तक का हो सकता है। कहो ६ महीने तक कोई जीव मोक्ष नहीं जा रहे, पर यदि ऐसा लगातार ६ महीना समय गुजर जाय तो ८ समय में हो ६०८ जीव मोक्ष चले जाते हैं। ये प्रभु अप्रमत्त हैं, एक स्वरूप हैं, एक अखण्ड शुद्ध चिद्भाव प्रकट वीतराग केवलज्ञानी है। इसका समय थोड़ा है इसलिए इस स्थिति की मूर्ति का प्रचार नहीं है। अथवा उनके ध्यान की चर्चा नहीं है मगर यह तो सयोगकेवली से उत्कृष्ट दशा में हैं अयोगकेवली जिसका कि अल्प अन्तर्मुहूर्त में याने त्वरित नियम से निर्वाण होगा। निर्वाण होने का तो नियम क्षपक श्रेणी माड़ने से पहले क्षपक श्रेणी के लिए सातिशय अप्रमत्त विरत का जो अधःकरण परिणाम किया तब से निश्चय हुआ कि यह इसी भव से मोक्ष जायगा और अयोगकेवली अब अल्प समय में ही मुक्त हो जायेंग। तो इससे अपने को यह शिक्षा लेना है कि हम निर्लेप निरन्जन सहज शुद्ध अपने स्वभाव को समझें और उस रूप अपने को मानें। यद्यपि हम मनुष्य बन रहे, सब कुछ बन रहे, पर इनमें रुचि न जगे। स्वभावरुचि बने इन सब विडम्बनाओं का विनाश होगा।

सत् प्ररूपणा के प्रसंग में सिद्ध भगवान के निर्देश की प्रस्तावना—सत् संख्यादि सूत्र द्वारा कुछ गुणस्थानों के माध्यम से प्ररूपणा चल रही है, जहाँ यह अन्तरात्मा सकल परमात्मा बनकर १४ गुणस्थान से भी पार हो जाता है तब सिद्ध कहलाता है। अतीत गुणस्थान है यह गुणस्थान से परे है। गुणस्थान में उत्तरोत्तर विशुद्धि बढ़ती तो गई मगर आखिर में गुणस्थान सब विच्छिन्न हो हो गए। अब गुणस्थान से परे सिद्ध भगवान है। इससे समझ भी सकते हैं कि जो समयसार में बताया है कि गुणस्थान मार्गणा आदिक ये सब जीव नहीं हैं। अगर जीव होते तो जीव के साथ में सदा रहते। उनसे पार होकर अब यह अतीत गुणस्थानवर्ती हो गया क्षपकश्रेणी और सयोग केवली प्रभु में पवित्रता है। इतना होने पर भी एक यह ध्यान रखना कि १४ वाँ गुणस्थान तो आश्रव रूप नहीं है लेकिन १३ वें गुणस्थान तक आश्रव है और बताया है कि सामान्य रूप से तो मिथ्यात्व, अविरति,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कषाय, योग, ये आश्रव हैं और इनके विशेष हैं—मिथ्यादृष्टि से लेकर सयोग केवली पर्यन्त १३ गुणस्थान। अब इस अध्यात्म कथन से यह बात जान सकते हैं कि पहिले दूसरे तीसरे गुणस्थान में अथवा चौथे पाचवें छठे गुणस्थान में इसे निराश्रव कहें क्या ? यह निराश्रव नहीं। इस विषय में अध्यात्म शास्त्र में स्थूल कथन है और करणानुयोग में सूक्ष्म कथन है। जैसे कि समयसार आत्मख्याति में कहा "ज्ञानहि तावदास्रवभी प्रायाभावान्निरास्रवः। तो निराश्रवता का अर्थ इतना ही है कि जो हम बुद्धिपूर्वक आश्रव भावना किया करते हैं वह अभिप्राय न रहे तो निराश्रव है। और अध्यात्मशास्त्र में भी आश्रव १३ वें गुणस्थान तक कहा है। १४ वां गुणस्थान निराश्रव है और १४ वाँ गुणस्थान अयोग केवली चूंकि ४ अघतिया से सहित है—इसलिए यह भी जीव का पद नहीं है। जीव का पद तो वह है जहाँ स्वभाव से पर्याय का मेल खा गया। आत्मा का स्वभाव है विशुद्ध चैतन्य। तो देखो स्वभाव में विकार नहीं होता। स्वभाव में अपूर्णता नहीं होती। स्वभाव में आकुलता नहीं होती। स्वभाव कहलाता है वह जो सहज है। निरपेक्ष है, अपने आप से स्वतः सिद्ध है। किसी पर की उपाधि बिना जो कुछ इसमें अस्तित्व कहलाता है स्वभाव। अब सिद्ध भगवान का जो परिणमन है वह बाहरी औपचारिक लेप से भी रहित हो गया और, वहाँ स्वभाव और पर्याय बिल्कुल अनुरूप हो गया, अर्थात् जो स्वभाव में है सो ही एकदम पर्याय में हो गया। ऐसा अतीत गुणस्थान सिद्ध परमेष्ठी द्रव कर्म भावकर्म, तो इन तीनों से रहित हैं।

विकार के अंश अंश का समग्र प्रक्षय कर देने में विवेक—देखो जैसे कोई बड़ा विवेकी है तो शत्रु के अंश से भी बचकर रहता है कोई दुश्मन है उसे पराजित कर लिया फिर भी उसकी संतान से, वच्चे से भी सावधान रहता है और कोई ऐसे होते हैं कि जो शत्रु के अंश को भी एकदम खतम कर डालते हैं, उनका मंतव्य होता है कि शत्रु का लेश भी न रहना चाहिए। इसी प्रकार हम आपके शत्रु क्या हैं ? विकार और निमित्त दृष्टि से कर्म। विकार ही हम पर आक्रान्त होते हैं और हम बरबाद होते हैं। तो ध्यान में यह रहना चाहिए कि विकार का मुझ में अंश भी न रहे। खोज करना चाहिए कि मैंने इतना तो साधन कर लिया फिर भी मेरे में विकार के अंश अभी क्या क्या हैं उनको भी दूर करने का यत्न करें। विकारों के दूर करने का यत्न क्या है ? निर्विकार सहज स्वभाव अंतस्तत्त्व का आश्रय। यह ही एक अमोघ उपाय है विकार के दूर करने का। हम सारी बातों को गौण करके, सबसे उपेक्षा करके अपने देह से भी, परिणित से भी उपेक्षा करके अंतस्तत्त्व का आश्रय लें। परिणित बिना जीव रहेगा नहीं, पर परिणित का प्रयोग न होने दें। स्वभाव का उपयोग करें। ऐसी परिणति तो हो सकती है। तो हम अपने आपका ऐसा अनुभव रखें कि मैं चैतन्य स्वरूप मात्र हूं और रूप नहीं हूं। और रूप जो कुछ होता है वह सब कर्म का नाच है। पुद्गल नाचता है तो नचो। यह मैं सहज आत्मा तो, चैतन्य स्वरूप से अन्तः प्रकाशमान निर्लेप ही हूं अर्थात् स्वभाव को देखा जा रहा है। भले ही पर्याय का नाच हो रहा है। अनेक विभाव दशायें चल रही हैं, लेकिन उनको हम न देखें और केवल अपने स्वरूप को देखें तो देख सकते हैं।

उदाहरणपूर्वक सहज स्वभाव का दिग्दर्शन करने का अनुरोध—जैसे दर्पण के सामने २—४ बालक खड़े हैं और मैं दर्पण को देख रहा हूं। तो उन सब बालकों की चेष्टा भी जान रहा हूं। कौन बालक जीभ निकाल रहा, कौन हंस रहा, कौन हाथ फैला रहा, कौन पैर फैला रहा . . .। तो देखो हम यहां तीन प्रकार से दर्पण का दर्शन कर सकते हैं, एक तो यह जान कर कि जो यह प्रतिबिम्ब

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हो रहा। यह जो लड़का पैर उछाल रहा, हाथ चला रहा है यह दर्पण का स्वभाव नहीं। यह उन बच्चों का निमित्त पाकर दर्पण में परिणमन हो रहा है। ऐसा भी तो हम जान सकते हैं। एक ऐसा भी तो हम जान सकते हैं कि लड़कों का कुछ ख्याल ही न करें, उनकी हम दृष्टि ही न रखें, केवल एक दर्पण के प्रतिबिम्ब मात्र को देखें तो वहाँ देखने में आ ही रहा है कि ऐसा परिणमन हो रहा है। यह परिणमन है। ऐसा भी देख सकते हैं। तीसरी बात यह हम देख सकते हैं कि दर्पण के प्रतिबिम्ब पर भी हम दृष्टि न दें, उसे ओझल कर दें ज्ञान द्वारा और भीतर में दर्पण के उस स्वच्छ स्वभाव को निरखें कि उसमें तो स्वच्छ स्वभाव है, इसमें पढ़ने वाला यह प्रतिबिम्ब दर्पण का स्वभाव नहीं, किन्तु इसकी स्वच्छता ही दर्पण का स्वभाव है। इसी प्रकार हम आत्मा को तीन ढंगों से देख सकते हैं, एक तो यों देख सकेंगे कि आत्मा में जो ज्ञानविकल्प चल रहा है, जिसमें क्रोध, मान, माया, लोभ रूप उपयोग बन रहा है, यह कर्मविपाक का सान्निध्य पाकर हो रहा है, यह मेरा स्वरूप नहीं है। दूसरी दृष्टि हम यह देख सकते हैं, कर्म को देखें ही नहीं, परवस्तु है, भिन्न पदार्थ है, केवल अपने विकल्प को ही देखें तो वहाँ यह देखने में आएगा कि यह आत्मा ज्ञानविकल्प रूप बन रहा है। अपने ज्ञान को इस तरह परिणमा रहा है, यह उपयोग यों चल रहा है, यों देखो। तीसरी दृष्टि यह बन सकेगी कि हम ज्ञान के विकल्प को भी न देखें। होते हों तो हों। हम देखते ही नहीं हैं। उससे उपेक्षा करके हम अपने आप में अनादि अनन्त शाश्वत अन्तः प्रकाशमान केवल प्रतिभास स्वरूप को जानें कि मैं तो एक चैतन्य मात्र, प्रतिभास स्वरूप हूं। ये तीन बातें हम जान सकते हैं। इसमें जो पहली बात है वह तो व्यवहारनवका विषय है, दूसरी बात यह है वह निश्चयनयका विषय है। तीसरी बात है वह शुद्धनयका का लक्ष्य है। तो हम शुद्धनय के लक्ष्य पर दृष्टि रखते हुए अपने आप में एक समता रस की बृद्धि करते करते द्रव्य कर्म, भाव कर्म, नोकर्म तीन से रहित हो जाएगें, उस समय कहलाएगी एक सिद्ध अवस्था। जिसके बाद फिर कुछ करने को नहीं रहता।

सिद्धत्व होने पर एक में एक की व अनेक की विराजमानता—सिद्ध प्रभु कृतकृत्य कहलाता है। यह सूक्ष्म है, इसमें लघुपना गुरुपना नहीं है। स्वरूप दृष्टि से सिद्ध में व हम में कोई अन्तर नहीं है। ये सिद्ध देह से रहित है फिर भी वे जिस देह से मुक्त हुए हैं उस देह प्रमाण उनके आत्मप्रदेश रहते हैं। पढ़ते हैं ना, जो एक माहि एक राजे एक मांहि अनेकनो, एक अनेकन की नहीं संख्या, नमों सिद्ध निरञ्जनों। यह बात एक अनुमान की मात्र नहीं है। इसका अर्थ और भाव प्रायः पढ़ने वालों के चित्त में कम होता है, पर भाव जब समझ में आ गया तो सिद्धभक्ति ऐसी उमड़ेगी कि वे महत्व स्वयं समझ जायेंगे। जहाँ एक सिद्ध भगवान हैं वहाँ अनन्त सिद्ध भगवान हैं, क्योंकि इस मध्यलोक में ढाई द्वीप के अन्दर एक भी प्रदेश ऐसा नहीं बचा जहाँ से जीव मुक्त न हुए हों, और एक मुक्त हुआ, वहीं से अनन्त मुक्त हुए और वह जाता है। उस स्थान से सीधे ऊपर तो एक ही जगह में अनन्त सिद्ध विराज रहे ना? अनन्त आत्मा है मगर प्रत्येक आत्मा अपने आपके स्वरूप में अपने आपके अन्दर ज्ञानमय हैं अपने आप में आनन्दस्वरूप है निगाह डालें एक स्थान पर अनन्त विशुद्ध आत्मा विराजमान हैं। इस पर भी प्रत्येक का अनुभव, प्रत्येक का आनन्द, प्रत्येक का परिणमन उनका उनमें ही है। तो एक में एक ही राज रहा है। जब आकाश में हैं और बाहर दृष्टि डालते हैं तो यह देखो कि एक में अनेक विराजे हैं। लेकिन जब एक द्रव्यदृष्टि से देखें, व्यक्ति तौर से देखें, परिणमन की की निगाह से देखें तो विदित होगा कि एक में एक ही राज रहा है, दूसरा। जो एक माहि एक राजे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

एक माहि अनेक नो। इसको अधिक समझाने की जरूरत नहीं, सब जानते हैं कि जहाँ कोई सिद्ध भगवान हैं वहाँ अनेक सिद्ध भगवान हैं।

सिद्धस्वरूप की एकानेक विकल्पाप्रतिबुद्धता- एक अनेकन की नहिं संख्या—इसमें बड़े अनुभव का मर्म छिपा है। देखो अभी तक यह देख रहे थे कि एक में एक है, एक में अनेक हैं, एक-एक ऐसे अनेक हैं, मगर जहाँ सिद्ध का वास्तविक स्वरूप दृष्टि में आया, चैतन्यमूर्ति, चैतन्यमात्र, शुद्ध ज्ञानपुञ्ज ऐसा जब दृष्टि में आया तो उसे न एक की खबर रही न अनेक की। वहाँ एक अनेक की संख्या नहीं है। देखो अनेक लोग इस भगवतस्वरूप की घटना के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की बातें करते हैं। वह कहाँ से सीखी ? यहाँ से निकली, एकांत कर लिया, इसलिए वह मिथ्या बन गया, पर सीखी तो यहाँ से है। जैसे पानी के बूँद बूँद तो अलग अलग हैं, पर जब बूंद समुद्र में मिल गये तो वे एक बन गये, ऐसे ही जीव जब ब्रह्म में मिल गया तो वह भगवान हो गया। कुछ लोग ऐसा कहते हैं ना ? अच्छा तो जैन शासन की ओर से इसमें क्या प्रसंग है ? ब्रह्मचैतन्यस्वरूप का नाम है, जिसकी गिनती नहीं, चैतन्यस्वरूप, क्या ऐसा बोलेंगे कि यह चैतन्यस्वरूप है, यह चैतन्यस्वरूप यह बैठा है, यह चैतन्यस्वरूप यह बैठा है। मानो हजार आदमी यहाँ बैठे हैं तो आप बता देंगे कि हजार आदमी बैठे है, और जीव भी बता देंगे कि हजार जीव हैं। पर चैतन्यस्वरूप के लिये यह न कहेंगे कि ये हजार चैतन्यस्वरूप हैं। तो जब स्वरूपदृष्टि की तो वहाँ एक की भी सीमा न रही और जब एक न बना तो अनेक बने कैसे ? एक-एक मिलकर ही अनेक बनते हैं। जब चैतन्यस्वरूप में एक संख्या भी नहीं है तो वहाँ अनेक बने कैसे ? जो लोग कहते हैं कि एक ब्रह्म है उन्होंने तो एक सोच लिया मगर जैन शासन का अनुभव कहता है कि उस चैतन्यस्वरूप में एक की भी संख्या नहीं तो देखो चला एक सही, एक चैतन्यस्वरूप को स्वरूपदृष्टि से देखा जा रहा हैं। जब इस जीव को इस चैतन्यस्वरूप का भान नहीं रहा तो यह उस ब्रह्म से अलग हो गया। ऐसा अलग नहीं है जो पृथक् हो, प्रदेश भिन्न हो, मगर जब उस चैतन्यस्वरूप की सुध नहीं तो वह उससे अलग है, पृथक् है। तो जो बहिरात्मा है उसका नाम रख लो जीव। यद्यपि सभी हैं जीव, मगर उस कथन का समन्वय करने के लिये यों समझिये कि बहिरात्मा का तो नाम है जीव और यह जीव जब इस ब्रह्मस्वरूप की सुध कर लेता, ब्रह्मज्ञानी बनता अनन्तरात्मा बनता है तो उसका नाम है आत्मा। और वह अन्तरात्मा जब अन्तःप्रज्ञ बन जाता, प्रभु हो जाता तो उसका नाम है परमात्मा। अब देखिये—उस सिद्धांत में ब्रह्म में जीव मिल गया सो परमात्मा तो हो गया पर ब्रह्म नहीं हुआ। तो वह ब्रह्म क्या है कि जो तीन दशाओं के स्वरूप से विलक्षण है। तो यह जीव का उपयोग जब ब्रह्मस्वरूप में मिल जाता है तो इसे कहते हैं कि मुक्त हो गया। केवलरूप हो जाय तो सिद्ध हो गया। यों एक स्वरूप हुआ।

नयचक्र से विवाद का संहार—प्रभु के बारे में जो कोई भी अन्य दार्शनिक जो कुछ कहते हैं। दृष्टियों से देखें तो सब की बातें सिद्ध हो जाती हैं। जैसे एक बिल्कुल विलक्षण बात उदाहरण में ले लो। ईश्वर इस जगत का कर्ता है। अब भला जैन शासन के अनुसार इसकी दृष्टियां बनावें। देखो कितने जीव हैं वे सब अपने आप की सृष्टि करते हैं, इसमें तो विरोध है नहीं। सभी जीव अपनी-अपनी सृष्टि करते चले जा रहे हैं, लेकिन परमय होकर सृष्टि नहीं। जगत में जो कुछ भी दिख रहा है यह जीव के सम्बन्ध बिना नहीं हो सकता। चाहे पत्थर हो, मिट्टी हो, काठ हो, कुछ हो, आखिर यह काय ही तो हैं वनस्पतिकाय, पृथ्वीकाय, जलकाय आदि। जीव का सम्पर्क था और उस समय निमित्त नैमि-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

त्तिक योगवश इनकी वृद्धि हुई, यह रचना हुई। अब जीव ने इन्हें छोड़ दिया। तो सारा जगत देखो इस दृष्टि से इस सृष्टि का करने वाला ये सब जीव हुए ना ? देखो निमित्त भी परखते जावो, उपादान देखते जावो। उपादान से तो अपनी विभावसृष्टि को करता है और निमित्त दृष्टि से इस बाहरी दृश्यमान को करता है। निमित्त से करता है उसका अर्थ यह न लेना कि वह परकी परिणति करेगा। उसका अर्थ यह होता है कि यह जीव का सम्पर्क निमित्तमात्र है और यहाँ पुद्गल में अपनी परिणति से ऐसा परिणमन हुआ है। अच्छा चलो यह कहलाता है निमित्त दृष्टि से कर्तापन। अच्छा सृष्टि तो सब जीवों ने की ना ? देखो सब जीवों का स्वरूप, सबमें ऐश्वर्य है। सब ईश्वर है, सब अपने आप में परमात्मस्वरूप रखते हैं तो परमातमस्वरूप की दृष्टि दें तो जीव की विभिन्नता दृष्टि से हट गई और तब रह गया एक परमात्मस्वरूप। यों धीरे धीरे जैसे कहते ना कि छिगुली कपड़कर पहुँचा पकड़ लेना, ऐसे ही नयों की परम्परा लेकर उसे भी सिद्ध कर लिया। कौन सी बात सिद्ध नहीं लेकिन हो तो किन्हीं नयों से सिद्ध और मान लो किसी अभिप्राय से तो वहाँ वाद विवाद उत्पन्न हो जाता है।

सिद्धप्रभु का क्षेत्रलोकशिखर पर ४५ लाख योजन में स्थित तनुवातवलय में संख्यातवां भाग—यहाँ सिद्ध भगवान की बात कह रहे हैं। जैसे ही अरहन्त प्रभु बचे हुए कर्म प्रकृतियों से मुक्त हो गये तो एक ही समय में ये लोक के शिखर पर पहुँच जाते हैं। जिस स्थान से मुक्त हो चुके उसके ऊपर लोक के शिखर पर विराजे रहते हैं। देखो लोक की रचना जो पुरुषाकार दिख रही, इसके चारों ओर तीन वातवलय हैं। ऐसी मोटी हवा है कि यों समझ लो कि उस हवा पर ही मानो लोक टिका है। कोई लोग कहते हैं ना कि यह पृथ्वी शेषनाग पर टिकी है। तो शेष नाग क्या है ? शेष न अ ग। ये शब्द हैं इसमें। ग मायने जो गमन करे उसको बोलते ग। जो गमन करने की आदत ही रखे, ऐसी चीज क्या है ? हवा। और अग—जो गमन न करे सो अग, और न अग जो गमन न करे ऐसा नहीं सो नाग, मायने हवा। दो न का क्या अर्थ है ? एक अ है एक न है, नाग मायने हवा, और शेष मायने अन्त की हवा। तो लोक में जो अन्त की यह हवा है यह वातवलय कहलाती है शेषनाग, इस पर लोक टिका हुआ है। तो जैसे वातवलय नीचे है ऐसे ही तीन वातवलय ऊपर भी हैं, जिनमें पहला तो रहता है धनोदधिवातवलय, और फिर दूसरा है घनवातवलय और फिर तीसरा है तनुवातवलय। धनोदधिवातवलय तो दो कोश का मोटा है, घनवातवलय १ कोश का मोटा है और यह तनवातवलय १५७५ धनुष प्रमाण है। अब समझ लीजिये तनुवातबलय सबसे उपर है। सिद्ध भगवान कोई साढ़े तीन हाथ की अवगाहना के हैं कोई ५२५ धनुष की। तो तनवातवलय भी पूरा सिद्ध लोक नहीं। उसका ऊपरी छोटा हिस्सा सिद्ध लोक है। वहाँ सिद्ध भगवान विराजे हैं। सिद्ध भगवान का यह व्यावहारिक परिचय है।

सिद्धका मार्गणादि द्वारा परिचय—क्या सिद्ध भगवान के गुणस्थान हैं ? नहीं क्या इनके जीव समास है ? नहीं, पर्याप्ति नहीं, प्राण नहीं, संणा नहीं, गति नहीं, इन्द्रिय नहीं, काय नहीं, योग नहीं, वेद नहीं, कषाय नहीं, और ज्ञान केवल ज्ञान है। ज्ञान तो आत्मा का स्वरूप है। नहीं नहीं की धुन में ज्ञान को भी नहीं मत कहना। संयम भी नहीं वे संयम से भी अतीत हो गये, वहाँ कोई प्रयास नहीं दर्शन में केवलदर्शन है लेश्या नहीं, भव्यत्व नहीं, संज्ञी नहीं, असंज्ञी नहीं अनुभय हो गये। न भव्य है, न अभव्य। अभव्य का तो वहाँ कोई काम ही नहीं। भव्यत्व का विपाक हो गया। सम्यक्त्व

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है क्षायिक सिद्ध प्रभु के सदा काल तक अब कोई वर्गणायें ग्रहण में न आएँगी। ऐसा भगवान का निर्लेप निरञ्जन स्वरूप है। वहाँ तो क्षायिक भाव और एक पारिणामिक भाव जीवत्व यह परम-पारिणमिक भाव के अनुरूप विकास है। तो क्षायिक भाव का अगर संकोच किया जाय तो क्षायिक ज्ञान, क्षायिक दर्शन, क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायिक वीर्य। वीर्य में सब आ जायेगा, दान, लाभ आदिक। इस तरह संक्षेप करें तो सिद्ध भगवान के ५ भाव हैं।

भूतनैगमनय से सिद्धों में अन्तर का प्रदर्शन—सिद्ध का भेद हम सीधा तो नहीं कर सकते मगर कुछ औपचारिक कारणों से सिद्ध भगवान का विश्लेषण करें। देखो – सिद्ध भगवान ढाई द्वीप में सब जगह से हुए। लवण समुद्र से कैसे हुये किसी देवता ने उपसर्ग करके मुनि को समुद्र में पटक दिया और उसी जगह उनको केवलज्ञान हुआ और वहीं से मोक्ष गये तो सीधे ही तो जाएँगे। अच्छा मेरुपर्वत के बीच में से कैसे गये? कोई ऋद्धिधारी मुनि उसमें से विक्रिया द्वारा पहुँचे वे विहार कर सकते, अणिमा गरिमा आदि अनेक ऋद्धियां होती हैं, वहां पहुँचे, ध्यान बन गया, मेरु-पर्वत के बीच में पहुँचे, वहीं शुक्लध्यान हो गया, केवलज्ञान हो गया, सिद्ध हो गये वहाँ से मोक्ष गये। ढाई द्वीप के अन्दर कोई भी प्रदेश ऐसा नहीं बचा जहाँ से अनन्त सिद्ध न हुए हों। अब उनमें अल्प बहुत्व जान सकते हैं। देखो लवण समुद्र से होने वालों की संख्या सबसे कम है, क्योंकि उप-सर्ग करे, वहाँ पटके, वहीं केवलज्ञान हो, ऐसे जीव जीव यद्यपि हैं अनन्त मगर और की अपेक्षा कम हैं। और उनसे संख्यातगुने सिद्ध हैं—कालोद समुद्र से जो सिद्ध हुये वे, क्योंकि कालोद समुद्र का विस्तार लवण समुद्र से चौगुना है। लवण समुद्र से दूना द्वीप, उससे दूना कालोद समुद्र। और उससे अधिक हैं वे जो जम्बूद्वीप से सिद्ध हुये। द्वीपों में जम्बूद्वीप में भी क्षेत्र थोड़ा है, उनसे अधिक धातकी खण्ड से सिद्ध हुये और उससे अधिक पुष्करार्द्ध से। इसी प्रकार ये सिद्ध भगवान पूर्वापेक्ष या नानाविध हैं। मनुष्य से ही सिद्ध हो सकते हैं, नरक से मनुष्य बनकर सिद्ध हो जाएँ, तिर्यंच से मनुष्य बनकर सिद्ध हो जाएँ और देव से मनुष्य बनकर सिद्ध हो जाएँ। यदि इनमें छटनी करें तो ऐसे मनुष्य कम हैं जो तिर्यंच गति से आकर मनुष्य बने हैं। और वे केवलज्ञान पायें, सिद्ध हों, ऐसे सिद्ध और गति सिद्धों की अपेक्षा कम हैं। उनसे अधिक वे हैं जो मनुष्य गति से आकर मनुष्य होकर सिद्ध हुए हैं। उनसे अधिक वे हैं जो नरक गति से आकर मनुष्य होकर सिद्ध हुए। अब आप अन्तर डालो। चारों ओर से विचार करो। आपने सुना होगा कि नरकगति से निकलकर कोई जीव तुरन्त नरक नही पहुँच सकता। अन्य गति पायेगा तिर्यंच गति, मनुष्य गति, फिर नरक जा सकेगा। तो भाई ठीक है। इतना हिसाब और इतना न्याय तो अच्छा है कि जो सागरों पर्यंत नरक में कुटा पिटा, उससे तो उसे तुरन्त नरक जाना न पड़ा, और देखो कि नरक गति से मनुष्य बनकर जो सिद्ध भगवान बने वे मनुष्य से मनुष्य बनकर सिद्ध होने की अपेक्षा ज्यादह हैं, और उनसे अधिक वे हैं, जो देवगति से आकर मनुष्य होकर सिद्ध हुए वे सिद्ध भगवान वैसे सब केवल ज्ञानो हैं, उनमें परस्पर कोई अन्तर नहीं है। जो दो ज्ञानों के धारी थे मतिज्ञान और श्रुतज्ञान और उसके बाद केवली होकर मोक्ष गये, ऐसे जीव कम हैं। उनसे ज्यादह वे सिद्ध हैं जो चार ज्ञानों के धारी बनकर मोक्ष गये – मति, श्रुत, अवधि मनःपर्यय। और उनसे अधिक संख्या उनकी है, जो मति, श्रुत, अवधिज्ञान इन तीन ज्ञानों के धारी थे। और केवली बनकर मोक्ष गये परन्तु वहाँ यह सब कुछ मिट गया। एक केवल ज्ञान पुञ्ज रह गए देखो प्रभु का ध्यान करें तो सीधे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ही बस ज्ञान पुञ्ज मात्र रूप से ध्यान करें। अवगाहना की अपेक्षा सिद्धों का विचार करने पर जघन्य अवगाहना से मुक्त हुये जीव थोड़े हैं। उत्कृष्ट अवगाहना से मुक्त हुये जीव उनसे संख्यात गुने हैं।

अन्तर की अपेक्षा विचार करने पर ६ माह के अन्तर वाले सिद्ध सबसे थोड़े हैं और उन से संख्यात गुने एक समय के अन्तर वाले सिद्ध होते हैं।

संख्या की अपेक्षा अल्प बहुत्व का विचार करने पर एक समय में १०८ की संख्या में मुक्त हुए जीव थोड़े हैं। एक समय में १०७ से लेकर पचास तक की संख्या में मुक्त हुये जीव उनसे अनन्त गुने हैं। एक समय में ४९ से लेकर २५ तक की संख्या में मुक्त हुए जीव उनसे असंख्यात गुने हैं। एक समय में २४ से लेकर एक तक की संख्या में मुक्त हुये जीव उनसे संख्यात गुने हैं। इस प्रकार सिद्ध हुए जीवों में भूत पर्याय की अपेक्षा तो अन्तर है, लेकिन वर्तमान की अपेक्षा सब एक समान हैं, उनमें कोई भेद नहीं है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com